स्कन्द पुराण

द्वितीय खण्ड

(सरल भाषानुवाद सहित, जनोपयोगी संस्करण)

*

सम्पादक

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,
२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

*

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

*

प्रथम संस्करण
१९७०

*

मुद्रक :
दाऊदयाल गुप्त
सस्ता साहित्य प्रेस
मथुरा

*

मू सात रुपये पचास पैसे

दो शब्द

स्कन्द पुराण के इस द्वितीय खण्ड में "काशी खण्ड" "अवन्ती खण्ड" और "रेवा खण्ड" का समावेश है। ये तीनों भारत के तीन प्रधान क्षेत्र हैं। काशी की महिमा और विशेषता तो सर्वत्र विदित है। शैव सिद्धान्त और संस्कृत विद्या का सर्व प्रधान केन्द्र होने के कारण वह समस्त देश में प्रसिद्ध है और भारत वर्ष के चारों कोनों के यात्री प्राचीन काल से वहाँ आते रहे हैं। संभवतः हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और अटक से लेकर कामक्षा देवी तक के दो हजार लम्बे चौड़े प्रदेश में कोई ऐसा प्रसिद्ध नगर नहीं मिल सकता जो काशी से अधिक प्राचीन और भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। यद्यपि वेदों का आविर्भाव पंचनद प्रदेश में हुआ, पर उनका पठन-पाठन अध्ययन-अध्यापन, मनन मुख्यतः काशी में ही होता आया है और भारत भर के विद्यार्थी सदा से वहीं आते रहे हैं।

काशी में शैव तीर्थों की गणना कर सकना कठिन है। प्रत्येक गली कूचे में शिव के अनेक मंदिर खड़े हैं और दशाश्वमेध, मणिकर्णिका, ज्ञान वापी, कपाल मोचन, त्रिलोचन आदि अनेक प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जिनका वर्णन इस खण्ड में किया गया है। यद्यपि प्राचीन काल की काशी तथा यवन काल में अनेकों बार लूटी और तोड़ी फोड़ी गई काशी की स्थिति में बहुत कम अन्तर है तो भी 'स्कन्द पुराण' के "वाराणसी वर्णन से वहाँ का एक महत्त्व पूर्ण चित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। अब न पुराने समस्त तीर्थ—स्थल रह गये हैं और न वह भावना शेष रह गई है, तो भी काशी की महिमा अभी समस्त हिन्दू जगत में अक्षुण्ण है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

अवन्तिका—वर्तमान उज्जैन नगरी भी प्राचीन भारत का एक ऐतिहासिक धार्मिक स्थल है। इसको महाराज विक्रमादित्य की राजधानी कहा जाता है, जिनके नाम के सम्वत् का हम प्रतिदिन उपयोग करते हैं।

"स्कन्द पुराण" की दृष्टि में इस क्षेत्र का महत्त्व इतना अधिक है कि उसने यहाँ की क्षिप्रा नदी को संसार की समस्त नदियों में शिरोमणि बतलाया है, जिसके दर्शन मात्र से समस्त पाप दूर होकर मनुष्य श्रेष्ठ गति पा लेता है। इस तीर्थ के अधिपति "महाकालेश्वर" की भी अत्यन्त महिमा है। इसके सिवाय अन्य स्थानों में जो प्रसिद्ध तीर्थ हैं वे सब भी सूक्ष्म रूप से यहाँ मौजूद हैं। समस्त देश में काशी,प्रयाग,अमरकंटक,भरत, केदार, करवीर, एकाम्रक, मट्टक आदि जितने प्रधान शैव क्षेत्र हैं, उन्हीं में महाकालेश्वर के महाकालवन की गणना की जाती है। वहाँ रह कर तप, उपासना करने से मनुष्य के समस्त पापों का क्षय होकर पुण्य-पथ का मार्ग दर्शन मिलता है। इस महा कालवन में एक महाकालेश्वर शिव ही नहीं हैं। यहाँ कोटीश्वर, त्रिदशेश्वर, कपाल मोचन देव, कपिलेश्वर, कुसुमस्केश्वर, पिप्पलाद, स्वप्नेश्वर, विश्वतोमुख, सोमेश्वर, वैश्वानरेश्वर, गणेश्वर, प्राणेश, दण्डपाणि, पुष्पदत्त दुर्वासेश्वर, कालेश्वर, कुटुम्बेश्वर, मार्कण्डेश्वर, अघिरेश, मार्गेश्वर, वाल्मीकेश्वर, संगमेश्वर, पिशाचेश्वर, विद्याधर तीर्थ, सोमवती तीर्थ, सौभाग्य तीर्थ, वज्रपाणि तीर्थ, सोम तीर्थ आदि नामों से इतने तीर्थ हैं, जिनको गिनती का सुनना भी कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि अवन्तिका किसी समय मध्य भारत का सब से प्रमुख तीर्थ रहा है। आज कल भी हिन्दुओं के सबसे बड़े धार्मिक समारोह "कुम्भ मेला" के चार प्रमुख केन्द्रों में से एक उज्जैन (अवन्तिका) भी है। 'स्कन्द पुराण' में इसका वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है।

रेवा खण्ड में नर्मदा तटवर्ती तीर्थों का वर्णन है। कई स्थानों पर पुराणकार ने नर्मदा की महिमा सबसे बढ़कर बतलाई है और शैव मत के अनुयायियों की दृष्टि से यह अस्वाभाविक भी नहीं है। गंगा भी यद्यपि शिवजी की जटाओं से बहती हुई मानी गई है, फिर भी वह सर्व प्रथम विष्णु के चरणों को धोने के लिये प्रकट हुई थी। इस लिये उसमें विष्णु की प्रधानता ही मानी जायगी। पर नर्मदा को शिवजी के पसीने से उत्पन्न कहा गया है। माहात्म्य गंगा के तुल्य ही माना जाता है और उसके समीप वर्ती भूभाग में हजारों तीर्थ अब भी स्थित हैं। नर्मदा की

स्तुति करते हुए समस्त मुनियों ने बड़े भक्ति भाव से कहा था।

"हे पुण्य जल के आश्रय वाली! हे परम शुभे! आपको हमारा नमस्कार हो। आप विशुद्ध सत्व वाली और सुरों के द्वारा सेवित हैं। आप भगवान् रुद्र के अंग से परम वरिष्ठ हैं, आपको हमारा नमस्कार है। हे वरों के प्रदान करने वाली देवि! हे शिवे! आपको प्रणाम है। दोनों लोकों में सौख्य के प्रदान करने वाली देवि! आपको अनेकों भूतों के समुदायों को समाश्रय देने वाली और अनघ हैं, आपको हमारा नमस्कार है। आप समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ हैं। हे पाप हरे! हे विचित्रवे! आप गन्धर्व राक्षस, उरगों के द्वारा सेवित अंग वाली हैं। हे सनातनि! आप समस्त प्राणियों पर कृपा करने वाली और मोक्ष के प्रदान करने वाली हैं। आप हमारा कल्याण करें।"

रेवा खण्ड में भी नारदेश्वर, प्र भिरल तीर्थ, स्कन्द तीर्थ, कोटि तीर्थ, अग्नि तीर्थ, अमदग्न्य तीर्थ आदि बहुसंख्यक नर्मदा तट वर्ती स्थानों का माहात्म्य विस्तार पूर्वक वर्णन है। इसमें सन्देह नहीं कि इस पुराण में तीर्थों का माहात्म्य पौराणिक अर्थवाद की प्रणाली से बड़ी रोचकता पूर्वक और बढ़ा चढ़ा किया गया है, जिससे सामान्य जनता की भक्ति उनके प्रति सुदृढ़ बनी रहे। साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि ये स्थान प्राकृतिक तथा परम्परागत दृष्टि से आत्म शुद्धि में सहायक हैं, और जो शुद्ध भाव से उनका सेवन करेगा वह अवश्य कल्याण साधन कर सकेगा। पर खेद है कि इस समय स्वार्थी लोगों ने धन कमाने के उद्देश्य से तरह-तरह के ढोंग फैलाकर वहाँ के वातावरण को दूषित कर दिया है, जिससे उनकी प्राचीन महिमा अधिकांश में नष्ट हो गई है। इस स्थिति का सुधार हो और तीर्थ फिर से अपनी त्याग और तपस्यामय गरिमा को प्राप्त करें, इस उद्देश्य से हमने 'स्कन्द पुराण' में वर्णित हजारों तीर्थों के सविस्तार वर्णन में से इस प्रकार चुने हुये तीर्थों का वर्णन किया है, जिससे पाठकों के हृदय में ऐसी ही पवित्र और परमार्थ युक्त भावनाओं का उदय हो।

—प्रकाशक

विषय सूची

॥ रेवा खण्ड ॥

स्कन्द पुराण

—(※)—

४४—नियम विधि माहात्म्य वर्णन

पितृणातर्पण कुर्याच्छ्रद्धायुक्तेन चेतसा ।
स्नानावसाने नित्यं चसुप्ते देवेमहाफलम् ॥१
सङ्गमेसरिता तत्र पितृन्संतर्प्य देवताः ।
जपहोमादिकर्माणि कृत्वा फलमनन्तकम् ॥२
गोविन्दस्मरणं कृत्वा पश्चात्कार्याः शुभाः क्रियाः ।
एष एव पितृदेवमनुष्यादिषु तृप्तिदः ॥३॥
श्रद्धाधर्मयुतानाम स्मृतिपूनानिकारयेत् ।
कर्मोणिसकलानीह चातुर्मास्येगुणोत्तरे ॥४
सत्स गोद्विज भक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम् ।
गोप्रदान वेदपाठः सत्क्रियासत्यभाषणम् ॥५
गोभक्तिर्दानभक्तिश्चसदा धर्मस्य साधनम् ।
कृष्णेसुप्तेविशेषेण नियमोऽपिमहाफल ॥६
नियमः कादृशो ब्रह्मन् फलच नियमेन किम् ।
नियमेन हरिस्तुष्टो यथा भवतितद्वद ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—श्री देवेश्वर के शयन करने पर स्नान के अन्त में परम श्रद्धा से युक्त चित्त के द्वारा अपने पितृगणों का तर्पण नित्य ही करना चाहिए—इसका महान फल हुआ करता है ॥१॥ सरिताओं के सगम में वहीं पर पितृगण और देवों का तर्पण भली भाँति करके और जप तथा होमादि कर्मों को करके मनुष्य अनन्त फलों की प्राप्ति किया करता है। भगवान श्री गोविंद का स्मरण करके पीछे अन्य शुभ क्रियाऐं करनी चाहिए। यह ही पितृ-देव और मनुष्य आदि में तृप्ति के

देने वाला है ॥२-३॥ इस भुगोत्तर चातुर्मास्य में यहाँ पर धर्मयुत श्रद्धा और समस्त कर्मों को स्मृति से पूत करावे। सत्सङ्ग, द्विजों में भक्ति गुरुदेव और अग्नि का तर्पण—गोदान, वेदपाठ, सत्क्रिया, सत्य भाषण गो भक्ति, दान भक्ति, सदा ये सब धर्म के साधन हुआ करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के शयन कर जाने पर विशेष रूप से नियम भी महान् फल वाले होते है। देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भगवन्! नियम किस प्रकार का होता है ? और उस नियम के द्वारा फल क्या हुआ करता है ? जिस प्रकार से नियम में श्री हरि भगवान तुष्ट हुआ करते हैं—यह कृपया हम को बतलाइये ॥४-७॥

नियमश्चक्ष्‌ुरादीनांक्रियामुविविधासुच ।
कार्योविद्यावताग् सातत्प्रयोगान्महासुखम् ॥८
एतत्पड् वर्गहरणं रिपुनिग्रहण परम् ।
अध्यात्ममूलमेतद्धि परम सौख्यकारणम् ॥९
तत्र तिष्टन्तिनियत क्षमासत्यादयोगुण. ।
विवेकरूपिण सर्वे तद्विष्णो परमंपदम् ॥१०
कृत भवति यज्ञीय कृतकृत्यत्वमत्र तत् ।
स्यात्तस्य तत्पूर्वजाना येन ज्ञातमिदं पदम् ॥११
तन्मुहूर्त्तमपिध्यात्वा पापजन्मशतोद्भवम् ।
भस्ममायाति विहितनिरञ्जननिषेवणात् ॥१२
प्रत्यहमङ्कवद्यस्य क्षुत्पिपासादिक.श्रमः ।
सयोगीनियमीनित्य हरौसुप्तेविशिष्यते ॥१३
चातुर्मास्ये नरो भक्त्या योगाभ्यासरतो न चेत् ।
तस्य हस्तात्परिभ्रष्टममृतं नात्र सशयः ॥१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—क्षुर (उस्तरा) आदि की अनेक क्रियाओं में नियम होता है। जो विद्या वाले पुरुष हैं उनको उसको करना चाहिए। उसके प्रयोग से महान् सुख समुत्पन्न होता है। इस षड् वर्ग का हरण शत्रुओं का परम निग्रहण होता है। यही अध्यात्म का मूल होता है और यही परम सौख्य का कारण हुआ करता है। यहाँ पर नियत रूप से क्षमा

और सत्य आदि समस्त सद्गुण स्थित रहा करते हैं। ये सब विवेक रूपी होते हैं और वही श्री भगवान् विष्णु का परम पद है। यज्ञीय अर्थात् यज्ञ कर्म का फल कृत होता है। यहां पर वह ही कृत कृत्यत्व (सफलता) है। उसके पूर्वजों का वह होता है। जिसने इस पद को भलीभांति जान लिया है। उस मुहूर्त्त मात्र भी ध्यान करके सौ जन्मों में किया हुआ भी पाप भस्मसात् हो जाया करता है। भगवान् निरञ्जन के सेवन से यह सब विहित होता है। जिसका प्रतिदिन भूख-प्यास आदि सम संकुचित होता है वह योगी और नित्य ही नियमों का पालक है। भगवान् को सुप्त होने पर विशेष रूप से होता है। चातुर्मास्य में नर भक्ति-भाव से यदि योग के अभ्यास में रत नहीं होता है तो यही समझ लेना चाहिए कि उसके हाथ से अमृत परिभ्रष्ट हो गया है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८-१४॥

मनोनियमितं येन सर्वेच्छासु सदागतम् ।
तस्य ज्ञाने च मोक्षे च कारणं मन एव हि ॥१५
मनोनियमने यत्नः कार्यः प्राज्ञव्रतासदा ।
मनसा सुगृहीतेन ज्ञानाप्तिरखिला ध्रुवम् ॥१६
तन्मनः क्षमया ग्राह्यं यथावह्निश्च वारिणा ।
एकया क्षमया सर्वो नियमःकथितोबुधैः ॥१७
सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः ।
सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ॥१८
धर्ममूलमहिंसा च मनसातां च चिन्तयन् ।
कर्मणा च तथावाचातत एतांसमाचरेत् ॥१९
परस्वहरणं चौर्यं सर्वदा सर्वमानुषैः ।
चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदेवस्ववर्जनम् ॥२०
अकृत्यकरणं चैव वर्जनीयं सदाबुधैः ।
अनीहः सर्वकार्येषु यः सदा विप्रवर्तते ॥२१

जिसने सभी प्रकार की इच्छाओं में जाने वाले मन को नियमित कर लिया है उसके ज्ञान में और मोक्ष में एक मात्र कारण मन ही होना

है जिसका नियम-नियन्त्रित कर लेना सर्वोपरि साधन माना गया है। अतएव प्रज्ञावान् पुरुष को अपने मन के नियमन करने मे सदा ही प्रयत्न करना चाहिए। जब यह मन सुगृहीत हो जाता है तो निश्चय ही पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाया करती है। उस मन को क्षमा के द्वारा ग्राह्य करना चाहिए जिस प्रकार से अग्नि की शान्ति जल से की जाती है और उस अग्नि पर काबू पाया जाता है। बुध पुरुषो ने एकमात्र क्षमा को ही सर्वश्रेष्ठ नियम कहा है। एक सत्य ही परम धर्म होता है और एक मात्र सत्य का परिपालन करना ही परम तप हुआ करता है। सत्य ही सर्वोत्तम ज्ञान है क्योंकि सत्य मे ही धर्म प्रतिष्ठित रहा करता है। धर्म का मूल अहिंसा है, मनसे उसका चिन्तन करते हुए कर्म्म के और वचन के द्वारा इस अहिंसा का समाचरण करना चाहिए। पराये धन का अपहरण करना घोर कर्म्म है इसीलिये सब मनुष्यों कोसर्वदा और चातुर्मास्य में विशेष रूप से इसका वर्जन कर देना चाहिए। ब्राह्मण का और देवों के धन का वर्जन कर देवें। जो भी अकृत्य हैं उनका करना बुधो के द्वारा वर्जन करने के योग्य है। जो पुरुष सर्वदा ईहा से रहित होता है वह सर्वश्रेष्ठ हुआ करता है ॥१५-२१॥

स च योगी महाप्राज्ञ. प्रज्ञाचक्षुरह न धी. ।
अहङ्कारो विपमिदं शरीरे वर्तते नृणाम् ॥२२
तस्मात्स सर्वदा त्याज्यः सुप्ते देवे विशेषत. ।
अनीहयाजितक्रोधो जितलोभो भवेन्नर. ॥२३
तस्य पापसहस्राणि देहाद्यान्ति सहस्रधा ।]
मोहं मानं पराजित्य क्षमारूपेण शत्रु णा ॥२४
विचारेण क्षमोग्राह्य. सन्तोषेणतथाहित' ।
मात्सर्यमृजुभावेन नियच्छेत्प्रभुनोत्तरः ॥२५
चातुर्मास्ये दयाधर्मो न धर्मो भूतविद्रुहम् ।
सर्वदा सर्वमासेपु भूतद्रोह विवर्जयेत् ॥२६
एतत्पापसहस्राणा मूल प्राहुर्मनीषिण ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या भूतदया नृभि. ॥२७

सर्वेषामेव भूतानां हरिर्नित्यं हृदि स्थितः।
स एव हि पराभूतोयो भूतद्रोहकारकः ॥२८
यस्मिन् धर्मे दयानैव स धर्मोदूषितो मतः।
दयाविना न विज्ञानं न धर्मज्ञानमेवच ॥२९
तस्मात्सर्वात्मभावेन दयधर्मः सनातनः।
सेव्यः स पुरुषैर्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥३०॥

वह ही योगी महा प्रज्ञा से सुसम्पन्न होता है जिसको प्रज्ञा का चक्षु हुआ करता है और अहङ्कार की वृद्धि नहीं होती है। मनुष्यों के शरीर में यह अहङ्कार विष के ही तुल्य हुआ करता है। अतएव विशेष रूप से देव के सुप्त हो जाने पर उसे निश्चय रूप से त्याग देना चाहिए। ईहा के अभाव होने से मनुष्य क्रोध को जीतने वाला और लोभ पर विजय प्राप्त करने वाला हो जायगा ॥२२-२३॥ उस व्यक्ति के सहस्रों पाप देह से सहस्रों टुकड़े होकर चले जाया करते हैं। मोह और मान को काम रूपी शत्रु के द्वारा पराजित करके विचार के द्वारा काम का ग्रहण करना चाहिये तथा सन्तोष के द्वारा भी ग्रहण करे। ऋजुभाव से अर्थात् सरलता से मात्सर्य को वह मुनीश्वर नियन्त्रित करे। चातुर्मास्य में क्षमा ही धर्म होता है। भूतों से विद्रोह करना धर्म नहीं होता है। सर्वदा ही सभी मासों में भूतों के साथ द्रोह करना वर्जित कर देवे। मनीषीगण इसको सहस्रों पापों का मूल कहा करते हैं। इसीलिए समस्त प्रयत्नों से मनुष्यों को भूतों पर दया करनी चाहिए। समस्त प्राणियों के हृदय में नित्य ही श्री हरि भगवान् स्थित रहा करते हैं। वह ही पराभूत होता है जो भूतों से द्रोह के करने वाला होता है। जिस धर्म में दया नहीं होती है वह धर्म ही दोषयुक्त होता है। दया सर्व प्रधान है। इसके बिना न विज्ञान ही होता है और न धर्म का ही ज्ञान हुआ करता है। इसलिये सर्वात्म भाव से दया ही सनातन धर्म होता है। चातुर्मास्य में विशेष रूप से मनुष्यों को उसी परम पुरुष की सेवा करनी चाहिये ॥२४-३०॥

४५—द्वादशाक्षरमहिमावर्णन

एकदा भगवान्रुद्र कैलाश शिखरे स्थितः ।
दधार परमा लक्ष्मीमुमया महितः किल ॥१
गणाना कोट्यस्तिस्रस्त यदा पर्यवारयन् ।
वीरबाहुर्वीरभद्रो वीरसेनश्च भृङ्गिराट् ॥२
रुचिस्तुष्टिस्तथानन्दीपुष्पदन्तस्तथोत्कटः ।
विकट. कण्टकश्चैव हुर केशो विघण्टक ॥३
मालाधर. पादाधरः भृङ्गी च नरनस्तथा ।
पुण्योत्कट. शालिभद्रो महाभद्रो विभद्रक ॥४
काणप: कालप. कालोधनवो रक्तलाचन.
विकटास्यो भद्रकश्च दीर्घजीह्वो विरोचन. ॥५
पारदो धनदो ध्वाक्षी हंसको नरकस्तथा ।
पञ्चशीर्षस्त्रिशीर्षश्च क्रोडदंष्ट्रो महाद्भुतः ॥६
सिहवक्त्रो वृषहनुः प्रचण्डस्तुण्डिरेव च ।
एते चान्ये च बहवस्तदाभवसमीपगाः ॥७

महर्षि गालव ने कहा—एक समय पर भगवान् श्री रुद्रदेव कैलाश पर्वत की शिखर पर समवस्थित थे और उन्होंने उमा देवी के सहित विराजमान होते हुए परम लक्ष्मी को धारण किया था । जिस समय में तीन करोड गण उनके चारों ओर में स्थित थे जिनमें परम प्रमुख गणों के नाम ये हैं, वीरबाहु, वीरभद्र, वीरसेन, भृङ्गिराट्, रुचि, तुष्टि, नन्दी, पुष्प दन्त, उत्कट, विकट, कण्टक, हुर, केश, विघण्टक, मालाधर, पादाधर, भृङ्गी, नरन, पुण्योत्कट, शालिभद्र, महाभद्र, विभद्रक, काणप, कालप, कान, धनद, रक्त लोचन, विकटास्य, भद्रक, दीर्घजिह्व, विरोचन, पारद, धनद, ध्वांक्षी, हंसक, नरक, पञ्चशीर्ष, त्रिशीर्ष, क्रोडदंष्ट्र, महाद्भुत, सिंहवक्त्र, वृषहनु, प्रचण्ड, तुण्डि ये तथा अन्य भी बहुत से गण उनके समीप में गमन करने वाले थे ॥१-७॥

महादेव जयेत्युच्चैर्भद्रकालीसमन्विताः ।
भूतप्रेतपिशाचानां समूहा यस्य वल्लभा ॥८

अस्तुवंस्तं समीपस्था वसन्ते समुपागते ।
वनराजिर्विभातिस्म नवकोरकशोभिता ॥९
दक्षिणानीलसंस्पर्शः कवीनां सुखकृद्‌भवौ ।
वियोगिहृदयाकर्षी किंशुकः पुष्पशोभितः ॥१०
द्वन्द्वादिर्विक्रियाभावं चिक्रीडुश्चसमन्ततः ।
तस्मिन्विगाढेसमये मनस्युन्मादकेतथा ॥११
नन्दी दण्डधरः सञ्ज्ञांदृष्ट्वाचक्रे हरोपरः ।
अलं चापलदोषेण तपः कुर्वन्तु भो गणाः ॥१२
सदा सर्वे वनमपि भूकाण्डजमगु पुनः ।
गणास्तेतप आतस्थुर्दृष्ट्वा कान्ति वसन्तजाम् ॥१३
ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् ।
इयं ते करगा नित्यमक्षमाला महेश्वरः ॥१४

ये सब महाकाली देवी के सहित महादेव प्रभु की जय हो, ऐसा उच्च स्वर से कह रहे थे जिसके परम प्रिय भूत, प्रेत और पिशाचों के समुदाय ही हुआ करते हैं ॥८॥ उनके समीप में स्थित हुए ये सब वसन्त के समुपागत होने पर उन प्रभु का स्तवन कर रहे थे। समस्त वन की पंक्तियां नवीन कोरकों (कलियों) से शोभित होकर विभासित हो रहीं थीं। दक्षिण दिशा की ओर से आने वाला वायु कवियों को सुख देने वाला होरहा था। जो वियोगीजन थे उनके हृदय को समाकर्षित करने वाला था और किंशुक पुष्पों की परम शोभा से युक्त हो रहा था ॥९-१०॥ उस मन में उन्माद उत्पन्न करने वाले विगाढ़ समय में सभी ओर में द्वन्द्वादि की विक्रिया के भाव को क्रीडा करने वाले दूसरे हर दण्ड के धारण करने वाले नन्दी ने देख कर सब को सावधान किया था, हे समस्त गणो ! चपलता के दोष को मत करो। सब तपश्चर्या करो। फिर सभी गण भूकाण्डज वन में चले गये थे और वसन्त के द्वारा उत्पन्न की गई कान्ति को देख कर तपस्या करने में समास्थित हो गये थे। इसके अनन्तर वह समस्त विश्व की जननी पार्वती देवी भगवान् शङ्कर से बोलीं-

हे महेश्वर ! यह आपके करकमल में रहने वाली अक्षों की माला है ॥११-१४॥

त्वया किं जप्यतेदेव सन्देहयति मे मनः ।
त्वमेकः सर्वभूतानामादिकृत्सकलेश्वरः ॥१५
न माता न पिता बन्धुस्तव जातिर्न कश्चन ।
अहं तव परं किञ्चिदपि नास्तीति किञ्चन ॥१६
श्रमेण त्वं समायुक्तो श्वासोच्छ्वास परायणः ।
जपन्नपि महाभक्त्या दृश्यसेत्वं मयासदा ॥१७
त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्त्वं ध्यायसिचेतसा ।
तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ॥१८
इति पृष्टस्तदा शम्भुरुवाच हरिसेवकः ।
हरेर्नामसहस्राणां सारं ध्यायामि नित्यशः ॥१९
जपामि राम नामाङ्कमवतारं तु सत्तमम् ।
चतुर्विंशतिसंख्याकान्प्रादुर्भावान्हरेर्गुणान् ॥२०
एतेषामपि यत्सारं प्रणवाद्यं महत्फलम् ।
द्वादशाक्षरसंयुक्तं ब्रह्मरूपं सनातनम् । २१

हे देव ! आपके द्वारा यह किस का जाप किया जाता है, मेरे मन में यह सन्देह होता है ? आप तो स्वयं ही समस्त प्राणियों में एक ही आदि स्वरूप हैं, सभी के ईश्वर हैं । आप का न तो कोई पिता है और न कोई माता ही है, न कोई बन्धु है, न जाति ही है । मैं तो आपसे पर किसी को भी नहीं जानती हूँ कि कोई अन्य भी आप से ऊपर है ॥१५-१६॥ आप श्रम से समायुक्त रहा करते हैं और श्वास, उच्छ्वास के करने में परायण रहा करते हैं । मेरे द्वारा सदा ही आप महा भक्ति से जाप ही करते हुए दिखलाई दिया करते हैं क्या आप से भी कोई परतर है जिसको कि आप चित्त से ध्यान किया करते हैं ? हे देवेश्वर ! यह आप मुझे कृपा कर के बतला दीजिए क्योंकि मैं तो आपको प्राण प्रिया हूँ । इस तरह से पार्वती देवी के द्वारा पूछे गये श्री हरि के सेवक भगवान् श्री शम्भु ने कहा— श्री हरि भगवान् के सहस्रों नामों के सार का मैं नित्य ही ध्यान किया

करता हूँ। मैं श्री रामनामांक सर्वश्रेष्ठ अवतार का जाप किया करता हूँ। चौबीस संख्या वाले भगवान् श्री हरि के प्रादुर्भाव हुए हैं ऐसे श्री हरि के गुणों का जाप किया करता हूँ। इन सबका सार जो सार है वह प्रणव नाम वाला है और वह सनातन द्वादश अक्षरों से-संयुक्त ब्रह्म का ही रूप है ॥१७-२१॥

अक्षरत्रयसम्बन्धं ग्रामत्रयसमन्वितम् ।
सबिन्दुं प्रणवं शश्वज्जपामि जयमालया ।।२२
वेदसारमिदं नित्यं ह्यक्षरं सततोधितम् ।
निर्मलं ह्यमृतं शान्तं सद्रूपममृतोपमम् ।।२३
कलातीतं निराशं निर्व्यापारं महत्परम् ।
विश्वाधारं जन्मध्यं कोटिब्रह्माण्डबीजकम् ॥२४
जडं शुद्धक्रियं चापि निरञ्जनं नियामकम् ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते क्षिप्रं घोरसंसारबन्धनात् ।।२५
ॐकारसहितं यच्च द्वादशाक्षरबीजकम् ।
जपतः पापकोटीनां दावाग्निरवं प्रजायते ।।२६
एतदेव परं गुह्यमेतदेव परं महः ।
एतद्धि दुर्लभं लोके लोकत्रयविभूषणम् ।।२७
प्राप्यते जन्मकोटीभिः शुभाशुभविनाशकम् ।
एतदेव परं ज्ञानं द्वादशाक्षरचिन्तनम् ।।२८

तीन अक्षरों से सम्बद्ध, तीन ग्रामों से समन्वित, बिन्दु से युक्त प्रणव को ही मैं जाप करने की इस माला से निरन्तर जप किया करता हूँ। यह सततोधित अक्षर नित्य ही वेद का सार भूत है। यह परम निर्मल, अमृत, शान्त सद्रूप वाला, अमृत के ही समान, कलातीत, निराश, निर्व्यापार, विश्व का आधार, परमहत् जन्मध्य, कोटि ब्रह्माण्ड का बीज, जड, शुद्ध क्रिया वाला, निरञ्जन और नियामक है जिसका ज्ञान प्राप्त करके प्राणी इस परम घोर संसार के बन्धन से बहुत ही शीघ्र मुक्त हो जाया करता है ॥२२-२५॥ इस ॐकार के सहित जो द्वादश अक्षरों वाला बीजक है उसको जाप करने वाले को तो करोड़ों पापों को भस्म करने के लिये

दावाग्नित्व हो जाया करता है अर्थात् दावाग्नि के समान ही सब पापों का भस्म कर दिया करता है। यह ही सबसे अधिक गोपनीय एवं महान् है और सब से अधिक तेज है। यह इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है तथा तीनों लोकों का यह विभूषण है। यह शुभाशुभ का विनाश करने वाला करोड़ जन्मों में प्राप्त किया जाता है। यह ही परम ज्ञान है कि द्वादश अक्षरों का चिन्तन किया जावे ॥२६-२८॥

चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मद चिन्तितप्रदम् ।
एतदक्षरज स्तोत्रं यः समाश्रयते सदा ॥२९
मनसा कर्मणा वाचा तस्य नास्ति पुनर्भवः ।
द्वादशाक्षरसयुक्त चक्रद्वादशभूषितम् ॥३०
मासद्वादशनामानि विष्णोर्योभक्तितत्परः ।
शालग्रामेषुतान्युक्त्वा न्यसेदघहर्त्तॄणि च ॥३१
दिवसे दिवसे तस्य द्वादशाहफलं भवेत् ।
द्वादशाक्षरमाहात्म्य वर्णितुं नैव शक्यते ॥३२
जिह्वासहस्रैरपि च ब्रह्मणापिन वर्ण्यते ।
महामन्त्रोह्ययं लोके जप्तो ध्यातःस्तुतस्तथा ॥३३
पापहा सर्वमासेषु चातुर्मास्ये विशेषतः ।
इद रहस्य वेदाना पुराणानामनेकशः ॥३४
स्मृतीनामपि सर्वासा द्वादशाक्षरचिन्तनम् ।
चिन्तनादेव मर्त्याना सिद्धिर्भवति हीप्सिता ॥३५

चातुर्मास्य में विशेष रूप से यह ब्रह्मज्ञान के प्रदान करने वाला और मन के सभी चिन्तित अभीष्टों के प्रदान करने वाला हुआ करता है। इस प्रकार से समुत्पन्न स्तोत्र का जो सदा समाश्रय किया करता है और मन, वाणी तथा कर्म के द्वारा इस का ध्यान रखता है उसका फिर इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता है। द्वादश अक्षरों से संयुक्त और द्वादश चक्रों से यह भूषित है। जो भगवद्भक्ति में परायण मनुष्य विष्णु के मास में इन द्वादश नामों को कहकर शालग्राम की सेवा में अघों के हरण करने वालों को समर्पित कर देता है उसको दिवस-दिवस में द्वादश दिन का फल हुआ

करता है। द्वादश अक्षरों का माहात्म्य ऐसा अद्भुत है कि यह वर्णन नहीं किया जा सकता है। जिस शेष के एक सहस्र जिह्वाऐं हैं उनके द्वारा वह भी नहीं वर्णन कर सकता है और चार मुखों वाले ब्रह्मा के द्वारा भी नहीं वर्णन किया जा सकता है। यह लोक में महान्‌ है। इस का किया हुआ जाप, ध्यान, स्तवन सभी मासों में पापों का हनन करने वाला होता है। चातुर्मास्य में इसका विशेष फल हुआ करता हैं यह वेदों का और अनेक पुराणों का तथा समस्त स्मृतियों का द्वादशाक्षर का चिन्तन करना परम रहस्य होता है। इसके केवल चिन्तन करने ही से मनुष्यों को ईप्सित सिद्धि हो जाया करती है ॥२६-३५॥

पुण्यदानेन जाप्येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ।
वर्णैस्तथाश्रमैरेव प्रणवेन समन्वितैः ॥३६
जपध्यानैःपरमपरं मोक्षं यास्यतिनिश्चितम् ।
शूद्राणाञ्चापि नारीणां प्रणवेन विवर्जितः ॥३७
प्रकृतीनां च सर्वासां न मन्त्रो द्वादशाक्षरः ।
न जपो न तपः कार्यं कायक्लेशाद्विशुद्धिता ॥३८
विप्रभक्त्या च दानेन विष्णुध्यानेन सिध्यति ।
तासां मन्त्रो रामनाम ध्येयः कोटयधिको भवेत् ॥३९
रामेति द्वयक्षरजपः सर्वपापापनोदकः ।
गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजोरामकीर्तनात् ॥४०
इहनिर्वृतिमायाति प्रान्ते हरिगणो भवेत् ।
रामेतिद्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ॥४१
सर्वासां प्रकृतीनाञ्च कथितः पापनाशकः ।
चातुर्मास्येऽस्य सम्प्राप्ते सोप्यनन्तफलप्रदः ॥४२
चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यते भक्तितत्परैः ।
देववन्निष्फलं तेषां यमलोकस्य सेवनम् ॥४३

पुण्य दानों से—जाप से शाश्वती मुक्ति हुआ करती है। सब वर्णों के द्वारा तथा समस्त आश्रमों के द्वारा प्रणव से युक्त जप, ध्यान से परम परायण लोग निश्चित मोक्ष को प्राप्त हो जाया करेंगे। प्रणव से रहित

इस मन्त्र का जाप शूद्र वर्ण वाले एवं नारीगण भी करके मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं। सब प्रकृतियों का यह द्वादशाक्षर मन्त्र नहीं है। सबको इसका जप या तप नहीं करना चाहिए। काय क्लेश से विशुद्धिता प्राप्त करके विप्रो की भक्ति, दान और भगवान् श्री विष्णु के ध्यान से ही इसकी सिद्धि होती है। उन का तो केवल श्रीराम का नाम ही महा मन्त्र है। इसका ही ध्यान शेष सबको करना चाहिए। यह करोड़ों गुना अधिक हुआ करता है ॥३६-३६॥ "राम"—इन दो अक्षरों का जाप समस्त पापों का अपनोदन करने वाला होता है। गमन करते हुए, स्थित रहते हुए, शयन करते हुए मनुष्य भी राम नाम के कीर्तन से इस संसार में निर्वृत्ति को प्राप्त हो जाया करता है और अन्त में भी हरि का पार्षद होजाता है। 'राम'—यह दो अक्षरो वाला मन्त्र सैकड़ों करोड़ मन्त्रों से भी अधिक होता है। यह सभी प्रकृतियों वाले प्राणियों के लिये पापों का नाश करने वाला कहा गया है। यह भी चातुर्मास्य के प्राप्त होने पर अनन्त फलों का प्रदान करने वाला होता है ॥४०-४३॥

न रामादधिकं किञ्चित्पठनं जगती तले ।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ॥४४
ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्चये ।
रामनाम्नैव विलयं यान्तिनात्र विचारणा ॥४५
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥४६
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिविदूषकः ।
रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थसाधकः ॥४७
सर्वतीर्थफलप्रोक्तो विप्राणामपि कामद. ।
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः। ४८
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि ।
देवाअपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम् ॥४९

चातुर्मास्य के महान् पुण्यों वाले समय में भक्ति से परायण मनुष्यों के द्वारा इसका जाप किया जाता है। उनको देवों के ही समान यमलोक

का सेवन निष्फल हुआ करता है। इस जगतीतल में श्रीराम के शुभ नाम से अधिक ग्रन्थ कुछ भी पठन करने का नही है। जो केवल श्री राम के परम शुभ नाम का ही समाश्रय लेलिया करते हैं उनको यम की यातना नही होती है। जो भी दोष हैं या विघ्नों के करने वाले हैं, मृतक तथा विग्रह हैं वे सभी श्री राम के नाम ही से विलय को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यह श्रीराम समस्त प्राणियों में चाहे स्थावर हो या जङ्गम हो, अन्तरात्मा के स्वरूप से रमण किया करते हैं जो भी 'श्री राम' यह कहा जाया करता है। "श्री राम" यह भगवन्नाम ही बड़ा मन्त्र राज है जो समस्त भयों और व्याधियो का विनाशक होता है। यही मन्त्रराज रण स्थल में भी विजय के प्रदान करने वाला होता है और समस्त कार्यों का साधन करने वाला है। यह समस्त तीर्थों का फल प्रदान करने वाला कहा गया है। यह विप्रों को भी कामनाओं का प्रदाता होता है जिस समय 'श्री राम चन्द्र', श्रीराम, 'श्रीराम', इस प्रकार से नाम का मुख से उच्चारण किया जाता है तब मनोरथ पूर्ण हो जाया करते हैं। यह केवल दो ही अक्षरों वाला मन्त्रराज है जो कि इस भूमण्डल में सभी कार्यों की सिद्धि कर देने वाला होता है। सब गुणों की खान 'श्रीराम'—इस नाम का देवगण भी गायन किया करते हैं—इतना महामहिमा से युक्त यह नाम है ॥४४-४६॥

तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद ।
राम नाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वं किल्विषैः ॥५०
सहस्रनामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते ।
चातुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तरं ॥५१
हीनजातिप्रजातानां महद्दहति पातकम् ॥५२
रामेत्ययथिर्मदमग्र्यवतेजसाप्याप्यजनान्तरात्मना ।
पुनातिजन्मान्तरपातकानिस्थूलानिसूक्ष्माणिक्षणाच्चदग्ध्वा ॥

इसलिये हे देवेशि ! आप भी सदा श्रीराम के परम शुभ नाम का उच्चारण किया करो। जो भी कोई श्रीराम के शुभ नाम का जाप किया करता है वह समस्त किल्विषों से मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥

एक सहस्र अन्य भगवन्नामों के लेने से जो पुण्य-फल होता है वह इस एक ही 'राम'—इस नाम के मुख से उच्चारण करने पर ही आया करता है। चातुर्मास्य में विशेष रूप से इसका दश गुना अधिक पुण्य होता है। जो हीन जातियों में जन्म ग्रहण करने वाले मनुष्य हैं उनके महान् पातक को यह दग्ध कर दिया करता है ॥५१-५२॥ यह श्री राम का परम पवित्र शुभ नाम इस समय विश्व को अपने तेज से व्याप्त करके जनों के अन्तरात्मा के द्वारा अन्य जन्मों के भी स्थूल एवं सूक्ष्म समस्त पातकों को एक ही क्षण में दग्ध कर के सबको पवित्र कर दिया करता है ॥५३॥

४६—पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णन

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञान चक्षुषे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥१
आख्यातं भवता सूत विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
समस्ताघहरं पुण्यं समासेन श्रुतञ्च नः ॥२
इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ।
तद्भक्तानाञ्च माहात्म्यमशेषाघहरम्परम् ॥३
तन्मन्त्राणाञ्च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तम ।
तत्कथायाश्च तद्भक्तेः प्रभावमनुवर्णनम् ॥४
एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम् ।
यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी ॥५
अतस्तद्भक्तिलेशस्य माहात्म्यं वर्ण्यते मया ।
अपि कल्पायुषा नाऽलं वक्तुं विस्तरतः क्वचित् ॥६
सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥७

मङ्गलाचरण—ज्योति ही जिसका स्वरूप है तथा निर्मल ज्ञान के नेत्र वाले, परम शान्त स्वरूप से युक्त, लिंग की मूर्ति वाले ब्रह्म श्री शिव भगवान् की सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥१॥ ऋषियों ने कहा—हे श्री

सूतजी ! आपने भगवान श्री विष्णु का परमोत्तम माहात्म्य का वर्णन किया जो समस्त पापों का हरण करने वाला है। हम सब ने संक्षेप में उसका श्रवण किया है ॥२॥ अब हम सब त्रिपुरासुर के हन्ता श्री शिव का माहात्म्य सुनना चाहते हैं। उनके भक्तों का माहात्म्य अशेष अर्थों का हरण करने वाला है। हे द्विज श्रेष्ठ ! उनके मन्त्रों का माहात्म्य, उनकी कथा और भक्ति प्रभाव का अनु वर्णन कीजिए। श्री सूतजी ने कहा— मनुष्यों का इतना यही परम सनातन श्रेय होता है कि उनकी ईश्वर की कथा में बिना हेतु वाली भक्ति उत्पन्न हो जावे। इसीलिये उनकी भक्ति के लेश का माहात्म्य मेरे द्वारा वर्णन किया जाता है। इसका पूर्ण विस्तार से वर्णन तो एक कल्प की आयु में भी कभी कहा नहीं जा सकता है। समस्त प्रकार के पुण्यों और सभी तरह के श्रेयों एवं सम्पूर्ण यज्ञों में यह नाम का यज्ञ ही परम प्रमुख बताया गया है ॥३-७॥

तत्रादौ जपयज्ञस्य फलं स्वस्त्ययनं महत् ।
शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्राहुर्महर्षयः ॥८
देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ।
मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथाशैवः षडक्षरः ॥९
एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तृणां मुक्तिदायकः ।
संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥१०
अस्यैवाक्षरमाहात्म्यं नालम्वक्तुं चतुर्मुखः ।
श्रुतयो यत्र सिद्धान्तं गताः परम निर्वृताः ॥११
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च सच्चिदानन्दलक्षणः ।
स शिवो यत्र रमते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे ॥१२
एतेन मन्त्रराजेन सर्वोपनिषदात्मना ।
लेभिरे मुनयः सर्वे परब्रह्म निरामयम् ॥१३
नमस्कारेण जीवत्वं शिवेऽत्र परमात्मनि ।
ऐक्यङ्गतमतोमन्त्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ ॥१४

उसमें जप यज्ञ का फल महान् स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याणकारी होता है। महर्षि गण छै अक्षर वाले शैव मन्त्र को ही परम दिव्य कहते हैं।

समस्त देवो मे परम देव भगवान् त्रिपुरान्तक है उसी भाँति यह षडक्षर शैव मन्त्र सभी मन्त्रो मे प्रधान मन्त्र है। यह पाँच अक्षरो वाला मन्त्र ऐसा है कि जो इसका जप करने वाले पुरुष हैं उनको यह मुक्ति के देने वाला होता है। इसी लिये सिद्धि की आकांक्षा करने वाले समस्त श्रेष्ठ मुनियो के द्वारा इसका ससेवन किया जाया करता है ॥८-१०॥ इसी मन्त्र के प्रसार का माहात्म्य चतुर्मुख ब्रह्मा के द्वारा भी नही कहा जा सकता है। जिसमे सिद्धान्त को प्राप्त हुई श्रुतियाँ परम निवृत्त हो गई हैं। सबको जानने वाले, परिपूर्ण और और सत्, चित् एवं आनन्द के लक्षण वाले वह शिव स्वयं जिस पाँच अक्षरों से युक्त शुभ शैव मन्त्र मे रमण किया करते हैं। इस समस्त उपनिषदो के स्वरूप वाले मन्त्र राज के द्वारा सभी मुनियो ने निरामय परम ब्रह्म को प्राप्त किया था। इस परमात्मा शिव मे नमस्कार से जीवत्व ऐक्य को प्राप्त हुआ था अतएव यह मन्त्र परब्रह्म मय है ॥११-१४॥

भवपाशनिबद्धाना देहिनां हितकाम्यया।
आहोनम शिवायेति मन्त्रमाद्य शिवः स्वयम् ॥१५

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः।
यस्योनमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥१६

तावद्भ्रमन्ति संसारे दारुणे दुःखसकुले।
यावन्नोच्चारयन्तीम मन्त्रं देहभृतः सकृत् ॥१७

मन्त्राधिराजराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः।
सर्वज्ञाननिधानञ्च सोऽयमश्चैव षडक्षर ॥१८

कैवल्यमार्गदीपोऽयमविद्या सिन्धुवाडवः।
महापातकदावाग्निः सोऽयं मन्त्रः षडक्षरः ॥१९

तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्र सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च सङ्कीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभि ॥२०

नास्यदीक्षान होमश्च न सस्कारो न तर्पणम्।
नकालोपदेशश्च सदाशुचिरय मनु ॥२१

भव के पाश में निबद्ध देह धारियों के हितों की कामना से भगवान् शिव ने स्वय आद्य मन्त्र "ॐ नमः शिवाय" यह मन्त्र कहा था। जिस पुरुष को "ॐ नमः शिवाय" यह मन्त्र हृदय गोचर होता है उस को अन्य बहुत से मन्त्रों से, तीर्थों से, तपश्चर्याओं से और अध्वरों से क्या प्रयोजन है ? अर्थात् फिर किसी मन्त्रादि की आवश्यकता ही नहीं है। ये देहधारी तभी तक इस दारुण और अनेक दुःखों से संकुल संसार में भ्रमण किया करते हैं जब तक एक बार जो इस महामन्त्र का मुख से उच्चारण नहीं किया करते हैं। यह षडक्षर मन्त्र अन्य मन्त्रों के अधिराजों का भी राजा है। समस्त वेदान्तों का शिरोमणि है। सम्पूर्णज्ञान का विधान है। यह मन्त्र कैवल्य (मोक्ष) के मार्ग का प्रदीप है और अविद्या सिन्धु का बाड़व है। यह मन्त्रराज महान् पातकों को दग्ध करने के लिये दावाग्नि के समान है। ऐसा ही महामहिमामय यह छै अक्षरों वाला मन्त्र है। इसी लिये सभी कुछ के प्रदान करने वाला यह पञ्चाक्षर मन्त्र कहा गया है। जो भी मुक्ति की इच्छा रखने वाले स्त्रीगण शूद्र और संकीर्ण जाति वाले प्राणी हैं उन सभी के द्वारा यह धारण किया जाता है। न तो इस मन्त्रराज की कोई दीक्षा होती है—न होम होता है—न कोई संस्कार ही होता है और न तर्पण दूसरा करता है। इस मन्त्र का कोई विशेष काल भी नहीं होता है और न कोई उपदेश ही होता है। यह मन्त्र तो सदा ही शुचि रहा करता है ॥१५-२१॥

महापातकविच्छित्त्यै शिवइत्यक्षरद्वयम् ।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ॥२२
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने ।
सद्योयथेप्सिता सिद्धि ददातीति किमद्भुतम् ॥२३
अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः ।
पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः सद्यः सिद्धि प्रयच्छति ॥२४
गुरवो निर्मलाः शान्ता साधवो मितभाषिणः ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ।२५

एतं कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिद्धयति ।
क्षेत्राणि जपयोग्यानि समासात्कथयाम्यहम् ॥२६

प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारं सेतुबन्धनम् ।
गोकर्णं नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम् ॥२७

अत्रानुवर्ण्यते सद्भिरितिहासः पुरातनः ।
असकृद्वा सकृद्वापि शृण्वतां मङ्गलप्रदः ॥२८

महान् पातकों के विच्छेद करने के लिये "शिव" ये दो अक्षर ही पर्याप्त होते हैं। और ये ही शिव दो अक्षर यदि नमस्क्रिया से युक्त हों अर्थात् 'नमः शिवाय' इस रूप में हो तो फिर यह मुक्ति के लिये परिकल्पित हो जाता है। यदि यह किसी सद्गुरु के द्वारा उपदिष्ट हो जावे और फिर किसी पावन क्षेत्र में इस का जाप किया जावे तो यही मन्त्र तुरन्त ही ईप्सित सिद्धियों के प्रदान कर दिया करता है—इसमें कुछ भी अद्भुतता नहीं है। इसीलिये किसी सद्गुरु के समाश्रय प्राप्त करके इस मन्त्रों में शिरोमणि मन्त्र को ग्रहण करना चाहिए। पुण्य क्षेत्र में ही इसका जाप करना चाहिए जिससे यह मन्त्र तुरन्त ही सिद्धि को प्रदान किया करता है। जो गुरु वृन्द निर्मल—परमशान्त—साधुवृत्ति वाले मितभाषण करने वाले—काम, क्रोध से विशेष रूप से निर्मुक्त-सदाचरण से सम्पन्न-इन्द्रियों को जीतने वाले हों। ऐसे गुरुगणों के द्वारा करुणा के भाव से उपदेश किया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्धि देने वाला होता है। अब हम मन्त्रों के जाप करने के योग्य क्षेत्रों का वर्णन संक्षेप से करते हैं ॥२२-२६॥ प्रयाग-रम्यपुष्कर-केदार-सेतुबन्ध-गोकर्ण-नैमिषारण्य ये क्षेत्र मनुष्यों को तुरन्त ही सिद्धि करने वाले होते हैं ॥२७॥ यहीं पर एक परम पुरातन इतिहास सत्पुरुषों के द्वारा वर्णित किया जाता है। इसको अनेक बार या एकबार ही श्रवण करने वालों को यह मङ्गल प्रदान करने वाला होता है ॥२८॥

मथुरायां यदुश्रेष्ठो दाशार्ह इति विश्रुतः ।
बभूव राजा मतिमान्महोत्साहो महाबलः ॥२९

शास्त्रज्ञो नयवाच्छूरो धैर्यवानमितद्युतिः ।
अप्रधृष्यः सुगम्भीरः संग्रामेष्वनिवर्तितः ॥३०
महारथो महेष्वासो नानाशास्त्रार्थ कोविदः ।
वदान्यो रूपसम्पन्नो युवा लक्षण संयुतः ॥३१
स काशिराजतनयामुपयेमे वराननाम् ।
कान्तां कलावतीनाम रूपशीलगुणान्विताम् ॥३२
कृतोद्वाहः स राजेन्द्र सम्प्राप्य निजमन्दिरम् ।
रात्रौ तां शयनारूढा सङ्गमाय समाह्वयत् ॥३३
सा स्व भर्त्रा समाहूता बहुशः प्रार्थिता सती ।
नववन्ध मनस्तस्मिन्नचागच्छत्तदन्तिकम् ॥३४
सङ्गमाय यदा हूता नागता निजवल्लभा ।
बलादाहर्तु कामस्तामुदतिष्ठन्महीपतिः ॥३५

मथुरा में यदुओं में श्रेष्ठ दाशार्ह विश्रुत था । वह महान् बल और उत्साह वाला बहुत ही मतिमान् राजा हुआ था । वह राजा शास्त्रों का ज्ञाता, नीति जानने वाला अति शूरवीर अमितद्युति से सम्पन्न-धैर्य वाला प्रधर्षण न करने के योग्य, परम गम्भीर और संग्रामों में लौटकर न आने वाला था । वह महारथी—महान् धनुषधारी और नाना शास्त्रों के अर्थों का कोविद था । वह भूपति परम दानशील-रूप लावण्य से युक्त युवा और सभी सुलक्षणों से सम्पन्न था । उस राजा ने श्रेष्ठ सुन्दर मुख वाली काशिराज की पुत्री के साथ विवाह किया था । वह अत्यन्त कान्त और रूप तथा शील एवं गुणों से अन्वित थी और इसका नाम कलावती था । विवाह करके वह राजेन्द्र अपने मन्दिर में प्राप्त हो गया था । रात्रि में शयन में समारूढ़ हुई उसको राजा ने सङ्गम करने के लिये अपने समीप बुलाया था । वह अपने स्वामी के द्वारा बुलाई भी गयी और बहुत बार उस से प्रार्थना भी की गयी थी किन्तु उसने उस सङ्गम करने के लिये अपने मन की इच्छा नहीं की थी और वह उस राजा के समीप में भी नहीं गयी थी । जब सङ्गम करने के लिये समाहूत होने पर भी अपनी वल्लभा को न समागत देखा तो उसको बलपूर्वक अपने

समीप में लाने की इच्छा वाला वह राजा स्वयं ही उठकर खड़ा हो गया था ।।२६-३५।।

मा मा स्पृश महाराज ! कारणज्ञा व्रतेऽस्थिताम् ।
धर्माधर्मौ विजानासि मा कार्षीः साहसं मयि ।।३६
यत्किंचित्प्रियेण भुङ्क्तं यद्रोचते तु मनीषिणाम् ।
दम्पत्योः प्रीतियोगेन सङ्गमः प्रीतिवर्द्धनः ।।३७
प्रियं यदा मे जायेत तदा सङ्गस्तु ते मयि ।
का प्रीतिः किं सुखं पुंसां बलाद्भोगेन योषिताम् ।।३८
अप्रीतां रोगिणीं नारीमन्तर्वत्नीं धृतव्रताम् ।
रजस्वलामकामाञ्च न गमेत बलात्पुमान् ।।३९
प्रीणनं लालनं पोषं रञ्जनं मार्दवं दयाम् ।
कृत्वा वधूमुपगमेद्युवतीं प्रेमवान्पतिः ।
युवती कुसुमे चैव विधेयं सुखमिच्छता ।।४०
इत्युक्तोऽपितयासाध्व्यासराजास्मरविह्वलः ।
बलादाकृष्यतां हस्तेपरिरेभेरिरंसया ।।४१

रानी ने कहा—हे महाराज ! आप मेरा स्पर्श न कीजिए क्योंकि मैं कारण को जानने वाली हूँ और व्रत में इस समय में समास्थित हूँ । आप तो स्वयं ही विज्ञ हैं और धर्म तथा अधर्म को भली भाँति जानते हैं । मेरे विषय में इस समय आप साहस न करिये ।।३६।। मनीषियों को जो अच्छा लगता है वही पर प्रिय के द्वारा भोग किया गया है । दम्पति का प्रीति के योग से जो सङ्गम होता है वही प्रीति का वर्धन करने वाला हुआ करता है । जिस समय में मुझे प्रिय लगेगा उसी समय में मुझसे आपका सगम होगा । बलपूर्वक स्त्रियों के उपभोग करने से पुरुषों को क्या तो सुख प्राप्त होगा और दोनों में प्रीति ही होगी ।।३६-३८।। पुरुष को चाहिए कि जो प्रीति रहित हो, रोगिणी हो, गर्भवती हो व्रत धारण करने वाली हो, रजस्वला हो और काम की वासना से रहित हो ऐसी स्त्री को बलपूर्वक सगम करने की इच्छा न करे ।।३९।। प्रेम वाले पति को चाहिए कि भार्या का भली-भाँति

प्रीणन, लालन, पोषण, रञ्जन, मार्दव और दया की भावना करके ही युवती वधू के साथ उपगम करे। सुख की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि युवती में और कुसुम में ऐसा ही व्यवहार करे। इस प्रकार से उस साध्वी के द्वारा बहुत कुछ कहे जाने पर भी काम से विह्वल उस राजा ने रमण करने की इच्छा से बलपूर्वक उसको अपने समीप में हाथों से खींचकर परिरम्भण किया था। जैसे ही उस का स्पर्श हो केवल उसने किया था कि देखा कि वह सहसातप्त हुए लोहे के पिण्ड के समान थी और अपने आपको मानों जल-सी रही थी। राजा ने भय से विह्वल हो कर तुरन्त ही उसका त्याग कर दिया था ॥४०-४१॥

तांस्पृष्टमात्रांसहसातप्तायः पिण्ड सन्निभाम् ।
निर्दहन्तीमिवात्मानं तत्याज भयविह्वलः ॥४२
अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं तव प्रिये ।
कथमग्निसमं जातं वपुः पल्लवकोमलम् ॥४३
इत्थं सुविस्मतो राजा भीतः सा राजवल्लभा ।
प्रत्युवाच विहस्यैनं विनयेन शुचिस्मृता ॥४४
राजन्ममपुरा बाल्ये दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ।
शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यां कारुण्येनोपदिष्टवान् ॥४५
तेन मन्त्रानुभावेन ममांगं कलुषोज्झितम् ।
स्प्रष्टुं न शक्यतेपुम्भिः सपापैदववर्जितैः ॥४६
त्वया राजन्प्रकृतिनाकुलटागणिकादयः ।
मदिरास्वादनिरता निषेव्यन्ते सदास्त्रियः ॥४७
न स्नानं क्रियते नित्यं न मन्त्रो जप्यते शुचिः ।
नाराध्यते त्वयेशानः कथं मांस्प्रष्टुमर्हसि ॥४८
तां समाख्याहि सुश्रोणि ! शैवीं पञ्चाक्षरीं शुभाम् ।
विद्याविध्वस्तपापोऽहं त्वयीच्छामि रतिं प्रिये ॥४९

राजा ने कहा—हे प्रिये ! मैंने आज सुमहान् आपका यह आश्चर्य देखा है। आपका यह पल्लव के समान परम कोमल शरीर ऐसा अग्नि के समान कैसे इस समय हो गया है ? इस तरह से वह राजा बहुत ही

विस्मित हो गया था और भयभीत हो गया था। वह राज वल्लभा हँस कर शुचि स्मित वाली विनय के साथ उससे प्रति उत्तर देने लगी ॥४३-४४॥ रानी ने कहा—हे राजन्! पहिले मेरे बचपन में ही मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासाजी ने करुणा करके पञ्चाक्षरी शैवी विद्या का मुझे उपदेश दिया था। उस मन्त्र के ही अनुभाव से यह मेरा अंग कलुषों से परित्यक्त हो गया है। इस मेरे अंग को पापों से युक्त पुरुषों के द्वारा जो कि शव वर्जित हैं स्पर्श नहीं किया जा सकता है। हे राजन्! आपने प्रकृति से ही कुलटा और गणिका आदि का उपभोग किया है और सदा ही मदिरा के समास्वादन में आप निरत रहे हैं। न तो आप नित्य स्नान ही करते हैं और न कभी पवित्र होकर आप के द्वारा मन्त्र का जाप ही किया जाता है। आप कभी ईशान प्रभु का समाराधन भी नहीं किया करते हैं तो आप ऐसे समाचरण वाले होकर मुझे स्पर्श करने के योग्य कैसे हो सकते हैं? राजा ने कहा—हे सुश्रोणि! आप मुझे वह परम शुभ शैवी पञ्चाक्षरी विद्या बतलाइये। हे प्रिये! विद्या के द्वारा विध्वस्त पापों वाला होकर मैं आप के साथ रमण करने की इच्छा करता हूँ ॥४५-४९॥

नाहं तवोपदेशं वै कुर्यां मम गुरुर्भवान् ।
उपातिष्ठ गुरुराजन्गर्गं मन्त्रविदांवरम् ॥५०
इति सम्भाषमाणौ तौ दम्पती गर्गसन्निधिम् ।
प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना ववन्दाते कृताञ्जली ॥५१
अथ राजा गुरुं प्रीतमभिपूज्य पुनः पुनः ।
समावष्ट विनीतात्मा रहस्यात्ममनोरथम् ॥५२
कृतार्थं मां कुरु गुरो सम्प्राप्तं करुणार्द्रधीः ।
शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यामुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥५३
अनाभातं मदाज्ञातं यत्कृतं राजकर्मणा ।
तत्पापं येन शुध्येत तन्मन्त्रं देहि मे गुरो ॥५४
एवमभ्यर्थितो राज्ञा गर्गो ब्राह्मणपुङ्गवः ।
तौ निनायमहापुण्यं कालिन्द्यास्तटमुत्तमम् ॥५५

तत्र पुण्यतरोर्मूले निषण्णोऽथ गुरुः स्वयम् ।
पुण्यतीर्थजले स्नातं राजानं समुपोषितम् ॥५६
प्राङ्मुखं चोपवेश्याथ नत्वा शिवपदाम्बुजम् ।
तन्मस्तके करं न्यस्य ददौ मन्त्रं शिवात्मकम् ॥५७

रानी ने कहा—मैं आपको उपदेश नहीं करूँगी, आप मेरे गुरु हैं। मन्त्रवेत्ताओं में वरिष्ठ गर्ग मुनि गुरु के समीप में उपस्थित होइये। सूत जी ने कहा—इस प्रकार से परस्पर में सम्भाषण करते हुए वे दम्पती गर्ग मुनि के समीप में प्राप्त हुए थे। वहाँ पहुँचकर दोनों ने हाथ जोड़ कर उनके चरणों में शिर के बल प्रणाम किया था। इसके अनन्तर राजा ने परम प्रसन्न हुए गुरुदेव की बारम्बार पूजा करके अत्यन्त विनीत भाव वाला होकर उसने एकान्त में अपना मनोरथ उनसे कहा था। राजा ने कहा—हे गुरुदेव ! आप तो करुणा से युक्त बुद्धि वाले हैं। आपकी सेवा में सम्प्राप्त हुए मुझको कृतार्थ कीजिए। आप मुझे पञ्चाक्षरी शैवी विद्या का उपदेश करने के योग्य हैं। हे गुरुवर्य ! राजकर्म से मैंने बिना जाना हुआ तथा ज्ञात भी जो भी कुछ पाप किया है वह जिसके भी द्वारा शुद्ध हो जावे वही मन्त्र का उपदेश अब मुझे आप कर दीजिये। इस प्रकार से राजा के द्वारा प्रार्थना किये गये ब्राह्मणों में परम श्रेष्ठ गर्ग मुनि उन दोनों को महापुण्यमय कालिन्दी के उत्तम तट पर ले गये थे। वहाँ पर पुण्य तरु के मूल में गुरु स्वयं बैठ गये थे, और उस राजा के मस्तक पर अपना कर कमल रखकर उस शिव स्वरूप मन्त्र को उसको दे दिया था ॥५०-५७॥

तन्मन्त्रधारणादेव तद्गुरोर्हस्तसंगमात् ।
निर्ययुस्तस्य वपुषो वायसाः शतकोटयः ॥५८
ते दग्धपक्षाः क्रोशन्तो निपतन्तो महीतले ।
भस्मीभूतास्ततः सर्वे दृश्यन्तेस्मसहस्रशः ॥५९
दृष्ट्वा तद्वायसकुलं दह्यमानं सुविस्मितौ ।
राजा च राजमहिषी च गुरुं पर्यपृच्छताम् ॥६०

भगवन्निदमाश्चर्यं कथं जातं शरीरतः ।
वायसाना कुलं दृष्टं किमेतत्साधु भण्यताम् ॥६१
राजन्भवसहस्रेषु भवता परिधावता ।
सञ्चितानि दुरन्तानि सन्ति पापन्यनेकशः ॥६२
तेषु जन्मसहस्रेषु यानि पुण्या निसन्ति ते ।
तेषामाधिक्यत क्वापि जायते पुण्ययोनिषु ॥६३

उस शैव मन्त्र के धारण करने ही से और उनकी गुरदेव के हाथ के संगम से ही उसके शरीर से सैंकड़ों करोड़ कौए निकले थे। वे जले हुए पंखों वाले चीखते हुए तथा भूमि के तल में निपतित होते हुए सहस्रों तो भस्मी भूत होगये थे ऐसे दिखलाई दिये थे। उस वायसों के समूह को दग्धीभूत हुआ देखकर वे दोनों ही परम विस्मित हुए थे। तथा राजा और रानी दोनों ने ही उन श्री गुरुदेव से पूछा था—हे भगवन् ! यह परम आश्चर्य इस शरीर से कैसे हुआ है जो कि यह कौओं का समुदाय इस शरीर से समुत्पन्न हुआ, यह क्या मामला है, कृपया इसे आप भली भाँति बतलाइये। श्री गुरुदेव ने कहा—हे राजन् ! आपने अपने सहस्रों जन्मों में दौड़ लगाते हुए अनेक परम दुरन्त पाप सञ्चित किये थे। उन सहस्रों जन्मों में जो कुछ तुम्हारे पुण्य थे उनकी अधिकता से कहीं पुण्य योनियों में जन्म लेते हैं ॥५८-६३॥

तथा पापीयसी योनिं क्वचित्पापेन गच्छति ।
साम्ये पुण्याप्ययोश्चैव मानुषीं योनिमाप्तवान् ॥६४
शैवी पञ्चाक्षरी विद्या यदा ते हृदयं गता ।
अघाना कोटयस्त्वत्तः काकरूपेण निर्गता ॥६५
कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्य कोटय. ।
स्वर्णस्तेयसुरापानभ्रूणहत्यादिकोटयः ।
भवकोटिसहस्रेषु येऽन्ये पातकराशय. ॥६६
क्षणाद्भस्मीभवन्त्येव शैवेपञ्चाक्षरे धृते ।
आसंस्तवाद्य राजेन्द्र ! दग्धाः पातककोटय ॥६७
अनया सह पूतात्मा विहरस्व यथासुखम् ।

इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठस्तंमन्त्रमुपदिश्य च ॥६८
ताभ्यां विस्मितचित्ताभ्या सहितः स्वगृह ययौ ।
गुरुवर्यमनुज्ञाप्य मुदितौ तौ च दम्पती ॥६९
ततः स्वभवनं प्राप्यरेजतुःस्म महाद्युती ।
राजाद्दढं समाश्लिष्य पत्नी चन्दनशीतलाम् ॥७०
सतोष परमं लेभे नि स्वः प्राप्य यथा धनम् ॥७१
अशेषवेदोपनिषत्पुराण शास्त्रावतंसोऽयमघान्तकारी ।
पञ्चाक्षरस्यैवमहाप्रभावोमयासमासात्कथितोवरिष्ठः ॥७२

तथा कही पर पाप से पापीयसी योनि को जाते हो जब पाप और पुण्य दोनों हो समान अवस्था मे प्राप्त हुए हैं तभी आपने इस मानुषी योनि को प्राप्त किया है ॥६४॥ वही पञ्चाक्षरी विद्या जिस समय मे आपके हृदय मे पहुची तो तुम्हारे जो करोड़ो पाप थे वे सब अब आपके शरीर से वायसों के रूप मे निकले पड़े हैं। इनमे करोड़ो ही तो ब्रह्म हत्या के पाप हैं और करोडों ही अगम्य स्त्रियों मे गमन करने के पाप है, स्वर्ण की चोरी, मदिरा-पान, हत्या आदि के भी करोड़ो पापो के समूह दीव पचाक्षरी मन्त्र के धारण करते ही क्षण भर मे भस्मीभूत हो गये। हे राजन्! आपके करोड़ो पातकों के समुदाय दग्ध होगये। अब आप परम पवित्र हो गये हैं। आप अपनी इस भार्या के साथ सुखपूर्वक विहार कीजिए। यह कह कर उस श्रेष्ठ मुनि ने उस मन्त्र का उपदेश दिया। फिर विस्मित चित्त वाले इन दम्पतियों के साथ अपने गृह को वे चले गये। वे दम्पति भी गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त कर परम प्रसन्न हो गये। फिर वे दोनों अपने अपने भवन मे समागत होकर महान् द्युति और शोभा से सम्पन्न हुए। राजा ने फिर उस चंदन के समान शीतल अपनी पत्नी का भली भांति आलिंगन किया। उसे परम संतोष हो गया, जैसे कोई दरिद्र धन को पाकर महान् संतुष्ट हो जाता है। यह पचाक्षरी महामन्त्र का महान् प्रभाव है, जो सम्पूर्ण दोषों के नाश के लिए उपनिषद तुल्य वरिष्ठ है,सबवेद,शास्त्र, पुराणो का भूषण रूप एव विपत्तियो काअन्त करने वाला है इस वरिष्ठ उपाख्यान को मैंने संक्षेप मे कहा है।६४-७२।

स्कन्द पुराण

काशी खण्ड

४७—तीर्थाध्याय वर्णन

शृणु सूत महाभाग कथां श्रुतिसहोदराम् ।
या वै हृदि निधायेह पुरुषः पुरुषार्थभाक् ॥१
ततः श्रीदर्शनानन्दसुधाधाराधुनी मुनिः ।
अवगाह्य सपत्नीकः परां मुदमवाप सः ॥२
वह्निकुण्डसमुद्भूतो सूतनिर्मलमानस ।
शृणुष्वैकं पुराविद्भिर्भाषितं यत्सुभाषितम् ॥३
परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदःस्युः पदे पदे ॥४
तीर्थस्नानैर्न सा शुद्धिर्बहुदानैर्न तत्फलम् ।
तपोभिरुग्रैस्तन्नाप्यमुपकृत्या यदाप्यते ॥५
परोपकृत्याथोधर्मोधर्मोदानादिसम्भवा ।
एकत्रतुलितौ धात्रा तत्रपूर्वोऽभवद्गुरुः ॥६
परिनिर्मथ्य वाग्जालं निर्णीतमिदमेव हि ।
नोपकारात्परो धर्मो नापकारादघं परम् ॥७

महामुनि श्री पाराशर्य जी ने कहा—हे सुत सूत ! आप तो परम महान् भाग वाले है। अब श्रुति की जो सहोदर एक कथा का श्रवण करो जिसको हृदय मे धारण करके पुरुष इस संसार मे परमार्थ को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है। इसके उपरान्त वह मुनि अपनी पत्नी के सहित श्री दर्शन के आनन्द सुधा की धारा धुनि में अवगाहन करके परम मुद को प्राप्त हुए थे ॥१-२॥ हे वह्नि ! कुण्ड से

समुमन्न होने वाले ! आपका मन परम निर्मल है। हे मूत ! पुरा वेत्ताओं के द्वारा भावित एक जो सुभाषित है उसका आप श्रवण कीजिए। जिन सत्पुरुषों के हृदय मे परायों के उपकार करने का भाव सदा जागरूक रहा करता है उनके विपदायें नष्ट हो जाया करती हैं और उनको पद-पद में सम्पदायें उपस्थित रहा करती हैं ॥३-४॥ अनेक तीर्थों के स्नान करने से वह उस प्रकार की वृद्धि समुत्पन्न नही होती है और बहुत से यज्ञों से भी वैसी वृद्धि नहीं हुआ करती है और न ऐसा फल ही प्राप्त होता है। परम तप से भी वह प्राप्त नही होता जो दूसरों के उपकार के करने से प्राप्त किया जाया करता है। परायो के उपकार से जो धर्म होता है वह धर्म और दानादि अन्य सुकर्मों से समुत्पन्न होने वाला धर्म इन दोनों को धाता ने एक ही स्थान मे रखकर तोला था तो इन दोनों मे उपकार से होने वाला धर्म ही गुरु हुआ था। इसलिये समस्त वाणियों के जाल का परिमन्थन करके यही निर्णय किया गया है कि परोपकार से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई भी धर्म नही है और दूसरों के अपकार करने से अधिक कोई भी अन्य महान् अघ नहीं होता है ॥५-७॥

उपकर्तु रगस्त्यस्यजातमेतत्रिदशानम् ।
भवताद्दक्कादिजंदुःख क्वताद्दक्श्रीमुखेक्षणम् ॥८

करिकर्णाग्रचपलञ्जीवितंविविधवसु ।
तस्मात्परोपकरणकार्यमेक विपश्चिता ॥९

यल्लक्ष्मीनाममाश्राप्या नरो नो माति कुत्रचित् ।
साक्षात्समीक्ष्य तां लक्ष्मी कृतकृत्योमवन्मुनिः ॥१०

गच्छन् यदृच्छयासोथदूराच्छ्रीशैलमैक्षत ।
यत्रसाक्षान्निवसतिदेवः श्रीत्रिपुरान्तकः ॥११

उवाच वचनं पत्नीतदाप्रीतमनामुनिः ।
इहस्थितंपश्य त्वं कान्तेकान्ततरं परम् ॥१२

श्रीशैलशिखरंश्रीमदिदन्तद्य द्विलोकनात् ।
पुनर्भवोमनुष्याणाभवेऽत्रनभवेत्क्वचित् ॥१३

गिरिश्चतुरशीत्यार्यं योजनानां हि विस्तृतः ।
सर्वलिङ्गमयो यस्मादतः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥१४

उपकार करने वाले महामुनि वयस्य जी का वह निदर्शन हो गया है। उस जैसा कामिज दुःख कहाँ है और वैसा भी मुख का ईक्षण कहाँ है ? हाथी के कान के अग्रभाग के समान चपल यह जीवित और धन है। इसलिये विद्वान पुरुष को एक परायों का उपकार करना चाहिए। जो लक्ष्मी के नाम मात्र की प्राप्ति से मनुष्य कहीं पर भी नहीं समाता है, वह मुनि साक्षात् उस लक्ष्मी का समीक्षण करके कृत कृत्य हो गये थे। गमन करते हुए उसने यदृच्छा से दूर से ही उस शैल को देखा था जहाँ पर श्री त्रिपुरान्तक देव साक्षात् निवास किया करते हैं। उस समय में प्रीतिपूर्ण मन वाले मुनि अपनी पत्नी से यह वचन बोले थे—यहाँ पर स्थित होती हुई आप काल मे परम कालान्तर को देखो। यहाँ श्री शैल का यह शिखर है जो श्री वाला है और जिसके विलोकन करने से इस संसार में मनुष्यों का पुनर्जन्म कभी भी कहीं पर नहीं होता है। यह गिरि चौरासी योजनों के विस्तार वाला है। यह सर्व लिंगमय है इसीलिए इस की प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥८ १४॥

किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामि यद्याज्ञा स्वामिनो भवेत् ।
ब्रूते हि याऽननुज्ञाता पत्या सा पतिता भवेत् ॥१५
किवक्तुकामादेवि ! त्वम्नू हितस्त्वमशङ्किता ।
न त्वेत्द्दीनावाक्य हिपत्युः सेदाम्रजापते ॥१६
तत पप्रच्छ सा देवी प्रणम्य मुनिमानता ।
सर्वपाब्च हिनार्थाय स्वसन्देहापनुत्तये ॥१७
श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा पुनर्जन्मनविद्यते ।
इदमेव हि सत्यञ्चेत्किमर्थं काशिरिष्यते ॥१८
आकर्णय वरारोहे!सत्यं पृष्टं त्वयामले !।
निर्णीतमतकृच्चैतन्मुभिभिस्तत्वचिन्तकैः ॥१९
मुक्तिस्थानान्यनेकानि कृतस्तत्रापि निर्णयः ।
तानि ते कथयाम्यद्य दत्तचित्ता भव क्षणम् ॥२०

लोपामुद्रा ने कहा—मैं कुछ जानने की इच्छा करती हूँ यदि स्वामी की आज्ञा मुझे प्राप्त हो जावे। जो पति की आज्ञा न प्राप्त करके ही बोलती है वह नारी पतित हो जाया करती है ॥१५॥ अगस्त्य मुनि ने कहा—हे देवि ! आप क्या बोलने की इच्छा वाली हैं ? आप निःशङ्कित होकर ही तत्व को बोलिये। आप जैसी पत्नियों का वचन कभी भी पति को खेद करने वाला नहीं हुआ करता है। इसके पश्चात् परम विनत होकर उस देवी ने मुनि को सर्व प्रथम प्रणाम किया था और फिर पूछा था जो कि सभी के हित के लिये था और अपने हृदय में स्थित सन्देह को दूर करने के लिए भी था। लोपामुद्रा ने कहा—श्री शैल शिखर का दर्शन करके पुनर्जन्म नहीं होता है—यही बात यदि सत्य है तो फिर काशि को किसलिये चाहा जाया करता है ? अगस्त्य मुनि ने कहा—हे अमले—हे वरारोहे ! आपने सत्य ही पूछा है सो अब श्रवण करो—तत्वों के ज्ञाता मुनिगण ने इसका कितनी ही बार निर्णय किया है कि मुक्ति के तो अनेक स्थान हैं। उनमें भी निर्णय किया गया है। उनको मैं यहाँ पर कहता हूँ। आप क्षण भर के लिये दत्त चित्त (सावधान) हो जाओ ॥१६-२०॥

प्रथम तीर्थं राजन्तु प्रयागाख्यं सुविश्रुतम् ।
कामिकं सर्वतीर्थानां धर्मकामार्थ मोक्षदम् ॥२१
नैमिषञ्च कुरुक्षेत्रं गङ्गाद्वारमवन्तिका ।
अयोध्या मथुरा चैव द्वारकाप्यमरावती ॥२२
सरस्वतीसिन्धुसङ्गो गङ्गासागरसङ्गमः ।
कान्ती च त्र्यम्बकञ्चापि सप्तगोदावरीतटम् ।२३
कालञ्जर प्रभासश्च तथा बदरिकाश्रमः ।
महालयस्तथोङ्कारक्षेत्रं वैपोरुषोत्तमम् ॥२४
गोकर्णो भृगुकच्छश्च भृगुतुङ्गश्च पुष्करम् ।
श्रीपर्वतादितीर्थानि धारातीर्थं तथैव च ॥२५
मानसान्यपि तीर्थानि सत्यादीनि च वै प्रिये ।
एतानि मुक्तिदान्येव नात्र कार्या विचारणा ॥२६

गयातीर्थञ्च यत्प्रोक्तं सत्पितॄणां हि मुक्तिदम्।
पितामहानामृणतो मुक्तास्सत्तनया अपि ॥२७

सबसे प्रथम तीर्थों का राजा प्रयाग नाम वाला बहुत प्रसिद्ध है। यह सब तीर्थों का कामिक है अर्थात् चाहने वाला है एवं समस्त तीर्थों को इच्छाये पूर्ण करने वाला है तथा धर्मार्थ काम और मोक्ष का प्रदान करने वाला है। अब अन्य विशेष तीर्थों के नामो का विवरण दिया जाता है जो मुक्ति के प्रदाता है—नैमिष—कुरुक्षेत्र—गङ्गा द्वार—अवन्तिका—अयोध्या—मथुरा—द्वारका—अमरावती—सरस्वती—सिन्धुसङ्ग—गङ्गा सागर—सगम—कांची—त्र्यम्बक-सप्त गोदावरी तट, कालंजर—प्रभास—बदरिकाश्रम—महालय—ओङ्कार क्षेत्र—पौरुषोत्तम क्षेत्र—गोकर्ण-भृगुकच्छ-भृगुतुंग—पुष्कर—श्री पर्वत आदि तीर्थ-धारा तीर्थ-मानस आदि तीर्थ-हे प्रिये ! इत्यादि तीर्थ—ये सभी तीर्थ मुक्ति देने वाले है—इस विषय मे तनिक भी विचारणा नही करनी चाहिए। गया तीर्थ जो कहा गया है वह उनके पितृगणो को ही मुक्ति का देने वाला होता है। उनके पुत्र भी महान पितामहो के ऋण से मुक्त हो जाया करते हैं ॥२१-२७॥

मानसान्यपितीर्थानियान्युक्तानिमहामते।
कानिकानिचतानीहब्रूहितदाख्यातुमर्हसि ॥२८
शृणुतीर्थानिगदतोमानसानिममानघे।
येषुसम्यङ्नरः स्नात्वाप्रयातिपरमांगतिम् ॥२९
सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थमार्जवमेवच ॥३०
दानतीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परतीर्थं तीर्थञ्चप्रियवादिता ॥३१
ज्ञानंतीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥३२
न जलाप्लुतदेहस्यस्नानमित्यभिधीयते।
सस्नातोयोदमस्नातःशुचि:शुद्धमनोमलः ॥३३

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरोदाम्भिकोविषयात्मकः ।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एवमः ॥३४

सधर्मिणी ने कहा—हे महामते ! मानस तीर्थ भी आपने जो बतलाए हैं वे कौन-कौन यहाँ पर से होते हैं–यह भी कृपा करके मुझे बतलाने के योग्य हैं ? महामुनि अगस्त्यजी ने कहा—हे अनघे ! बोलने वाले मुझसे आप उन मानस तीर्थों का भी श्रवण कर लीजिए जिनमें मनुष्य स्नान करके परमोत्तम गति को प्रयाण किया करता है। एक तो मानस तीर्थों में सत्य तीर्थ है–दूसरा क्षमा तीर्थ है और समस्त इन्द्रियों का निग्रह कर लेना यह भी एक महान् मानस तीर्थ है। सब प्राणियों पर दया का भाव सदा रखना तीर्थ है और सर्वदा कुटिलता रहित सीधापन (सरलता) रखना यह भी मानस तीर्थ होता है। दान तीर्थ है—दम (दमन करना) तीर्थ है और सदा मन मे पूर्णतया सन्तोष की भावना को स्थिर भाव से रखना भी मानस तीर्थ कहा जाता है। पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य को धारण रखना सबसे परम तीर्थ होता है आठों प्रकारों से ब्रह्मचर्य के धारण करने का ही नाम ब्रह्मचर्य है केवल स्त्री से साक्षात् सगम ही नहीं करना ब्रह्मचर्य का परिपालन नहीं होता है। सब के साथ सदा प्रिय भाषण करना भी एक मानस तीर्थ होता है। ज्ञान रखना तीर्थ है—धैर्य रखना भी तीर्थ है और तपश्चर्या करना भी मानस तीर्थ होता है। इन समस्त बतलाये मानस तीर्थों में सबसे श्रेष्ठ एवं प्रमुख तीर्थ मन की शुद्धता है। केवल जल में डुबकियाँ लगाने वाले देह का स्नान नहीं कहा जाया करता वास्तव में वही स्नान किया हुआ है जो दमन से स्नान किया हुआ है और जिसके मन का मल शुद्ध है वही शुचि होता है। जो लुब्ध अर्थात् लोभ से परिपूर्ण है–पिशुन अर्थात् पीठ पीछे दूसरों की बुराई करने वाला या चुगली करने वाला है—जो क्रूर अर्थात् अत्यन्त कठोर निर्दयी है—जो दाम्भिक अर्थात् कपटपूर्ण दिखावा करने वाला है और जो विषयों में डूबा हुआ है वह भले ही सभी तीर्थों में क्यों न स्नान किया हुआ हो वह फिर भी महान् पापी है और मलिन ही रहा करता है ॥२८-३४॥

न शरीरमलत्यागान्नरो भवतिनिर्मल ।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्त सुनिर्मलः ॥३५
जायन्ते च म्रियन्तेचजलेष्वेवजलौकसः ।
न च गच्छन्तितेस्वर्गमविशुद्धमनोमलाः ॥३६
विषयेष्वतिसंरागो मानसोमल उच्यते ।
तेष्वेव हि विरागोऽस्यनैर्मल्य समुदाहृतम् ॥३७
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थं स्नानान्न शुद्‌यति ।
शतशोथजलं धौतसुराभाण्डमिवाशुचिः ॥३८
दानमिज्यातपः शौचतीर्थं सेवाश्रुतं तथा ।
सर्वाण्येतानितीर्थानियदिभावोननिर्मलः ॥३९
निगृहीतेन्द्रियग्रामोयत्रैवचवसेन्नरः ।
तत्रतस्य कुरुक्षेत्र नैमिषपुष्कराणिच ॥४०
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स यातिपरमागतिम् ॥४१
एतत्ते कथितं देवि !मानसंतीर्थलक्षणम् ।
भौमानामपि तीर्थानांपुण्यत्वेकारणंशृणु ॥४२

केवल शरीर के इस ऊपरी मल के त्याग कर देने से मनुष्य निर्मल या शुचि नहीं हो जाया करता है। मन मे रहने वाले मल के त्याग देने पर ही मनुष्य अन्दर से सुनिर्मल हुआ करता है। जलचारी जीव जल ही मे समुत्पन्न होते है, जीवन मे वही रहा करते है और अन्त में उस ही मे उनकी मृत्यु भी हुआ करती है किन्तु वे विशुद्ध मनोमल वाले न होने के कारण कभी स्वर्ग लोक मे नही जाया करते हैं। प्रथम तो वे जलचर तिर्यक योनि वाले ज्ञान से ही शून्य होते हैं फिर भी शुचिता के स्वरूप को वे कुछ जान ही नही सकते हैं। मानस मल उसी को कहा जाता है जो सांसारिक विषयो मे अर्थात् इन्द्रियों के विभिन्न विषयों में अच्छी तरह से राग होता है। उन्ही मे विराग का होना मन की निर्मलता कही जाया करती है। यह अन्दर मे छिपा रहने वाला चित्त अत्यन्त ही दुष्ट हुआ करता है। यह इस ऊपरी स्नान के कर लेने से कभी भी शुद्ध

नहीं हुआ करता है। सैकड़ों बार जल से जैसे मदिरा का पात्र धो भी लिया जावे तो भी वह पवित्र न होकर अशुचि ही रहा करता है ॥३५-३८॥ दान-इज्या-तप-शौच-तीर्थाटन-श्रुत ये सभी तीर्थ ही होते हैं किन्तु भाव की प्रधानता है। यदि भाव शुद्ध नहीं है तो इनका कोई फल नहीं है। जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों को पूर्णतम जीतकर अपने काबू में कर लिया है वह जहाँ पर भी कहीं निवास करे उसके लिए वही स्थल परम पवित्र कुरुक्षेत्र-नैमिष और पुष्कर है अर्थात् तीर्थ है। जो ध्यान से पवित्र ज्ञान रूपी जल में जो राग-द्वेष के मल का अपहरण कर देने वाला है मनुष्य स्नान किया करता है जिसको कि मानस तीर्थ कहते हैं वह पुरुष परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है। हे देवि ! हमने आपके सामने यह मानस तीर्थ का समग्र लक्षण बतला दिया है। अब इन भूमि में रहने वाले तीर्थों का भी कारण सुन लो अर्थात् मानस तीर्थ ही सर्वोत्तम तीर्थ है तो इनकी रचना का क्या कारण है उसका भी अब श्रवण कर लो ॥३९-४२॥

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः ।
तथापृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ॥४३
प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसा ।
परिग्रहान्मुनीनाञ्चतीर्थानांपुण्यतास्मृता ॥४४
तस्माद्भौमेषु तीर्थेषुमानसेषुचनित्यशः ।
उभयेष्वपियः स्नातिसयाति परमांगतिम् ॥४५
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्यच ।
अदत्त्वा काञ्चनंगाश्चदरिद्रोनामजायते ॥४६
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेनयत् ॥४७
यस्यहस्तौ च पादौचमनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्यातपश्चकीर्तिश्चसतीर्थफलमश्नुते ॥४८
प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येनकेनचित् ।
अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थ फलमश्नुते ॥४९

जिस प्रकार से इस शरीर के कुछ उद्देश अर्थात् भाग परम पवित्र माने गये हैं। ठीक उसी भाँति से इस पृथ्वी के भी कुछ भाग परम पुण्य तम कहे गये है। इस भूमि के अद्भुत प्रभाव से—जल के विशेष तेज से और मुनि गणों के परिग्रहण करने से इन समस्त तीर्थों की पुण्यता बतलाई गई है। इसलिए भूमिगत तीर्थों का भी महत्व अवश्य ही होता है अतएव मानवों का कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि इन भूमिगत तीर्थों में और साथ ही मानस तीर्थों में भी नित्य ही दोनो में स्नान करना चाहिए। इन दोनों ही प्रकार के तीर्थों में जो स्नान किया करता है वही मानव परम गति को प्राप्त होता है। तीर्थों में पहुंचकर जो तीन रात्रि तक उपवास नहीं करता है तथा वहाँ पर जाकर सुवर्ण दान एवं गोदान नहीं करता है वह पुरुष दरिद्र ही रहा करता है। अग्निष्टोम आदि यज्ञों से जिनमें बहुत अधिक दक्षिणा दी गई हो मनुष्य वह फल प्राप्त नहीं किया करता है जो तीर्थों के अभिगमन से फल होता है। जिसके दोनो हाथ, दोनो पैर और मन सुसंगत होता है वह विद्या—तप—कीर्ति और तीर्थों का फल प्राप्त किया करता है। प्रतिग्रह से उपावृत्त होने वाला अर्थात् दान न लेने वाला और जो भी कुछ मिल जावे उसी से सन्तुष्ट रहने वाला तथा अहंकार से रहित होता है वह तीर्थाटन के फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥४२-४९॥

अदम्भको निरारम्भोलब्धाहारोजितेन्द्रिय ।
विमुक्त सर्वसंगैर्यः सतीर्थं फलमश्नुते ॥५०
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादीदृढव्रतः ।
आत्मोपमश्चभूतेषु स तीर्थं फलमश्नुते ॥५१
तीर्थान्यनुसरन् धीर. श्रद्धान. समाहित. ।
कृतपापो विशुद्धयेत किंपुन शुद्धकर्म कृत ॥५२
तिर्यग्योनि न वै गच्छेत्कुदेशे नव जायते ।
न दुःखी स्यात्स्वर्गभाक्च मोक्षोपायश्च विन्दति ॥५३
अश्रद्धानः पापात्मानास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्चपञ्चैतेनतीर्थं फलभागिन ॥५४

तीर्थानिचयथोक्तेनविधिनासञ्चरन्तिये ।
सर्वद्वन्द्वसहाधीरास्तेनराः स्वर्ग भागिनः ॥५५
तीर्थं यात्रान्चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे ।
गणेशञ्च पितृन्विप्रान्साधूञ्शक्त्या प्रपूज्य च ॥५६

दम्भ से रहित-बिना प्रारम्भ वाला—बहुत हल्का और कम आहार करने वाला—इन्द्रियों को जीतने वाला और सब प्रकार के संगों से जो विमुक्त रहने वाला है वह भी तीर्थाटन करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। जो बिना क्रोध वाला निर्मल मति वाला—सत्य भाषण करने वाला-दृढ व्रत वाला और समस्त प्राणियों में अपनी ही आत्मा के समान भाव रखने वाला जो मनुष्य हुआ करता है वह तीर्थ करने का पूर्ण पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है। तीर्थों का अनुसरण करता हुआ-धीरज वाला-श्रद्धा से समन्वित एवं परम समाहित जो मनुष्य होता है वह पापी के करने वाला भी विशुद्ध हो जाया करता है और जो शुद्ध कर्मों के करने वाला होता है उसके विषय में तो कहा ही क्या जावे ॥५०-५२॥ ऐसा जीव कभी भी तिर्यक योनि में नहीं जाया करता है और कभी कुदेश में भी उत्पन्न नहीं होता है। वह मनुष्य कभी दुःखित नहीं होता है तथा स्वर्ग लोक का भोक्ता एवं मोक्ष प्राप्त करने का उपाय पाया करता है ॥५३॥ जो श्रद्धा नहीं रखने वाला है तथा पापात्मा की और ईश्वर की सत्ता को नहीं मानने वाला नास्तिक—जिसका संशय छिन्न नहीं हुआ हो और जो हेतु में ही निष्ठा रखने वाला हो ऐसे ये पाँच प्रकार के आदमी कभी भी तीर्थों के फल के भागी नहीं होते हैं। जो यथोक्त विधि से तीर्थों का पर्यटन किया करते हैं और सभी प्रकार के द्वन्द्वों के सहने वाले एवं धीर होते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग के भागीदार हुआ करते हैं। जब कोई भी तीर्थ यात्रा करने की इच्छा वाला हो तो पहिले उसको घर में ही उपोषण करना चाहिए और विघ्न विनाशक भगवान गणेश का पूजन करे तथा पितृगण, विप्र वृन्द और साधुओं का पूजनार्चन करना चाहिये ॥५४-५६॥

कृतपारणकोहृष्टो गच्छेन्नियमधृक्पुनः ।
आगत्याभ्यर्च्यंचपितृन्यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥५७
नपरीक्ष्योद्विजस्तीर्थेष्वन्नार्थीभोज्य एवच ।
सक्तुभिः पिण्डदानञ्च चरुणापायसेनच ॥५८
कर्तव्यमृषिभिर्दिष्टं पिण्याकेन गुडेन च ।
श्राद्ध तत्र प्रकर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥५९
अकालेप्यथवा काले तीर्थे श्राद्धञ्च तर्पणम् ।
अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्न समाचरेत् ॥६०
तीर्थं प्राप्य प्रसङ्गेन स्नान तीर्थे समाचरेत् ।
स्नानज फलमाप्नोति तीर्थयात्राश्रितं न च ॥६१
नृणा पापकृतां तीर्थे पापस्य शमन भवेत् ।
यथोक्तफलद तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥६२
षोडशांश स लभते यः परार्थं च गच्छति ।
अर्द्धं तीर्थफल तस्य यः प्रसंगेन गच्छति ॥६३

किये हुए उपवास का पारण करके नियमो को धारण कर परम हर्ष से संयुत होकर फिर तीर्थ यात्रा को गमन करे। वहाँ से आकर भी पुनः अपने पितृगण का अर्चन करे—तभी वह पुण्य फल का भागी हुआ करता है ॥५७॥ तीर्थों में कभी भी किसी द्विज की परीक्षा न करे। जो भी अन्न का अर्थी हो उसको ही भोजन करा देना चाहिये। भोजन सत्तू से करावे तथा पिण्डदान भी सत्तू से करावे। और चरु एवं पायस के द्वारा करे। ऋषियो के द्वारा दृष्ट पिण्याक एवं गुड से करना चाहिए। अर्घ्य और आवाहन से रहित वहाँ पर श्राद्ध भी करना चाहिए। काल हो अथवा अकाल ही हो तीर्थ में श्राद्ध और तर्पं अविलम्ब से ही कर देवे और कभी भी इसमें विघ्न न करे। प्रसङ्ग वश भी यदि तीर्थ मे प्राप्त हो जावे तो वहां पर स्नान का समाचरण अवश्य ही करे। वह मनुष्य वहाँ पर स्नान का फल तो अवश्य ही प्राप्त कर लेगा किन्तु उसे तीर्थ यात्रा करने का फल नहीं प्राप्त होगा ॥५८-६१॥ पापो के करने वाले मनुष्यो के तीर्थ में पापो का शमन हो जाया करता है। तीर्थ जिस प्रकार

से पुण्य-फल का प्रदान करने वाला होता है यह श्रद्धा वाले मनुष्यों को ही होता है ॥६२॥ जो कोई दूसरों के लिए ही तीर्थों में गमन किया करता है वह फल का सोलहवाँ भाग प्राप्त किया करता है। जो किसी अन्य कार्य के प्रसङ्ग से तीर्थ में पहुंच जाता है उसको तीर्थ यात्रा का आधा फल ही प्राप्त हुआ करता है ॥६३॥

कुशप्रतिकृतिं कृत्वा तीर्थ वारिणि मज्जयेत् ।
मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टमांश लभेत वै ॥६४
तीर्थोपवास कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा ।
शिरो गतानि पापानि यान्तिमुण्डनतोयत ॥६५
यदह्नितीर्थ प्राप्तिः स्यात्ततोह्नः पूर्ववासरे ।
उपवासस्तु कर्तव्यः प्राप्ताह्नि श्राद्धदोभवेत् ॥६६
तीर्थ प्रसगात्तीर्थांगमभ्युक्त स्वसुरो मया ।
स्वर्गसाधनमेवैतन्मोक्षोपायश्च वै भवेत् ॥६७
काशी कान्ती च मायाख्या स्वयांध्या द्वारवत्यपि ।
मथुरावन्तिका चैता सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदा ॥६८
श्रीशैलो मोक्षदः सर्व. केदारोपि ततोऽधिकः ।
श्रीशैलकाच्चापि केदारात्प्रयाग मोक्षद परम् ॥६९
प्रयागादपितीर्थाग्र्यादविमुक्त विशिष्यते ।
यथा विमुक्ते निर्वाण न तथान्यत्र संशयम् ॥७०

कुशा की एक प्रतिकृति बनाकर तीर्थ के जल में मज्जित करा देवे। जिस उद्देश्य को लेकर उसका मज्जन करावे उसका अष्टमांश फल उसे प्राप्त हो जाया करता है। तीर्थ में जाकर उपवास अवश्य ही करे और वहाँ पर मुण्डन भी करावे। मुण्डन के जल से शिर में प्राप्त हुए समस्त पाप चले जाया करते हैं। जिस दिन में तीर्थ की प्राप्ति होवे उस दिन के प्रथम दिन में ही उपवास करना चाहिए और प्राप्त हो जाने वाले दिन में श्राद्ध देने वाला होवे। इस तीर्थ यात्रा के प्रसंग से मैंने आपके आगे तीर्थों के अङ्ग का भी वर्णन कर दिया है। यही स्वर्ग का साधन होता है और मोक्ष प्राप्त करने का भी उपाय है। काशी,

कान्ती (काञ्ची), माया नामवाली (हरिद्वार), अयोध्या, द्वारवती (द्वारका), मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन) ये सात पुरियाँ ऐसी हैं जो मोक्ष के प्रदान करने वाली होती हैं ॥६४-६८॥ श्री शैल सम्पूर्ण मोक्ष प्रदाता है। केदार गिरि उससे भी अधिक होता है। श्री शैल और केदार से भी परम मोक्ष का देने वाला प्रयाग हुआ करता है ॥६६॥ प्रयाग से भी अधिक जो कि समस्त तीर्थों में अग्र है (उत्तम) होता है अविमुक्त तीर्थ हुआ करता है। जैसा इस अविमुक्त तीर्थ में निर्वाण होता है वैसा तो कहीं भी नहीं होता है—यह निःसन्देह है ॥७०॥

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तकराणि च ।
काशी प्राप्यापि मुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः ॥ ७१
अत्रापि कथयिष्यहमितिहासं पुरातनम् ।
यथा विष्णुगणैरुक्त द्विजाय शिवशर्मणे ॥७२
तीर्थाध्यायमिमं श्रुत्वा नरोनियतमानसः ।
श्रावयित्वा द्विजाश्चापि श्रद्धाभक्ति समन्विता ॥७३
क्षत्रियान्धर्मनिरतान्वैश्यान्सन्मार्गवर्तिनः ।
शूद्रान्द्विजेषु भक्ताश्च निष्पापो जायते द्विजः ॥७४

अन्य भी मुक्ति के क्षेत्र हैं और ये काशी के प्राप्त करा देने वाले होते हैं किन्तु काशी में तो प्राप्त होकर ही मानव मुक्त हो जाया करता है अन्यथा करोड़ों तीर्थों से भी नहीं होता है ॥७१॥ इस विषय में हम एक परम पुरातन इतिहास आपको कहेंगे जैसा कि भगवान् विष्णु के गणों ने शिव शर्मा द्विज से कहा था। इस तीर्थाध्याय को मनुष्य नियत मन वाला होकर श्रवण करता है तथा द्विजों को इसका श्रवण कराता है जो कि सुनने वाले श्रद्धाभक्ति से युक्त हों एवं धर्म में निरत क्षत्रियों को तथा सन्मार्ग में रहने वाले वैश्यों को और द्विजों में भक्ति रखने वाले शूद्रों को सुनाता है वह द्विज निष्पाप हो जाया करता है ॥७२-७४॥

४८—गायत्री महत्त्व वर्णन

गायत्रीमन्त्रतोयाढ्य दत्तंयेनाञ्जलित्रयम् ।
कालेविशेषेकिनस्य,तेनदत्तं जगत्त्रयम् ॥१
किंकिनसवितासूतेकालेसम्यगुपासितः ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि च पशूनि च ॥२
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च ।
भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम् ॥३
अष्टादशसुविद्यासु मीमांसातिगरीयसी ।
ततोऽपितर्कशास्त्राणिपुराणे तेभ्य एव च ॥४
ततोऽपिधर्मशास्त्राणितेभ्योगुर्वीश्रुतिर्द्विज ।
ततोऽप्युपनिषच्छ्रेष्ठागायत्रीचततोऽधिका ॥५
दुर्लभासर्वमन्त्रेषु गायत्रीप्रणवान्विता ।
न गायत्र्याधिक किञ्चित्त्रयीषु परिगीयते ॥६
नगायत्रीसमो मन्त्रोनकाशीसदृशीपुरी।
नविश्वेशसमंलिङ्गं सत्य सत्य पुनः पुनः ॥७

महा महर्षि श्री अगस्त्य जी ने कहा—गायत्री मन्त्र से संयुत तीन जल की अञ्जलियाँ जिस पुरुष ने भगवान् सविता के लिये समय पर समर्पित करदी हैं उसने क्या त्रिभुवन को नहीं दे डाला है ? तात्पर्य यह है कि उसने सभी कुछ समर्पित कर दिया है। शास्त्र में बताये हुए समय पर भली भाँति उपासित सूर्यदेव क्या क्या नहीं प्रदान किया करते हैं अर्थात् सभी कुछ वे देते हैं। आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, कलत्र, विविध क्षेत्र, आठों प्रकार के भोग, स्वर्गलोक का निवास और अपवर्ग यह सभी प्राप्त होते हैं ॥१-३॥ अठारह विद्याओं में मीमांसा विद्या अत्यन्त बड़ी है। इस से भी अधिक गुरु तर्क शास्त्र है। उनसे भी अधिक पुराण हैं और उन से भी अधिक धर्म शास्त्र होते हैं और इनसे अधिक गुरु श्रुति है। हे द्विज ! श्रुतियों से भी अधिक गुरु उपनिषद् हैं और इनसे भी परम श्रेष्ठ गायत्री होती है। इससे अधिक कोई भी नहीं

है। प्रणव से समन्वित गायत्री सभी मन्त्रों में दुर्लभा है। त्रयी में अर्थात् वेद त्रयी में गायत्री से अधिक कुछ भी नहीं परिगीत किया जाता है ॥४-६॥ गायत्री के समान कोई अन्य मन्त्र नहीं है और काशी के समान अन्य कोई भी पुरी नहीं है। विश्वनाथ भगवान् तुल्य कोई भी शिव लिङ्ग नहीं है—यह पुनः पुनः पूर्णतया सत्य है—सत्य है ॥७॥

गायत्री वेदजननी गायत्रीब्राह्मणप्रसूः।
गातारं त्रायतेयस्माद्गायत्री तेन गीयते ॥८
वाच्यवाचकसम्बन्धोगायत्र्याः सवितुर्द्वयोः।
वाच्योसौ सविता साक्षाद्गायत्री वाचिका परा ॥९
प्रभावेणैवगायत्र्या क्षत्रियःकौशिकोवशी।
राजर्षित्वपरित्यज्यब्रह्मर्षिपदमीयिवान् ॥१०
सामर्थ्यं प्राप चात्युच्चैरन्यद्भुवनसर्जने।
किं किं न दद्याद्गायत्री सम्यगेवमुपासिता ॥११
न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्रपठनादपि।
देव्यास्त्रिकालमभ्यासाद् ब्राह्मणः स्याद्धि नान्यथा ॥१२
गायत्र्येवपरोविष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः।
गायत्र्येवपरोब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः ॥१३
देवस्य सभगवानंशुमाली दिवाकरः।
सर्वेषां महसांराशिः कालः कालप्रवर्तकः ॥१४

यह गायत्री वेदों की जननी है। गायत्री ब्राह्मणों को प्रसूत करने वाली है। क्योंकि इसका जो गायन (जाप) करता है उसकी यह सुरक्षा (त्राण) किया करती है इसीलिये इसको गायत्री कहा जाता है। गायत्री और सविता इन दोनों का वाच्य-वाचक सम्बन्ध होता है। वाच्य तो भगवान् सविता देव हैं और गायत्री साक्षात् परा उनकी वाचिका होती है ॥८-९॥ इस गायत्री देवी के प्रभाव से ही वशी क्षत्रिय कौशिक (विश्वामित्र) राजर्षित्व का त्याग करके ब्रह्मर्षि के पद को प्राप्त हो गये थे ॥१०॥ दूसरा बहुत ऊँचा भुवन के निर्माण करने की भी उन्होंने सामर्थ्य प्राप्त करली थी। भली भाँति से उपासना की की हुई

गायत्री देवी मनुष्य को क्या क्या नहीं दे दिया करती है ? अर्थात् सभी कुछ प्रदान कर देती है । वेदों के पाठ करने से ब्राह्मण नहीं बना करता है और शास्त्रों के पढ़ने से भी ब्राह्मणत्व नहीं आता है केवल तीनों कालों में गायत्री देवी की उपासना के अभ्यास से ही ब्राह्मण हुआ करता है अन्य किसी भी प्रकार से ब्राह्मणत्व नहीं आता है । यह गायत्री देवी ही परम विष्णु है और गायत्री ही परम शिव है—गायत्री ही परब्रह्म है तथा वेदत्रयी भी गायत्री ही होती है । यह भगवान् अंशुमाली दिवाकर देव देवमय अर्थात् तीनों देवों का स्वरूप तथा यह सभी तेजों का समूह है और काल का प्रवर्तक साक्षात् काल है ॥११-१४॥

अर्कमुद्दिश्य सततमस्मल्लोकनिवासिनः ।
श्रुतिह्युदाहरन्तीमां सारासारविवेकिनः ॥१५
एषोहदेवः प्रदिशोनुसर्वाः पूर्वोह जातःस उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥
सदयमुपतिष्ठेरन् सौरैः सूक्तैरन्विता ।
येनमन्त्यश्नते विप्रा विप्राभास्करसन्निभाः ॥१७
पुष्यार्केऽप्यथहस्तार्के मूलार्केऽप्ययवाद्विज ।
उत्तरार्केऽप्ययत्कार्यं तत्फलत्येवनान्यथा ॥१८
पौषेमास्यर्कदिवसेषु स्नात्वाभास्करोदये ।
दानं होमजपकुर्यादर्चामिर्कं स्यचक्षता ॥१९
श्रद्धावानेकभक्तश्च कामक्रोधविवर्जितः ।
सहाप्सरोभिर्दिव्यैर्विमानैस्सवसेदथभोगवान् ॥२०
अयनेविषुवेचापि षडशीतिमुखेषु वा ।
विष्णुपद्याञ्चये दद्युर्महादानानि सुव्रता ॥२१

हमारे लोक के निवासी जन जो सार और असार के विवेकी हैं निरन्तर भगवान् सूर्य का उद्देश्य करके इस श्रुति का उदाहरण किया करते हैं ॥१५॥ यह ही देव सब दिशा-प्रदिशाओं में है । यह ही सबसे पूर्व में उत्पन्न हुए हैं, यह ही अन्दर गर्भ में है, यह ही उत्पन्न हुए हैं और

वह ही अनिप्यमाण है, वह ही मनुष्यों के पीछे और सभी ओर मुख करने वाला स्थित है ॥१६॥ सदा ही प्रतन्द्रित होते हुए सौर (सूर्य सम्बन्धी) सूक्तों के द्वारा उपस्थान करना चाहिए। जो विप्र यहाँ पर भगवान् सूर्य को नमन किया करते हैं वे विप्र भास्कर के ही समान तेज वाले हुआ करते हैं। हे द्विज ! पुष्यार्क में अथवा हस्तार्क में, मूलार्क में या उत्तरार्क में जो भी कुछ किया जाता है वह ही फल देने वाला होता है अन्यथा कुछ भी फल नहीं देता है ॥१७-१८॥ रविवार के दिन पौष मास में जो सूर्योदय के समय पर स्नान करके दान, होम और जाप किया करता है तथा सुन्दर व्रत वाला सूर्य देव का अर्चन करता है उसे परम श्रद्धा वाला, एक ही समय में भोजन करने वाला तथा काम, क्रोधादि रहित रहता है। वह वहाँ पर समस्त भोगों वाला होकर अप्सराओं के साथ निवास किया करता है। और अत्यन्त द्युति से युक्त होता है। अयन में, विषुव में अथवा षडशीति मुखों में जो विष्णुपदों में महान् व्रत वाले दान दिया करते हैं वे वैकर्तन लोक में वास किया करते हैं ॥१९-२१॥

तिलाञ्जुह्वति माज्याश्च ब्राह्मणान् भोजयन्ति च ।
पितृनुद्दिश्य च श्राद्धं ये कुर्वन्ति विपश्चितः ॥२२
महापूजाञ्च ये कुर्यु महामन्त्राञ्जपन्ति च ।
तेऽत्र वैकर्तने लोके विकर्तनसमप्रभाः ॥२३
न दरिद्रा न दुःखार्ता न व्याधिपरिपीडिता ।
सङ्क्रमेऽत्रार्कभक्ता ये न विरूपा न दुर्भगाः ॥२४
सङ्क्रमेषु न यैर्दत्तं न स्नातंतीर्थवारिषु ।
विशेषहोमो न कृताःकपिलाज्याप्लुतैस्तिलैः ॥२५
तं दृश्यन्ते प्रतिद्वारं विहीननयनाननाः ।
देहिदेहीति जल्पन्तो देहिनः सपटच्चराः । २६
समकृष्णलकेनापि यो दद्यात्काञ्चनं कृती ।
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे सवसेदत्र पुण्यभाक् ॥२७

जो उपर्युक्त अवसरों मे घृत के सहित तिलों का हवन किया करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और जो विद्वान् पुरुष अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर श्राद्ध किया करते हैं। जो कोई महापूजा करते हैं तथा महा मन्त्रो का जाप किया करते हैं वे इस वैकर्त्तन लोक में विकर्त्तन (सूर्य) के समान प्रभा से सुसम्पन्न होकर निवास करते हैं। वे लोग कभी भी दरिद्र नही होते हैं और न कभी दुःखों से आर्त्त तथा व्याधियों से पीड़ित ही हुआ करते हैं। संक्रमण काल में अर्थात् सूर्य की संक्रान्ति के समय में जो सूर्य देव की भक्ति किया करते हैं वे न तो कभी विरूप ही होते हैं और न दुर्भाग्य वाले ही हुआ करते हैं ॥२२-२८॥ जिन्होंने संक्रान्ति में कभी कुछ भी दान नही दिया है और तीर्थों के जल में स्नान नही किया है तथा कोई विशेष होम भी कपिला के घृत से युत तिलों से नही किया है वे प्रत्येक द्वार पर नयन और आनन से विहीन होकर दिखलायी दिया करते हैं। ऐसे लोग सपटज्वर होते हुए, "हम को कुछ दो" ऐसा कहते हुए देहधारी घूमा करते हैं। जो कोई कृती कृष्णलक के समान भी सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र में सुवर्ण का दान करता है वह परम पुण्यात्मा इस लोक में आकर निवास किया करता है ॥-५--७॥

सर्वं गङ्गासमन्तोय सर्वेब्रह्मसमाद्विजा ।
सर्वदेय स्वर्णसमराहुग्रस्ते दिवाकरे ॥२८
दत्तं जप्तं हुतं स्नातं यत्किञ्चित्सदनुष्ठितम् ।
भानूपरागेश्राद्धादि तद्धे तुर्यं घ्नमन्निधे. ॥२९
रविवारे संक्रमश्चेदुपरागोऽथवा भवेत् ।
तदा यदर्जितं पुण्य तदिहाक्षयमाप्यते ॥३०
भानुवारो यदा षष्ठ्या सप्तम्यामथ जायते ।
तदायत्सुकृतं कर्म कृतन्तदिह भुज्यते ॥३१
हंसो भानुः सहस्रांशुस्तपनस्तापनोरविः ।
विकर्तनो विवस्वांश्च विश्वकर्मा विभावसु ॥३२
विश्वरूपो विश्वकर्ता मार्त्तण्डो मिहिरोऽशुमान् ।
आदित्यश्चोष्णगः सर्योऽर्यमा ब्रध्नोदिवाकर. ॥-३

द्वादशात्मा सप्तहयोभास्करोऽहस्करः खगः ।
सूरःप्रभाकरः श्रीमांल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥३४
त्रिलोकेशो लोकसाक्षी तमोरिः शाश्वतः शुचिः ।
गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्तरणिः सुमहोरणिः ॥३५

दिवाकर भगवान् के राहु के द्वारा ग्रस्त होने के अवसर पर सभी जल गङ्गा के समान होता है और सभी द्विज ब्रह्मा के सदृश हुआ करते हैं तथा सभी कुछ दान में दी हुई वस्तु सुवर्ण के ही तुल्य होता है । दान दिया हुआ, जाप किया हुआ, हवन, स्नान, और जो कुछ भी सद् अनुष्ठान होता है एवं श्राद्ध आदि सभी सूर्य के ग्रहण के समय में ब्रह्म सन्निधि का हेतु हुआ करता है । अर्थात् यह सभी ब्रह्म के समीप में पहुँचाने वाला होता है । रविवार के दिन में संक्रमण हो अथवा ग्रहण उस समय में जो पुण्य का अर्जन होता है वह यहाँ पर अक्षय होकर प्राप्त किया जाता है । षष्ठी या सप्तमी तिथि में रविवार हो तो उस समय में जो भी कुछ सुकृत का अर्जन किया गया है वह यहाँ पर भोगा जाया करता है ।।२८ ३१।। अब सत्तर भगवान् भास्कर नामों का उल्लेख किया जाता है—हंस, भानु, सहस्रांशु, तपन, तापन, रवि, विकर्त्तन विवस्वान, विश्वकर्मा, विभावसु, विश्वरूप, विश्वकर्त्ता, मार्त्तण्ड, मिहिर, अंशुमान्, आदित्य, उष्णगु, सूर्य, अर्यमा, ब्रध्न, दिवाकर, द्वादशात्मा, सप्तहय, भास्कर, अहस्कर, खग, सूर, प्रभाकर, श्रीमान्, लोक चक्षु, ग्रहेश्वर, त्रिलोकेश, लोकसाक्षी, तमोऽरि, शाश्वत , शुचि, गभस्ति हस्त, तीव्रांशु, तरणि, सुमहोरणि, ।।३२-३५।।

द्युमणिर्हरिदश्वोऽर्कोभानुमान्भयनाशनः ।
छन्दोश्वोवेदवेद्यश्चभास्वान्पूषा वृषाकपिः ॥३६
एकचक्ररथो मित्रो मन्देहारिस्तमिस्रहा ।
दैत्यहा पापहर्ता च धर्मो धर्मप्रकाशकः ॥३७
हेलिकश्चित्रभानुश्चकलिघ्नस्ताक्ष्यवाहनः ।
दिक्पतिःपद्मिनीनाथःकुशेशयकरोहरिः ॥३८
धर्मरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डांशुः कश्यपात्मजः ।
एभिः सप्ततिसंख्याकैः पुण्यैः सूर्यस्य नामभिः ॥३९

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमस्कारसमन्वितैः ।
प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वा दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥४०
विगृह्यपाणियुग्मेन ताम्रपात्रं सुनिर्मलम् ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा परिपूर्यजलेन च ॥४१
करवीरादिकुसुमै रक्तचन्दनमिश्रितैः ।
दूर्वांकुरैरक्षतैश्चनिक्षिप्तैः पात्रमध्यतः ॥४२
दद्यादर्घ्यमनर्घ्याय सवित्रेध्यानपूर्वकम् ।
उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्यदृङ् मनाः ॥४३
प्रतिमन्त्र नमस्कुर्यादुदयास्तमये रविम् ।
अनया नाम सप्तत्या महामन्त्ररहस्यया ॥४४

द्युमणि, हरिदश्व, अर्क, भानुमान, तमनाशन, छन्दोऽश्व, वेदवेद्य, भास्वान्, पूषा, वृषाकपि, एकचक्र रथ, मित्र, मन्देहारि, तमिस्रहा, दैत्यहा, पापहर्ता, धर्म, धर्म प्रकाशक, हेलिक, चित्रभानु, कलिघ्न, तार्क्ष्य वाहन, दिक्पति, पद्मिनीनाथ, कुशेशयकर, हरि, घर्मरश्मि, दुर्निरीक्ष्य, चण्डांशु, कश्यपात्मज, ये कुल सत्तर संख्या वाले परम पुण्यमय भगवान् सूर्य के नाम हैं। इनमें प्रत्येक नाम के पहिले प्रणव लगाकर चतुर्थी विभक्ति सूर्य के सभी नामों के आगे जोड़ कर 'नमः' इस नमस्कार वाचक शब्द को जोड़ देवे। यथा 'ॐ सूर्याय नमः'। इसी भाँति उपरि कथित प्रत्येक नाम को उच्चरित करते हुए दिवाकर देव का बारम्बार दर्शन करे। सुन्दर एवं निर्मल जल से युक्त ताम्र पात्र को दोनों हाथों में ग्रहण करे और दोनों घुटनों से भूमि में जाकर जल से परिपूरित करे। करवीर आदि के पुष्पों से मिश्रित, रक्त चन्दन से मिश्रित, दूर्वांकुर, और अक्षत निक्षिप्त किये हो ऐसे उस पात्र के मध्य से अनर्घ्य सविता देने के लिये ध्यान पूर्वक अर्घ्य देना चाहिए। मस्तक के समीप पर्यन्त उस पात्र को ले कर ही अन्य ओर दृष्टि तथा मन को न लेजाकर अर्घ्य देना चाहिए ॥३६-४४॥

एवं कुर्वन्नरो जातु न दरिद्रोनदुःखभाक् ।
व्याधिभिर्मुच्यतेघोरैः रपिजन्मान्तरार्जितैः ॥४५

विनौषधैर्विनावैद्यैर्विना पथ्यपरिग्रहैः ।
कालेन निधनं प्राप्त.सूर्यलोके महीयते ॥४६
इ येकदेश कथितो भानुलोकस्य सत्तम ।
महातेजो निधेरस्य को विशेषमवत्यहा ॥४७

इसी रीति से प्रत्येक उपर्युक्त मन्त्र के द्वारा उदय और अस्त के समय मे रविदेव को नमस्कार करना चाहिए । यह सूर्यदेव के शुभ नामों को राशि है इससे जो कि महामन्त्र के रहस्य से समन्वित है मनुष्य को प्रतिदिन ही नमस्कार करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य कभी दरिद्री और दुखो के भोगने वाला नही हुआ करता है । जन्मान्तरो की संचित व्याधियो से भी वह मुक्त होजाया करता है । इन व्याधियो से छुटकारा पाने के लिये किसी औषधि, वैद्य तथा पथ्यपरिग्रह आदि की आवश्यकता ही नही हुआ करती है । जब उसका अन्त समय आता है तो मृत्यु प्राप्त करके वह सूर्य लोक मे ही प्रतिष्ठित हुआ करता है । हे सत्तम ! भानु लोक का यह एक देश तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है । यह महा तेज का निधि है । इसकी क्या विशेषता जानते हो ॥४५-४७॥

४६— मणि कर्णिकाख्यानवर्णन

अगस्त्योऽस्मिदिस्कन्दायिप्रीतिरनुत्तमा ।
तत्समाचक्ष्व भगवन्निरयन्मेहृदिस्थितम् ॥१
अविमुक्तमिदक्षेत्र कदारभ्य भुवस्तले ।
परा प्रथितिमापन्न मोक्षदञ्चाभवत्कथम ॥२
कथमेषा त्रिलोकीड्या गीयते मणिकर्णिका ।
तत्राऽऽसीत्किम्पुरा स्वामिन्यदा नाम्मरनिम्नगा ॥३
वाराणसीतिकाशीति रुद्रावासइतिप्रभो !।
अवा ? नामधेयानि कथमेतानि सा पुरी ।
आनन्दकानन रम्यमविमुक्तमनन्तरम् ॥४
महाश्मशान इतिचकथ स्यातशिखिध्वज ॥
एतदिच्छाम्यह श्रोतु सन्देहमेऽपनोदय ॥५

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वया यः समुदाहृतः ।
कुम्भयोनेऽमुमेवार्थमप्राक्षीदम्बिकाहरम् ॥६
यथा च देवदेवेन सर्वज्ञेन निवेदितम् ।
जगन्मातुः पुरस्तान्मे तथैव कथयामि ते ॥७

महामहर्षि परम श्री अगस्त्य जी ने कहा—हे स्कन्द देव ! आप यदि मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मुझ में आपकी सत्य प्रीति विद्यमान है तो हे भगवन् ! मेरे हृदय में बहुत समय से स्थित उसको ही कहिए कि यह अविमुक्त क्षेत्र इस भूमि के तल में कब लेकर आरम्भ हुआ है और यहाँ पर परम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है तथा यह मोक्ष के प्रदान करने वाला कैसे हो गया है ? इसमें यह त्रिलोकी की ईड्य (स्तवन करने के योग्य मणिकर्णिका कैसे गायी जाती है ? क्या पहिले भी यहाँ पर अब कि यह अमर नदी (गङ्गा) यहाँ थी यह विद्यमान थी ? हे स्वामिन् ! हे विभो ! वाराणसी, काशी, और रुद्रावास ये नाम इस महापुरी ने कैसे प्राप्त किये थे ? आनन्द कानन इसके अनन्तर रम्य अविमुक्त और महा श्मशान ये शुभ नाम भी हे शिखिध्वज ! किस प्रकार से भूमण्डल में विख्यात हुए हैं—यह सभी मैं श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ । आप मेरे सन्देह का अपनोदन (निवारण) कीजिये । श्री स्कन्द देव ने कहा—आपने यह महान् भारी प्रश्नों का समुदाय कर डाला है । हे कुम्भयोने ! अम्बिका माता ने भगवान श्री शम्भु से भी यही प्रश्न पूछा था । देवों के देव सर्वज्ञ प्रभु ने जिस प्रकार से निवेदित किया था उन जगत की माता के समक्ष में इनका उत्तर अर्पित किया था ठीक वैसा ही उत्तर मैं भी आप को बतलाता हूँ ॥१-७॥

महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजंगमे ।
आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥८
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूतलम् ।
अप्रधानं वियच्छून्यमन्यतेजोविवर्जितम् ॥९
द्रष्टृत्वादिविहीनञ्च शब्दस्पर्शसमुज्झितम् ।
व्यपेतगन्धरूपञ्च रसत्यक्तमदिङ्मुखम् ॥१०

इत्थं सत्यन्धतमसि सूचीभेद्ये निरन्तरे ।
तत्सद्ब्रह्मे ति यच्छ्रु त्यासदेक प्रतिपाद्यते ॥११
अमनोगोचरोवाचा विषय न कथ चन ।
अनामरूपवर्णञ्च नस्थूल नच यत्कृशम् ॥१२
अह्रस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिवर्जितम् ।
न यत्रोपचय. कश्चिनथा चापचयोपिच ॥१३
अभिधत्त सचकित यदस्तीति श्रुति पुनः ।
सत्य ज्ञानमनन्तञ्च यदानन्दं पर महः ॥१४

जिस समय में महा प्रलय का काल उपस्थित हो गया था और यह स्थावर तथा जङ्गम जगत सभी नष्ट हो गया था उस समय मे यहाँ सर्वत्र अन्धकारमय ही था। न तो सूर्य था और न ग्रह एवं तारकों का ही मण्डल विद्यमान रहा था। चन्द्र, अग्नि, अनिल, भूतल और अहो रात्रि कुछ भी नहीं था। बिना प्रमाण वाला अन्य तेज से विवर्धित यह शून्य नियत था। इसके द्रष्टा में भी यह विहीन था एवं शब्द, स्पर्श से समुज्झित था। गन्ध रूप, रस, दिशा इन सब से रहित था। इस प्रकार के सूचीभेद्य अर्थात् अत्यन्त गहरे निरन्तर रहने वाले सत्यमन्ध तम में वह एक सद् ब्रह्म था जिसका श्रुति के द्वारा प्रतिपादन किया जाता है। वह मन, वाणी का किसी भी प्रकार से गोचर विषय नहीं था। उसका कुछ भी नाम, रूप और वर्ण नही था। वह न तो स्थूल ही था और न कृश था। वह ह्रस्व, दीर्घ, लघु, गुरु सबसे वर्जित था। न तो जिसमें कुछ भी उपचय था और न कोई भी अपचय ही था। श्रुति बहुत ही चकित हो कर यही कहती थी कि कुछ है जो सत्य स्वरूप, अनन्त, ज्ञानरूप, परम आनन्द रूप एक तेज है ॥८-१४॥

अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति ।
निर्गुणं योगिगम्यञ्च सर्वव्याप्येककारणम् ।१५
निर्विकल्पं निरारम्भं निर्मायं निरुपद्रवम् ।
यस्येत्थं संविकल्प्यन्ते संज्ञा. संज्ञोदितस्यवै ॥१६

तस्यैकलस्य परतोद्वितीयेच्छाभवत्किल ।
अमूर्त्तेनस्वमूर्तिश्च तेनाकल्पिस्वलीलया ॥१७
सर्वैश्वर्यगुणोपेतासर्वज्ञानमयी शुभा ।
सर्वगा सर्वरूपा च सर्वदृक्सर्व कारिणी ॥१८
सर्वैकवन्द्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसङ्कृतिः ।
परिकल्प्येति तां मूर्तिमोश्वरी शुद्धरूपिणीम् ॥१९
अन्तर्दधे पराख्यं यद् ब्रह्म सर्वगमव्ययम् ॥२०

श्रुति भी यही कहती है कि वह ब्रह्म अप्रमेय, आधार से रहित, अविकार, बिना आकृति वाला, निर्गुण, उपद्रवों से हीन, योगियों के द्वारा ही जानने के योग्य, सर्व व्याप्य, एक मात्र कारण रूप, निर्विकल्प, निरारम्भ, माया से शून्य ऐसा ही वह है जिसके विषय में इसी प्रकार से अनेक विकल्प होते हैं ये ही उसकी सज्ञांदिक की सज्ञाएं हैं। इस भाँति एक कल उसके सम्स्मरण करते हुए उसी में एक स्वयं ही दूसरी इच्छा समुत्पन्न हुई थी और उस अमूर्त्त ने अपनी एक मूर्ति अपनी ही लीला से कल्पित की थी जो कि सब ऐश्वर्य और समग्र गुणों से समुपेत थी तथा सर्व ज्ञान मयी, शुभा, सर्वत्र गमन करने वाली, सर्वरूपा, सर्वदृक् और सब कुछ करने वाली थी। वह सभी के द्वारा वन्द्यमाना, सबकी आद्या और सर्वदा सर्व संकृति रूपा थी। ऐसी उस शुद्ध रूप वाली ईश्वरी उस मूर्ति की कल्पना करके वह सर्वग अव्यय ब्रह्म जो पराख्य है अन्तर्हित होगये थे।'१५-२०॥

अमूर्त्त यत्पराख्यं वैतस्यमूर्त्तिरहं प्रिये !।
अर्वाचीनपराचीना ईश्वरं मां जगुर्बुधाः ॥२१
ततस्तदेकलेनापि स्वैरं विहरतामया ।
स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टास्वशरीरानपायिनी ॥२२
प्रधानं प्रकृतिस्त्वाञ्चा मायांगुणवतीपराम् ।
बुद्धितत्त्वस्यजननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम् ॥२३
युगपच्च त्वयाशक्त्यासाककालस्वरूपिणा ।
मयाऽप्य पुरुषेणैतत्क्षेत्रंचापिविनिर्मितम् ॥२४

साशक्तिः प्रकृतिःप्रोक्तासतुमानीश्वरःपरः ।
ताभ्याञ्चरममाणाभ्यातस्मिन्क्षेत्रेघटोद्भव ॥२५
परमानन्दरूपाभ्या परमानन्दरूपिणी ।
पञ्चकोशपरीमाणे स्वपादतलनिर्मिते ॥२६
मुने! प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रंकदाचन ।
विमुक्तं हि शिवाभ्या यदविमुक्तं ततोविदु ॥२७
न यदा भूमिवलयं न यदाऽपा समुद्भव !।
तदा विहर्तु मीशेन क्षेत्रमेतद्विनिर्मितम् ॥२८

हे प्रिये ! जो परावर इसका प्रमूर्त रूप था उसकी मूर्ति ही मैं हूँ । अर्वाचीन और पराचीन बुधगण मुझको ही ईश्वर कहकर मान किया करते हैं । इसके उपरान्त एक काल और स्वतन्त्र रूप से विहार करते हुए मैंने अपने ही विग्रह से अपने ही शरीर वाली, अनपायिनी प्रधान प्रकृति आपको जो माया और परा गुणवती हैं सृजन किया था । आपको बुद्धि तत्त्व की जननी एवं विकृति से रहित कहते हैं । एक साथ शक्तिरूपिणी आपके साथ काल रूपी आद्य पुरुष मैंने पापों से रहित यह क्षेत्र विशेष रूप से निर्मित किया है ॥२१-२४॥ भगवान् स्कन्द देव ने कहा—वही शक्ति प्रकृति कही गयी है और पुरुष पर ईश्वर कहे गये हैं । हे घटोद्भव उन दोनों के उस क्षेत्र में सञ्चरण करते हुए जो कि परम आनन्द के स्वरूप वाले हैं उस परमानन्द रूप वाले पाँच कोस के परिमाण से युक्त, अपने ही पाद तल के द्वारा निर्मित यह क्षेत्र है । हे मुने ! यह क्षेत्र प्रलय काल में भी जबकि सभी का विलय होजाया करता है शिव और शिवा से विमुक्त नहीं हुआ करता है अतएव यह "अविमुक्त" इस नाम से प्रख्यात हो गया है । हे जल से समुत्पन्न होने वाले ! जिस समय में यह भूमि मण्डल भी नहीं था उसी समय में ईश्वर ने विहार करने के लिये इस क्षेत्र का निर्माण किया है ॥२५-२८॥

इदं रहस्यं क्षेत्रस्य वेदकोऽपि न कुम्भज ।
नास्तिकाय न वक्तव्यंकदाचिच्चर्मचक्षुषे ॥२९

श्रद्धालवे विनीताय त्रिकालज्ञानचक्षुषे ।
शिवभक्ताय शान्ताय वक्तव्यञ्च मुमुक्षवे ॥३०
अविमुक्तं तदारभ्य क्षेत्रमेतदुदीर्यते ।
पर्य्यङ्कभूतं शिवयोर्निरन्तरसुखास्पदम् ॥३१
अभावः कल्प्यते मूर्खैर्यदा च शिवयोस्तयोः ।
क्षेत्रस्यास्य तदाभावः कल्प्यो निर्वाणकारिणः ॥३२
अनाराध्य महेशानमनवाप्य च काशिकाम् ।
योगाद्युपायविज्ञोऽपि न निर्वाणमवाप्नुयात् ॥३३
अस्यानन्दवनं नाम पुराऽकारि पिनाकिना ।
क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वादविमुक्तमनन्तरम् ॥३४
आनन्दकन्दबीजानामंकुराणि यतस्ततः ।
ज्ञेयानि सर्वलिङ्गानि तस्मिन्नानन्दकानने ॥३५
अविमुक्तमिति ख्यातमासीदित्थ घटोद्भव ।
तथा चाख्याम्यथ मुने । यथाऽऽसीन्मणिकर्णिका ॥३६

हे कुम्भज ! इस क्षेत्र के इस रहस्य को कोई भी नहीं जानता है । जो धर्म चक्षु वाला नास्तिक हो उसके आगे इस परम गोपनीय रहस्य को कभी भी नहीं कहना चाहिए । जो श्रद्धालु हो, परम विनीत हो, त्रिकाल के ज्ञान की चक्षु वाला जो हो, शिव के परम भक्त, शान्त और जो मुक्ति प्राप्त करने का इच्छुक हो उसको ही यह कहना चाहिए । तभी से आरम्भ करके यह क्षेत्र अविमुक्त इस नाम से कहा जाया करता है । यह शिव और शिवा इन दोनों का पर्य्यङ्क के समान ही है और निरन्तर सुख का आस्पद होता है ॥२६-३१॥ जिस समय में मूर्खों के द्वारा इन दोनों शिव और शिवा का अभाव कल्पित किया जाता है उस समय में निर्वाण देने वाले इस क्षेत्र का अभाव कल्पना करने के योग्य होता है ॥३२॥ महेश्वर प्रभु की आराधना न करके और काशी पुरी में न पहुँच कर जो उपायों का विज्ञ भी योग से ही निर्वाण पद को प्राप्त नहीं किया करता है ॥३३॥ पिनाकी भगवान् ने ही पहिले इसका आनन्दवन यह नाम रक्खा था क्योंकि यह क्षेत्र आनन्द का हेतु होता था । इसके अनन्तर

इसका नाम अविमुक्त रखा गया था। जहाँ-जहाँ पर आनन्द कन्द बीजों के अंकुर वहाँ पर जानने चाहिए। उस आनन्द कानन में सभी लिङ्ग जानने के योग्य हैं। हे घटोद्भव ! इस प्रकार से यह अविमुक्त इस नाम से विख्यात हुआ था। हे मुने ! और मणिकर्णिका जिस तरह से हुआ था उसको भी मैं कहता हूँ ॥३४-३६॥

प्रागानन्दवने तत्र शिवयोरममाणयोः ।
इच्छेत्यभूत्कलशज ! सृज्यः कोऽप्यपरः किल ॥३७
यस्मिन्न्यस्ते महाभारे आवां स्वःस्वैरचारिणौ ।
निर्वाणस्थापनं कुर्वः केवलं काशिशायिनाम् ॥३८
स एव सर्वं कुरुते स एव परिपाति च ।
स एव संवृणोत्यन्ते सर्वैश्वर्यनिधि सन ॥३९
चेतः मम् द्रुमाकूच्चचिन्ताकल्लोलदोलितम् ।
सत्त्वरत्नंतमोग्राहरजोविद्रुमवल्लितम् ॥४०
यस्य प्रसादात्तिष्ठावः सुखमानन्दकानने ।
परिक्षिप्तमनोवृत्तौ बर्हिश्चिन्तातुरे सुखम् ॥४१
सप्रधार्येतिस विभु सर्वं तश्चिरस्वरूपया ।
तया सहजगद्धात्र्याजगद्धाताऽथधूर्जटिः ॥४२
सव्ये व्यापारयाञ्चक्रे दृशमङ्गे सुधामुचम् ।
ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुन्दरः ॥४३

हे कलशज ! पहिले उस आनन्द वन मे दोनों शिव और शिव के रमण करते हुए उनको ऐसी इच्छा हुई थी कि कोई दूसरा स्थल भी सृजन करना ही चाहिए। जिस पर समस्त भार न्यस्त करके हम दोनों स्वच्छन्द चरण करने वाले हो जावें। हम केवल काशी मे शयन करने वालों को ही निर्वाण का स्थापन किया करेंगे ॥३७-३८॥ वह ही सब कुछ किया करते हैं और वह ही परिपालन किया करते हैं। वही अन्त समय में सबका संवरण किया करते हैं और वह सभी ऐश्वर्यों के निधि हैं। यह चित्त समुद्र के समान है जो चिन्ता रूपिणी तरङ्गों से दोलित रहा करता है। सत्त्वगुण की जो भावनायें उसमें विद्यमान हैं वही रत्न के

समान है घोर तमोगुण का प्रभाव ही इसमें भयानक ग्राह हैं तथा रजोगुण के बिन्दुओं से यह वल्लित रहा करता है। ऐसे इस चित्त को आकुञ्चित करके जिसके प्रसाद से उस आनन्द कानन में सुखपूर्वक स्थित रहें। चिन्ता से आतुर परिक्षिप्त मनोवृत्ति में सुख कहाँ हो सकता है? उन प्रभु ने यह सम्प्रधारण करके जगत् के धाता विभु धूर्जटि भगवान् ने चित्स्वरूप वाली उस जगन् की धात्री के साथ सभी ओर से अपने सव्य अंग में सुधा का स्रवण करने वाले नेत्र व्यापार वाला किया था। इसके पश्चात् एक पुरुष जो त्रैलोक्य में परम सुन्दर था आविर्भूत अर्थात् प्रकट हुआ था ॥३६-४३॥

शान्तः सत्त्वगुणोद्रिक्तो गाम्भीर्यंजितसागरः ।
तथा च क्षमयायुक्तो मुनेऽलब्धोपमोऽभवत् ॥४४
इन्द्रनीलद्युतिःश्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः ।
सुवर्णाकृतिसुच्छायदुकूलयुगलावृतः ॥४५
लसत्प्रचण्डदोर्दण्डयुगलद्वयराजितः ।
उल्लसत्परमामोदनाभीहृदकुशेशयः ॥४६
एकःसर्वगुणावासस्त्वेकःसर्वकलानिधिः ।
एकःसर्वोत्तमोयस्मात्ततोयं पुरुषोत्तमः ॥४७
ततो महान्तं तं वीक्ष्य महातद्विमभूषणम् ।
महादेव उवाचेदं महाविष्णुर्भवाच्युत ॥४८
तव निःश्वसितं वेदास्तेभ्यः सर्वमवैष्यसि ।
वेददृष्टेन मार्गेण कुरु सर्वं यथोचितम् ॥ ९
इत्युक्त्वा तं महेशानो बुद्धितत्त्वस्वरूपिणम् ।
शिवया सहितो रुद्रो विवेशाऽऽनन्दकाननम् ॥५०

हे मुनिवर! यह पुरुष परम शान्त स्वरूप वाला सत्व गुण से उद्रित्त—गम्भीरता से सागर को भी जीत लेने वाला तथा क्षमा [illegible] युक्त अलब्ध उपमा वाला था ॥४४॥ इन्द्रनील मणि के समान उसके अंग की द्युति थी, श्री से सम्पन्न पुण्डरीक के तुल्य उत्तम नेत्रों वाला—सुवर्ण के समान जाज्वल्यमान आकृति वाला सुन्दर कान्ति से सम्पन्न

और दो वस्त्रो से समावृत था। शोभा से युक्त एवं प्रचण्डदोर्दण्ड (बाहुयुगल) से वह विराजमान था। उल्लसित परम आमोद से नाभि रूपी ह्रद मे कुशेशय होने वाला था अर्थात् शयन करने वाला था। यह एक ही थे और समस्त सद्गुणो का आवास स्थान थे। यह एक ही समस्त कलाओ के निधि थे। यह एक ही सबसे उत्तम थे। इसी कारण से यह पुरुषोत्तम हुए थे। इसके अनन्तर उनकी महती महिमा से भूषित एवं महान् देखकर श्री महादेव यह बोले—हे प्रभुत्! आप महा विष्णु हो जाइये। ये वेद सब आपका ही निःश्वसित हैं। उन से आप सभी कुछ जान लेंगे। वेद के द्वारा दृष्ट जो मार्ग है उसी मार्ग के द्वारा आप सब यथोचित् करिए। महेश्वर प्रभु बुद्धि तत्व के स्वरूपधारी उनसे यह कह कर भगवान रुद्र फिर शिवा के साथ आनन्द कानन मे प्रवेश कर गये थे ॥४४-५०॥

ततःसभगवान्विष्णुर्मौलावाज्ञां निधायच ।
क्षणध्यानपरोभूत्वा तपस्येवमनोदधौ ॥५१
खनित्वा तत्रचक्रेणरम्यां पुष्करिणींहरिः ।
निजाङ्गस्वेदसन्दोहसलिलैस्तामपूरयत् ॥५२
समा सहस्रं पञ्चाशत्तप उग्रञ्चचार स. ।
चक्रपुष्करिणीतीरे तत्र स्थाणुसमाकृति ॥५३
ततःसभगवानीशो मृडान्यासहितोमृड. ।
दृष्ट्वाज्वलन्तंतपसा निश्चलमीलितेक्षणम् ॥५४
तमुवाच हृषीकेश मौलिमान्दोलयन्मुहु. ।
अहो महत्त्व तपसस्त्वहोधैर्यं च चेतसः ॥५५
अहो अनिन्धनो वह्निज्वलत्येष निरन्तरम् ।
अल तप्त्वा महाविष्णो! वर वरय सत्तम !॥५६
मृडस्याऽऽकर्णितमिद प्रत्यभिज्ञयाभाषितम् ।
उन्मीलितदृगम्भोजः समुत्तस्थौ चतुर्भुजः ॥५७

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने अपने मस्तक पर प्रभु शिव की आज्ञा को धारण करके एक क्षण भर ध्यान मे समाश्रित होकर फिर

तपश्चर्या करने ही में अपना मन स्थिर किया था। श्री हरि ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा यहाँ पर एक सुरम्य पुष्करिणी का खनन करके अपने अंगों से प्रवहमान स्वेद के जल से उसको परिपूर्ण कर दिया था ॥५१-५२॥ फिर उन्होंने पचास सहस्र वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या की थी। उस चक्र पुष्करिणी के तट पर यहाँ पर एक स्थाणु (सूखे हुए काष्ठ का ठूँठ) के समान आकृति वाले मृडानी के सहित भगवान ईश मृड ने तप से जलते हुए—निश्चल नेत्र मूँदे हुए इनको देखा था। उस समय मे बारम्बार मस्तक को हिलाते हुए भगवान शिव भगवान हृषीकेश से कहा—ओहो! इस तपश्चर्या की कैसी अद्भुत महिमा है तथा इस तपस्वी के चित्त का धैर्य भी कैसा विलक्षण है। ओ हो! बड़े ही आश्चर्य की बात है कि बिना ही ईंधन के यह अग्नि निरन्तर जलता रहा करती है। हे महा विष्णो! अब आप तप मत करिये। यह आपकी पर्याप्त तपस्या हो चुकी है। हे माधव! आप मुझसे वरदान माँग लीजिए ॥५३-५६॥ यह तो भगवान् शम्भु का ही कथन है—ऐसा उस भाषित को पहिचान कर चतुर्भुज प्रभु अपने कमल के समान नेत्रों का खोलकर खड़े हो गये थे ॥५७॥

अन्यत्र कृतपापानि बहूनि सुमहान्ति च ।
अवद्दर्शनोऽत्यन्तो मद्ध्न च विपद्यते ॥५८
महिमान्यनभिज्ञोऽपि लोको ह्यस्याश्च जनार्दन ।
तस्य यागविहिद्दिष्टा सा निशामय सुव्रत ॥५९
पञ्चक्रोशीं प्रविशतस्तस्य पातकसन्ततिः ।
बहिरेव प्रतिष्ठेत नान्तर्निविशते क्वचित् ॥६०
अथाद् बहिः स्थिताऽमाञ्च तस्य पातकसन्ततौ ।
त्रिशूलपाशपाणीनां गणानां सीमचारिणाम् ॥६१
प्रवेशमात्रादनघ सर्वैरेनोभिरुज्झितः ।
सुस्नाय मणिकर्णिकायां पुण्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥६२
सर्वतीर्थपुरस्नानाद्यत्पुण्यं समवाप्यते ।
तत्पुण्यमाप्यते सम्यङ्मणिकर्ण्यैकमज्जनात् ॥६३

भगवान शिव ने महा-अन्य स्थल मे बडे से बडे बहुत से पापो को करके श्रद्धा भाव न रखने वाला और तत्वो का ज्ञान नही रखने वाला पुरुष यदि यहाँ पर विपन्न होता है । हे जनार्दन ! इस क्षेत्र की महिमा का अनभिज्ञ भी हो तो उसको जो गति प्राप्त होती है हे सुव्रत ! उसको श्रवण करो । इस पच कोसी में प्रवेश करते हुए ही उसके पातको की सन्तति बाहिर ही खडी रहा करती है और कही पर भी वह उसके अन्दर प्रवेश नही किया करती है । भय से बाहिर ही स्थित हुई उसके पातको की सन्तति रहती है । क्योकि त्रिशूल हाथो मे लेकर सीमा मे सञ्चरण करते रहने वाले गण वहाँ रहा करते हैं उन्ही का भय पातको को रहा करता है । मनुष्य के प्रवेश मात्र के करने ही से समस्त पापो से वह परित्यक्त हो जाया करता है और अनघ होकर फिर उस मणिकर्णिका मे भली भाँति स्नान करके अति उत्तम पुण्य को प्राप्त कर लिया करता है । समस्त तीर्थों मे स्नान करने से जो पुण्य फल प्राप्त किया जाता है उतना ही महान पुण्य-फल मणिकर्णिका मे एक ही बार स्नान करने से प्राप्त किया जाता है ॥५८-६३॥

विधिनातत्रसस्नायमृद्गोमयकुशादिभि. ।
स्वशाखावारुणमन्त्रं दूं र्वापाभार्गदभकं ॥६४
सर्वतीर्थेपुयत्पुण्यसर्वदानेपुयत्फलम् ।
मणिकर्ण्याविधिस्नातःश्रद्धयातदवाप्नुयात् ॥६५
अश्रद्धयापिय स्नातोमणिकर्ण्याविधानतः ।
सोऽपिपुण्यमवाप्नोतिस्वर्गप्राप्तिकरं परम् ॥६६
श्रद्धया विधिवत्स्नात्वा कृत्वा देवादितर्पणम् ।
तिलबर्हिर्यवैः सम्यक्सर्वयज्ञफल लभेत् ॥६७
श्रद्दधानोविधिस्नातः कृतसर्वोदकक्रियः ।
जपन्देवान्समभ्यर्च्य सर्वमन्त्रफल लभेत् ॥६८
स्नात्वामौनेन विश्वेशदर्शनान्नियतेन्द्रियः ।
सर्वव्रतकृत श्रेयोलभेद्वाचयमः शिवे ॥६९

स्नाने देवार्चने जप्ये मलमूत्रविसर्जने ।
मौन कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनहोमयो. ॥७०

उस मणिकर्णिका में विधि पूर्वक भली भाँति स्नान करना चाहिए, मृत्तिका, गोमय, कुश आदि से तथा अपनी शाखा के वारुण मन्त्रों के द्वारा दूर्वा, अपामार्ग और दाभ से शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही वहाँ पर स्नान करे । अन्य समस्त तीर्थों मे जो स्नानादि करने का पुण्य-फल होता है तथा सम्पूर्ण दानो मे जो पुण्य होता है वही पुण्य मणिकर्णिका मे विधि पूर्वक स्नान करने से और श्रद्धा के साथ स्नान करने से प्राप्त कर लिया जाता है । मणिकर्णिका मे बिना श्रद्धा की भावना के भी जो विधि के सहित स्नान कर लेता है वह भी पुण्य प्राप्त कर लिया करता है जोकि परम स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराने वाला होता है । श्रद्धा से विधि पूर्वक स्नान करके देवादि का तर्पण तिल, बर्हि और जौ से करे तो वह मनुष्य भली-भाँति सभी यज्ञो के करने का फल प्राप्त किया करता है । नियत इन्द्रियों वाला पुरुष मौन होकर स्नान करे और फिर श्री विश्वनाथ भगवान् के दर्शन करे तो हे शिवे ! वह मौनी समस्त व्रतो के पुण्य एव श्रेय को पा लेता है । श्रद्धा वाला पुरुष सविधि स्नान करके और सम्पूर्ण जल की क्रिया करके जाप करता हुआ देवो का अर्चन करे तो समस्त मन्त्रो के फल को पा लिया करता है । मौन रहने की बहुत बड़ी महिमा है । स्नान में, देवो के अर्चन में, जाप करने में, मल-मूत्र के त्याग करने मे तथा दांतुन करने मे और होम करने के अनन्तर मे प्रयत्न पूर्वक मौन रहने का ही अभ्यास रखना चाहिए ॥६४-७०॥

विश्वेश्वर समभ्यर्च्य सूपचारं विधानतः ।
यावज्जीव शिवार्चायाः फलमाप्नोति वै सकृत् ॥७१

दत्वाऽल्पमपि देवेशि!न्यायेनोपार्जितधनम् ।
अविमुक्ते महाक्षेत्रे न दरिद्रो भवेत्क्वचित् ॥७२

विविधंधनमावर्ज्ययोऽविमुक्तं न यच्छति ।
सप्राप्यनिधनंमूढोऽप्यशोचतिसर्वदा ॥७३

रम्याणि यानि रत्नानि गोगजाश्वाम्बराण्यपि ।
कृतानि तानि श्रेयोर्थमविमुक्तनिवासिनाम् ॥७४
विश्वेशप्रीणनार्थायधननिधनमेववा ।
न्यायेनकास्यायकुर्यात्सधन्यःसचधर्मवित् ॥७५
योऽसौ विश्वेश्वरो देवः काशीपुर्यामुमे ! स्थितः ।
लिङ्गरूपधर साक्षान्ममर्थ यास्पद हितव ॥७६

समस्त पूजनोपचारों के द्वारा श्री विश्वेश्वर प्रभु का विधान के साथ समभ्यर्चन करना चाहिए। जब तक जीवित रहे तब तक एक बार के ही शिवार्चन का फल प्राप्त किया करता है ॥७१॥ हे देवेशि ! न्याय से उपार्जित धन का बहुत थोड़ा सा भी भाग दान करके उस अविमुक्त क्षेत्र में फिर कभी वह मनुष्य दरिद्र नहीं हुआ करता है ॥७२॥ अनेक प्रकार के धन को प्राप्त करके भी जो मूढ इस अविमुक्त क्षेत्र में दान नहीं देता है वह मूढ मृत्यु प्राप्त करके फिर अन्यत्र सर्वदा ही शोच किया करता है। जो रम्य रत्न हैं तथा गो, गज, अश्व और वस्त्र आदि हैं वे सब अविमुक्त में निवास करने वालों के श्रेय के लिये ही किये गये हैं। श्री विश्वनाथ भगवान् के प्रसन्न करने के ही लिये यह धन तथा निधन है। न्यायपूर्वक जो काशी में इनका उपयोग किया करता है वही पुरुष परम धन्य है और वह ही मनुष्य धर्म का ज्ञाता है। हे उमे ! जो यह विश्वनाथ देव काशी-पुरी में लिङ्ग के स्वरूप को धारण करके स्थित हैं वह साक्षात् मेरा स्वरूप है और परम श्रेय के आस्पद होते हैं ॥७३-७६॥

अविमुक्त महत्क्षेत्रपञ्चक्रोशपरीमितम् ।
ज्योतिलिङ्गं तदेकहि्ज्ञेयविश्वेश्वराभिधम् ॥७७
एकदेशस्थितमपियथामार्तण्डमण्डलम् ।
दृश्यते सर्वंग सर्वं.काश्यांविश्वेश्वरस्तथा ॥७८
निष्प्रत्यूहेन योगेन नानाजन्मार्जितेन च ।
यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यां त्यजतस्तनुम् ॥७९
तप्त्वा तपांसि सर्वाणि बहुकालं जितेन्द्रियैः ।
यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यामेकरात्रतः ॥८०

अक्षेत्रमहिमज्ञोऽपि श्रद्धाहीनोऽपि कालतः ।
काशीप्रवेशादनघोऽमृतत्वं लभते मृतः ॥८१
कृत्वाप्येनासि चोग्राणि कालात्प्राप्याथ काशिकाम् ।
त्यक्त्वा तनुं प्रसादान्मे मामेव प्रतिपद्यते ॥८२
विना मम प्रसादं वै क काशीप्रतिपद्यते ।
विना व्रध्नविशालाक्षिदिनकृत्कइहोच्यते ॥८३
अप्राप्यकाशीकोदेवि!निरन्तरसुखंलभेत् ।
ब्रह्माद्याः प्राकृतैः पाशैर्यतोबद्धानिरन्तरम् ॥८४

यह अविमुक्त एक परम महान् क्षेत्र है जो पाँच कोश के परिमाण में स्थित है और वह श्री विश्वनाथ नाम वाले प्रभु एक ही ज्योतिर्लिङ्ग जानने चाहिए। एक ही देश में स्थित जिस तरह से यह मार्तण्ड मडल सब के द्वारा सर्वत्र गमन करने वाला दिखलाई दिया करता है वैसे ही काशी में यह भगवान विश्वनाथ प्रभु हैं। निर्विघ्न योग के द्वारा जो कि अनेक जन्मों में अर्जित किया गया है जो भी कुछ फल अन्यत्र प्राप्त होता है वह केवल काशीपुरी में निवास करके शरीर के त्यागने से ही मिल जाया करता है ॥७७-७९॥ इन्द्रियों को जीत कर के बहुत काल पर्यन्त समस्त तपश्चर्याओं का तपन करके अन्य स्थल में मनुष्यों के द्वारा जो पुण्य-फल प्राप्त किया जाता है वह समस्त काशीपुरी में एक रात्रि के ही निवास करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥८०॥ इस महाक्षेत्र की महिमा को न जानने वाला भी और श्रद्धा से रहित भी उस पुण्यकाल से काशी में प्रवेश करने ही से निष्पाप हो जाया करता है और वहाँ पर मृत्यु प्राप्त करके अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है ॥८१॥ महान् उग्र पापों को करके भी कोई कालवश काशीपुरी को प्राप्त कर लेता है और वहाँ पर शरीर का त्याग करता है तो वह मेरे प्रसाद से मुझ को ही प्राप्त कर लिया करता है ॥८२॥ विना मेरी कृपा के कौन काशी पुरी को प्राप्त कर सकता है अर्थात् मेरे प्रसाद के हुए बिना कोई भी काशी पुरी को प्राप्त ही नहीं कर सकता है जिस तरह से हे विशालाक्षि! यहाँ पर सूर्य के विना दिनकृत् कौन कहा जाया करता है? ॥८३॥ हे देवि!

काशी को प्राप्त न करके निरन्तर सुख कौन प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं करता है क्योंकि बह्माद सभी प्राकृत पाशों से निरन्तर बद्ध हैं ॥८४॥

चतुर्विंशतिभिः पाशैस्त्रिगुणैः क्रियया दृढैः ।
कण्ठे बद्धा विमुच्यन्ते कथं काशीं विना जनाः ॥८५
बह्वन्तरायो योगोऽयं कृच्छ्रसाध्यन्तपो ह्ययत् ।
योगाद्भ्रष्टस्तपोभ्रष्टो गर्भक्लेशसहः पुनः ॥८६
कृत्वाऽपि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत् ।
भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मुक्तिमवाप्स्यति ॥८७
काश्यां मृतानां जन्तूनां दैवात्पापकृतामपि ।
न पातो नरके तेषां पातो शास्ताहमेव यत् ॥ ८८
कामं विज्ञाय सापाय स्मृत्वा यमस्य वदनाम् ।
त्यक्त्वा राज्यमपि प्राज्य सेव्या काशी निरन्तरम् ॥८९
अतर्कितसमभ्येत्य यमदूता सुदारुणा ।
यद्ध्वापाशैर्हनिष्यन्तिक्षिप्रकाशीतत श्रयेत् ॥९०
नपापेभ्यो भययत्र नभययत्र यमात् ।
न गर्भवासभीर्यत्र तां काशीं को न सश्रयेत् ॥९१
अध्रुवात परश्वोवामरणप्राप्यमेव च ।
यावत्कालविलम्बोऽस्तितावत्काशीनमाश्रयेत् ॥९२
प्राप्ते तु मरणे पुंसा पुनर्जन्म पुनर्मृतिः ।
अपुनर्भवभूमिं च तस्मात्काशीं श्रयेद्बुधः ॥९३

चौबीस पाशों से जो कि त्रिगुणों की क्रिया से अत्यन्त दृढ हैं । सभी मनुष्य इनसे कण्ठ में बद्ध रहा करते हैं ये काशी के बिना कैसे विमुक्त हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं होते हैं ॥८५॥ यह योग बहुत उपसर्गों वाला होता है अर्थात् इसमें अत्यधिक विघ्न बाधाऐं हुआ करती हैं और तपश्चर्या जो होती है वह बहुत कष्टों के द्वारा साध्य होती है । योग से भ्रष्ट हो जावे और तप से जो भ्रष्ट हो जाता है वह फिर गर्भ के क्लेशों का

सहन करने वाला बनता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म होता है ।।८६।। काशी पुरी में रहकर भी पापों को करके भी जो काशी पुरी में ही अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह रुद्रदेव का पिशाच होकर भी पुनः मुक्ति की प्राप्ति किया करता है ।।८७।। काशीपुरी में मृत हुए जन्तुओं के यदि वे दैववश पाप करने वाले भी हों तो उनका पतन नरक में नहीं होता है क्योंकि उनका शासक भी मैं ही होता हूं । प्रमाथो से युक्त इस शरीर को समझ कर और गर्भगत वेदना का ज्ञान करके अर्थात् स्मरण करके परम विशाल राज्य को भी त्याग करके निरन्तर काशीपुरी का ही सेवन करना चाहिए ।।८८-८९।। अर्वान्त के समीप में आकर सुदारुण यमराज के दूत पाशों से बाँधकर हनन करेंगे । इसलिये बहुत शीघ्र ही काशीपुरी का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए । काशी में मृत्यु प्राप्त होजाने पर दुबारा न जन्म ही होता है और न मृत्यु ही होती है । जहां पर पापों से कोई भी भय नहीं होता है और न यमराज के द्वारा दण्ड प्राप्त करने का ही फिर भय रहा करता है । वहां पर गर्भ में वास करने का भी भय नहीं रहता है ऐसी उस काशी का कौन मूढ है जो आश्रय ग्रहण न करेगा । यह काशीपुरी तो अपुनर्भव की भूमि है । इसलिये बुद्ध पुरुष का कर्त्तव्य है कि उस काशीपुरी का सेवन करे ।।९०-९३।।

पुत्रक्षेत्रकलत्राख्यां त्यक्त्वा माया हि वैष्णवीम् ।
भवान्तरेऽनेकरूपाम्भवघ्नी काशिकां श्रयेत् ।।९४
दूरं मे मरणं युवाहमधुना धार्यं न वित्तं स्थिति
श्रोतव्यो निभृतं कृतान्तमहिषग्रैवेयघण्टारव. ।
नैकत्याप्रकटोत्कटश्रमघटामप्राप्य हित्वा द्रुतं ।
जीर्णा पर्णकुटी तत. पटुमतिर्गच्छेत्पुरी धूर्जटे. ।।९५
अगस्त्यस्य पुर.सूत! कथयित्वा कथामिमाम् ।
सर्वपापप्रशमनी पुन.स्कन्दउवाचह ।।९६

पुत्र, क्षेत्र और कलत्र नाम वाली वैष्णवी माया का त्याग करके भवान्तर में अनेक रूप वाली और भव का नाश करने वाली काशीपुरी का सेवन करना चाहिए । भगवान् स्कन्द ने कहा—मेरा मरण अभी

बहुत दूर है और अभी मैं युवा हूँ, ऐसा चित्त में कभी भी धारण नहीं करना चाहिए चुप-चाप यमराज के वाहन महिष (भैंसा) के गले में बंधे हुए घण्टा की ध्वनि सुननी चाहिए। निकटता में प्रकट उत्कट धरा को पाकर ही शीघ्र त्याग करके पटुमति वाले पुरुष को धूर्जटि भगवान् की पुरी काशी में जीर्ण पर्णकुटी का ही निवास ग्रहण करना चाहिए। भगवान व्यास देव ने कहा—हे सूत! अगस्त्य के आगे इस कथा को जो समस्त पापों का प्रशमन करने वाली है यह कह कर फिर भगवान् स्कन्द ने कहा था ॥९४-९६॥

५०—गङ्गामहिमावर्णन एवं दशहरास्तोत्रकथन

वाराणसीतीप्रथित यथा चानन्दकाननम्।
तथा च कथयामीह देवदेवेन भाषितम् ॥१
निशामय महाबाहो! विष्णो त्रैलोक्यसुन्दर!।
प्राप्ता वाराणसीत्याख्यामविमुक्त यथा तथा ॥२
निर्दग्धान्सागरान्छ्रुत्वा कपिलक्रोधवह्निना।
अश्वमेधाश्वसयुक्तान्पूर्वजान् स्वान् भगीरथः ॥३
सूर्यवंशे महातेजा राजा परमधार्मिकः।
आरिराधयिषुर्गङ्गां तपसे कृतनिश्चयः ॥४
हिमवन्त नगश्रेष्ठमगात्न्यस्तराज्यधूः।
जगाम यशसा राशिरुद्दिधीर्षुः पितामहान् ॥५
ब्रह्मशापाग्निनिर्दग्धान्महादुर्गतिगानपि।
विना त्रिमार्गगा विष्णो! को जन्तुस्त्रिदिवं नयेत् ॥६

- भगवान् श्री स्कन्द ने कहा—यह जिस प्रकार से आनन्द कानन है वैसे ही वाराणसी, इस नाम से भी प्रथित है और मैं उसी भाँति से देवों के देव के द्वारा भाषित को कहता हूँ। श्री ईश्वर ने कहा—हे महान् बाहुओं वाले! हे विष्णो! हे त्रैलोक्य में परम सुन्दर! अब आप यह सुनाइये कि जैसे यह अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी इस नाम को प्राप्त हुआ है।

राजा भगीरथ ने कपिल मुनि के क्रोध की अग्नि से अश्वमेध यज्ञ के अश्व से समन्वित अपने पूर्वजों को सगर के पुत्रों को निर्बन्ध सुनकर यह सूर्य वंश में महान् तेजस्वी और परम धार्मिक राजा हुआ था। इसने गङ्गा की आराधना करने की इच्छा वाला होकर तप करने के लिये निश्चय किया था ॥१-४॥ इसने अपने मन्त्रियों पर समग्र राज्य का भार छोड़कर फिर यह पर्वतों में परम श्रेष्ठ हिमालय पर सुन्दर वर्षों का समुदाय स्वरूप राजा भगीरथ अपने पितामहों का उद्धार करने की इच्छा वाला होकर तप करने के लिये चला गया था। हे विप्रो! वहाँ आप भस्मसात् हुए महान् दुर्गति वाले उन सगर के पुत्रों को त्रिपथगा (गङ्गा) के बिना किसकी सामर्थ्य है जो स्वर्ग में पहुंचा सके। ॥५-६॥

ममैव सापरामूर्त्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका।
ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारः प्रकृतिः परा ॥७
शुद्धविद्यास्वरूपा च त्रिशक्तिः करुणात्मिका।
आनन्दामृतरूपा च शुद्ध धर्मस्वरूपिणी ॥८
यामेता जगतां धात्री धारयामि स्वलीलया।
विश्वस्य रक्षणार्थाय परब्रह्म स्वरूपिणीम् ॥९
त्रैलोक्ये यानितीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि यानि च।
सर्वत्र सर्वे ये धर्माः सर्वे यज्ञा सदक्षिणाः ॥१०
तपांसि विष्णो! सर्वाणि श्रुतिः सांगा चतुर्विधा।
अहं च त्वञ्च कस्यापि देवतानां गणाश्च ये ॥११
पुरुषार्थाश्च सर्वे वैशक्तयो विविधाश्च याः।
गङ्गाया सर्व एवैते सूक्ष्मरूपेण सस्थिताः ॥१२
सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वक्रतुषु दीक्षितः।
चीर्ण सर्वव्रतः सोपि यस्तु गङ्गां निषेवते ॥१३
तपांसि तेन तप्तानि सर्वदानप्रदः स च।
स प्राप्तयोगनियमो यस्तु गङ्गा निषेवते ॥१४

यह गङ्गा तो मेरी ही एक जल के स्वरूप वाली दूसरी मूर्ति है जो शिवात्मिका ही है। यह अनेकों ब्रह्माण्डों की आधार और परा प्रकृति है।

यह शुद्ध विद्या के स्वरूप वाली, तीन शक्तियों से युक्त, करुणात्मिका, आनन्दामृत के रूप वाली एवं शुद्ध धर्म के स्वरूप वाली है। जिस इसको समस्त जगतों की धात्री को मैं अपनी लीला ही से धारण किया करता हूँ। इस पर ब्रह्म के स्वरूप वाली को मैं विश्व की रक्षा करने के ही लिये धारण किया करता हूँ। इस त्रिलोकी में जो भी तीर्थ हैं तथा पुण्य के क्षेत्र हैं,सर्वत्र सब जो धर्म हैं तथा दक्षिणा से युक्त यज्ञ है और हे विष्णो! समस्त जो तप हैं तथा अंगों के सहित सब चारों प्रकार के वेद हैं, मैं और आप और कोई भी, देवताओं के गण जो हैं, समस्त पुरुषार्थ तथा विविध शक्तियाँ ये सभी इस गङ्गा में सूक्ष्म रूप से संस्थित रहा करते हैं। जो पुरुष श्री गङ्गा देवी का सेवन करता है उसने सम्पूर्ण योग के नियमों को प्राप्त कर लिया है और उस सभी तपों का भी तपन कर लिया है तथा वह सभी दानों का प्रदाता होगया है ॥७-१४॥

सर्वे वर्णाश्रमेभ्यश्च वेदविद्भ्यश्च वै तथा ।
शास्त्रार्थपारगेभ्यश्च गङ्गास्नायी विशिष्यते ॥१५
मनोवाक्कायजैर्दोषैर्दुष्टो बहुविधैरपि ।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतः पुरुषो नात्र संशयः ॥१६
कृते सर्वत्र तीर्थानि त्रेतायां पुष्करम्परम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्र कलौ गङ्गैव केवलम् ॥१७
पूर्वजन्मान्तराभ्यासवासनावशतो हरे ! ।
गङ्गातीरे निवास स्यान्मदनुग्रहत परात् ॥१८
ध्यान कृते मोक्षहेतुस्त्रेतायां तच्चवै तप. ।
द्वापरे तद्द्वय यज्ञा कलौ गङ्गैव केवलम् ॥१९
यो देहपतनाद्यावद्गङ्गातीर न मुञ्चति ।
स हि वेदान्त विद्योगी ब्रह्मचर्य व्रतो सदा ॥२०
कलौ कलुषचित्तानां परद्रव्यरतात्मनाम् ।
विधिहीनक्रियाणाञ्च गतिर्गङ्गा विनान्नहि ॥२१

समस्त वर्णों और सभी आश्रमों से तथा वेदों के वेत्ताओं से और शास्त्रों के पूर्ण पारगामी विद्वानों से भी गंगा में स्नान करने वाला पुरुष

विशिष्ट हुआ करता है ॥१५॥ मन-वाणी और काया से समुत्पन्न दोषों से जो कि बहुत से प्रकार के होते हैं दुष्ट पुरुष भी गंगा का दर्शन प्राप्त करके ही पवित्र हो जाया करता है—ऐसा केवल गंगा के दर्शन मात्र का प्रभाव होता है–इसमे लेशमात्र भी संशय नहीं है। कृतयुग में सर्वत्र तीर्थ है–त्रेता युग में पुष्कर ही परम तीर्थ है। द्वापर युग में कुरुक्षेत्र सर्व शिरोमणि तीर्थ माना गया था और अब कलियुग में केवल गंगा ही सर्वोपरि विराजमान प्रमुख तीर्थ है। हे हरे! पूर्व जन्मों के अभ्यास से जो वासना है उसी के वश में यदि गंगा के तट पर निवास प्राप्त हो जावे तो यह मेरा ही परम अनुग्रह है। कृतयुग (सत्ययुग) में ध्यान की ही मुख्यता थी। त्रेता में तपश्चर्या प्रधान मानी गई थी। द्वापर में ये दोनो ही तथा यज्ञो का यजन प्रधान माने गये थे और अब इस घोर कलियुग में जब कि ध्यान तप और यज्ञों का होना ही नितान्त आवश्यक सा है केवल इस उद्धार के लिये गंगा ही सब कुछ है। जो मनुष्य देह के पतन होने के समय तक गंगा के तट का त्याग नहीं करता है वह वेदान्त का ज्ञाता योगी है और सदा ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करने वाला है। कलियुग में कलुषित चित्त वाले तथा पराये धन के पाने में रति रखने वाले–विधि तथा क्रिया से सर्वथा हीन पुरुषों की केवल एक गंगा ही उद्धार करने वाली होती है। यह न हो तो ऐसे पुरुषों का कल्याण हो नहीं हो सकता है ॥१६-२१॥

अलक्ष्मी. कालकर्णी च दु.स्वप्नो दुर्विचिन्तितम् ।
गंगा गंगेतिजपनात्तानि नोपविशन्ति हि ॥२२
गंगा हि सर्वभूतानामिहामुत्र फलप्रदा ।
भावानुरूपतो विष्णो सदा सर्वजगद्धिता ॥२३
यज्ञदानतपोयोग जपाः सनियमायमाः ।
गंगासेवासहस्रांशं न लभन्ते कलौ हरे ! ॥२४
किमष्टांगेन योगेन किं तपोभिः किमध्वरैः ।
वास एव हि गंगायां ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ॥२५

अपि दूरस्थितस्यापि गंगामाहात्म्य वेदिनः ।
अयोग्यस्यापि गोविन्द ! भक्त्या गगा प्रसीदति ॥२६

श्रद्धाधर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धाज्ञानम्परन्तपः ।
श्रद्धास्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धया सा प्रसीदति ॥२७

अज्ञानरागलोभाद्यैः पुंसा संम्मूढचेतसाम् ।
श्रद्धा न जायते धर्मे गंगायां च विशेषतः ॥२८

अलक्ष्मी—कालकर्णी—दुःस्वप्न—दुर्विचिन्तन अर्थात् बुरे विचार "गङ्गा-गङ्गा" इसके नामों का इस प्रकार से जाप करने से ये सब समीप में ही नहीं ठहरा करते हैं। अर्थात् इनका कोई भी बुरा प्रभाव नहीं होता है। यह गङ्गा समस्त प्राणियों को इस लोक मे और परलोक में दोनों ही जगह पर फल प्रदान करने वाली होती है। हे विष्णो ! भावों के अनुसार यह सदा ही सम्पूर्ण जगत् के हितों के करने वाली है। हे हरे ! यज्ञ—दान—तप—योग-जप—नियम और यम ये सब गगा के सेवन के सहस्र अंश के बराबर भी इस कलियुग मे नहीं होते हैं। इस आठों अंगों वाले योग के साधन से क्या लाभ है ? अत्युग्र तपश्चर्याओं के करने से भी क्या प्रयोजन है तथा यज्ञों के यजन से भी क्या सिद्धि होती है। इन सबके द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है जो कि आत्मोद्धार का हेतु है सो वह ब्रह्मज्ञान तो गङ्गा तट पर निवास करते ही हो जाया करता है क्योंकि यह निवास ही उसका कारण होता है। हे गोविन्द ! गगा नदी से बहुत दूर मे भी स्थित हो तथा गगा के माहात्म्य का ज्ञाता हो और सभी प्रकार से योग्यता से हीन भी हो तो भी गगा अपनी भक्ति से ही प्रसन्न हो जाया करती है और उस भक्त का कल्याण किया करती है। यह श्रद्धा का भाव ही सर्वोपरि धर्म होता है। यह परम सूक्ष्म है। श्रद्धा ही ज्ञान है और परम तप है। श्रद्धा का बड़ा महत्व है। यही स्वर्ग है और मोक्ष भी है। इसी श्रद्धा से यह गगा प्रसन्न हो जाती है। अज्ञान (ज्ञान का सर्वथा न होना)—राग अर्थात् सांसारिक जड़ चेतन वस्तुओं मे ममत्वपूर्ण आसक्ति—लोभ आदि से

सम्मूढ चित्त वाले पुरुषों की श्रद्धा कभी भी धर्म में नहीं हुआ करती है तथा गङ्गा में तो विशेष रूप से नहीं हुआ करती है ॥२२-२८॥

बहिः स्थितं जलं यद्वन्नारिकेलान्तरे स्थितम् ।
तथा ब्रह्माण्डबाह्यस्थं परब्रह्माम्बु जाह्नवी ॥२९
गंगालाभात्परो लाभः क्वचिदन्योन विद्यते ।
तस्माद्गंगामुपासीत गंगैव परमः पुमान् ॥३०
शक्तस्य पण्डितस्यापि गुणिनो दानशीलिनः ।
गंगास्नानविहीनस्य हरे ! जन्म निरर्थकम् ॥३१
वृथा कुलं वृथा विद्या वृथा यज्ञा वृथा तपः ।
वृथा दानानि तस्येह कलौ गंगा न यो भजेत् ॥३२
गुणवत्पात्रपूजायान स्यात्तादृश फलम् ।
यथा गंगाजलस्नान पूजने विधिना फलम् ॥३३
ममतेजोग्निगर्भे यं मम वीर्यातिसवृता ।
दाहिका सर्वदोषाणां सर्वपापविनाशिनी ॥३४
स्मरणादेव गंगायाः पापसङ्घात पञ्जरम् ।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥३५

बाहिर में स्थित यह गंगा का जल उसी भाँति है जिस तरह से नारियल के अन्दर जल रहा करता है । उसी प्रकार से इस ब्रह्माण्ड के बाहिर में स्थित यह परब्रह्मरूपी जल वाली गंगा है । गंगा की प्राप्ति के समान अन्य कोई भी परम लाभ संसार में नहीं है । इसीलिए गंगा की उपासना अवश्य ही करनी चाहिए । यह गंगा ही साक्षात् परम पुरुष है । समुच्चपदाधिरूढ इन्द्र ही क्यों न हो—चाहे महान पण्डित हो—अनेक सद्गुणों से युक्त भी हो और दान देने के स्वभाव वाला भी हो यदि ऐसा भी कोई गंगा के स्नान से हीन है तो उसका जन्म ही निरर्थक हो जाता है । जो इस कलियुग में गंगा का सेवन नहीं किया करता है उसको कुल-विद्या—यज्ञ - तप और दान सभी वृथा हैं । किसी भी गुण गण सम्पन्न पात्र की पूजा में भी उस प्रकार का फल नहीं होता है जैसा कि विधि के सहित गंगा के जल में स्नान और उसके पूजन में फल प्राप्त हुआ करता

है। यह गंगा मेरे तेज की अग्नि का गर्भरूप है और यह मेरे ही वीर्य से प्रति सम्भूत है। यह सभी दोषों के दाह करने वाली और समस्त पापों को विनाश कर देने वाली है। केवल गंगा का स्मरण ही करने से पापों के समान का पञ्जर सैकड़ों टुकड़े होकर भिन्न हो जाया करता है जिस तरह से वज्रपात के होने से पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाया करते हैं ॥२६-३५॥

गंगा गच्छति यस्त्वेको यस्तु भक्त्यानुमोदयेत् ।
तयोस्तुल्य फलं प्राहुर्भक्तिरेवात्र कारणम् ॥३६
गच्छंस्तिष्ठञ्जपन्ध्यायन् भुञ्जञ्जाग्रत स्वपन्वदन् ।
यः स्मरेत्सततं गंगां स हि मुच्येत बन्धनात् ॥३७
पितृनुद्दिश्य यो भक्त्या पायसं मधुसंयुतम् ।
गुडसर्पिस्तिलैः सार्धं गंगाम्भसि विनिक्षिपेत् ॥३८
तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्य वर्षशतं हरे ।
यच्छन्ति विविधान्कामान्परितुष्टाः पितामहाः ॥३९
लिंगे सम्पूजिते सर्वमर्चितस्याज्जगत्त्रया ।
गंगास्नानेन लभते सर्वतीर्थफलं तथा ॥४०
गंगाया तु नरः स्नात्वायोलिंगं नित्यमर्चति ।
एकेन जन्मनमुक्तिं परां प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥४१
अग्निहोत्रच यज्ञाश्च व्रतदान तपांसि च ।
गंगाया लिंगपूजाया कोटयंशेनापिनोसमाः ॥४२
गंगां गन्तुं विनिश्चित्य कृत्वा श्राद्धादिकं गृहे ।
स्थितस्य सम्यक्सन्तुष्टास्तस्य नन्दन्ति पूर्वजाः ॥४३

एक तो गंगा नदी में स्नान करने को जाया करता है और एक भक्ति की भावना से उसका अनुमोदन करता है उन दोनों का समान ही पुण्य फल हुआ करता है क्योंकि यहाँ पर भक्ति ही एक मुख्य कारण होता है। गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—नाम का जाप करते हुए—ध्यान करते हुए—भोजन करते हुए—जागते—सोते और बातचीत करते हुए जो निरन्तर गंगा का स्मरण किया करता है वह सांसारिक बन्धन से

मुक्त हो जाया करता है ॥३६-३७॥ अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर जो कोई भी पुरुष भक्तिपूर्वक मधु से समन्वित पायस गुड़-घृत और तिलों से युक्त करके गंगा के जल में निक्षिप्त किया करता है हे हरे ! उसके पितृगण सौ वर्ष तक तृप्त हो जाया करते हैं। पितामह आदि जब पूर्णतया परितुष्ट हो जाते हैं तो अनेक प्रकार की कामनाओं को पूर्ण कर दिया करते हैं। शिव लिंग का पूजन कर लेने पर जगत् में सभी का समर्चन हो जाया करता है जिस प्रकार से गंगा केवल स्नान कर लेने से समस्त तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त हो जाया करता है। जो मनुष्य नित्य ही गंगा में स्नान करके शिवलिंग का समर्चन किया करता है वह एक ही जन्म में परा मुक्ति का लाभ निश्चय ही प्राप्त कर लिया करता है। अग्निहोत्र-यज्ञ-व्रत-दान-तप ये सब गंगा में स्नान और शिव लिंग का अर्चन के करोड़ अंश के बराबर भी नहीं हुआ करते हैं। गंगा पर जाने का निश्चय करके घर में श्राद्धादिक करके सम्यक रीति से संकल्प करके जो निकल पड़ता है उसके पूर्व उसका बड़ा भारी अभिनन्दन किया करते हैं ॥३८-४३॥

पापानि च रुदन्त्याशु हा नष्टास्यामहत्यलम् ।
लोभमोहादिभि. सार्द्धं मन्त्रयन्ति पुनः पुन. ॥४४
यथानग मायास्येष तथा विघ्नं प्रकुर्महे ।
गंगागतोऽयमस्माकं न उच्छित्ति विनाशयति ॥४५
गृहाद्गंगावगाहार्थं गच्छतस्तु पदे पदे ।
निराशानि व्रजन्त्येव पापान्यस्य शरीरतः ॥४६
पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैस्त्यक्त्वा लोभादिकं हरे ।
व्युदस्य सर्वविघ्नौघान् गंगां प्राप्नोति पुण्यवान् ॥४७
अनुषंगेन मौल्येन वाणिज्येनापि सेवया ।
कामासक्तोऽपि वा मर्त्यो गंगास्नातो दिवं व्रजेत् ॥४८
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनोऽहि यथा दहेत् ।
अनिच्छयापि संस्नाता गंगा पापं तथा दहेत् ॥४९

अति शीघ्र पापों का हनन कर देने वाले गंगा में स्नान करने वाले पुरुष के पाप रुदन किया करते हैं कि अब हम कहाँ पर जाकर निवास करें ये । वे लोभ-मोह और मद आदि के साथ बारम्बार मन्त्रणा किया करते हैं । वे यह भी सोचते हैं हम सब ऐसा कोई विघ्न उपस्थित कर देवें कि यह गंगा पर न जावे और गंगा पर गया हुआ यह पुरुष हमारा फिर उच्छेद नहीं करेगा । घर से गंगा के अवगाहन करने के लिए गमन करने वाले पुरुष के कदम-कदम में इसके शरीर से निराश होकर पाप भी गमन कर भागने लग जाते है । हे हरे ! पूर्व जन्मों में किये हुए पुण्यों के ही प्रभाव से लोभादिक का त्याग करके और समस्त विघ्नों के समूहों को हटाकर जो परम पुण्यात्मा पुरुष होता है वही गंगा पर पहुँचकर प्राप्त हुआ करता है । प्रसंग से—अनुषंग वश से—वाणिज्य से—सेवा से अथवा कामासक्त भी पुरुष गंगा में जो स्नान कर लेता है वह निश्चय ही दिवलोक को प्राप्त हो जाया करता है । बिना इच्छा के भी अग्नि का स्पर्श हो जाने पर वह जला दिया करता है वैसे ही बिना इच्छा भी गंगा में स्नान करने वालों के पापों को गंगा भस्म कर दिया करती है क्योंकि उसका यह प्रभाव अचूक होता है ।।४४-४६।।

तावद् भ्रमति संसारे यावद् गंगां न सेवते।
संसेव्य गंगां नो जन्तुर्भवक्लेशं प्रपश्यति ।।५०
यो गंगाम्भसिनिस्नातो भक्त्या सत्यक्तसंशयः ।
मनुष्यचर्मणानद्ध स देवोनात्र संशयः ।।५१
गंगास्नानार्थं मुद्युक्तो मध्येमार्गं मृतो यदि ।
गंगास्नानफलं सोऽपि तदाप्नोति संशयः ।।५२
माहात्म्यं ये च गंगायाः शृण्वन्ति च पठन्ति च ।
तेप्यशेषैर्महापापैर्मुच्यन्ते नाऽत्र संशयः ।।५३
दुर्बुद्धयो दुराचारा हैतुका बहुसंशयाः ।
पश्यन्ति मोहिता विष्णो गंगामन्यनदीमिव ।।५४
जन्मान्तरकृतैर्दानैस्तपोभिर्नियमैर्मखैः ।
इह जन्मनि गंगायां नृणां भक्तिः प्रजायते ।।५५

गंगाभक्तिमतां महेन्द्रादि पुरेषु च।
हर्म्याणि रम्यभोगानि निर्मितानि स्वयम्भुवा ॥५६

यह जन्तु इस संसार में तभी तक भ्रमण करता रहता है जब तक यह भागीरथी श्री गंगा का सेवन नहीं करता है। गंगा का भली भाँति सेवन करके फिर यह जन्तु संसार के क्लेश को कभी नहीं देखता है। जो भक्ति की भावना से भले प्रकार से संशय का त्याग करके भी गंगा के जल में स्नान कर चुका है वह मनुष्य के चमड़े से ढका हुआ साक्षात् देवता ही हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। गंगा के स्नान करने के लिये उद्युक्त हो और मध्य में ही मार्ग में मृत्युगत हो जावे तो वह भी गंगा के स्नान का पूर्ण फल प्राप्त कर लिया करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो लोग गंगा के इस माहात्म्य का पाठ किया करते हैं तथा श्रवण भी कर लिया करते हैं वे लोग भी अपने समस्त किए हुए पापों से मुक्त हो जाया करते हैं—इसमें भी कुछ संशय नहीं है। हे विप्रो! दुष्ट बुद्धि वाले–दूषित आचार वाले–हैतुक और बहुत अधिक संशय करने वाले मनुष्य इस गंगा को मोहित होकर अन्य नदी के ही भाँति देखा करते हैं। मनुष्यों की श्रद्धा में भक्ति भी इस जन्म में तभी हुआ करती है जब उनके पूर्व जन्मों में कुछ किए हुए दान–तप–नियम और व्रत हुआ करते हैं। गंगादेवी में भक्ति भाव रखने वाले मनुष्यों के लिए महेन्द्र आदि के पुरों में स्वयम्भू भगवान् ने बड़े २ सुन्दर हर्म्य और सुरम्य पुरों का निर्माण कर दिया है ॥५०-५६॥

सिद्धय. सिद्धिलिंगानि स्वयंलिंगान्यनेकशः।
प्रासादा रत्नरचिताश्चिन्तामणिगणा अपि ॥५७
गंगाजलान्तस्तिष्ठन्ति कलिकल्मषभीतितः।
अत एव हि संसेव्या कलौ गंगेष्टसिद्धिदा ॥५८
सूर्योदये तमांसीव वज्रपातभयान्नगाः।
तार्क्ष्येक्षणाद्यथा सर्पा मेघा वाताहता इव ॥५९
तत्त्वज्ञानाद्यथामोहः सिंहं दृष्ट्वा यथामृगाः।
तथा सर्वाणि पापानि यान्ति गंगे क्षणात्क्षयम् ॥६०

दिव्यौषधैर्यथारोगाल्लोभेन च यथागुणाः ।
यथाग्रीष्मोष्मसम्पत्तिरगाधह्रदमज्जनात् ॥६१
तूलशैल स्फुलिंगेन यथा नश्यति तत्क्षणात् ।
तथा दोषाः प्रणश्यन्ति गंगाम्भः स्पर्शनाद् ध्रुवम् ।।६२
क्रोधेन च तपोयद्वत्कामेन च यथा मति- ।
अनयेन यथा लक्ष्मीर्विद्यमानेन वै यथा ।।६३
दम्भकौटिल्यमायाभिर्यथा धर्मो विनश्यति ।
तथा नश्यन्ति पापानि गंगाया दर्शनेन तु ॥६४

सिद्धियाँ–सिद्धियों के चिह्न–घनेक स्पर्श लिंग प्रासाद जो रत्नों से रचित हैं एवं चिन्तामणि गण भी ये सभी कलियुग के कल्मषों से भीत होकर गंगा के ही जल के अन्दर स्थित रहा करते हैं। अतएव अभीष्टों की सिद्धियों के प्रदान करने वाली गंगा का इस कलियुग में भली भाँति सेवन करना ही चाहिये ॥५७-६० । सूर्योदय के होने पर अन्धकारों की भाँति–वज्रपात के भय से पर्वतों के समान—गरुड़ के भय से सर्पों के सदृश–वायुओं से आहत मेघों के तुल्य–जैसे तत्व ज्ञान से मोह और सिंह को देखकर मृग दूर भाग जाया करते हैं ठीक उसी प्रकार से समस्त पाप भी गंगा के दर्शन मात्र करने से क्षण भर में ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं। जिस तरह से दिव्य औषधियों से रोग–लोभ से सद्गुण और ग्रीष्म की ऊष्म सम्पत्ति किसी अगाध ह्रद के जल में मज्जन करने से नष्ट हो जाया करती हैं। तूलका (रुई का विशाल ढेर जो एक पर्वत के ही समान होता है अग्नि के एक ही स्फुलिंग (चिंगारी) से क्षण भर में नष्ट हो जाया करता है उसी तरह से गंगा के जल के स्पर्श मात्र करने ही से एक ही क्षण में निश्चय ही समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं। क्रोध करने से जैसे तप और काम से मति–अनय के विद्यमान होने से लक्ष्मी –दम्भ और कौटिल्य की माया से धर्म नष्ट हो जाया करता है ठीक उसी भाँति गंगा के दर्शन से ही सब पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥६१-६४॥

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम् ।
गंगां य सेवते सोऽत्र बुद्धेः पारपरगतः ॥६५

विधूतपापा ये मर्त्याः परंज्योतिः स्वरूपिणीम् ।
सहस्रसूर्यप्रतिमां गंगां पश्यन्ति ते भुवि ॥६६

साधारणाम्भसा पूर्णां साधारण नदीमिव ।
पश्यन्ति नास्तिका गंगां पापोपहतलोचना ॥६७

संसारमोचकश्चाहं जनानामनुकम्पया ।
गंगातरंगरूपेण सोपानं निर्ममे दिवः ॥६८

सर्वं एव शुभः कालः सर्वदेशास्तथाशुभः ।
सर्वो जनो दानपात्रं श्रीमती जाह्नवी तटे ॥६९
यथाऽश्वमेधो यज्ञानां नगानां हिमवान्यथा ।
व्रतानां च यथा सत्यं दानानामभयं यथा ॥७०

इस परम दुर्लभ मनुष्य का जीवन प्राप्त करके जो कि बिजली के समान अतीव चञ्चल है जो गंगा का सदा सेवन किया करता है वह ही मनुष्य सचेत है और बुद्धि के पार वार को प्राप्त हुआ अर्थात् बहुत ही बुद्धिमान होता है। जो मनुष्य अपने पापों का विधूनन कर देते हैं वे ही मनुष्य इस भूलोक मे परम ज्योति स्वरूपिणी और सहस्रों सूर्यों के प्रतिमा वाली इस गंगा का दर्शन प्राप्त किया करते हैं। पापों से उपहत नेत्रों वाले नास्तिक लोग ही इस गंगा को साधारण जल से परिपूर्ण एक मामूली नदी की ही भांति देखा या समझा करते हैं। जनों के ऊपर अनुकम्पा करके मैं संसार से मोचन कराने वाला हूं। और मैंने गंगा के तरंगों के स्वरूप मे ही स्वर्गलोक में जाने के लिए सीढ़ियों का निर्माण कर दिया है। श्री मती गंगा के तट पर सभी काल परम शुभ होता है तथा सभी देश शुभकारी हैं और वहाँ पर सभी जन दान के योग्य पात्र हुआ करते हैं। जिस तरह समस्त यज्ञों मे अश्वमेध समस्त पर्वतों मे हिमवान्—सब व्रतों में सत्य का व्रत सम्पूर्ण दानों में अभय का दान उत्तम माना जाता है ॥६६-७०॥

प्राणायामश्च तपसां मन्त्राणां प्रणवो यथा ।
धर्माणामप्यहिंसा च काम्यानां श्रीर्यथा वरा ॥७१

यथात्मविद्याविद्याना स्त्रीणां गौरी यथोत्तमा ।
सर्वदेवगणानाञ्च यथा त्व पुरुषोत्तम ॥७२
सर्वेषामेव पात्राणां शिवभक्तो यथा वरा ।
तथा सर्वेषु तीर्थेषु गंगा तीर्थं विशिष्यते ॥७३
हरे ! यश्चावयोर्भेदं न करोति महामतिः ।
शिवभक्त सविज्ञेयो महापाशुपतश्च सः ॥७४
पापपांसुमहावात्या पापद्रुम कुठारिका ।
पापेन्धनदवाग्निश्च गंगेयं पुण्यवाहिनी ॥७५
नानारूपाश्च पितरा गाथा गायन्ति सर्वदा ।
अपि कश्चित्कुलेऽस्माकं गंगास्नायी भविष्यति ॥७६
देवर्षीन्परिसन्तर्प्य दीनानाथांश्च दु खितान् ।
श्रद्धया विधिना स्नात्वा दास्यते सलिलाञ्जलिम् ॥७७
अपि न स कुले भूयाच्छिवे विष्णौ च साम्यदृक् ।
तदालयकरोभक्त्या तस्य सम्मार्जनादिकृत् ॥७८

जिस तरह से समस्त तपो मे प्राणायाम, सब मन्त्रो मे प्रणव, सब धर्मों मे अहिंसा, सब काम्य पदार्थों मे वरा श्री सर्वोत्तम मानी जाती है। जैसे सब विद्याओ मे आत्म विद्या, स्त्रियो मे गौरी उत्तम होती है। हे पुरुषोत्तम ! समस्त देवो मे जैसे आप सर्वश्रेष्ठ देव हैं समस्त पात्रों में भगवान् शिव का भक्त श्रेष्ठ होता है। उसी प्रकार से सम्पूर्ण तीर्थों में गङ्गा का तीर्थ विशिष्ट तीर्थ होता है। हे हरे ! जो महा मति पुरुष हम और आप इन दोनो मे भेद का भाव नही रखता है वही शिव का भक्त जानना चाहिए और वही महा पाशुपत होता है। पाप रूपी पांसु (धूलि कण) के लिये महा वात्या अर्थात् जोरदार आँधी, पापो के द्रुमों को काटने वाली कुल्हाडी तथा पाप रूपी ईंधन के लिये दावाग्नि यह परम पुण्य वाहिनी गंगा है। अनेक रूपो वाले पितृगण सर्वदा गाथा का गायन किया करते हैं कि हमारे भी कुल मे कोई ऐसा सुत का परम भक्त गंगा मे स्नान करने वाला जन्म लेगा जो देवो को और ऋषियो को सन्तृप्त करे दीन, अनाथ और दु खियो को श्रद्धा से विधि पूर्वक गंगा में स्नान

करके जलाञ्जलि देगा ? वे पितर लोग यह कहा करते हैं कि कभी कोई ऐसा भी उत्पन्न होगा जो शिव तथा विष्णु भगवान् में समान भावना रखे तथा भक्ति से उनके मन्दिर का निर्माण करावे और उस देवालय के सम्मार्जन आदि करे ॥७१-७८॥

अकामोयासकामोवातिर्यग्योनिगतोऽपिवा ।
गङ्गायां यो मृतो मर्त्यो नरकंस न पश्यति ॥७९
तीर्थमन्यत्प्रशंसन्ति गङ्गातीरेस्थिताश्च ये ।
गङ्गां न बहुमन्यन्ते ते स्युर्निरयगामिनः ॥८०
मां चास्या चैवयोऽद्विष्टि गङ्गां च पुण्यावम ।
स्वकीयं पुरुषं सार्धं स घोरं नरकं व्रजेत् ॥८१
षष्टिनागसहस्राणि गङ्गां रक्षन्ति सर्वदा ।
अभक्तानाञ्च पापानां वासेविघ्नम्प्रकुर्वते ॥८२
कामक्रोधमहामोह लोभादिनिशितं शरैः ।
घ्नन्ति तेषां मनस्तान स्थितिञ्चापनयन्ति च ॥८३
गङ्गां समाश्रमेयस्तु स मुनिः स च पण्डितः ।
कृतकृत्यः सविज्ञेयः पुरुषार्थ चतुष्टये ॥८४

किसी भी कामना से युक्त हो अथवा कामना से रहित हो या किसी भी तिर्यक् योनि में रहने वाला हो जो प्राणी गङ्गा तट के समीप में अपने प्राणों का परित्याग किया करता है वह फिर कभी भी नरक का मुख नहीं देखा करता है। जो मनुष्य गंगा के तीर पर स्थित होकर अन्य तीर्थों की प्रशंसा किया करते हैं और गंगा को विशेष महत्त्व वाली नहीं मानते हैं वे निश्चय ही नरक के गामी हुआ करते हैं। जो कोई मुझ को या आपको द्वेष-भाव से देखता है वह पुरुषों में महान् अधम ही हुआ करता है। ऐसा प्राणी अपने पितरों के सहित अतीव घोर नरक में गमन किया करता है। साठ सहस्र नाग सर्वदा गंगा की रक्षा किया करते हैं और जो भक्त नहीं होते हैं या पापी होते हैं उनके वहाँ पर निवास करने में महान् विघ्नों को किया करते हैं। काम, क्रोध, महा मोह और लोभ आदि पैने शरों से उनके मन का हनन किया करते हैं और उनकी

वहाँ पर स्थिति का अपनयन किया करते हैं। जो गंगा का समाश्रय ग्रहण किया करता है वह मुनि है और महान् पंडित है। उसको चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिये सफल ही समझना चाहिए ॥७९-८४॥

गङ्गायाञ्च सकृत्स्नातो हयमेधफलं लभेत् ।
तर्पयञ्श्च पितृं स्तत्र तारयेन्नरकार्णवात् ॥८५
नैरन्तर्येण गंगायामासं यः स्नाति पुण्यवान् ।
शक्रलोके स वसति यावच्छक्रः स पूर्वजः ॥८६
अब्दं यः स्नाति गंगायां नैरन्तर्येण पुण्यभाक् ।
विष्णोर्लोकं समासाद्य स सुखं संवसेन्नरः ॥८७
गंगायां स्नाति यो मर्त्यो यावज्जीवं दिने दिने ।
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो देहान्ते मुक्त एव स. ॥८८
तिथिनक्षत्रपर्वादि नापेक्ष्य जाह्नवी जले ।
स्नानमात्रेण गंगायां सञ्चिताघं विनश्यति ॥८९
पण्डितोऽपि स मूर्खः स्याच्छक्तियुक्तोऽप्यशक्तिकः ।
यस्तु भागीरथी तीरं सुखसेव्यं न संश्रयेत् ॥९०
किं वाऽऽयुपाऽप्यरोगेण विकासिन्याऽपि किं श्रिया ।
किंवा बुद्धया निर्मलया यदि गंगां न सेवते ॥९१

गंगा में स्नान करने वाला पुरुष अश्वमेध यज्ञ के करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। वहाँ पर पितृ गणों का तर्पण करता हुआ उनको नरकों के सागर से तार दिया करता है। जो निरन्तर रूप से पुण्यात्मा एक मास पर्यन्त गंगा का स्नान किया करता है वह इन्द्र लोक में जा कर जब तक वह इन्द्र वहाँ पर रहता है निवास किया करता है। जो पुण्यात्मा एक वर्ष तक निरन्तर गंगा के पवित्र जल में स्नान करता है वह विष्णुलोक में जाकर सुख पूर्वक वहाँ पर निवास किया करता है ॥८५-८७॥ जो मनुष्य जब तक जीवित रहता है तब तक नित्य प्रति गंगा में स्नान करता है उसको जीवन्मुक्त ही समझना चाहिए और देह के अन्त होने पर वह मुक्त हो जाया करता है। गंगा के जल में तिथि नक्षत्र और पर्वादि की कभी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। गंगा में तो केवल स्नान से

ही मनुष्य संचित अघों का विनाश कर दिया करता है। वह पण्डित होते हुए भी महान् मूर्ख ही है और अपनी शक्ति से युक्त होने पर भी वह शक्ति शून्य ही है जो सुख से सेवन करने के योग्य भागीरथी के तट का समाश्रय नहीं लिया करता है। परम स्वस्थ रोग रहित आयु से क्या लाभ है और विकास से परिपूर्ण श्री से भी क्या प्रयोजन है तथा सत् विमल बुद्धि से क्या सिद्धि है यदि मनुष्य ने अपने जीवन में गंगा का सेवन नहीं किया है ॥८८-९२॥

५१—वाराणसीमहिमावर्णन

शृणुष्वागस्त्य महाभाग राजा भगीरथः ।
आराध्य श्रीमहादेवमुद्दिधीर्षुः पितामहान् ॥१
ब्रह्मशापविनिर्दग्धान्सर्वान् राजर्षिसत्तमः ।
महता तपसा भूमिमानिनाय त्रिवर्त्मगाम् ॥२
त्रयाणामपि लोकानां हिताय महते नृप ।
समानैषीत्सवेगं या यत्राऽऽस्ते मणिकर्णिका ॥३
आनन्दकानने शम्भोश्चक्रपुष्करिणीहृदे ।
परब्रह्मैकसुखेन लीलामोक्षसमर्पकम् ॥४
प्रापयामास तीर्थं देवोऽपि पुरतश्चरन् ।
निर्वाणकाशनाद्यत्र काशीति प्रथिता पुरी ॥५
अविमुक्तं महाक्षेत्रं न मुक्तं शम्भुना क्वचित् ।
प्रागेव हि मुनेऽनर्घ्यं आस्य जाम्बूनदस्वयम् ॥६
पुनर्वारिनिरेणापि हीरेणपक्षिसंगतम् ।
चक्रपुष्करिणीतीर्थं प्रागेव श्रेयसम्पदम् ॥७

भगवान् श्री स्कन्द ने कहा—हे महाभाग अगस्त्य ! अब आप श्रवण कीजिए यह राजा भगीरथ ने अपने पितामहों का उद्धार करने की इच्छा वाला होते हुए श्री महादेव की आराधना की थी। राजर्षियों में परम श्रेष्ठ भगीरथ ने अपने पूर्वजों का, जोकि सभी ब्रह्म शाप से विशेष निर्दग्ध

हो गये थे, उद्धार करने का निश्चय किया था और अपनी महती तपस्या से वह त्रिवर्ग गामिनी गंगा को भूमण्डल मे ले आये थे। तीनों लोकों के हित की महती कामना से राजा वहाँ से गंगा को लाये थे जहाँ पर मणिकर्णिका थी। भगवान् शम्भु के आनन्द कानन, हरि का चक्र पुष्करिणी, पर यहाँ के सुक्षेत्र जो कि सोना ही से मोक्ष का सम्पर्क था दिलीप के वंशज राजा ने आगे आगे चलते हुए उस गंगा को प्राप्त करा दिया था। जहाँ पर निर्वाण के काशन से यह पुरी 'काशी'—इस नाम से प्रथित हुई थी। यह अविमुक्त महा क्षेत्र इसीलिये कहलाया गया है कि भगवान् शम्भु ने इसको किसी भी दशा में परित्यक्त नहीं किया था। हे मुने ! पहिले ही परम अनर्घ्य जात्य जाम्बूनद स्वयं हुआ था। फिर मरिवर हीरे से यदि यह खचित होगया तो अत्युत्तम बन गया है। यह चक्र पुष्करिणी तीर्थ पहिले ही श्रेयों के प्रदान करने वाला था ॥१-७॥

तत श्रेष्ठतरं शम्भोर्मणिश्रवणभूषणात् ।
आनन्दकानने तस्मिन्नविमुक्ते शिवालये ॥८
प्रागेवमुक्ति संसिद्धा गंगासंगात्ततोधिका ।
यदाप्रभृतिसागंगामणिकर्ण्यांसमागता ॥९
तदा प्रभृतितत्क्षेत्र दुष्प्रापन्त्रिदशैरपि ।
कृत्वाकर्माण्यनेकानिकल्याणानीतराणिवा ॥१०
तानि क्षणात्समुत्क्षिप्य काशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।
तस्यां वेदान्तवेद्यस्य निदिध्यासनतो विना ॥११
विना साङ्ख्येन योगेन काश्यां संस्थोऽमृतो भवेत् ।
कर्मनिर्मूलनवता विना ज्ञानेन कुम्भज ॥ १२
शशिमौलिप्रसादेन काशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।
यत्नतोऽयत्नतो वापि कालात्त्यक्त्वा कलेवरम् ॥१३
तारकस्योपदेशेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।
अनेकजन्मसंसिद्धैर्बद्धोऽपिप्राक्तनैर्गुणैः ॥१४
असिनम्भेदयोगेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।
देहत्यागोऽत्रवैदानदेहत्यागोऽत्रवैतपः ॥१५

इससे भी शम्भु के मणि श्रवण भूषण से वह अधिक श्रेष्ठ हो गया था। उस शिव का आलय अविमुक्ति आनन्द कानन में पहिले ही मुक्ति प्रसिद्धि थी ही। फिर गंगा के संग होने से और भी अधिक हो गई थी। अब से लेकर वह क्षेत्र वेदों के द्वारा भी दुष्प्राप हो गया है। अनेक कल्याण कारी कार्य तथा अन्य कार्य करके उन सब को क्षण भर समुत्क्षिप्त करके काशी संस्थित अमृत हो जाता है। उन काशी में वेदान्त से जानने के योग्य के निदिध्यासन के बिना ही तथा सांख्य और योग के बिना काशी में संस्थित होने वाला अमृत हो जाता है। हे कुम्भज! क्योंकि निर्मूल करने वाले ज्ञान के बिना भगवान् शशिमौलि (शिव) के प्रसाद से काशी में निवास करने वाला अमृत हो जाता है। यत्न से अथवा अयत्न से काल से कलेवर को त्याग करके तारक के उपदेश से काशी में संस्थित होने वाला अमृत हो जाया करता है। अनेक जन्मों में सञ्चित प्राकृत गुणों से बद्ध भी असि सम्भेद के योग से काशी पुरी में संस्थिति करने वाला पुरुष अमृत हो जाता है। यहाँ पर अपने देह का त्याग कर देना ही दान होता है और देह-त्याग ही तप है। यहाँ पुरी में रहकर देह का छोड़ देना ही बड़ा भारी योगाभ्यास है जो कि निर्वाण और सौख्य का कर देने वाला है ॥८-१५॥

प्राप्योत्तरवहां काश्यामविमुक्तवानपि ॥१६
मायास्त्वं हेलया त्यक्त्वा तद्विष्णोःपरमम्पदम् ।
यमेन्द्राग्निमुखा देवा ब्रह्म मुक्तिपरोन्मुखान् ॥१७
सर्वान्सर्वेसमालोक्य रक्षाञ्चक्रःपुरासुरः ।
असिमहासिरूपाञ्चप्राप्यक्षन्मतिखण्डनीम् ॥१८
दुष्टप्रवेशविघ्नौघानायुनोन्देवा विनिर्ममुः ।
वरणाञ्च व्यधुस्तत्क्षेत्रविघ्ननिवारिणीम् ॥१९
दुर्वृत्तसुप्रवृत्तेश्च निर्वृतिकरणीसुराः ।
दक्षिणोत्तरदिग्भागेकृत्वासि वरणां सुराः ॥२०
क्षेत्रस्यमोक्षनिक्षेपरक्षानिर्वृतिमाप्नुयुः ।
क्षेत्रस्यपश्चाद्दिग्भागेतंदेहलिविनायकम् ॥२१

स्वयव्यापारयामास रक्षार्थं शशिशेखरः।
अनुज्ञातप्रवेशानां विश्वेशेन कृपावता ॥२२
ते प्रवेशम्प्रयच्छन्ति नान्येषाहि कदाचन ।
इत्यर्थेकथयिष्येऽहमितिहासम्पुरातनम् ।
आश्चर्यकारिपरमं काशीभक्तिप्रवर्धनम् ॥२३

एक महान् दुष्कृतों वाला जो भार के वहन करने वाला पुरुष काशी में उत्तर वहा गंगा को प्राप्त करके हेला ही से अपने शरीर का त्याग करके श्री विष्णु भगवान् के परमपद को प्राप्त हो गया था। यम, इन्द्र और अग्नि जिनमें प्रमुख थे ऐसे देवगण मुक्तिपथ के उन्मुखों को देखकर सभी सब का समालोकन करके पहिले इस पुरी की रक्षा किया करते थे। सन्मति का खण्डन करने वाली महातिरुपा असि को प्राप्त करके देवों ने दुष्टों के प्रवेश को रोकने वाली धुनी का निर्माण किया था। वहाँ पर क्षेत्र के समागत विघ्नों का निवारण करने वाली वरणा की रचना की थी। सुरों ने दुराचारियों की दुष्प्रवृत्ति की निवृत्ति करने वाली वरणा को असि दक्षिणोत्तर दिग्भाग में किया था। क्षेत्र की मोक्ष के निक्षेप की रक्षा करके ही वे निर्वृति को प्राप्त हुए थे। क्षेत्र के पश्चात् दिग्भाग में शशिशेखर भगवान् ने स्वयं रक्षा के लिये देहलिवि नायक को नियुक्त किया था। कृपालु विश्वनाथ के द्वारा जिनके प्रवेश की अनुज्ञा प्राप्त हो जाती थी उनके प्रवेश को ही वे होने देते हैं और दूसरों का नहीं होने दिया करते हैं। इस अर्थ में मैं एक पुरातन इतिहास कहूँगा जो परम आश्चर्य करने वाला और काशी की भक्ति के बढ़ाने वाला है ॥१६-२३॥

काश्यां प्रवेशं प्राप्याऽपि तदर्थानि घटोद्भव !।
विना वैश्वेश्वरामाज्ञाम्बहिर्यातानि तत्क्षणात् ॥२४
एषकाश्यांप्रविश्यापिपापीधर्मानुपड्गत. ।
नक्षेत्रफलमाप्नोतिबहिर्भवति तत्क्षणात् ॥२५
तस्माद्विश्वेश्वराज्ञैवकाशीवासेऽत्र कारणम् ।
असिश्चवरणायत्र क्षेत्ररक्षाकृता कृते ॥२६

वाराणसीति विख्याता तदारभ्य महामुने ।
असेश्च वरणायाश्च संगमं प्राप्य काशिका ॥२७

वाराणसीह करुणामयदिव्यमूर्ति
रुत्सृज्य यत्र तु तनुं तनुभृत्सुखेन ।
विश्वेशदिङ्‌महसि यत्सहसा प्रविश्य
रूपेण तां वितनुताम्पदवीं दधाति ॥२८

जातो मृतो बहुषु तीर्थवरेषु रेत्वं
जन्तो' न जातु तव शान्तिरभूनिमज्ज्य ।
वाराणसी निगदतीह मृतोऽमृतत्व
प्राप्याऽधुना मम बलात्स्मरशासन.स्या. ॥२९

अन्यत्र तीर्थ सलिले पतितो द्विजन्मा
देवादिभावमयते न तथा तु काश्याम् ।
चित्रं यदत्र पतित पुनरुत्पतिति न
प्राप्नोति पुल्कसजनोऽपि किमग्रजन्मा ॥३०

किसी प्रकार से काशी में प्रवेश प्राप्त करके भी हे घटोद्भव ! उसकी अस्थियाँ विश्वेश्वर की आज्ञा के बिना उसी क्षण में बाहिर चली जाया करती हैं। इस प्रकार से कोई प्राणी धर्म के अनुषङ्ग से काशी में प्रवेश प्राप्त करके भी उस पुण्य क्षेत्र के फल को प्राप्त नहीं किया करता है और उसी क्षण में बाहिर हो जाता है। इसलिये इस काशीपुरी के निवास करने में श्री विश्वनाथ भगवान् की आज्ञा ही मुख्य कारण है जहाँ पर असि और वरणा ये दोनों क्षेत्र की रक्षा करने वाली कर दी गयी हैं ॥२४-२५॥ हे महामुने ! तभी से आरम्भ करके यह पुरी "वाराणसी"—इस नाम से विख्यात हो गई है। यह काशी असि और वरणा इन दोनों का सङ्गम प्राप्त करने वाली हुई है। यहीं पर यह वाराणसी करुणामय दिव्य मूर्ति है। जहाँ पर देहधारी सुखपूर्वक अपने देह का उत्सर्ग करके सहम विश्वनाथ की दिशा के तेज में प्रवेश करके रूप से उस वितनुता की पदवी को धारण किया करता है ॥२७-२८॥

हे जन्तो ! तू बहुत-से श्रेष्ठ तीर्थों में उत्पन्न हुआ और मृत्युगत भी हुआ है किन्तु कभी भी निमज्जन करके तुझे शान्ति नहीं हुई है। वाराणसी कहती है यहाँ पर मृत हुआ अब अमृतत्व की प्राप्ति करके मेरे बल से स्मरशासन अर्थात् शिव हो जावेगा। अन्य तीर्थ जलमें पतित होकर द्विजन्मा देवादि के भाव को प्राप्त होता है इस काशी पुरी मे उस प्रकार की बात नहीं है। यह एक अत्यन्त विचित्र बात है कि यहां पर एक बार पतित हुआ फिर उत्थान को ही नहीं प्राप्त किया करता है चाहे कोई पुल्कसजन भी क्यों नहीं फि॰ अग्रजन्मा (ब्राह्मण) की तो बात ही क्या है ॥२६-३०॥

सैषा परो संसृतिरूपपारावारस्यपारम्परहापुरारिः।
यस्या परं पौरुषमर्थमिच्छन्सिद्धिंभयेत्पोरपरम्परा सः ॥३१

तीर्थान्तराणि मनुजःपरितोऽवगाह्य
हित्वा तनु कलुषिता दिवि दैवतं स्यात्।
वाराणसीपरिसरे तु विसृज्य देह
सन्देहमाप्नोति देहदशाप्तयेऽपि ॥३२

वाराणसीममरसीकरणाद्दतेऽपि
योगादयोगिजनता जनतापहन्त्री।
तत्तारकं श्रवणगोचरता नयन्ती
तद्ब्रह्म दर्शयति येन पुनर्भवो न ॥३३

वाराणसीपरिसरे तनुमिष्टधात्री
धर्मार्थकामनिलयामहहा विसृज्य।
[illegible] पद किमपि हृष्टतरोऽभिलष्य
लाभोऽस्तु मूलमपि नो यदवाप शून्यम् ॥३४

आः काशिवासिजनता ननु वञ्चिताऽभूद्
भालेविलोचनवता वनिताधंभाजा।
आदाय यत्सुकृतभाजनमिष्टदेह
निर्वाणमात्मपवर्जयता पुनर्भू ॥३५

पुरहा पुरारी की यह ऐसी पुरी है जो संसार रूपी सागर का परला पार या तटस्थ है जिस पुरी में परम पौरुष अर्थ की इच्छा करता हुआ वह पौरपरम्परा सिद्धि को प्राप्त करा देता है ॥३१॥ मनुष्य दूसरे तीर्थों का सभी ओर से अवगाहन करके इस कलुषित शरीर का त्याग करके दिवलोक में देव हो जाया करता है। इस वाराणसी के परिसर में तो अपने देह का त्याग करके फिर देह दशा की प्राप्ति के लिये भी सन्देह भाक् हो जाया करता है। यह वाराणसी योग के बिना भी समर सीकरों से अयोगी जनों के तापों का हनन करने वाली है। यह उस तारक मन्त्र को श्रवणों का गोचर कराती हुई उस ब्रह्म का दर्शन करा दिया करती है जिससे फिर दूसरा जन्म ही नहीं हुआ करता है। इस वाराणसी के परिसर में समस्त अभीष्टों का जनन करने वाले और धर्म—अर्थ—काम का निलय स्वरूप शरीर का त्याग करके, अहहा। बड़े ही हर्ष की बात है कि परम हृष्ट होकर किसी भी अभीष्ट पद की इच्छा करके उसका लाभ होता है और शुभ को भी प्राप्त कर लेता है जिसको कि शून्य नहीं प्राप्त हुआ है। परम सुकृत का भाजन इस दुष्ट देह को लेकर पुनर्जन्म के अघ वर्णन करने वाले प्रभु ने निर्वाण मात्र ही प्रदान किया है वनितार्ध का भजन करने वाले त्रिलोचन धारी के द्वारा निश्चय ही काशी के निवास करने वाली जनता वञ्चित हो गई है ॥३२-३५॥

वाराणसीस्फुरदसीमगुणैकभूमिः
यत्र स्थितास्तनुभृतःशशिभृत्प्रभावात् ।
सर्वे गले गरलिनोऽक्षियुजो ललाटे
वामार्धवामतनवोऽनवस्ततोऽन्ते ॥३६

आनन्दकाननमिदं सुखदं पुरैव
तत्रापि चक्रमरसीमणिकर्णिकाख्य ।
स्व.सिन्धुसंगतिरथोपरमास्पदञ्च
निश्रेयिनुः किमिह तत्त्वविमुक्तये यत् ॥३७

वाराणसीह वरणासिसरिद्वरिष्ठा
सम्भेदखेदजननी धुनदी लसच्छ्रीः ।

विश्रामभूमिरचलाममलमोक्षलक्ष्म्या
हैना विहाय किम् सीदति मूढजन्मः ॥३८
किं विस्मृतं त्वहह गर्भजमामनस्य
कातान्तिदूतकृतबन्धनताडनञ्च ।
शम्भोरनुग्रहपरिग्रहलम्य काशी मूढो
विहाय किम् याति करस्थम् क्तिम् ॥३९
तीर्थान्तराणि कलुषाणि हरन्तिसद्यः
श्रेयो ददत्यपि बहु त्रिदिव नयन्ति ।
पानावगाहनविधानतनुग्रहाणां
वाराणसी तु कुरुते वत मूलनाशम् ॥४०
काशीपुरीपरिसरे मणिकर्णिकाया
त्यक्त्वा तनुन्तनुभृतस्तनुमाप्नुवन्ति ।
भाले विलोचनवती गलनीललक्ष्मी
वामार्धबन्धुरवधूं त्रिपुरायरोधाः ॥४१
ज्ञात्वा प्रभावमतुल मणिकर्णिकाया
ग.पुद्गलस्त्यजति याशुचि पूयगन्धि ।
स्वात्मावबोधमहसा सहसा मिलित्वा
कल्पान्तरेऽपि स नैव पृथक्त्वमेति ॥४२

यह वाराणसी स्फुरित असीम गुणों की एक ही भूमि है जहाँ पर शशिधर के प्रभाव से शरीरधारी स्थित रहा करते हैं। सब गरल धारण करने वाले गले में हैं—ललाट में अक्षि युत हैं और वामार्ध में सुन्दर शरीर वाले हैं किन्तु अन्त में फिर वे सब तनुरहित होते हैं। यह आनन्द कानन पहले ही सुख प्रदान करने वाला है उसमें भी चक्र सर मणिकर्णिका है। स्वर्ग नदी की सगति से यह विश्वनाथ का परमास्पद हो गया है। यहाँ पर ऐसा क्या है जो विमुक्ति के लिए न हो अर्थात् सभी विमुक्ति देने वाले हैं ॥३६-३७॥ यहाँ पर वाराणसी वरणाऽसि सरिताओं से परम वरिष्ठ है और ऋग्वेद के सेव की जननी देव नदी गंगा से सुसम्पन्न है। अचल और अमल मोक्ष की लक्ष्मी से युक्त यह विश्राम

की भूमि है। ऐसी इस पुरी का त्याग करके यह मूढ़ जन्तु क्यों दुःख पाया करता है। क्या तू हे जन्तो। गर्भ मे उत्पन्न कष्ट को भूल गया है ? और क्या तूने यमराज के दूतों के द्वारा बन्धन और ताड़ना को भुला दिया है ? तू महान् मूढ़ है कि भगवान शम्भु के अनुग्रह से काशीपुरी को प्राप्त करके हाथ मे स्थित मुक्ति का त्याग करके क्यों जा रहा है ? ॥३८-३९॥ अन्य समस्त तीर्थ कलुषों का हरण किया करते हैं और तुरन्त ही धन प्रदान किया करते हैं और बहुतों को स्वर्ग में भी पहुँचा दिया करते हैं परन्तु यह वाराणसी जल पान-अवगाहन-विधान पूर्वक देह त्याग के द्वारा मूल का ही नाश कर दिया करती है ॥४०॥ काशी पुरी के परिसर में मणिकर्णिका में देहधारी देह का त्याग करके दूसरा ही कलेवर प्राप्त किया करते हैं जो कि भाल में त्रिलोचन वाला होता है और जिसके कण्ठ मे नीलिमा की शोभा हुआ करती है तथा वामार्ध भाग में जिसके सुडौल शरीर वाली वधू है और त्रिपुरावरोध युक्त है। तात्पर्य यह है कि शिव का सा ही शरीर प्राप्त हो जाया करता है ॥४१॥ मणिकर्णिका मे मनुष्य प्रमाद को त्याग जो अशुचि और पूरा गम्भीर पुद्गल का त्याग करता है वह अपने आत्मा के प्रबोध के तेज से सहसा मिलकर कल्पान्तरो में भी पृथकता को प्राप्त नहीं होता है ॥४२॥

रागादिदोषपरिपूरमनोहृषीका:
काशीपुरीमतुलदिव्यमहाप्रभावाम् ।
ये कल्पयन्त्यपरतीर्थ समां समन्ता
ते पापिनो न सहते परिभाषणीयम् ॥४३

वाराणसी स्मरहरप्रियराजधानी
त्यक्त्वा कुतो व्रजसि मूढ! दिगन्तरेषु ।
प्राप्याप्याजाद्यसुलभां स्थिरमोक्षलक्ष्मी
लक्ष्मीं स्वभावचपलांकिमु कामयेथा: ॥४४

विद्याधनानि सदनानि गजाश्वभृत्या:
स्रक्चन्दनानि वनिताश्च निनान्तरम्या: ।

स्वर्गोऽप्यगम्य इह नोद्यमभाजि पुंसि
वाराणसी त्वसुलभा शलभादिमुक्ति। ॥४५
धात्रा धृतानि तुलया तुलनामवेतु
वैकुण्ठमुख्यभुवनानि च काशिका च।
तान्युद्ययुर्लघुतयाप्यगिय गुरुत्वात्तस्थौ
पुरीह पुरुषार्थचतुष्टयस्य ॥४६
काशीपुरीमधिवसन्निह नरो नरोऽपि
ह्यारोप्यमाण इव मान्य इवैकरुद्र।
मातोपसर्गजनिसर्गजदुःखभारैः
कर्मापनुद्य स विशेत्परमेशधाम्नि ॥४७
स्थिरापायकायव्ययजननमरणक्लेशनिलय
विहायास्याकाश्यामहहपरिगृह्णीतनकुतः।
वपुस्तेजोरूप स्थिरतरपरानन्दसदनं
विमूढोऽसौ जन्तुः स्फुटितमिव काश्य विनिमयन् ॥४८

रागादि दोषों से परिपूर्ण मन और इन्द्रियों वाले जो लोग इस अतुल एवं दिव्य महान् प्रभाव वाली काशी को दूसरे ही तीर्थों के समान परिकल्पित किया करते हैं वे महा पापी हुआ करते हैं उनके साथ भाषण भी नहीं करना चाहिए। हे मूढ़! यह वाराणसी कामदेव को भस्म कर देने वाले भगवान् शिव की परम प्रिय राजधानी है। इसका परित्याग करके दिगन्तरों मे कहाँ गमन कर रहा है? इस अनायास से सुलभ इस महालक्ष्मी को प्राप्त करके भी जो स्थिर मोक्ष के प्रदान करने वाली लक्ष्मी है फिर उस स्वभाव से चपल लक्ष्मी को प्राप्त करने की क्यों कामना किया करता है? विद्या-धन-सदन-गज-अश्व-भृत्य-स्रक्-चन्दन, अत्यन्त सुरम्य वनिताएँ और स्वर्ग भी उद्यम शील पुरुष को अगम्य नहीं है किन्तु यह वाराणसी असुलभा है जहाँ पर शलभ आदि को भी मुक्ति हो जाया करती है। एक बार धाता ने तुलना का परिज्ञान प्राप्त करने के लिए तुला में (तराजू) वैकुण्ठ मुख्य जिनमे है ऐसे समस्त भुवनों को और काशीपुरी को रक्खा था तो वे सब भुवन जिनमे वैकुण्ठ भी था लघु हुए

ये और पुरुषार्थ मनुष्य की यह काशीपुरी मुक्ति से युक्त सिद्ध हुई थी। काशीपुरी में अधिवास करने वाला मनुष्य जो यहाँ पर आरोग्यमात्र एक क्षण के ही समान प्राप्त हुआ करता है। अनेक वनमार्ग और सर्वांग सुन्दरों के भारों के कर्मों का अवलोकन करके यह परमेश के धाम में प्रवेश किया करता है और वहीं पर ही निवास करता है। इस काशीपुरी में स्थिर अपायों वाले और जनन तथा मरण के कर्मों का निवास स्थान का त्याग करके उसे क्यों नहीं ग्रहण करते हो। बहुत तेज के स्वरूप वाले और स्थिर हर परानन्द के सदन का यह महाभूत मानो फूले हुए काँटों के पाश से बदल आ रहा है ॥४९ ४६॥

अहो! लोक शोकं किमिह सहते हन्त हतधीः ।
विपद्द्वारैःसार्धंनियतनिधनैर्ध्वंसितधने. ॥५०
क्षितौ सत्यां काश्यां कथयति शिवो यत्र नियतं ।
श्रुतौ किञ्चिद् भूयः प्रविशति न येनोदरदरीम् ॥५१
काशिवासिनि वने वनेचरे द्विजभुज्यपि समीरभोजने ।
स्वैरचारिभिरजितेन्द्रियेऽप्यहोकाशिवासिजनतैवशिष्टता ॥५२
नाश्नतीह दुष्कृतं कृतं सुकृतात्मना वा ।
काचिद्विशेषगतिरन्तकृता हि काश्याम् ॥५३
बीजानि कर्मजनितानि यदूषरायां ।
नाङ्कुरयन्ति हरदृक्कलितानि तेषाम् ॥५४
मशका मक्षिका वकाः शुकाः कलविङ्काश्च वृकाः कम्बुकाः ।
तुरगाश्च वानरा नरा गिरिजे। काशिमृताः परामृतम् ॥५५
सरुद्ररुद्राक्षफणीन्द्रभूषणास्त्रिपुण्ड्रचन्द्रार्धधरा धरां गताः ।
निरन्तरकाशिनिवासिनोजनागिरीन्द्रवेषारिपदामतामम ॥५६

बहुत ही आश्चर्य और खेद की बात है—यह लोक शोक का इस संसार में क्यों सहन कर रहा है? अत्यन्त ही दुःख है कि यह हत बुद्धि वाला मनुष्य विपदाओं के द्वार रूप—निश्चित मृत्यु से युक्त और ध्वंसित धन वाले आश्रय से बहु वार दिन विपत्तियों का सहता ही रहा करता है जबकि इस भूमि में काशीपुरी जैसा क्षेत्र विद्यमान है जहाँ साक्षात् शिव

विराजमान रहते हुए यह कहा करते हैं कि काशी में निधन हो जाने पर वे कान में कुछ अर्थात् तारक मन्त्र कह दिया करते हैं जिसके प्रभाव से वह पुनः माता की उदर दरी में प्रवेश ही नहीं किया करता है अर्थात् पुनः उसको गर्भ में निवास करने की यन्त्रणाऐं नहीं सहनी होती हैं ॥५०-५१॥ काशी में वास करने वाले मनुष्य वन में चरण करने वाला हो—दूसरे-तीसरे दिन में भोजन करने वाला हो या समीर (वायु) का ही भोजन करके जीवित रहने वाला हो—स्वतन्त्रता से विचरण करने वाला हो, जितेन्द्रिय हो तो उन काशीपुरी के निवास करने वाले पुरुष में विशिष्टता हुआ करती है। काशी में जिनका अन्त होता है वे चाहे दुष्कृत करने वाले हों या सुकृतात्मा हों उनकी कोई भी विशेष गति यहाँ पर नहीं होती है। जिस तरह से ऊसर भूमि में बोये हुए भी बीज अंकुरित नहीं होते हैं उसी तरह से उनके कर्मों से जनित बीजों का भगवान् शम्भु की दृष्टि से भस्म हो जाने पर कोई भी अंकुर नहीं रहा करता है ॥५२-५४॥ शशक—मशक—बक—शुक—कलविङ्क—वृक—जम्बुक—तुरग—उरग—वानर और नर हे गिरिजे! काशी में मृत्युगत होने पर ये सभी परम मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं। हे गिरीन्द्रजे! प्रत्यक्ष रुद्राक्ष और फणीन्द्रों के भूषण तथा त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले इस भूमि में स्थित काशी के निवासी मेरे पार्षद ही माने गये हैं ॥५५-५६॥

यावन्त एव निवसन्ति च जन्तवोऽत्र
वाराणसीस्थल चरा जलजाम्बुकाद्याः।
तावन्त एवमनुग्रहरुद्रदेहा
देहावसा नमधिगम्य मयि प्रविष्टाः ॥५७
ये सुवर्णपवो रुद्रा दिवि देवप्रकीर्तिताः।
वातेपवोऽन्तरिक्षे ये ये भूम्यश्वेपव. प्रिये! ॥५८
रुद्रा दशदशप्राच्यवाचीप्रत्यगुदक् स्थिताः।
ऊर्ध्वदिक्स्थाश्च ये रुद्रा-पठ्यन्ते वेदवादिभि ॥५९
सहस्राणि सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूतले।
तत्सर्वेभ्योऽधिका काश्यां जन्तवो रुद्ररूपिणः ॥६०

रुद्रावासस्ततः प्रोक्तमविमुक्तं घटोद्भव ॥
यस्मात्समर्च्य काशिस्थान्वर्णान्वर्णेतराश्रमान् ॥६१
श्रद्धयेश्वरबुद्ध्या च रुद्रार्चाफलभाङ्नरः ॥६२

इस काशी में जितने भी जन्तु निवास किया करते हैं वे जलचारी हों या स्थल पर रहने वाले हों जो कि स्वेद अण्डज आदि हैं वे सब के सब उतने ही मेरे अनुग्रह से इस देह के देहावसान को प्राप्त करके मुझ में ही प्रविष्ट हो जाया करते हैं। जो वर्षेश्वर रुद्र हैं जो दिवलोक में देव कीर्त्तित किये गये हैं—जो वातेश्वर अन्तरिक्ष में हैं और हे प्रिय ! जो इस भूमण्डल में अग्नेश्वर हैं। प्राचीअवाची (पूर्व-पश्चिम)—अपाक् और उदक् (दक्षिण-उत्तर) दिशाओं में दश-दश रुद्र स्थित होते हैं। वेद वादियों के द्वारा जो ऊर्ध्व दिशा में स्थित रुद्र पढ़े जाया करते हैं और जो असंख्यात सहस्रो इस भूतल के मध्य में रुद्र हैं उन सबसे अधिक रुद्र स्वरूप वाले जन्तु काशी में हैं। हे घटोद्भव ! यह काशी रुद्रो का आवास स्थल है इसीलिए इसको अविमुक्त कहा गया है। इसी कारण से काशी में स्थित वर्णों का और वर्णेतर आश्रमों का भली भाँति अर्चन करके चाहे वह श्रद्धा से किया जावे अथवा ईश्वर की बुद्धि से किया जावे मनुष्य रुद्र की अर्चा का पुण्य फल प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है ॥५७-६२॥

श्मशब्देनशवः प्रोक्तःशानं शयनमुच्यते ।
निर्वचन्ति श्मशानार्थं मुने शब्दार्थकोविदाः ॥६३
महान्त्यपि च भूतानि प्रलयेसमुपस्थिते ।
शेरतेऽत्र शवा भूत्वा श्मशानमुततोमहत् ॥६४
अप्सु भूरिह लये लयं व्रजेदाप और्वबदनोग्रकन्दरे ।
मातरिश्वनि महाननूनपाद्व्योम्नि सक्षयति यं सदागतिः ॥६५
व्योम चापि लयमेत्यहङ्कृतौ साऽपि षोडशविकारसंयुता ।
लीयते महति बुद्धिसञ्ज्ञके हा! महान्प्रकृतिमध्यगो भवेत् ॥६६
सा गुणत्रयमयी च निर्गुणस्तं पुमांसमवगुह्य तिष्ठति ।
पञ्चविंशति तमः परं पुमान्देहगेहपतिरेषजीवकः ॥६७

"श्म"—इस शब्द से शव अर्थात् मृतक के शरीर को कहा गया है और "शान"—यह शब्द शयन के लिए कहा जाया करता है। हे मुने! शब्दों के अर्थ के मनीषी लोग श्मशान शब्द के अर्थ का इसी प्रकार से निर्वचन किया करते हैं। प्रलयकाल के समुपस्थित होने पर महान् भूत गण भी यहाँ पर शव होकर शयन किया करते हैं। इसीलिए यह महान् श्मशान है ॥६३-६४॥ यहाँ पर लय के समय में यह भूमि जल में लय को प्राप्त हो जाया करती है। यह जल उर्वी के वदन की परमोग्र कन्दराओं में चला जाया करता है। महान् तनूनपात वायु में लीन होता है और सदागति अर्थात् वायु आकाश में लय को प्राप्त हो जाया करता है। यह व्योम भी अहंकार में लीन होता है और सोलह विकारों से संयुत वह भी बुद्धि संज्ञक महान् में लय को प्राप्त होती है। यह महत्व बुद्धि और प्रकृति के मध्य में गमन वाला होता है। वह त्रिगुणमयी प्रकृति निर्गुण पुरुष में अवगुंहित होकर स्थित रहा करती है। इन पच्चीस और तम से पर देह गेह का पति महा पुमान जीवक है ॥६५-६७॥

प्राकृतः प्रलय एष उच्यते ह्ययानहरिरुद्रवर्जितः।
कालमूर्तिरथ तच्च पूरुष हेलया कलयतीश्वरः परः ॥६८

स वै महाविष्णुरितीर्यते बुधैरत वै महादेवमुदाहरन्ति।
सोऽस्तादिमध्यं परिवर्जितःशिवःसर्वोपतिःसोऽपिहिपार्वतीपतिः

दैनन्दिनेऽथ प्रलये त्रिशूलकोटौ समुत्क्षिप्य पुरीं हरः स्वाम्।
बिभर्तिसर्वतमहास्थिभूषणस्ततोहिकाशीकलिकालवर्जिता ॥

वाराणसीति काशीति रुद्रावास इति द्विज!।
महाश्मशानमित्येव प्रोक्तमानन्दकाननम् ॥७१

इति देवीपुरः प्रोक्तं देवदेवेन शम्भुना।
यथाविष्णो पुराख्यातं तथैव च मयाश्रुतम् ॥७२

तच्च स्वदर्थं च धिस रहस्य काशिज महत्।
जप्त्वाऽध्यायमिमं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥७३

श्रावयित्वा द्विजान्सम्यक् शिवलोके महीयते ।
अतःपरं कलशज! किमुशुश्रूषसीदद ॥७४
काशीकथा कथ्यमाना ममाऽपि परितोषकृत् ॥७५

ब्रह्मा—हरि और रुद्र से वर्जित यह प्राकृत प्रलय कहा जाता है। उस पुरुष की यह काल मूर्ति पर ईक्षण देना ही से कलन किया करता है। वह ही बुधों के द्वारा महा विष्णु-इस शुभ नाम से पुकारे जाया करते हैं और उनको महादेव कहा करते हैं। वह अन्त-आदि और मध्य से रहित—जो के स्वामी शिव हैं और वह ही पार्वती के पति हैं। वे हर इस दैनन्दिन प्रलय में अर्थात् दिनों दिन में होने वाली प्रलय में अपनी पुरी को त्रिशूल की कोटि में समुल्लिसत करके संवर्त महास्थि श्रवण प्रभु धारण किया करते हैं। इसी से यह काशी काल के काल से वर्जित है। भगवान् स्कन्द ने कहा—हे द्विज! इस पुरी के कई शुभ नाम हैं-वाराणसी—काशी—रुद्रावास-महाश्मशान और आनन्द कानन कहे गये हैं। यही देवों के देव भगवान् शम्भु ने देवी के आगे कहा था। पहिले जिस प्रकार से विष्णु के सामने कहा गया था और मैंने जो उसी भाँति श्रवण किया था वही मैंने काशी में उत्पन्न होने वाला महान् रहस्य आपके सामने कह दिया था। इस परम पुण्यमय अध्याय का पाठ करके महापातकों का नाश हो जाता है। द्विजों को इस अध्याय का भली भाँति श्रवण कराकर शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे कलशज! इससे आगे आप क्या सुनना चाहते हैं-यह मुझे बतलाइए। यह कथ्यमान काशी की कथा मुझको भी महान् परितोष के करने वाली होती है ॥६८-७५॥

५२—ज्ञानवापीमाहात्म्यवर्णन

स्कन्द ! ज्ञानोदतीर्थस्य माहात्म्यं वद साम्प्रतम् ।
ज्ञानवापीं प्रशंसन्ति यतः स्वर्गौकसोऽप्यलम् ॥१
घटोद्भव महाप्राज्ञ ! शृणु पापप्रणोदिनीम् ।
ज्ञानवाप्याः समुत्पत्तिं कथ्यमानां मयाधुना ॥२

अनादिसिद्धे संसारे पुरा देवयुगे मुने !।
प्राप्त कुतश्चिदीशानश्चरन्स्वैरमितस्ततः ॥३
न वर्षन्ति यदा भ्राणि न प्रावर्तन्त निम्नगाः।
जलाभिलापो न यदास्नानपानादिकर्मणि ॥४
क्षारस्वादूदयोरेव यदासीज्जल दर्शनम्।
पृथिव्या नरसचारे वर्तमाने क्वचित्क्वचित् ॥५
निर्वाणकमलाक्षेत्र श्रीमदानन्दकाननम्।
महाश्मशान सर्वेषां बीजाना परमूषरम् ॥६
महाशयनसुप्तानां जन्तूनां प्रतिबोधकम्।
ससारसागरावर्तपतज्जन्तुतरण्डकाम् ॥७

महा महर्षि श्री अगस्त्यजी ने कहा—हे श्री स्कन्दजी ! अब आप कृपया ज्ञानोद तीर्थ का माहात्म्य कहिए। इसको ज्ञानवापी कहकर प्रशंसा किया करते हैं जो कि स्वर्ग लोक मे निवास करने वाले देवो को भी दुर्लभ है। श्री स्कन्द भगवान् ने कहा—हे घटोद्भव ! आपकी प्रज्ञा तो बहुत ही अधिक है। अब मेरे द्वारा वर्णित इस पापो को हटाने वाली ज्ञानवापी के माहात्म्य का श्रवण कीजिए। हे मुने ! इस अनादि सिद्ध ससार मे पहिले देवयुग मे इधर-उधर सचरण करते हुए भगवान् शम्भु कहीं से यहाँ पर प्राप्त होगए थे। जिस समय मे मेघ नहीं बरसते थे, नदियाँ नहीं वहन किया करती थी और जिस काल मे स्नान पानादि कर्मों मे कहीं पर भी जल का अभिलाष ही नहीं था। जिस समय मे खारी स्वाद वाले जल का ही दर्शन था। पृथिवी मे कहीं कहीं पर मनुष्यो के सचार मे ऐसी ही दशा विद्यमान थी। निर्वाण कमला का क्षेत्र, श्रीमान आनन्द कानन, महा श्मशान समस्त बीजो का परम ऊषर क्षेत्र होरहा था। महा शयन मे सुप्त हुए जन्तुओ का प्रति बोध कराने वाला इस ससार सागर के आवर्त्त मे पड़े हुए जन्तुओ का तरण्डक यह क्षेत्र था ॥१-७॥

यातायातातिसम्भिन्न जन्तुविश्राममण्डपम्।
अनेकजन्मगुणितकर्मसूत्रच्छिदाशुरम् ॥८

सच्चिदानन्दनिलयम्परब्रह्म रसायनम् ।
सुखसन्तानजनकम्मोक्षसाधनसिद्धिदम् ॥९
प्रविश्य क्षेत्रमेतत्स ईशानो जटिलस्तदा ।
लसत्त्रिशूल विमल रश्मिजालसमाकुल ॥१०
आलुलोके महालिंगं वैकुण्ठपरमेष्ठिनो ।
महाहमहमिकाया प्रादुरास यदादितः ॥११
ज्योतिर्मयीभिर्मालाभि परितः परिवेष्टितम् ।
वृन्दैर्वृन्दारकर्षीणा गणानाञ्च निरन्तरम् ॥१२
सिद्धानां योगिनांस्तोमैरर्च्यमान निरन्तरम् ।
गीयमानं च गन्धर्वैः स्तूयमान च चारणैः ॥१३
अंगहारैरप्सरोभिः सेव्यमानमनेकधा ।
नीराज्यमानं सततन्नागीभिर्मणिदीपकैः । १४

इस संसार में गमनागमन से अच्छी तरह खिन्न हुए जन्तुओं का विश्राम करने का मण्डप, अनेक जन्मों में संचित किये हुए कर्मों के छेदन करने वाले छुरा के समान, सत्, चित् और आनन्द का निलय, परब्रह्म का रसायन स्वरूप, सुख और सन्तति का जनक और मोक्ष के साधन की सिद्धि का प्रदान करने वाला यह क्षेत्र है जिस समय में भगवान् शम्भु ने जो माथे पर जटाऐं धारण कर रहे थे, हाथ में शोभित त्रिशूल की विमल किरणों के जाल से समाकुल उन भगवान् शिव का स्वरूप था। जिस समय में आदि में वैकुण्ठ परमेष्ठियों का यह महा लिङ्ग दिखलाई दिया था और महती अहमहमिका से अर्थात् मेरा ही सबसे आगे हो, इस भावना से प्रादुर्भूत हो रहा था। उस समय मे यह सभी और ज्योतिर्मयी मालाओं से परिवेष्टित था। देवों और ऋषियों के समूहों तथा गणों के द्वारा निरन्तर समर्चित था। सिद्ध, योगी आदि के समुदायों से निरन्तर पूज्यमान हो रहा था। गन्धर्वों के द्वारा गीयमान और चारणों के द्वारा स्तूयमान हो रहा था। यह महालिंग अनेक प्रकारों से अप्सराओं के अङ्गहारों के द्वारा सेव्यमान था और नागिनियों को फणा में रहने वाली

मणियो के दीपो के द्वारा नीराज्यमान हो रहा था अर्थात् नागिनियाँ अपनी मणियों के दीपो से आरती कर रही थीं ॥८-१४॥

विद्याधरीकिन्नरीभिस्त्रिकालं कृतमण्डनम् ।
अमरीचमरीराजिवीज्यमानमितस्ततः ॥१५
अस्येशानस्य तल्लिंगं दृष्टेच्छेत्य भवत्तदा ।
स्नपयामि महल्लिंगं कलशैःशीतलेर्जलैः ॥१६
खखान च त्रिशूलेन दक्षिणाशोपकंठतः ।
कुण्ड प्रचण्ड वेगेन रुद्रोरुद्रवपुर्धर. ॥१७
पृथिव्यावरणाम्भोसि निष्क्रान्तानि तदा मुने !।
भूप्रमाणाद्दशगुणैर्यैरिय वसुधावृता ॥१८
तैर्जलैः स्नापयाञ्चके त्वस्पृष्टैरन्यदेहिभिः ।
तुषारैर्जाड्य विधुरैर्जञ्जपूकौघहारिभिः ॥१९
सन्मनोभिरिवात्यच्छैरनच्छैर्व्योमवर्मवत् ।
ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैः पावनैः शम्भुनाभवत् ॥२०

विद्याधरी और किन्नरियों के द्वारा तीनों कालों में उस महालिंग का अलङ्करण और मण्डन किया जा रहा था । देवाङ्गनाओ की चमरियों के समूह से इधर-उधर वीज्यमान था अर्थात् दोनो ओर चमर डुराये जा रहे थे । इस ईशान के उस लिंग को देख कर इनकी भी इच्छा ऐसी उस समय में समुत्पन्न होगई थी कि इस महालिंग का शीतल जल से परिपूर्ण कलशो से स्नपन कराऊँ । उसी समय में दक्षिण दिशा के समीप में भगवान शम्भु ने अपने त्रिशूल के द्वारा खनन किया था । रुद्र वपु के धारण करने वाले रुद्र देव ने बड़े वेग से एक परम प्रचण्ड कुण्ड तयार कर दिया था । हे मुने ! उस समय में पृथिवी के आवरण जल निकले थे । यह वसुधा भूप्रमाण से दशगुने जलो से समावृत होगई थी । पापों के समूहो का हरण करने वाले, अन्य देह धारियो के स्पर्श से रहित, तुषार और जाड्य विधुर उन जलों से स्नपन कराया था । ये जल सत्पुरुषो के मन की भाँति स्वच्छ थे तथा व्योम मार्ग के तुल्य अनच्छ थे, चाँदनी के

समान अत्यन्त उज्ज्वल कान्ति वाले थे एवं भगवान् शम्भु के नाम के सदृश परम पावन थे ॥१६-२०॥

पीयूषवत्स्वादुतरैः सुखस्पर्शैर्गवांगवत् ।
निष्पापधीवद्गम्भीरैस्तरलैः पापिदार्मवत् ॥२१
विजिताब्जमहागन्धैः पाटलामोदमोदिभिः ।
अदृष्टपूर्वलोकानां मनोनयनहारिभिः ॥२२
अज्ञानतापसं तप्तप्राणिप्राणैकरक्षिभिः ।
पञ्चामृतानां कलशैः स्नपनाति फलप्रदैः ॥२३
श्रद्धोपस्पर्शि हृदयलिंगत्रितयहेतुभिः ।
अज्ञानतिमिरार्काभैर्ज्ञानदानविदायकैः ॥२४
विश्वभर्तुरुमास्पर्शसुखाति सुखकारिभिः ।
महाबभूयमुस्नान महाशुद्धि विधायिभिः ॥२५
सहस्रधारैः कलशैः स ईशानोघटोद्भवः ।
सहस्रकृत्वः स्नपयामास संहृष्टमानसः ॥२६
ततः प्रसन्नो भगवान्विश्वात्माविश्वलोचनः ।
तमुवाच नदेशानं रुद्र रुद्रवपुर्धरम् ॥२७
तव प्रसन्नोऽस्मीशान कर्मणाऽनेन सुव्रत ।
गुरुणानन्य पूर्वेण ममाति प्रीतिकारिणा ॥२८
ततस्त्वं जटिलेशान ! वरं ब्रूहि तपोधन !
अदेयं न तवास्त्यद्य महोद्यमपरायण ! ॥२९

यह जल अमृत के समान स्वाद वाला, गौ के अङ्ग के सदृश सुख स्पर्श से युक्त, निष्पाप बुद्धि के समान गम्भीर और पापी के धर्म की भाँति तरल था। विजित पद्म के समान महान् गन्ध वाला, पाटल के आमोद से आमोदित जो पहिले कभी भी नहीं देखे गये ऐसे लोकों के मन और नेत्रों के हरण करने वाले थे जल थे। अज्ञान तापस को सतत प्राणियों के प्राणों की रक्षा करने वाले, फलप्रद पञ्चामृत के कलशों के द्वारा स्नपन से अति पुण्य फल को देने वाले थे। श्रद्धा के उपस्पर्श करने वाले हृदय के लिंगत्रितय के हेतु, अज्ञान रूपी अन्धकार का निवारण करने के लिये

सूर्य के समान, ज्ञान के दान को देने वाले, विश्व के भरण करने वाले स्वामी और उमा देवी के स्पर्श से सुखातिसुखकारी, महान् अवभृथ के सुन्दर स्नान से होने वाली शुद्धि के विधायक, सहस्र धाराओं वाले कलशों के द्वारा हे घटोद्भव ! भगवान् शम्भु ने सहर्षवार संप्रहृष्ट मन वाले होते हुए स्नपन कराया था। इसके अनन्तर विश्वलोचन, विश्वात्मा भगवान् परम प्रसन्न हुए थे। फिर रुद्र के वपु को धारण करने वाले ईशान उन रुद्र से बोले—हे ईशान ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ। हे सुव्रत ! आपके इस कर्म से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है। यह आपका कर्म महान गुरु है और ऐसे पहिले अन्य किसी ने भी नहीं किया है। यह मेरी अत्यन्त प्रीति का करने वाला है। हे जटिलेशान् ! हे महान तपोधन ! आप कोई भी वरदान माँगलो। आज इस समय में मुझे आप से इतनी प्रसन्नता हुई कि कुछ भी अदेय नहीं है अर्थात् चाहे जो कुछ भी माँगोगे सो देदूँगा क्योंकि आप इस महान उद्यम में परायण हो रहे है ॥२१-२६॥

यदि प्रसन्नो देवेश ! वरयोग्योऽस्म्यहं यदि ।
तदेतदतुलं तीर्थं तव नाम्नास्तु शङ्कर ! ॥३०
त्रिलोक्यां यानि तीर्थानि भूर्भुवः स्वः स्थितान्यपि ।
तेभ्यो खिलेभ्यस्तीर्थेभ्यः शिवतीर्थमिदं परम् ॥३१
शिवं ज्ञानमिति ब्रूयुः शिवशब्दार्थचिन्तकाः ।
तच्च ज्ञानद्रवीभूतमिह मे महिमोदयात् ॥३२
अतो ज्ञानोदनामैतत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अस्य स्पर्शमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३३
ज्ञानोदतीर्थसंस्पर्शादश्वमेधफलं लभेत् ।
स्पर्शनाचमनाभ्याञ्च राजसूयाश्वमेधयोः ॥३४
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा सन्तर्प्य च पितामहान् ।
यत्फलं समवाप्नोति तदत्रश्राद्धकर्मणा ॥३५

ईशान ने कहा—हे देवेश ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मैं यदि वह दान देने के योग्य आप का पात्र बन गया हूँ तो हे शङ्कर ! यह आपके ही शुभ नाम से एक अतुल, अनुपम तीर्थ हो जावे। भगवान्

विश्वेश्वर ने कहा—इस त्रिलोकी में जो भी भूः भुवः स्वः में स्थित भी तीर्थ हैं उन समस्त तीर्थों से यह शिव तीर्थ परम शिरोमणि तीर्थ होगा ॥३०-३१॥ 'शिव'—इस शब्द के अर्थ के चिन्तन करने वाले लोग शिव को ज्ञान ही कहा करते हैं। वही ज्ञान द्रवीभूत हो गया है और यहाँ पर मेरी महिमा के उदय होने से ही हुआ है। अतएव यह तीर्थ ज्ञानोद नाम से ही त्रैलोक्य में विश्रुत होगा। इसके स्पर्श मात्र से ही मनुष्य समस्त प्रकार के घोर पापों से भी मुक्त होजाया करता है। इस ज्ञानोद तीर्थ के संस्पर्श मात्र से ही मानव अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त कर लेता है। स्पर्श और आचमन से राजसूय यज्ञ और अश्वमेध दोनों का फल प्राप्त कर लिया करता है। गया में फल्गुतीर्थ में स्नान करके तथा अपने पितरों का भली भाँति तर्पण करके जो पुण्य फल प्राप्त किया करता है। वह ही फल यहाँ पर श्राद्ध कर्म करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥३२-३५॥

गुरुपुष्यासिताष्टम्यां व्यतीपातो यदा भवेत्।
तदात्र श्राद्धकरणाद्गयाकोटिगुणं भवेत् ॥३६
यत्फलं समवाप्नोति पितॄन्सन्तर्प्य पुष्करे।
तत्फलं कोटिगुणितं ज्ञानतीर्थे तिलोदकैः ॥३७
सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे तमोग्रस्ते विवस्वति।
यत्फलं पिण्डदानेन तज्ज्ञानोदे दिने दिने ॥३८
पिंडनिर्वपणं येषां ज्ञानतीर्थे सुतैः कृतम्।
मोदन्ते शिवलोके ते यावदाभूतसंप्लवम् ॥३९
अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः।
प्रातः स्नात्वात्र पीताम्भस्त्वन्तर्लिगमयो भवेत् ॥४०
एकादश्यामुपोष्यात्रप्राशनात्चुलुकत्रयम्।
हृदयेऽस्य जायन्ते त्रीणिलिंगान्यसंशयम् ॥४१
ईशानतीर्थे यः स्नात्वा विशेषात्सोमवासरे।
सन्तर्प्य देवर्षि पितॄन्दत्वादान स्वशक्तितः ॥४२
ततः समर्च्य श्रीलिंगं महासम्भारविस्तरैः।
अत्रापि दत्त्वा नानार्थान्कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥४३

गुरुवार से युक्त शुक्ल पक्ष की पुष्य समन्वित अष्टमी तिथि में जब व्यतीपात हो उस समय में यहाँ पर श्राद्ध करने से गया में किये गये श्राद्ध से करोड़ गुना फल प्राप्त होता है। उसी फल को पुष्कर में पितृगण का सन्तर्पण करके प्राप्त किया करता है। वही फल ज्ञान तीर्थ में तिलोदक के द्वारा करने पर करोड़ गुना हो जाया करता है ॥३६-३७॥ सन्निहित में कुरुक्षेत्र में विवस्वान् के समोग्रस्त होने पर अर्थात् उपराग के अवसर में पिण्डों के दान से जो फल प्राप्त हुआ करता है वही फल ज्ञानोद में दिन दिन में होता है। जिसके पुत्रों ने इस ज्ञान तीर्थ में पिण्डों का निर्वपण किया है वे सब शिव लोक में जब तक भूत संप्लव होता है तब तक आनन्द का लाभ प्राप्त किया करते हैं। अष्टमी तिथि में और चतुर्दशी तिथि में उपवास करने वाला श्रेष्ठ पुरुष प्रातःकाल में स्नान करके इसके जल का पान करता है वह अन्तर्लिङ्गमय ही हो जाया करता है ॥३८-४०॥ एकादशी तिथि में उपवास करके यहाँ पर जो तीन चुल्लू जल का प्राशन किया करता है उसके हृदय में बिना किसी संशय के तीन लिङ्ग उत्पन्न हो जाया करते हैं। इस ईशान तीर्थ में विशेष रूप से सोमवार के दिन में स्नान करके अपने पितृगणों को और देव तथा ऋषियों का भली भाँति तर्पण करके अपनी शक्ति के अनुसार दान दिया करता है और इसके अनन्तर महान् सम्भार से युक्त विस्तार वाले उपचारों के द्वारा जो लिङ्ग का अर्चन किया करता है और यहाँ पर भी नाना अर्थों को देकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥४१-४३॥

उपास्य सन्ध्यां ज्ञानोदे यत्पापं काललोपजम् ।
क्षणेनतदपाकृत्य ज्ञानवान् जायते द्विजः ॥४४
शिवतीर्थ मिदं प्रोक्तं ज्ञानतीर्थ मिदं शुभम् ।
तारकाख्यमिदं तीर्थं मोक्षतीर्थं इदं ध्रुवम् ॥४५
स्मरणादपि पापौघो ज्ञानोदस्य क्षयेद्ध्रुवम् ।
दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात्पानाद्धर्मादि सम्भवः ॥४६

ज्वरापस्मारविस्फोट द्वितीयकचतुर्थका ।
सव प्रशममायान्ति शिवतीर्थ जलेक्षणात् ॥४८
ज्ञानोदतीर्थ पानीयैर्लिङ्ग यः स्नापयेत्सुधीः ।
सर्वतीर्थोदकैस्तेन ध्रुवं संस्नापितम्भवेत् ॥४९

इस ज्ञानोदक तीर्थ मे संध्या की उपासना करके मनुष्य काल के लोप से समुत्पन्न पाप को एक ही क्षणमात्र मे दूर करके द्विज ज्ञानवान् हो जाया करता है। यह शिव तीर्थ कहा जाता है और इस शुभ तीर्थ को ज्ञान तीर्थ भी कहा गया है। इस तीर्थ का नाम तारक तीर्थ भी है और यह तीर्थ निश्चित रूप से मोक्ष के देने वाला मोक्ष तीर्थ है। पापो का समुदाय इस ज्ञानोद तीर्थ के स्मरण करने ही से निश्चय क्षय को प्राप्त हो जाया करता है। इसके दर्शन से, स्पर्शन मे, स्नान से और पान से धर्म आदि की समुत्पत्ति हुआ करती है ॥४४-४६॥ डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, वेताल, राक्षस, ग्रह, कूष्माण्ड, झोटिङ्ग, काल कर्णी, शिशुग्रह, ज्वर, अपस्मार, विस्फोट, द्वितीयक और चतुर्थक अर्थात् चौथैया-ज्वर—ये सभी शिव तीर्थ के जल के ईक्षण (दर्शन) से प्रशम को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥४७-४८॥ जो सुधी पुरुष इस ज्ञानोद तीर्थ के जल से लिंग स्नपन कराया करता है उसने मानो समस्त तीर्थों के जल से ही निश्चित रूप से स्नपन करा दिया है अर्थात् अन्य सभी तीर्थों के जल से स्नान का पुण्य फल प्राप्त उसे हो जाया करता है ॥४९॥

ज्ञानरूपोऽहमेवात्र द्रवमूर्ति विधाय च ।
जाड्यविध्वंसनंकुर्यां कुर्यां ज्ञानोपदेशनम् ॥५०
इति दत्त्वावरान्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ।
कृतकृत्यमिवात्मानं सोऽमंस्तत्रिशूलभृत् ॥५१
ईशानो जटिलो रुद्रस्तत्प्राश्य परमोदकम् ।
अवाप्तवान् परं ज्ञानं येन निर्वृतिमाप्तवान् ॥५२
अम्लक्षा मोक्षलक्ष्मीर्या वेदान्ते परिपठ्यते ।
विमुक्तये सतां सैषा श्रीमती मणिकर्णिका ॥५३

मरणं मङ्गलं यत्र सफलं यत्र जीवितम् ।
स्वर्गस्तृणायते यत्र सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥५४
यत्र सम्पत्तिसम्भारान्विश्राण्य निधनेच्छया ।
यतिव्रतं समालम्ब्य तिष्ठते मूलकन्दभुक् । ५५
यत्र त्रिमार्गगा गङ्गां मार्गमाणो मृगान्हरः ।
स्वमौलि बालचन्द्रेण मुक्तिमार्गं प्रदर्शयन् ॥५६

यहाँ पर इस तीर्थ में ज्ञान रूप बाला मैं ही हूँ और इस मूर्ति धारण करके मैं जड़ता का विध्वंस किया करता हूँ तथा ज्ञान का उपदेश भी दिया करता हूँ ॥५०॥ ये इस प्रकार से भगवान् शम्भु वरदान प्रदान करके वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। वह त्रिशूल धारण करने वाले भी अपने आपको परम कृत कृत्य मानने लगे थे ॥५१॥ ईशान जटाधारी रुद्रदेव ने उस परम पुण्यमय जलका पान करके परमोत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति की थी जिससे वह निर्वृति को प्राप्त हो गये थे ॥५२॥ धलक्ष्मी के साथ जो मोक्ष लक्ष्मी वेदान्त में पढ़ी जाया करती है। वह यह श्रीमती मणिकर्णिका सत्पुरुष की विमुक्ति के लिये होती है। जहाँ पर मरना भी परम मंगल होता है और जहाँ पर जीवित भी सफल होता है। जहाँ का ऐसा प्रबल पुण्य का प्रभाव होता है कि स्वर्ग भी उसके सामने एक तुच्छ तिनके समान होता है ऐसी यह श्री मणिकर्णिका है। जहाँ पर सम्पत्ति के सम्भारों को विश्राणित करके निधन की इच्छा से यति के व्रत का समालम्बन करके मूल और कन्दों को उपभोग करके स्थित रहा करता है। जहाँ पर त्रिमार्गों से गमन करने वाली गंगा का अन्वेषण करते हुए भगवान् हर मृगों को अपने मस्तक में स्थित बाल चन्द्र के द्वारा मुक्ति के मार्ग का प्रदर्शन कराया करते हैं ॥५३-५६॥

संसारं यत्र दुर्वारं प्रतारयति शङ्करः ।
मृता अप्यमृतायन्ते कर्णधाराद्यतो नराः ॥५७
संसारसारपदवी यत्र स्यादवीयसी ।
कर्णे जपान्महेशानात्करुणावरुणालयात् ॥५८

अनेकभवसम्भूत प्रभूत सुकृतैर्नरा ।
कर्णे जपं भवं यत्र लभन्ते ते भवापहम् ॥५९
स्वीकृत्य क्षेत्रसन्यासं यद्बलेन महाधियः ।
तृणं कृतान्तं मन्यन्ते सेयं मणिकर्णिका ॥६०
तृणीकृत्य निजं देहं यत्र राजर्षिसत्तमः ।
हरिश्चन्द्रः सपत्नीको व्यक्रीणाद् भूरियं हिसा ॥६१
अभिलष्यन्ति यत्रत्यमपिवैकुण्ठवासिनः ।
सैकतं मृदुलं तल्पं सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥६२
अनेकजन्मजनितकर्मसूत्रनियन्त्रणम् ।
सन्मुच्य यत्रमुक्ताः स्युः सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥६३

यह संसार अतीव दुर्वार है और भगवान् शङ्कर इससे तार दिया करते हैं। इस मणिकर्णिका घाट का ऐसा महान प्रभाव है कि मरे हुए भी नरा अमृत हो जाया करते हैं। देव स्वरूप बन जाते हैं और मोक्ष के अधिकारी हो जाया करते हैं। जहाँ पर संसार के तार की पदवी मदवो-यतो होती है। कानों में जप के प्रभाव से करुणा के सागर महेशान से संसार से मुक्त हो जाया करते हैं किन्तु मनुष्य जहाँ पर भव के अपहरण करने वाले कर्णों में जप करने वाले भव अनेक जन्मों में समुत्पन्न बहुत से सुकृतों से ही प्राप्त किया करते हैं। महान बुद्धिशाली लोग जिसके बल से क्षेत्र सन्यास को स्वीकार करके यम राज को एक तुच्छ तिनके के समान ही माना करते हैं वह ऐसी श्रीमणिकर्णिका है। जहाँ पर राजर्षियों में परम श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र ने अपने देह को तृण के तुल्य समझ कर पत्नी के सहित बेच डाला था, यह वह ही परम पावन भूमि है ॥५७-६१॥ जहाँ के परम मृदु बालुका की शय्या को बैकुण्ठ में निवास करने वाले भी चाहा करते हैं वही यह मणिकर्णिका है ॥६२॥ अनेक जन्मों में समुत्पन्न कर्मों के सूत्र के नियन्त्रण का उन्मोचन कर जहाँ पर मनुष्य मुक्त होजाया करते हैं वही यह मणिकर्णिका है ॥६३॥

सत्यलोकेऽपि ये लोकास्तेऽर्थयन्ति निरन्तरम् ।
या महोदीर्घनिद्रायै सेयं श्रीमणिकर्णिका ॥६४

अय हि स कुलस्तम्भो यत्र श्रीकालभैरवः ।
क्षेत्रपापकृत शास्ति दर्शयस्तीव्रयातनाम् ॥६५
अन्यत्र विहितम्पापं नश्येत्काशीनिरीक्षणात् ।
काश्या कृताना पापानां दारुणे यन्नु यातना ॥६६
कपालमोचनं तीर्थं मेतत्तदपि पावनम् ।
कपालं पतितं यत्र विधे भैरवपाणितः ॥६७
ऋणत्रयाद्विमुच्यन्ते यत्र स्नाता नरोत्तमाः ।
तीर्थं विशुद्धिजनकं तदेतदृणमोचनम् ॥६८
प्रणवाख्य परं ब्रह्म यत्र नित्य प्रकाशते ।
स पञ्चायतनोपेत ॐकारेशोऽयमद्भुतः ॥६९
अश्च उश्चमकारश्च नादो बिन्दुश्च पञ्चमः ।
पञ्चात्मकं परं ब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते ॥७०

जो लोग सत्य लोक मे भी रहा करते हैं वे भी निरन्तर इसकी याचना किया करते हैं। जिसको तीर्थ निद्रा के लिये चाहते है वही यह श्री मणिकर्णिका है ॥६४॥ यह सकुल स्तम्भ श्री कालभैरव जहाँ पर क्षेत्र मे पाप करने वालो पर शासन किया करते हैं और तीव्र यातना को दिखाया करते हैं,अन्यत्र किया हुआ पाप काशी के निरीक्षण ही से नष्ट होजाते हैं। किन्तु काशी मे रहकर जो पाप किये जाते है उनकी यातना अत्यन्त दारुण होती है। एक वहाँ पर कपाल मोचन नाम वाला तीर्थ है और वह भी परम पावन होता है, जहाँ पर भैरव के हाथ से विधाता का कपाल गिर गया था। जिस तीर्थ मे स्नान किये हुए नरोत्तम तीनो प्रकार के ऋणो से मुक्त हो जाया करते हैं। इसी लिये विशुद्धि का उत्पन्न करने वाला यह ऋण मोचन तीर्थ है। प्रणव नाम वाला परम ब्रह्म जहाँ पर नित्य ही प्रकाश किया करता है। यह पञ्चायतन से युक्त अद्भुत ॐकारेश होता है। अकार,उकार,मकार,नाद और पाँचवा बिन्दु इस तरह से यह पचात्मक अर्थात् पाँच मे स्वरूप वाला परम ब्रह्म जहाँ पर नित्य ही प्रकाश किया करता है ॥६५-७०॥

एषा मत्स्योदरी रम्या यत्स्नातो मानवोत्तमः ।
मातुर्जठरदरीं न विशेदेव निश्चयः ॥७१
त्रिलोचनो ऽत्र भगवान्कुर्यादेव त्रिलोचनम् ।
निजभक्तं कृपायुक्तस्त्वपि देशान्तरस्थितम् ॥७२
असौ कामेश्वरो देवो यः कामान्पूरयेत्सताम् ।
दुर्वाससोऽपि यत्रापन्निजकाममहोदयम् ॥७३
स्वयंलीनो महेशोऽत्र समस्तकामसमृद्धये ।
तस्मात्स्वर्लीनसञ्ज्ञास्य देवदेवस्य शूलिनः ॥७४
वाराणस्यां महादेवो यः पुराणेषु पठ्यते ।
क्षेत्राभिमानी भगवांस्तत्प्रसादोऽयमद्भुतः ॥७५
असौ स्कन्देश्वरो देवः अक्षयायद्विलोकनात् ।
आजन्मब्रह्मचर्यस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७६
विनायकेश्वरश्चात्र सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
यत्सेवया प्रणश्यन्ति नृणां सर्वे विनायकाः ॥७७

यह मत्स्योदरी है जो बहुत ही रम्य है और जिसमें स्नान किया हुआ परम [illegible] मानव फिर अपनी माता के उदर रूपिणी गुफा में कभी प्रवेश ही नहीं किया करता है यह परम निश्चित बात है अर्थात् निश्चय पूर्वक फिर उसका मोक्ष हो जाने से दूसरा जन्म ही इस संसार में नहीं हुआ करता है ॥७१॥ परमकृपा से युक्त भगवान् त्रिलोचन फिर अपने भक्त को चाहे वह किसी भी सुदूर देश में ही स्थित क्यों न हो उसे त्रिलोचन ही बना दिया करते हैं ॥७२॥ यह कामेश्वर देव हैं जो सत्पुरुषों के कामों को परिपूर्ण कर दिया करते हैं जहाँ पर दुर्वासा ऋषि भी अपनी कामनाओं के महान् उदय को प्राप्त हो गया था ॥७३॥ यहाँ पर अपने भक्तों की कामनाओं की समृद्धि के लिये भगवान महेश्वर स्वयं ही लीन रहा करते हैं। इसी कारण से इन देवों के देव भगवान् शूली की 'स्वर्लीन'—यह संज्ञा होती है ॥७४॥ वाराणसी में महादेव हैं जो पुराणों में पढ़े जाया करते हैं यह क्षेत्र के पूर्ण अभिमान रखने वाले भगवान् हैं उनका प्रसाद यह अत्यन्त अद्भुत होता है ॥७५॥ यह

स्कन्देश्वरदेव है। श्रद्धा से जिसका दर्शन करने से मानव आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करने के फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥७६॥ यह विनायकेश्वर हैं जो समस्त प्रकार की सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं जिनकी सेवा करने से मनुष्यों के सभी विनायक नष्ट हो जाया करते हैं अर्थात् फिर उनको कोई भी विघ्न नहीं हुआ करते हैं ॥७७॥

इयं वाराणसी देवी साक्षान्मूर्त्तिमयी शुभा।
यस्या विलोकनात्पुंसां भूयो नो गर्भसम्भवः ॥७८
पार्वतीश्वरलिङ्गस्य महदायतनं त्विदम्।
यत्र नित्यं महेशानो गौर्यासह विमुक्तिदः ॥७९
एप भृङ्गीश्वरः श्रीमान्महापातकनाशनः।
जीवन्मुक्तोऽभवद् भृङ्गी यस्य लिङ्गस्य सेवया ॥८०
चतुर्वेदेश्वरश्चैष चतुर्वेदधरो विधिः।
लभेद्यद्वीक्षणाद्विप्रो वेदाध्ययनजं फलं ॥८१
यज्ञैः संस्थापितश्चैतल्लिङ्गं यज्ञेश्वराभिदम्।
मदर्चनाल्लभेन्मर्त्यः सर्वयागफलं महत् ॥८२
पुराणेश्वरनामैतल्लिङ्गमष्टादशांगुलम्।
अष्टादशानां विद्यानांस्यादाधारोयदीक्षणात् ॥८३
धर्मशास्त्रेश्वरश्चाय स्मृतिभिश्च प्रतिष्ठितः।
स्मृत्यध्ययनजम्पुण्यं यद्विलोकनतो भवेत् ॥८४

यह वाराणसी देवी हैं जो परम शुभ मूर्तिमयी साक्षात् देवी हैं जिनके दर्शन का एक बार ही भोका ले लेने पर पुनः गर्भवास से रहने की कोई भी सम्भावना ही नहीं रहा करती है ॥ ७८॥ पार्वतीश्वर लिंग का यह महान आयतन है। जहाँ पर नित्य ही महेशान प्रभु गौरी देवी के साथ विमुक्ति को प्रदान करने वाले विराजमान रहा करते हैं ॥७९॥ यह इस क्षेत्र में श्रीमान् भृङ्गीश्वर भगवान हैं जो महान महापातकों के नाश करने वाले हैं जिस लिंग की सेवा से भृङ्गी जीवन्मुक्त हो गये थे ॥८०॥ यहाँ पर यह चतुर्वेदेश्वर भगवान् हैं जो चारों वेदों के धारण करने वाले विधाता स्थित रहा करते हैं जिनके दर्शन करने से ही विप्र वेदों के

अध्ययन से समुत्पन्न फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥८१॥ यह लिंग यशों के द्वारा संस्थापित किया गया है जो धर्मेश्वर नाम वाले हैं जिनके दर्शन से मनुष्य सम्पूर्ण भागों के महान् फलों को प्राप्त कर लिया करता है ॥८२॥ यहाँ पर यह एक पुराणेश्वर नाम वाला अठारह स्तम्भ के प्रमाण वाला शिव है जिनके केवल दर्शन ही करने से अष्टादश विद्याओं का पूर्ण साधार मनुष्य हो जाया करता है। यहाँ पर यह एक धर्मशास्त्रेश्वर प्रभु भी है जो स्मृतियों के द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं। स्मृतियों के अध्ययन से उत्पन्न होने वाला पुण्य उनके दर्शन मात्र से ही प्राप्त हो जाया करता है ॥८३-८४॥

५३—योगाख्यान वर्णन

वेदानुवचनं ज्ञात्वा ब्रह्मचर्यं तपो दमः ।
श्रद्धोपवासः स्वातन्त्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥१
स हि सर्वैर्विजिज्ञास्य आत्माश्रमवर्तिभिः ।
श्रोतव्यश्चाप्यमन्तव्यो द्रष्टव्यश्च प्रयत्नतः ॥२
आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते न हि ।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिध्यति ॥३
नारण्यसेवया योगो न नाना ग्रन्थ चिन्तनात् ।
न दानैर्व्रतैर्वापि न तपोभिर्नवा मखैः ॥४
न च पद्मासनाद्योगो न वा नासाग्रवीक्षणात् ।
न शौचेन न मौनेन न मन्त्राराधनैरपि ॥५
अभियोगात्तथाभ्यासात्तत्रैव च विनिश्चयात् ।
पुनः पुनर्निर्वेदात्सिध्येद्योगो न चान्यथा ॥६

वेदों के अनुवचन को जानकर ब्रह्मचर्य-तप-दम-श्रद्धा-उपवास और स्वातन्त्र्य आत्मा के ज्ञान के हेतु हैं ॥१॥ समस्त आश्रमों में रहने वाले लोगों के द्वारा आत्मा ही जानने के योग्य है अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त करना ही सर्वोपरि होता है। अतएव प्रयत्नपूर्वक आत्मा को श्रवण

करना चाहिए—उसका ही मनन करना चाहिए और उस आत्मा का दर्शन प्राप्त करना चाहिए ॥२॥ इसी आत्मा के ज्ञान से मुक्ति हुआ करती है और वह भी योग के बिना नहीं होती है तथा वह योग चिर काल तक अभ्यास करने से ही सिद्ध हुआ करता है ॥३॥ केवल अरण्य में अपना आश्रय बना लेने मात्र से योग की सिद्धि नहीं हुआ करती है और अनेक ग्रन्थों के चिन्तन करने से भी योग सिद्ध नहीं हुआ करता है। दानों से—व्रतों से—तपश्चर्याओं से और मखों से भी योग की सिद्धि नहीं है ॥४॥ यह योग पद्मासन बाँधकर बैठने से भी सिद्ध नहीं होता और नासिका के अग्र भाग के देखने से भी योग की संसिद्धि नहीं होती है। शौच, मौन व्रत, और मन्त्रों के समाराध आदि से यह योग सिद्ध नहीं होता है ॥५॥ अभियोग से अर्थात् सभी ओर मन को हटाकर एक निष्ठ उसकी वृत्ति के करने से—निरन्तर उसका ही अभ्यास करने से पूर्ण रूप से निश्चय करने से तथा बारम्बार निर्वेद से ही इस योग की सिद्धि हुआ करती है अन्य किसी भी प्रकार से यह कभी भी सिद्ध नहीं होता है ॥६॥

आत्मक्रीडस्यसततं सदात्म मिथुनस्य च ।
आत्मन्येव सुतृप्तस्य योगसिद्धिर्नदूरत. ॥७
अथात्मव्यतिरेकेण द्वितीय यो न पश्यति ।
आत्मारामः स योगीन्द्रो ब्रह्मीभूतो भवेदिह ॥८
सयोगस्त्वात्मनस्तोर्योग इत्युच्यते बुधैः ।
प्राणापानसमायोगो योग इत्यपि केचन ॥९
विषयेन्द्रियसंयोगो योग इत्यप्य पण्डितैः ।
विषयासक्तचित्तानां ज्ञान मोक्षश्च दूरतः ॥१०
दुर्निवारा मनोवृत्तिर्यावत्सा न निवर्तते ।
किञ्चदन्यपि योगस्य तावन्नेदोयसी कुत. ॥११
वृत्तिहीनं मन कृत्वा क्षेत्रज्ञे परमात्मनि ।
एकीकृत्य विमुच्येत योगयुक्त स उच्यते ॥१२

बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभ्यन्तराणि वै ।
मनस्येवेन्द्रियग्रामं मनश्चात्मनि योजयेत् ॥१३
सर्वभावविनिर्मुक्तः क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ।
एतद्ध्यानञ्च योगश्च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥१४

निरन्तर अपनी आत्मा के ही साथ क्रीड़ा करने वाले का और सदा आत्मा के ही साथ जोड़ा बनाये रखने वाले का तथा अपनी आत्मा में ही सुतृप्त रहने वाले को योग की सिद्धि दूर नहीं रहा करती है ॥७॥ जो अपनी आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अन्य किसी को कहीं पर भी नहीं देखा करता है वही आत्मा राम अर्थात् आत्मा में रमण करने वाला योगीन्द्र और ब्रह्मीभूत है । आत्मा और मन के साथ में संयोग होने का ही नाम बुध पुरुषों के द्वारा योग कहा जाता है । कुछ विद्वानों के द्वारा प्राण वायु और अपान वायु के संयोग को भी योग कहा जाया करता है ॥८-९॥ जो अपण्डित हैं उनके द्वारा विषयेन्द्रिय संयोग भी योग कहा गया है । सिद्धान्त यह है कि जो विषयों में समासक्त चित्त वाले पुरुष हैं उनको ज्ञान और योग तथा मोक्ष बहुत दूर की वस्तु है तात्पर्य यह है कि उनको यह हो ही नहीं सकता है । यह मन की वृत्ति बहुत ही दुर्निवारणा किये जाने वाली है और जब तक यह निवृत्त नहीं होती है तब तक इस योग की किम्वदन्ती भी सन्निकृष्ट नहीं होती है । इस मन को वृत्तियों से हीन करके उस केवल परमात्मा में एकीकरण करके जो विमुक्त होता है वही योग युक्त कहा जाता है ॥१०-१२॥ आकाश के समान सब को बहिर्मुख करके और इन्द्रियों के समुदाय को मन में ही निहित करे और फिर उस मन को आत्मा में योजित कर देना चाहिए ॥१३॥ सब भावों से विनिर्मुक्त उस क्षेत्र को ब्रह्म में न्यस्त कर देवे । बस, इतना ही ध्यान और योगशास्त्र है । शेष अन्य जो इस विषय में लिखा या कहा गया है यह सभी ग्रन्थों का विस्तार मात्र है । सार एवं तत्त्व की वस्तु तो केवल इतना ही होता है ॥१४॥

यन्नास्ति सर्वलोकेषु तदस्तीति विरुध्यते ।
कथ्यमानं तदन्यस्य हृदयेनावतिष्ठते ॥१५

स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जात्यन्ध इव वर्तिकाम् ॥१६
नित्याभ्यसनशीलस्य स्वसंवेद्यं हि तद्भवेत् ।
तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥१७
क्षणमप्येकमुदकं यथा न स्थिरतामियात् ।
वाताहतं यथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥१८
अतोऽनिलं निरुन्धीत चित्तस्य स्थैर्य हेतवे ।
मरुन्निरोधनार्थाय षडङ्गं योगमभ्यसेत् ॥१९
आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥२०
आसनानीह तावन्ति यावन्त्यो जीवयोनयः ।
सिद्धासनमिदं प्रोक्तं योगिनो योगसिद्धिदम् ॥२१

जो समस्त लोकों में नहीं है वह है ऐसा जो कथन है वही विशुद्ध होता है। वह काम का कथ्यमान हृदय में कभी भी अवस्थित नहीं हुआ करता है ॥१५॥ जिस प्रकार से कुमारी स्त्री का सुख होता है उसी प्रकार से वह ब्रह्म स्वसंवेद्य ही होता है अर्थात् उसके आनन्द का अनुभव अपने ही द्वारा करने के योग्य हुआ करता है। जो योगी नहीं वह उस ब्रह्मानन्द को कभी भी नहीं जानता है जिस तरह से जन्मान्ध पुरुष वर्तिका का ज्ञान नहीं रखता है। जो नित्य ही अभ्यास करने के स्वभाव वाला होता है उसी को स्वयं वह जानने के योग्य होता है। वह परब्रह्म इतना सूक्ष्म है कि उस सनातन का निर्देश नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार से वायु से आहत जल एक क्षण भी यथा स्थान पर स्थिर नहीं रहा करता है उसी भाँति ठीक इस मानव के चित्त की दशा हुआ करती है। अतएव इस महा चंचल चित्त का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। इसीलिए इस चित्त की स्थिरता के लिए प्राण वायु का निरोध करे अर्थात् प्राणायाम करना चाहिए। इस वायु के निरोध करने के लिए षडङ्ग (छै अंगों वाले) योग का अभ्यास करे ॥१६-१९॥ ये छै अङ्ग ये हैं—आसन—प्राणायाम—प्रत्याहार—धारणा—ध्यान और

समाधि–ये ही योग के छै अंग हुआ करते हैं ॥२०॥ यहाँ पर उतने ही आसन होते हैं जितनी ये जीव योनियाँ हुआ करती हैं। योगी के योग की सिद्धि को प्रदान करने वाला यह सिद्धासन कहा गया है ॥२१॥

एतदभ्यसनान्नित्यं कर्मदार्ढ्य मवाप्नुयात् ॥२२
दक्षिणं चरणं न्यस्य वामोरूपरि योगवित्।
याम्योरूपरि वामं च पद्मासनमिदं विदुः ॥२३
कराभ्यां धारयेत्पश्चादंगुष्ठौ दृढबन्धवित्।
भवेत्पद्मासनादस्मादभ्यासाद् दृढविग्रहः ॥२४
अथ वाह्यासने यस्मिन्सुखमस्योपजायते।
स्वस्तिकादौ तदभ्यास्य योगं युञ्जीत योगवित् ॥२५
न तोय वह्नि सामीप्ये न जीर्णारण्य गोष्ठयोः।
नदं शमशकाकीर्णे न चैत्येन च चत्वरे ॥२६
केशभस्म तुषाङ्गारकीकसादि प्रदूषिते।
नाभ्यसेत्पूतिगन्धादौ न स्थाने जन संकुले ॥२७
सर्वबाधाविरहिते सर्वेन्द्रियसुखावहे।
मनः प्रसादजनने सग्धूपामोदमोदिते ॥२८

इसके नित्य अभ्यास करने से कर्म की दृढ़ता को प्राप्त हुआ करता है ॥२२॥ योग के वेत्ता पुरुष को चाहिए कि अपने दाहिने चरण को बाँये ऊरु के ऊपर रक्खे और याम्य ऊरू के ऊपर बाँये चरण को रक्खे —इसी प्रकार से स्थिति बनाकर बैठने के आसन को पद्मासन कहा करते है। दृढ़ बन्ध के वेत्ता को पीछे दोनों अँगूठों को हाथों से पकड़ना चाहिये। इस प्रकार के बंधे हुए पद्मासन के अभ्यास से दृढ़ विग्रह वाला हो जाया करता है। इसके अनन्तर जिस बाह्यासन में इस अभ्यासी को सुख उत्पन्न हो जाता है। फिर स्वस्तिकादि में उसका अभ्यास करके योग के जानने वाले पुरुषों को योग का युञ्जन करना चाहिए ॥२३-२५॥ अब योगाभ्यास करने में निषिद्ध स्थलों को बताते हैं—जल के और अग्नि के समीप में कभी योगाभ्यास न करे। किसी जीर्ण (टूटे-फूटे पुराने) मकान में—जंगल में और गोष्ठ में भी योगाभ्यास नहीं करना

चाहिये। जो स्थान दश और मशकों से घिरा हुआ हो उसमें—चैत्य (श्मशान) में—चत्वर (खुले आँगन) में तथा केश, भस्म, तुषाङ्गार तथा कीकस आदि से दूषित स्थान में और दुर्गन्ध दोष वाले स्थान में एवं जनों से समाकीर्ण जगह में कभी योग का अभ्यास नहीं करना चाहिए। सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं से रहित—सभी इन्द्रियों को सुख देने वाले तथा मन को प्रसन्नता देने वाले और माला, धूप आदि से परम सुगन्धित स्थान में योग का अभ्यास करे ॥२६-२८॥

नातितृप्तः क्षुधार्तो न नविण्मूत्र प्रबाधितः।
नाध्वखिन्नो न चिन्तार्तो योगं युञ्जीत योगवित् ॥२९
ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्योत्तरं करम्।
उत्तान किञ्चदुन्नम्य वक्त्रं विष्टभ्य चोरसा ॥३०
निमीलताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत्।
तालुस्थाचलजिह्वश्च सम्वृतास्यः सुनिश्चलः ॥३१
सन्नियम्येन्द्रियग्राम नाति नीचोच्छ्रितासनः।
मध्यमचोत्तमचाथ प्राणायाममुपक्रमेत् ॥३२
चलेऽनिले चल सर्वं निश्चले तत्र निश्चलम्।
स्थाणुत्वमाप्नुयाद्योगी ततोऽनिल निरुन्धनात् ॥३३
यावद्देहे स्थितः प्राणोजीवितं तावदुच्यते।
निर्गते तत्र मरण ततः प्राणं निरुन्धयेत् ॥३४
यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चेतोनिराश्रयम्।
यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्काल भयं कुतः ॥३५

अब अभ्यासी को स्वयं कैसा होना चाहिये जब कि वह अभ्यास का प्रारम्भ करे—यह बतलाया जाता है—योग के ज्ञाता को योग का युञ्जन करने के समय अत्यन्त तृप्त नहीं होना चाहिये—क्षुधा से वह आर्त न हो तथा मल-मूत्र के उत्सर्ग करने की बाधा से युक्त न हो—मार्ग गमन के खेद से वह युक्त न हो अर्थात् श्रान्त न हो और किसी भी चिन्ता से ग्रस्त न होवे। ऐसी परम नितान्त शान्त अवस्था में अवस्थित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए। ऊरु में स्थित उत्तान चरण वाला सव्य में

उत्तर करके रखकर कुछ ऊंचा उन्नमित होकर उरःस्थल से मुख को निस्तब्ध करे और आँखें मूंदकर सत्व में समवस्थित होकर दाँतों को दाँतों से स्पर्श नहीं करना चाहिए। तालु में स्थित अचल जिह्वा वाला होकर मुख बन्द करके एक दम सुस्थल हो जावे। अपनी समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखकर रहे। आसन जो बैठने का हो वह न तो अधिक ऊंचा हो और न ज्यादा नीचा होवे। फिर मध्यम और उत्तम प्राणायाम करने का उपक्रम करना चाहिये। इस वायु से चचल होने पर सभी चमायमान होते हैं और जब यह निश्चल हो जाता है तो सब कुछ निश्चल हो जाया करते हैं। अनिल के अर्थात् प्राण वायु के निरोध करने पर सबका निरोध हो जाने से योगी स्थाणुता को प्राप्त हो जाता है। सूखे हुए पेड़ के मूल भाग को जो जमीन में कटे या उखड़े वृक्ष का होता है वही स्थाणु है। जब तक इस शरीर में प्राण स्थित रहता है तभी तक इस देह को जीवित कहा जाता है। इस प्राण वायु के शरीर से निकल जाने पर ही मरण होता है अतएव प्राणों का निरोध करना चाहिये। जब तक यह वायु इस देह मे बद्ध है और जिस समय तक चित्त निराश्रय होता है तथा जब तक भौंहों के मध्य में दृष्टि है तभी तक काल का भय कैसे हो सकता है अर्थात् ऐसी अभ्यास की दशा में कोई भी काल का भय होता ही नहीं है ॥२६-३५॥

कालसाध्वसतो यद्वा प्राणायामं सदाचरेत्।
योगिनः सिद्धिमापन्नाः सम्यक् प्राणनियन्त्रणात् ॥३६
मन्दो द्वादशमात्रस्तु मात्रालघ्वक्षरामता।
मध्यमो द्विगुणः पूर्वादुत्तमस्त्रिगुणस्ततः ॥३७
स्वेदं कम्पं विषादं च जनयेत्क्रमशस्त्वसौ।
प्रथमेन जयेत्स्वेदं द्वितीयेन तु वेपथुम् ॥३८
विषादं हि तृतीयेन सिद्ध प्राणोऽस्य योगिन।
भवेत्क्रमात्सन्निरुद्धः सिद्धः प्राणोऽस्य योगिना।
क्रमेण सेव्यमानोऽसौ नयते यत्र चेच्छति ॥३९

हठान्निरुद्धप्राणोऽय रोमकूपेषु निःसरेत् ।
देहं विदारयत्येष कुष्ठादिजनयत्यपि ॥४०

इस दारुण काल के भयसे भीत होकर ही सन्यासी प्राणायाम का सदा-परण करते हैं। योगीजन भली भाँति प्राण वायु का नियन्त्रण करके ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥३६॥ मन्द प्राणायाम उसे कहा जाता है जो द्वादश मात्रा वाला होता है और मात्रा लघु अक्षर वाली मानी गयी है। मध्यम प्राणायाम इस मन्द से दुगुना अर्थात् चौबीस मात्रा वाला होता है तथा उत्तम प्राणायाम तिगुना हुआ करता है। इसमें छत्तीस मात्राऐं होती हैं। यह प्राणायाम क्रम से स्वेद—कम्प और विषाद को उत्पन्न किया करता है। प्रथम में स्वेद पर जय प्राप्त करे। द्वितीय से वेपथु (कम्पन) को जीते और तीसरे से विषाद पर जय प्राप्त करे तभी योगी का प्राण सिद्ध होता है। योगी के द्वारा क्रम से सन्निरुद्ध प्राण सिद्ध हुआ करता है। क्रम से इसका सेवन किया जावे तो यह सेव्य भाव होकर वहीं पर योगी को पहुँचा दिया करता है जहाँ भी यह जाना चाहता है। दूर से निरुद्ध किया हुआ यह प्राणवायु रोमों के छिद्रों से निकलने लगता है। यह फिर देह को विदीर्ण करा दिया करता है और कुष्ठ आदि रोगों को भी उत्पन्न करा दिया करता है ॥३७-४०॥

तत्प्रत्यायितव्योऽसौ क्रमेणाऽरण्यहस्तिवत् ।
वन्यो गजो गजारिर्वा क्रमेण मृदुतामियात् ॥४१
करोतिशास्तृनिर्देशं न च तं परिलङ्घयेत् ।
तथा प्राणो हृदिस्थोऽय योगिनाक्रमयोगतः ।
गृहीतः सेव्यमानस्तु विश्रम्भमुपगच्छति ॥४२
षट्त्रिंशदङ्गुलो हंस. प्रयाण कुरुते बहिः ।
स व्यापसव्यमार्गेण प्रयाणात्प्राण उच्यते ॥४३
शुद्धमेति यदा सर्वं नाडीचक्रमनाकुलम् ।
तदैव जायते योगी क्षमः प्राणनिरोधने ॥४४

दृढासनो यथाशक्ति प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।
रेचयेदथ सूर्येण प्राणायामोऽयमुच्यते ॥४५
स्रवत्पीयूषधारौघं ध्यायंश्चन्द्रमन्वितम् ।
प्राणायामेन योगीन्द्र सुखमाप्नोति तत्क्षणात् ॥४६
रविणा प्राणमाकृष्य पूरयेदोदरी दरीम् ।
कुम्भयित्वाऽनलं पश्चाद्योगीचन्द्रेण रेचयेत् ॥४७
ज्वलज्ज्वलनपुञ्जाभं शीलयन्नुष्णगुं हृदि ।
अनेन याम्यायामेन योगीन्द्र धर्मभाग्भवेत् ॥४८
इत्थं मासत्रयाभ्यासादुभयायामसेवनात् ।
सिद्धनाडीगणो योगी सिद्धप्राणोऽभिधीयते ॥४९

क्रम से ही इसका प्रत्यायन करना चाहिए जैसे जंगली हाथी को क्रम पूर्वक ही प्रस्थापित किया जाया करता है। वन मे रहने वाला हाथी अथवा गज का शत्रु क्रम से ही मृदुता को प्राप्त हुआ करते हैं ॥४१॥ वह फिर अपने ऊपर शासन करने वाले के निर्देश किया करता है और फिर उसके आदेश का उल्लंघन नही किया करता है, ठीक उसी भाँति यह हृदय स्थल मे स्थित रहने वाला प्राण वायु है जो योगी के द्वारा योग के अभ्यास से क्रम पूर्वक गृहीत होता है और जब शनै २ यह सेव्यमान हो जाया करता है तो फिर पूर्ण विश्वास को प्राप्त कर लिया करता है। यह छत्तीस अंगुल के परिमाण वाला हम बाहिर प्रयाण किया करता है। सव्यापसव्य मार्ग से प्रयाण करने से ही यह प्राण कहा जाया करता है। जिस समय मे सम्पूर्ण नाड़ी चक्र अनाकुल होता हुआ शुद्धि को प्राप्त होता है तभी उस समय में प्राण के निरोध करने में योग समर्थ हुआ करता है। आसन पर दृढ़ता से बैठकर यथाशक्ति चन्द्र के द्वारा प्राण को पूरित करना चाहिए। सूर्यस्वर से प्राण वायु का रेचन करें—यही प्राणायाम कहा जाता है। योगीन्द्र को प्राणायाम के द्वारा स्रव करने वाले अमृत की धारा का समूह चन्द्र से समन्वित का ध्यान करते हुए वह उसी क्षण मे सुख की प्राप्ति किया करता है। सूर्य के द्वारा प्राणों का समाकर्षण करके उदर ही दरी को

पूरित करना चाहिए फिर कुम्भन करके अर्थात् प्राणवायु को रोककर के बहुत ही धीरे २ पीछे योगी को चन्द्र के द्वारा अर्थात् बाँये स्वर के द्वारा रेचन करना चाहिए। देदीप्यमान अग्नि के पुञ्ज की आभा के समान आभा वाले उमेश को हृदय में चीतन करते हुए इस प्राणायाम से योगीन्द्र कल्याण का अधिकारी होता है। इस प्रकार से तीन मास के अभ्यास से उभय याम (प्रहर) तक सेवन करने से जिसके नाड़ियों का गण सिद्ध हो जाता है वह योगी सिद्ध प्राण वाला कहा है ॥४२-४६॥

यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम् ।
नादाभिव्यक्तिरारोग्य भवेन्नाडी विशोधनात् ॥५०
प्राणोदेहगतोवायुरायामस्तन्निबन्धनम् ।
एकश्वासमयीमात्रा प्राणायामो निरुच्यते ॥५१
प्राणायामेऽधमेधर्मः कम्पो भवति मध्यमे ।
उत्तिष्ठेदुत्तमे देहो बद्धपद्मासनो मुहुः ॥५२
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्प्रत्याहारेण पातकम् ।
मनोधैर्यं धारणया ध्यानेनेश्वरदर्शनम् ॥५३
समाधिना लभेन्मोक्षं त्यक्त्वा धर्मं शुभाशुभम् ।
आसनेन वपुर्दार्ढ्यं पङ्क्तमिति कीर्तितम् ॥५४
प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः ।
प्रत्याहारैर्द्वादशभिर्धारणा परिकीर्तिता ॥५५
भवेदीश्वरसङ्गत्यै ध्यानं द्वादशधारणम् ।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ॥५६

नाड़ियों के विशोधन से जिस तरह वायु के इष्ट का धारण होता है और अनल का दीपन होता है, नाद की अभिव्यक्ति—आरोग्य होते हैं। प्राणवायु देह में गत होता है उसका निबन्धन ही आयाम होता है और एक श्वासमयी मात्रा प्राणायाम कहा जाता है। अधम प्राणायाम में धर्म होता है—मध्यम प्राणायाम में कम्प होता है और उत्तम प्राणायाम में बद्ध पद्मासन वाला यह देह बार २ ऊपर को उठता है। प्राणायामों के द्वारा दोषों को दग्ध करना चाहिए। प्रत्याहार के द्वारा

पातकों का दाह करें। धारणा के द्वारा मन को धैर्य देवे और ध्यान के द्वारा ईश्वर का दर्शन करना चाहिए। समाधि के द्वारा मोक्ष प्राप्त करें और शुभ तथा अशुभ धर्म का त्याग कर देवे। आसन के द्वारा शरीर की दृढ़ता होती है। इस प्रकार से यह षडङ्ग योग का वर्णन कर दिया गया है। बाहर प्राणायामों से प्रत्याहार उदाहृत किया गया है। बारह प्रत्याहारों से धारणा कही गई है। ईश्वर की शान्ति के लिये द्वादश धारणाओं का ध्यान होता है अर्थात् ध्यान में बारह धारणाएं हुआ करती हैं। बारह ध्यानों के द्वारा समाधि होती है। इसी को समाधि कहा जाता है ॥५०-५६॥

समाधि: परतो ज्योतिरनन्तं स्वप्रकाशकम्।
तस्मिन्दृष्टे क्रियाकाण्डं यातायातं निवर्तते ॥५७
पवने व्योमसम्प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान्।
घण्टादीनाम्प्रवाद्यानां ततः सिद्धिरदूरतः ॥५८
प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधिसमुद्भवः ॥५९
हिक्काश्वासश्च कासश्च शिरः कर्णाक्षिवेदना।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतीक्रमात् ॥६०
युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तञ्च पूरयेत्।
युक्तं युक्तञ्च बध्नीयादिरयं सिध्यति योगवित् ॥६१
इन्द्रियाणां हि चरिता विषयेषु यदृच्छया।
यत्प्रत्याहरणं युक्त्या प्रत्याहारः स उच्यते ॥६२
प्रत्याहरति य: स्वानि कूर्मोऽङ्गानीव सर्वतः।
प्रत्याहृति विधानेन सत्याद्विगतकल्मषः ॥६३

समाधि से परे स्व प्रकाशक अनन्त ज्योति होती है और उस ज्योति के दर्शन प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण क्रिया काण्ड और यातायात निवृत्त हो जाया करता है ॥५७॥ पवन के व्योम में सम्प्राप्त हो जाने पर महान् ध्वनि उत्पन्न हुआ करती है। यह ध्वनि घण्टा आदि प्रवाद्यों की होती है फिर उससे निकट ही में सिद्धि होती है ॥५८॥ युक्त प्राणायाम से समस्त

व्याधियों का क्षय होजाता है किन्तु अयुक्त योग के अभ्यास याग से सब व्याधियों की समुत्पत्ति हो जाया करती है ।।५६।। वायु के व्यतिक्रम के होने से हिचकी, श्वास, खाँसी, सिर दर्द, कानो में पीड़ा और आँखों का दर्द ऐसे अनेक दोष हो जाया करते हैं ।।६०।। युक्त युक्त वायु का त्याग करे और युक्त-युक्त ही इसको पूरित करना चाहिए तथा युक्त-युक्त ही इसका बन्धन करे, इसी प्रकार से योग के वेत्ता को सिद्धि हुआ करती है ।।६१।। यहच्छा से विषयों में इन्द्रियों के सञ्चरण करने पर जो उनका युक्ति से प्रत्याहरण किया जाता है वही प्रत्याहार कहा जाता है ।।६२।। जो अपनी समस्त इन्द्रियों को सभी ओर से कछुए के द्वारा अपने अङ्गों के समान प्रत्याहरण किया करता है और प्रत्याहरण के विधान से जो वह प्रत्याहरण होता है। ऐसा प्रत्याहरण करने वाला पुरुष विगत कल्मष हो जाया करता है अर्थात् उसके सभी पाप क्षीण होजाते हैं ।।६३।।

नाभिदेशेवसेद्भानुस्तालुदेशे च चन्द्रमा ।
वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रोग्रसेदूर्ध्वमुखोरविः ।।६४
करणन्तञ्चकर्तव्यं येन सा प्राप्यते सुधा ।
ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालुरूर्ध्वं भानुरधः शशी ।।६५
करणं विपरीताख्यमभ्यासादेव जायते ।।६६
काकचञ्चुवदास्येन शीतलं शीतलं पिबेत् ।
प्राणं प्राणविधानज्ञो योगी भवति निर्जरः ।।६७
रसनां तालुविवरे निधायोर्ध्वमुखोऽमृतम् ।
पिबन्निर्जरतां गच्छेद्दशपञ्चभिराप्य संशयः ।।६८
ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ।
मासार्धेन न सन्देहो मृत्युञ्जयति योगवित् ।।६९
सम्पीड्य रसनाग्रेणराजदन्तबिलं महत् ।
ध्यात्वामृतमयीं देवीं षण्मासेनकविर्भवेत् ।।७०

नाभि देश में भानु का निवास होता है और तालु देश में चन्द्रमा रहा करता है। चन्द्रमा अधोमुख होकर वर्षा किया करता है और सूर्य ऊर्ध्व मुख वाला होकर ग्रसता है। उस करण को करना चाहिए जिससे

सुधा की प्राप्ति को जाया करे। ऊर्ध्व में नाभि है और अधो भाग मे चन्द्रमा है। विपरीताख्य करण अभ्यास से ही हुआ करता है ॥६४-६६॥ काक (कौआ) की चञ्चु के समान मुख से शीतल-शीतल प्राण का पान करे। प्राण के विधान का ज्ञाता योगी निर्जर (देवता) अर्थात् वृद्धता से रहित हो जाया करता है ॥६७॥ तालु के छिद्र मे रसना को रखकर ऊर्ध्वमुख वाला होकर अमृत का चवन करते हुए निर्जरता को छं मास में ही प्राप्त हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो ऊपर की ओर जिह्वा करके स्थिर होकर सोम का पान किया करता है वह योग का वेत्ता अर्द्ध मास मे ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिया करता है, इस मे लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। महान् शोभित मन .विल को रसना के अग्र भाग से सम्पोडित करके शुभमयी देवी का ध्यान करके छंमास मे ही कवि होजाया करता है ॥६८-७०॥

अमृतापूर्णदेहस्य योगिनोर्द्विविवत्सरात् ।
ऊर्ध्वं प्रवर्ततेरेतो ह्यणिमादिगुणोदयम् ॥७१
नित्यं सोमकलापूर्णं शरीरं यस्य योगिनः ।
तक्षकेणापिदष्टस्यविष तस्य न सर्पति ॥७२
आसनेन समायुक्त. प्राणायामेन संयुतः ।
प्रत्याहारेण सम्पन्नो धारणामथचाभ्यसेत् ॥७३
हृदये पञ्चभूताना धारणा यत् पृथक् पृथक् ।
मनसो निश्चलत्वेन धारणासाभिधीयते ॥७४
हरितालनिभा भूमि लकारा सवेधसम् ।
चतुष्कोणा हृदि ध्यायेदेपास्यात् क्षितिधारणा ॥७५
कण्ठेऽम्बुतत्त्वमर्धेन्दु निभ विष्णुसमन्वितम् ।
वकारबीज कुन्दाभ ध्यायन्नम्बुजयेदिति ॥७६
तालुस्थमिन्द्रगोपाभ त्रिकोणरेफसयुतम् ।
रुद्रेणाधिष्ठित तेजोध्यात्वावह्निजयेदिति ॥७७
वायुतत्त्वं भ्रुवोर्मध्ये वृत्तमञ्जनसंनिभम् ।
यम्बीजमोशदेवस्य ध्यायन्वायुं जयेदिति ॥७८

योगाभ्यास करने वाले योगी के इस अमृत से परिपूर्ण देह का रेत ऊर्ध्व भाग को प्रवृत्त हो जाया करता है और फिर अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों के गुणों का उदय हो जाता है ॥७१॥ जिस योगी का नित्य ही सोम की कला से परिपूर्ण शरीर होता है उसको यदि साक्षात् स्वयं तक्षक सर्प भी दशन करे तो भी उस में विष का सर्पण नहीं होता है। आसन से समायुक्त, प्राणायाम से संयुत, प्रत्याहार से सुसम्पन्न होता हुआ धारणाका अभ्यास करना चाहिए। हृदय में पाँचों भूतों का पृथक्-पृथक् जो धारण करना है और वह भी मन के परम निश्चलता के भाव से किया जाता है। इसीलिये इसको धारणा कहा जाता है ॥७२-७४॥ हरि ताल के तुल्य ललकार और सर्वोत्तम चतुष्कोण भूमि का हृदय में ध्यान करे, यही क्षिति की धारणा कही जाती है। कण्ठ में अर्ध चन्द्र के समान विष्णु से समन्वित अम्बु (जल) का तत्व है। वकार उसका बीज है और वह कुन्द के पुष्प की आभा के सदृश आभा वाला है, इस भाँति अम्बु का ध्यान करना चाहिए। इसी से वह अम्बु के ऊपर जय प्राप्त करे ॥७५-७६॥ तालु में स्थित इन्द्र गोप के समान आभा वाला, त्रिकोण और रेफ किसी आभा से युक्त, रुद्र देव के द्वारा अधिष्ठित तेज का ध्यान करके वह्नि का जीतना चाहिए ॥७७॥ वायु तत्व को दोनों भौंहों के मध्य भाग में अञ्जन के सदृश वृत्ताकार ध्यान करे जिसका सबीज है और ईश देव से वह अधिष्ठित है—इसी रीति से ध्यान करते हुए वायु पर जय प्राप्त करे ॥७८॥

आकाशञ्चमरीचिवारिसदृश यद्ब्रह्मरन्ध्रस्थित
यन्नाथेन सदाशिवेन सहित शान्त हकाराक्षरम्।
प्राण तत्र विनीय पञ्चघटिकं चिन्तान्वित धारयेदेषा मोक्षकपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा ॥७९
स्तम्भनीप्लावनी चैव दहिनी भ्रामणीतथा
शामनीचभवन्त्येताभूतानांपञ्चधारणाः।
ध्येचिन्तायां स्मृतो धातुश्चिन्तातत्त्वे मुनिश्चला
यतद्ध्यानमिह प्रोक्तं सगुण निर्गुणद्विधा ॥८०

सगुणंवर्णभेदेन निर्गुणकेवलम्मतम् ।
समन्त्रं सगुणं विद्धि निर्गुणं मन्त्रवर्जितम् ॥८१

अन्तश्चेतो बहिश्चक्षुरवस्थाप्य सुखासनम् ।
समत्वञ्चशरीरस्यध्यानमुद्रातिसिद्धिदा ॥८२

नाश्वमेधेन तत्पुण्यं न च वै राजसूयतः ।
यत्पुण्यमेकध्यानेन लभेद्योगी स्थिरासनः ।८३

शब्दादीनाञ्च तन्मात्रा यावत्कर्णादिषु स्थिता ।
तावदेव स्मृतं ध्यानं स्यात्समाधिरतःपरम् ।।८४

धारणा पञ्चनाडीका ध्यानं स्यात्षष्टिनाडिकम् ।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिरिह भण्यते ।।८५

आकाश तत्त्व मरीचि के बारि का तुल्य है जो ब्रह्म रन्ध्र में स्थित है जिसका नाथ भगवान् सदाशिव है उन्हीं के सहित वह रहता है। परम शान्त उसका स्वरूप है तथा हकाराक्षर उसका बाज है जिससे वह समुत है। वहाँ पर पाँच घड़ी तक प्राण को लेजाकर ध्यान से युक्त होता हुआ धारणा करे। यह मोक्ष के कपाटों के पाटन करने में परम कुदाल नाम की धारणा कही गई है ॥७६॥ इस रीति से स्तम्भनी, प्लावनी, दहिनी, भ्रामणी और दामनी नामों वाली भूतों की पाँच धारणाऐं हुआ करती हैं। ध्यें चिन्ता के अर्थ मे धातु कहा गया है अतएव यह चिन्तन करने में सुनिश्चित होती है। इसीलिये यह ध्यान कहा गया है। यह सगुण का ध्यान और निर्गुण का ध्यान दो प्रकार का होता है ॥८०॥ सगुण वर्ण भेद से कहा गया है और निर्गुण का ध्यान केवल माना गया है। सगुण ध्यान मन्त्र के सहित होता है और निर्गुण का ध्यान मन्त्र से वर्जित होता है। चित को अन्तर्मुख और चक्षु को बहिर्मुख अवस्थित करके सुखासन और शरीर का समत्व जो होता है यही ध्यान की मुद्रा अत्यन्त सिद्धि को प्रदान करने वाली होती है ॥८१-८२॥ उस पुण्य को अश्वमेध यज्ञ से तथा राजसूय यज्ञ से भी मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता है जिस पुण्य को स्थिर आसन वाला होकर एक ध्यान से ही प्राप्त कर लिया करता है

॥८३॥ शब्दादि की तन्मात्रा जब तक चक्षुरादि में स्थित है तभी तक उसको ध्यान कहा गया है। इसके पश्चात् तो फिर समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाया करती है ॥८४॥ धारणा पञ्च नाडी वाली होती है और ध्यान साठ नाड़ियों वाला होता है। समाधि बारह दिन की होती है—यहाँ पर ऐसा ही कहा जाता है ॥८५॥

जलसैन्धवयोः साम्यं यथा भवति योगतः।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरिहभण्यते ॥८६
यदासंक्षीयते प्राणो मानसञ्च प्रलीयते।
तदा समरसत्वं यत्समाधिरिहोच्यते ॥८७
यत्समत्वंद्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः।
स नष्टसर्वसङ्कल्पः समाधिरभिधीयते ॥८८
नात्मानंनपरं वेत्ति न शीतं नोष्णमेव च।
समाधियुक्तो योगीन्द्रोनसुखंन सुखेतरत् ॥८९
बाध्यते नैवकालेन लिप्यते नैव कर्मणा।
भिद्यते न च शस्त्रास्त्रैर्योगीयुक्त समाधिना ॥९०
युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टोहि कर्मसु।
युक्तनिद्रावबोधश्च योगीतत्त्वं प्रपश्यति ॥९१

जिस प्रकार से जल और सैन्धव का साम्य योग से होता है उसी रीति से आत्मा और मन का योग अर्थात् एकता का हो जाना ही यहाँ पर समाधि कही जाती है ॥८६॥ जिस समय में प्राण संक्षीण हो जाता है और मानस प्रलीन होजाया करता है उसी समय में समरसता होती है जिसको यहाँ पर समाधि कहा जाया करता है ॥८७॥ जो जीवात्मा और परमात्मा दोनों का यहाँ पर समत्व होजाता है और जिस में सभी संकल्प नष्ट होजाया करते हैं उसी अवस्था का नाम यहाँ पर समाधि कहा जाता है ॥८८॥ समाधि में निरत हुआ योगी न तो आत्मा का ज्ञान उसे रहता है और न पर को ही वह जानता है—शीत और उष्ण का भी उसे ज्ञान नहीं होता है। समाधि में युक्त योगी को सुख तथा दुःख का भी कुछ ज्ञान नहीं रहा करता है। वह समाधिस्थ योगी काल से बाध्यमान

नहीं होता है और कर्म से भी लिप्त नहीं करता है। शस्त्रों से भी उसका भेदन नहीं किया जा सकता है। समाधि से युक्त रहने वाले योगी का ऐसा ही अद्भुत प्रभाव होता है ॥८६-९०॥ जो योगी युक्त आहार और विहार वाला होता है तथा कर्मों में भी युक्त चेष्टाओं वाला रहा करता है एवं युक्त निद्रा तथा उच्च बोध से युत है वही योगी तत्त्व का साक्षात्कार किया करता है ॥९१॥

तत्त्वंविज्ञानम मन्दम्ब्रह्मब्रह्मविदोविदुः ।
हेतुदृष्टान्तरहित वाङ्मनोऽग्यमगोचरम् ॥९२
तत्र योगी निरालम्बे निरातङ्के निरामये ।
षडङ्गयोगविधिना परेब्रह्मणि लीयते ॥९३
यथा घृते घृतं क्षिप्तं घृतमेव हि तद्भवेत् ।
क्षीरेक्षीरं तथा योगी तत्रतन्मयता व्रजेत् ॥९४
अनसं जातपानीयैविदध्यादङ्गमर्दनम् ।
त्यजेत्कटुम्ल लवणं क्षीरभोजी सदा भवेत् ॥९५
ब्रह्मचारी जितक्रोधो जितलोभो विमत्सरः ।
अब्दमित्थं सदाभ्यासात्म योगीति निगद्यते ॥९६
महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम् ।
मूलबन्धन्तुयोवेत्तिसयोगीयोगसिद्धिभाक् ॥९७
शोधननाडीजालस्य घटनञ्चन्द्रसूर्ययोः ।
रसानां शोषणस्म्यङ्महामुद्राभिधीयते ॥९८

ब्रह्म के वेत्ता लोग हेतु और दृष्टान्त से रहित, मन वाणी के अगोचर, विज्ञान और आनन्द स्वरूप ब्रह्म तत्त्व को जानते हैं वहीं पर योगी निरालम्ब, निरातङ्क, निरामय परब्रह्म में षडङ्ग योग की विधि से लीन हो जाया करता है। जिस प्रकार से घृत में क्षिप्त हुआ घृत वह घृत ही हो जाया करता है कोई भी दोनों में भेद नहीं रहा करता है और इसी तरह से क्षीर में क्षिप्त क्षीर ही हुआ करता है और तन्मयता को प्राप्त हो जाया करता है। बिना आलस्य के जात जलों से अङ्गों का योगी को मर्दन करना चाहिए। योगी को उष्ण, लवण का त्याग कर देना चाहिए और

सब क्षीर का भोजन करने वाला रहना चाहिए। जो सदा ब्रह्मचारी, क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला, लोभ को जीत लेने वाला, मत्सरता से रहित होकर एक वर्ष पर्यन्त सदा अभ्यास करने से वह व्यक्ति योगी कहा जाया करता है। जो महामुद्रा, नभो मुद्रा, उड्डीयान, जलन्धर और मूलबन्ध को भली-भाँति जानता है वही योगी योग की सिद्धि का पूर्ण अधिकारी हुआ करता है। नाड़ियों के जाल का शोधन और चन्द्र-सूर्य दोनों का घटन, रसों का शोषण जिसमें हुआ करता है वही महामुद्रा कही जाया करती है ॥६२-६८॥

योनिं वामाङ्घ्रिणाऽऽपीड्य कृत्वा वक्षस्थले हनुम् ।
हस्ताभ्यां प्रसृतम्पादं धारयेद्दक्षिणं चिरम् ॥९९
प्राणेन कुक्षिमापूर्य चिरं संरेचयेच्छनैः ।।
एषप्रोक्ता महामुद्रा महाघोघविनाशिनी ॥१००
चन्द्राङ्गे तु समभ्यस्य सूर्याङ्गे पुनरभ्यसेत् ।
यावत्तुल्या भवेत्सङ्ख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥१०१
नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपिनीरसाः ।
अपिचोरं विषम्पीतम्पीयूषमिवजीर्यति ॥१०२
क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ।
तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्राञ्चयो भ्यसेत् ॥१०३
कपालकुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा ।
भ्रुवोरन्तर्गतादृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥१०४
न पीड्यते रोगेण न च लिप्येत कर्मणा ।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥१०५

बाम चरण से योनि का सम्पीडन करके और वक्षःस्थल में ठोड़ी लगा कर दोनों हाथों से प्रसृत दक्षिण पैर को चिरकाल तक धारण करना चाहिए ॥९९॥ प्राण से कुक्षि को आपूरित करके चिरकाल पर्यन्त शनैः शनैः भली-भाँति रेचन करे। इसी को महामुद्रा कहा गया है जो कि महान् अघों के ओघ का विनाश करने वाली होती है। इसी प्रकार से चन्द्राङ्ग में भली-भाँति अभ्यास करके फिर सूर्याङ्ग में अभ्यास करना

चाहिए। जब तक मृत्यु संख्या हो तब तक करे फिर मुद्रा का विसर्जन कर देना चाहिए ॥१००-१०१॥ न तो कोई पत्थर (हितकर भोजन) है और न कुछ अपथ्य ही है। सभी रस भी नीरस हो जाते हैं। घोर विष भी पिया जावे और उसे पीयूष की ही भाँति जीर्ण कर जाता है। क्षय, कुष्ठ, उदावर्त, गुल्म और अजीर्ण जिनमें प्रमुख हैं इन समस्त व्याधियों के दोष उस योगाभ्यासी के क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं जो महामुद्रा का अभ्यास किया करता है। कपाल के कुहर में जिह्वा प्रविष्ट हुई हो और प्रतिपरीत गमन करने वाली हो तथा दृष्टि दोनों भौहों के अन्तर्गत हो ऐसी इस मुद्रा को खेचरी मुद्रा कहते हैं। जो इस खेचरी मुद्रा को जानता है वह रोगों के समुदाय से पीड़ित नहीं होता है और न कर्म से ही लिप्त हुआ करता है, उसको काल के द्वारा भी बाधा नहीं दी जाया करती है ॥१०२-१०५॥

चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खेगता ।
तेनैषा खेचरीनाम मुद्रासिद्धनिषेविता ॥ ०६
यावद्विन्दु. स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ।
यावद् बद्धा नभोमुद्रा तावद् विन्दुर्नगच्छति ॥१०७
उड्डीनंकुरुतेयस्वोदहोरात्रं महाखगः ।
उड्डीयानन्ततः प्रोक्तं तत्र बन्धो विधीयते ॥१०८
उठरेपश्चिमं तानंनाभेरूर्ध्वञ्चधारयेत् ।
उड्डीयानो ह्ययम्बन्धो मृत्योरपिभय त्यजेत् ॥१०९
बध्नातिहिशिराजालमधोगामिनभोजलम् ।
एषजालन्धरोबन्ध.कण्ठेदुःखौघनाशनः ॥११०
जालन्धरे कृतेबन्धे कण्ठसङ्कोचलक्षणे।
न पीयूषपतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ॥१११
पार्ष्णिभागेन सम्पीड्ययोनिमाकुञ्चयेद्गुदम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूलबन्धोविध यते ॥११२
अपानप्राणयोरैक्ये क्षयो मूत्रपुरीषयोः ।
युवा भवतिवृद्धोऽपि सततम्मूलबन्धनात् ॥११३

खेचरी मुद्रा के अभ्यास करने वाले पुरुष का चित्त तो आकाश में सञ्चरण किया करता है और आकाश में गई हुई जिह्वा भी संचरण किया करती है इसी कारण से इस मुद्रा का नाम खेचरी पड़ गया है और यह मुद्रा सिद्धों के द्वारा निषेवित हुआ करती है ॥१०६॥ जब तक इस देह में बिन्दु स्थित रहा करता है तब तक मृत्यु का भय कहाँ है अर्थात् मौत का भय होता ही नहीं है। जब तक नभोमुद्रा बद्ध होती है तब तक बिन्दु नहीं जाया करता है ॥१०७॥ जो महान् खग महोराज उड्डीन को किया किया करता है इसी कारण से इस मुद्रा को उड्डीयान नाम से कहा गया है। वहाँ पर बन्ध किया जाता है ॥१०८॥ उदर में पश्चिम भाग को नाभि के ऊर्ध्व भाग में धारण करना चाहिए। यही उड्डीयान बन्ध होता है जिसे मृत्यु के भी भय को त्याग देना चाहिए ॥१०९॥ अधोगामी नभो जल शिराओं के जाल को बाँध लिया करता है। यही जालन्धर बन्ध होता है जो कण्ठ में दुःखों में ओघ का नाश करने वाला है ॥११०॥ कण्ठ के सङ्कोच लक्षण वाले जालन्धर बन्ध के करने पर न तो पीयूष अग्नि में गिरा करता है और न वायु ही प्रधावन करता है ॥१११॥ पार्ष्णि भाग से योनि का सम्पीडित करके गुद को आकुञ्चित करना चाहिए। अपान वात को ऊर्ध्व भाग की ओर आकर्षित करना चाहिए। यही मूल बन्ध निहित किया जाता है ॥११२॥ अपान वायु और प्राण वायु इन दोनों की एकता हो जाने पर मूत्र तथा मल का क्षय हो जाया करता है। जो कोई भी वृद्ध भी होता है तो वह युवा होजाया करता है यदि निरन्तर इस मूल बन्ध के करने का ऐसा महान् प्रभाव होता है ॥११३॥

इतियोगः समाख्यातो मयातेद्विविधो मुने !।
सषडङ्गः समुद्रश्च मुनत्रयेशम्भुभाषित ॥११४
यावन्नेन्द्रियवैकल्य यावद्व्याधिर्न बाधते ।
यावत्कालविलम्बोऽस्ति तावद्योगरतो भवेत् ॥११५
उभयोर्योगयोर्मध्येकाशीयोगोऽयमुत्तमः ।
काशीयोगमभ्यस्यप्राप्नुयाद्योग मुत्तमम् ॥११६

आधिव्याधिसहायिन्या जरया मृत्युलिंगया ।
कालं निकटतो ज्ञात्वा काशीनाथं समाश्रयेत् ॥११७

हे मुने ! इस प्रकार से मैंने यह योग दो प्रकार का आपको बतला दिया है। यही योग छः अङ्गों वाला होता है और उपयुक्त मुद्राओं से भी समन्वित हुआ करता है। भगवान् शम्भु ने इसी योग को मुक्ति की प्राप्ति करने के लिये कहा है ॥११४॥ जिस समय तक इन इन्द्रियों में विकलता की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् ये विषयों के ग्रहण करने में असमर्थ नहीं होती है और जब तक इस शरीर को व्याधियों के द्वारा बाधा नहीं होती है तथा जब तक कराल काल का विलम्ब है अर्थात् मृत्यु का समय प्राप्त नहीं होता है तभी तक मनुष्य को योग के अभ्यास करने में रत हो जाना चाहिए ॥११५॥ इन दोनों प्रकार के योगों के मध्य में यह काशी का योग सर्वोत्तम होता है। इस काशी के योग का अभ्यास करके उत्तम योग को प्राप्त करना चाहिए। आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक रोग) जिस की सहायता करने वाली हैं ऐसी वृद्धता (बुढ़ापा) से जो कि मृत्यु के समीप में होने का एक संकेत है अपने अन्त काल को अति निकट में ही जानकर भगवान् काशी के स्वामी श्री विश्वनाथ का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥११६-११७॥

५४—दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णन

गभस्तिमालिनि गते काशीं त्रैलोक्यमोहिनीम् ।
पुनश्चिन्तामवापोच्चैर्मन्दरस्थोमुनेहर ॥१
नायाप्यायान्ति योगिन्यो नाद्याप्यायाति तिग्मगुः ।
प्रवृत्तिरपि मे काश्याश्चित्रमत्यन्तदुर्लभा ॥२
किमत्रचित्रं यत्काशी मदीयमपि मानसम् ।
निश्चलं चञ्चलयति गणना केतरेसुरे ॥३
यथाक्षिपमहंकामं त्रिजगज्जित्वरं दृशा ।
अहो काश्यभिलापोऽयमामेवदनुयात्तराम् ॥४

काशीप्रवृत्तिमन्वेष्टुं कम्वा प्रहिणुयामितः ।
ज्ञानु कएवनिपुणो यतः स चतुराननः ॥५
इत्याहूय विधानारं बहुमानपुरःसरम् ।
तत्रोपवेश्य श्रीकण्ठः प्रोवाच चतुराननम् ॥६
योगिन्य प्रं पिता.पूर्वंप्रे पितोऽथसहस्रगु ।
नाद्यापितेनिवर्तन्तेकाश्याः कमलसम्भव ॥७

भगवान् श्री स्कन्द ने कहा—हे मुनिवर ! त्रैलोक्य को मोहित करने वाली काशी पुरी में गभस्ति माली भगवान् भास्कर के जाने पर मन्दरगिरि पर समवस्थित भगवान् हर पुनः बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे कि आज तक भी योगिनियाँ नहीं आनी हैं और अभी तक तिग्मगु भी नहीं आया है । बड़ी विचित्र बात है कि मेरी काशीपुरी की प्रवृत्ति भी परमन्त दुर्लभ है ॥१-२॥ यहाँ पर यह क्या विचित्रता है कि यह काशीपुरी मेरे निश्चल मन को भी चञ्चल बना रही है तो फिर दूसरे देवों की तो विचारों की गिनती ही क्या है ? मैंने तीनों जगतों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले कामदेव को भी बहुत ही शीघ्र तीसरे नेत्र के द्वारा दग्ध कर दिया था । अहो ! बड़े आश्चर्य की बात है कि यहाँ पर यह काशी की अभिलाषा मुझको ही अधिक सता रही है । इस काशी की प्रवृत्ति की खोज करने के लिये यहाँ से मैं किस को पास जाऊँ । इसे जानने के लिये कौन ऐसा निपुण हो सकता है । हाँ, वह एक चतुरानन (ब्रह्मा) ही हो सकते हैं । इस लिये उन्होंने विधाता का समाह्वान किया था । बहुमान पूर्वक ब्रह्माजी को वहाँ पर बिठलाकर भगवान् श्री कण्ठ ने चतुरानन ब्रह्मा जी से पूछा था—हे भगवान् ! मैंने पहिले तो योगिनियों का भेजा था और इनके भेजने के पश्चात् सहस्रांशु को प्रेषित वहाँ पर किया था । हे कमल से समुत्पत्ति वाले ब्रह्माजी ! काशीपुरी से ये सब अभी तक भी वापिस लौटकर नहीं आये हैं ॥३-७॥

गगनमुरमुकुन्दैरकाशी लोकेश ममसमानमम् ।
प्राङ्नरयजनरयेव चञ्चलाक्षीयकाचन ॥८

मन्दरेऽत्र रतिर्मे न भृशं सुन्दरकन्दरे ।
धनच्छन्नतुच्छपानीये मानसेवाल्पपल्वले ॥९
नावाधिष्टतथामा मे तापोहालाहलोद्भवः ।
काशीविरहजन्माऽत्र यथामामतिबाधते ॥१०
शीतरश्मिः शिरस्थोऽपिवर्षन्पीयूषसीकरैः ।
काशीविश्लेषजतापनाहोशमयितुं प्रभुः ॥११
विधेविधेहि मे कार्यं मार्यधुर्य महामते ।
याहिकाशींमितस्तूर्णं प्रयत्न च ममेहि ते ॥१२
ब्रह्मा त्वमेवतत्वेत्सिकाशीत्यजनकारणम् ।
मन्दोऽपिनरराजेत्काशींकिमुयोवेत्तिकिञ्चन ॥१३
यथैवकिनगच्छेय काशीमत्रान्स्वमायया ।
दिवोदास स्वधर्मस्थं नतुल्लंघयितुमुत्सहे ॥१४

हे लोकेश ! [illegible] काशी पुरी मेरे भी मन में बड़ी उत्सुकता समुत्पन्न किया करती है जैसे कोई कमल नेत्रों वाली स्त्री प्रकृति (साधारण) मनुष्य के हृदय को मस्त कर दिया करती है। इस सुन्दर कन्दराओं से समन्वित इस मन्दराचल पर भी मेरे मन में अधिक रति नहीं होती है। जैसे मटमैले तुच्छ जल वाले छोटे पोखरों में हंस के मन को पूर्ण आनन्द की प्राप्ति नहीं करती है। मैंने जो सागर मन्थन में निकले हुए हलाहल का पान किया था उसका ताप भी मुझे उतनी बाधा नहीं पहुँचाता है जैसा कि यह काशीपुरी के वियोग से समुत्पन्न ताप मुझे अर्थात् मेरे मन को अत्यन्त सन्ताप दे रहा है। मेरे मस्तक पर शीतल किरणों वाला चन्द्र भी साक्षात् विराजमान रहता है जो कि सदा पीयूष के सीकरों के द्वारा वृष्टि मेरे ऊपर करता रहता है किन्तु वह भी काशीपुरी के विरह से उत्पन्न होने वाले सन्ताप का शमन करने में समर्थ नहीं हो रहा है ॥९-११॥ हे विधाता ! हे आर्यों में परम श्रेष्ठ ! आप तो महान् मति से सुसम्पन्न हैं। इस समय में मेरे इस कार्य को कर दीजिए। यहाँ से आप काशीपुरी को चले जाइये और अत्यन्त ही शीघ्र मेरे हित के सम्पादन करने के लिये यत्न कीजिएगा। हे ब्रह्मन् !

काशी के त्याग का कारण आप ही भली भाँति जानते हैं। कोई मन्द से भी मन्द पुरुष काशी पुरी का त्याग नहीं किया करता है और जो कुछ भी उसकी महिमा का ज्ञाता है उसकी तो बात ही क्या है अर्थात् वह तो कभी उसे त्याग ही नहीं सकता है। आज ही अभी भी हे ब्रह्मन्! अपनी माया से काशी को क्यों न गमन कर लूँ? किन्तु अपने धर्म में स्थित शिवोशासन का उल्लंघन करने का मैं उत्साह नहीं कर पाता हूँ ॥१२-१४॥

विधेसर्वंविधेयानित्वमेवविदधोसियत् ।
इतिचेनिचवक्तव्यस्त्वय्यपार्थमतोऽखिलम् ॥१५
अरिष्ट गच्छपन्थास्ते शुभोदर्को भवत्वलम् ।
आदायाऽऽज्ञां विधिर्मूर्ध्नि ययौ वाराणसीं मुदा ॥१६
निरुह्य रथस्तूर्णं प्राप्य वाराणसीं पुरीम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत तदात्मभूः ॥१७
हयपानफलं मेऽद्य जातं काशीनिवागमे ।
काशीप्राप्त्यौयत प्रोक्ता अन्तरायाः पदे पदे ॥१८
इतिघातुरभूदयमद्दृशोप्राप्यमात्वय. ।
स्पष्ट दृष्टिपथ प्राप्ता यदेयाऽऽनन्दवाटिका ॥१९
स्वयमिन्नतियामादिभ स्वाभि स्वर्गतरङ्गिणी ।
यत्रानन्दमयाकृष्यायत्रानन्दमयाजना ॥२०
निविशन्ति सदा काश्या फलान्यानन्दवन्त्यपि ।
सर्वेषानन्दभू. काशी सर्वेषानन्दद.शिवः ॥२१

हे विधे! आप ही समस्त कर्त्तव्य कर्मों को किया करते हैं इसी हेतु से आपको सेवा में यह कहा जा रहा है, क्योंकि आपके विषय में सभी कुछ अरिष्ट अपार्थ ही होता है। आप गमन कीजिए। आपका मार्ग शुभ फलदायक होवे। उस समय में ब्रह्माजी ने भगवान् शम्भु की आज्ञा का मस्तक पर धारण करके बहुत ही प्रसन्नता के साथ वे वाराणसी पुरी को चले गये थे ॥१५-१६॥ रथेन हय का रथ बहुत ही शीघ्र वाराणसी पुरी में प्राप्त हो गया था। उस समय में वाराणसी में पहुँच कर

ब्रह्माजी ने अपने आपको परम कृत कृत्य को ही शांति माना था। ब्रह्माजी ने मन में विचार किया था कि मुझे इस हंसों के यान का वास्तविक फल आज ही प्राप्त हुआ है कि मेरा इस काशी पुरी में सुन्दर समागम हो गया है क्योंकि इस काशी पुरी की प्राप्ति करने में कदम-कदम में बहुत से विघ्न कहे गये हैं। यह दृशि धातु मेरे दृष्टि की सार्थकता प्राप्त करके ही ठीक सफल हुई है क्योंकि यह आनन्द की वाटिका आज स्पष्ट रूप से मेरी दृष्टि के मार्ग में प्राप्त हो गई है, अर्थात् मैंने अपने नेत्रों से काशी पुरी का दर्शन प्राप्त करके नेत्रों के पाने का फल एवं सार्थक्य पा लिया है। यह वाराणसी ऐसी पुरी है जिसका स्वर्ग तरङ्गिणी स्वयं अपने परम पावन जल से सिञ्चन किया करती है। यह ऐसी नगरी है जहाँ पर सभी वृक्ष भी आनन्द से परिपूर्ण होते हैं और जहाँ पर मार्जन करने वाले भी आनन्दमय जीवन व्यतीत किया करते हैं। काशीपुरी में सदा आनन्द वाले भी फल विशेष रूप से प्रवेश किया करते हैं। काशी सदा ही आनन्द की भूमि है और सदा ही आनन्द के प्रदान करने वाले प्रभु शिव हैं ॥१७-२१॥

आनन्दरूपाजायन्ते तेनकाश्याद्विजन्तवः।
चरणौ चरितुं वित्तस्तावेव कृतिनामिह ॥२२
चरणौविचरेतायौ त्रिधभर्तुं पुरीभुवि।
तावेव श्रवणौ श्रोतुं सम्विदाते बहुश्रुतौ ॥२३
इहश्रुतिमता पुंसायाम्यां काशीयशासकृत्।
तदेवमनुतेसर्वमनस्वित्वमनस्विनाम् ॥२४
येनानुमन्यतेचैषा काशीसर्वप्रमाणभूः।
बुद्धिर्बुध्यति सा सर्वामिहबुद्धिमतां सताम्।
ययैतद्धूर्जटेर्धाम ध्रुवं स्वविषयीकृतम् ॥२५
वरं तृणानि धान्यानि तानि वाराह्णान्यपि।
काश्यां यान्यापतन्तीह न जनाः काशमदर्शनाः ॥२६
अद्यमेसफलञ्चायुः परार्धद्वयसम्मितम्।
यस्मिन्नदृष्टिमयाप्राप्तिदुष्प्रापाकाशिकापुरी ॥२७

अहोमेधर्मसम्पत्तिरहोमेभाग्यगौरवम् ।
यदद्राक्षिपमद्याह काशी सुचिरचिन्तिताम् ।।२८

इसी कारण से जो आनन्द के स्वरूप वाले जन्तु होते हैं वे ही काशी पुरी में जन्म ग्रहण किया करते हैं । यहाँ पर परम धन्य पुरुषों के ही चरण सचरण करने के अधिकारी होते हैं । इस विश्व के भर्ता की पुरी की भूमि में जो चरण विचरण करते हैं वे ही चरण सार्थक हैं वे ही यथार्थता में श्रवण हैं और बहुश्रुत हैं जो काशी पुरी की महिमा का श्रवण किया करते हैं । जिन कानों से एक बार भी काशी का श्रवण किया है वे ही वास्तव में पुरुषों के सफल कान हैं । यहाँ पर मनस्वियों का वह ही मन सब कुछ माना जाता है जिसके द्वारा यह समझा प्रमाण रूपी काशी मान्य समझी जाया करती है । बुद्धिमान सत्पुरुषों की वही बुद्धि सब कुछ समझनी या जान रखनी है जिसके द्वारा भगवान धूर्जटि के इस धाम को अपने ज्ञान का विषय बनाया गया है । वे तृण और धान्य भी परम धन्य हैं जो वायु से समाहृत होकर यहाँ काशी में समावर्तन किया करते हैं और वे कुछ भी नहीं हैं जिन्होंने इस काशी पुरी का कभी दर्शन तक भी नहीं किया है ।।२२-२६।। आज ही मेरी यह परार्द्ध [illegible] से सम्मित आयु सफल हुई है जिसके होते हुए मैंने अपनी इस लम्बी अवस्था में आज इस दुष्प्राप्य काशीपुरी को प्राप्त कर लिया है । ब्रह्माजी ने अपने दिल में अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए कहा कि मेरे धर्म का कितना विशाल वैभव है और मेरे इस भाग्य का कैसा महान गौरव है कि मैंने आज इस समय में चिरकाल से चिन्तित काशी पुरी का दर्शन प्राप्त कर लिया है ।।२७-२८।।

अद्य मेस्वतपो वृक्षो मनोरथफलैरलम्
शिवभक्तयम्बुनासिक्तः फलितोऽतिबृहत्फलैः ।।२९
मयाप्यपावियद्धया सृष्टि सृष्टिवितन्वता ।
परमन्यादृशी काशीश्वयविश्वेशनिर्मितिः ।।३०
इति हृष्टमनावेधा दृष्ट्वा वाराणसीं पुरीम् ।
वृद्धब्राह्मणरूपेण राजानञ्चददर्शह ।।३१

जलार्द्राक्षतपाणिश्चस्वस्त्युक्त्वापृथिवीभुजे ।
कृतप्रणामोराज्ञाथ भेजेतद्दत्तमासनम् ॥३२
कृतमानोनृपतिना सोभ्युत्थानासनादिभिः ।
विप्रोव्यजिज्ञपद्भूपं पृष्टागमनकारणम् ॥३३
भूपालबहुकालीनोऽस्म्यहमत्रचिरन्तनः ।
त्वन्तुमानैवजानासिजानेत्वांहरिपुञ्चतम् ॥३४
परःशतामयादृष्टाराजानोभूरिदक्षिणा ।
विजितानेकसंग्रामा यायजूकाजितेन्द्रियाः ॥३५
विनिष्कृतारिषड्वर्गाः सुशीलाः सत्त्वशालिनः ।
श्रुतस्य पारदृश्वानो राजनीतिविचक्षणाः ॥३६

आज मेरे तप रूपी वृक्ष के मनोरथ रूपी फल पर्याप्त रूप से प्राप्त हो गये हैं। यह तपोवृक्ष शिव की भक्ति रूपी जल से सिक्त होकर अति विशाल फलों से फलित हुआ है। मैंने सृष्टि का विस्तार करते हुए अनेक प्रकारों से समन्वित सृष्टि की रचना की थी किन्तु यह मन्यादृशी काशीपुरी का निर्माण स्वयं भगवान् विश्वनाथ के ही द्वारा किया गया है। इस प्रकार से परम हर्षित मन वाले ब्रह्माजी ने उस वाराणसी पुरी का दर्शन करके एक अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मण के रूप से राजा को जाकर देखा था ॥२९-३१॥ जल से आर्द्र अक्षत हाथों में ग्रहण करने वाले उनने राजा को 'स्वस्ति'—यह कह कर आशीर्वाद दिया था और राजा के द्वारा किया हुआ प्रणाम प्राप्त करके इसके अनन्तर राजा के द्वारा दिये हुए आसन पर बैठ गए थे नृपति के द्वारा उनका बहुत अधिक सम्मान किया गया था और राजा ने स्वयं उत्थान करके आसन आदि इनको समर्पित किया था। जब विप्र से राजा ने आगमन कारण पूछा तो उन्होंने राजा को विज्ञापित किया था ॥३२-३३॥ ब्राह्मण ने कहा—हे भूपाल ! मैं बहुत काल का हूँ और यहाँ पर मैं चिरकाल से निवास करने वाला हूँ। आप तो मुझको नहीं जानते हैं किन्तु मैं आपको भली भाँति जानता हूँ और उस रिपु को भी जानता हूँ। मैंने सैकड़ों से भी अधिक राजाओं को देखा है जो बहुत अधिक दक्षिणा देने वाले हुए

है और जिन्होंने अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त की है तथा जो धार्मिक और जितेन्द्रिय हुए हैं। ऐसे नृपों को मैंने देखा है जिन्होंने अपने काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य—इन ६ शत्रुओं को विनिर्जित कर दिया है। जो परम सुशील—सत्यवादी—श्रुत के पारदृष्टा और राजनीति के ज्ञान में परम विचक्षण थे ॥३४-३६॥

दयादाक्षिण्यनिपुणाः सत्यव्रतपरायणाः ।
क्षमयाक्षमयातुल्यागाम्भीर्यजितसागरा. ॥३७
जितरोषरया.शूरा सौम्यसौन्दर्यभूमयः ।
इत्यादिगुणसम्पन्ना सुसञ्चितयशोधना ॥३८
नर द्विजा पवित्रायेराजर्षे तव सद्गुणा ।
तेष्वपु राजसु मम प्रायशो न दृष्टा गताः ॥३९
प्रजानिजकुटुम्बस्त्व रक्षतु भूदेवदैवतः ।
महातप सहायस्त्व यथानान्ये तथानृपाः ॥४०
धन्योमान्योऽसि च सतां पूजनीयोऽसि सद्गुणः ।
देवाअपिदिवोदास! त्वत्तामाश्र विमार्गगा. ॥४१
किं न स्तुत्या तव नृपां द्विजा नामस्पृहावताम् ।
किं कुर्मस्त्वद् गुणग्रामा. स्तावकाश्च प्रकुर्वते ॥४२

हे राजन्! मैंने ऐसे भी बहुत से राजाओं को देखा है जो दया और दाक्षिण्य में निपुण थे—सत्य व्रत के पालन में परायण थे—पृथ्वी के समान क्षमा से युक्त थे और गम्भीरता तो उनमें ऐसी थी कि जिन्होंने अपने गाम्भीर्य गुण से सागर को भी जीत लिया था ॥३७॥ मैंने ऐसे नृपों को भी देखा है जिन्होंने रोष के वेग को भी जीत लिया था—परम शूरवीर थे—सौम्यता और सौंदर्य की भूमि थे। इत्यादि गुणों से गुणसम्पन्न और भली भाँति संचित यश रूपी धन वाले थे। हे राजर्षे! किन्तु आपके जो सद्गुण हैं वैसे वो-कौन ही पवित्र सद्गुण थे। उन राजाओं में मेरी प्रायः दृष्टि नहीं गई थी। आप तो अपनी प्रजा को अपना कुटुम्ब ही मानने वाले हैं और आप तो इस भूमण्डल के देवता हैं। आप महातप की सहायता वाले हैं और नृप उस प्रकार के नहीं हैं जैसे

आप हैं। आप परम धन्य और सत्पुरुषों के मान्य एवं सद्गुणों से पूजनीय हैं। हे दिवोदास! देवगण भी आपके मार्ग से विमार्ग में गमन करने वाले नहीं होते हैं ॥३८-४१॥ हे नृप! आपकी स्पृहा रखने वाले हमारे द्विज सदा स्तुति करने के योग्य हैं। क्या करें! आपके गुणों के समुदाय हमको आपका स्तवन करने वाले बना रहे हैं ॥४२॥

गोष्ठीविघ्नस्त्विय तावत्त्वस्तुत स्तौमि साम्प्रतम् ।
यस्तु कामोऽस्म्यहं राजंस्त्वां सहायमतो वृणे ॥४३
त्वया राजन्वती चेयं पाऽवनिः सर्वर्धिभाजनम् ।
अहं चारित्रधनो राजन्! न्यायोपात्तमहाधन. ॥४४
इयन्च राजधानी ते कर्मभूमावनुत्तमा ।
यस्यां कृतानां कार्याणां सम्वर्तेऽपि न संक्षयः ॥४५
सञ्चितं यद्धनं पुम्भिर्न्यायमार्गानुगामिभिः ।
तत्काश्यां विनियुञ्जीत क्लेशायान्यथा भवेत् ॥४६
महिमानं परं काश्याः कोऽपि वेत्ति न भूपते ।
ऋते त्रिनयनाच्छंभोः सर्वज्ञानप्रदायिनः ॥४७
मन्ये धन्यतरोऽसि त्वं बहुजन्मतपोऽर्जितैः ।
मुकुटं यासि यत्काश्यां विश्वभर्तुः परां तनुम् ॥४८

यहाँ पर यह गोष्ठी जब समय तक रहे में [illegible] समय से सब युक्त आपका स्तवन करता हूँ। हे राजन्! मैं यजन करने की इच्छा वाला हूँ अतएव मैं आप की सहायता का वरण करता हूँ। यह भूमि जो समस्त ऋद्धियों का भाजन (आधार) है यह आपही के द्वारा राजन्वती है। हे राजन्! आप न्याय से उपात्त महान् धन वाले हैं और शील ही आपका बड़ा धन है। आपकी यह राजधानी इस कर्मभूमि भूमण्डल में परम श्रेष्ठ है जिस में किये हुए कार्यों का सम्वर्त में भी कभी क्षय नहीं हुआ करता है। न्याय के मार्ग के गमन करने वाले पुरुषों के द्वारा जो धन संचित किया गया है उस धन का काशीपुरी में ही विनियोग करना चाहिए अन्यथा वह क्लेश के लिए हुआ करता है ॥४३-४६॥ हे भूपते! इस काशीपुरी की महान ऐसी महिमा है जिसको कोई भी नहीं जानता

है। यदि कोई इसकी महिमा को जानते हैं तो केवल सम्पूर्ण ज्ञान के प्रदान करने वाले तीन नेत्रों के धारी शम्भु ही जानते हैं। मैं तो यही मानता हूँ कि आप अधिक धन्य हैं और आपके बहुत से सैंकड़ों जन्मों के अर्जित पुण्यों से ही यह सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ है कि आप भगवान् विश्वनाथ के दूसरे वपु के समान इस काशी को सुकृतों से परिपालित किया करते हैं ॥४३-४८॥

काशीत्रिजगतीसारस्त्रिवेदीसार एव वै ।
त्रिवर्गोत्तरसारश्च निर्णीतेति महर्षिभिः ॥४९
विश्वेशानुग्रहेणैव त्वयैपापाल्यतेपुरी ।
एकस्याप्यवनात्कास्यात्रैलोक्यमवितम्भवेत् ॥५०
अन्यच्च ते हितं वच्मि यदि ते रोचतेऽनघ !।
प्रीणनीयः सदैवको विश्वेशः सर्वकर्मभिः ॥५१
अन्यदेव धिया राजन् विश्वेशं पश्य माक्वचित् ।
ब्रह्मविष्णिवन्द्रचन्द्रार्काः क्रीडेयन्तस्य धूर्जटेः ॥५२
विप्रैरुद्रकर्मभिच्छद्भिः शिक्षणीया यतो नृपाः ।
अतस्तव हितं स्यात् किम्वा मे चिन्तयाऽनया ॥५३
इति जोपं स्थितविप्रं प्रत्युवाचनृपोत्तमः ।
सर्वं मयाहृदिधृतमरं वयोक्तं द्विजोत्तम ॥५४
अहं यियक्षमाणस्य तव साहाय्यकर्मणि ।
दासोऽस्मि यज्ञसम्भारान्नय मे कोशतोऽखिलान् ॥५५
यदस्ति मेऽखिलन्तत्र सप्ताङ्गेऽपि भवान्प्रभु ।
यजस्वैयमनाग्रह्मन् ! सिद्धं मन्यस्व वाञ्छितम् ॥५६

यह काशीपुरी तीनों भुवनों का सार है, और तीनों वेदों का भी सार स्वरूप है और महर्षियों ने यह निर्णय किया है कि यह तीनों वर्गों का उत्तर सार है। यह भगवान् विश्वनाथ प्रभु का ही परम अनुग्रह है कि जिससे आपके द्वारा इस परम पावन पुरी का परिपालन किया जाता है। इस काशीपुरी में एक के भी अवन से सम्पूर्ण त्रैलोक्य ही अवित हो जाया करता है। हे अनघ ! मैं एक और भी आपके हित

की बात कहना है यदि वह आपको पसन्द हो जावे। सदा ही समस्त कर्मों के द्वारा एक ही भगवान् विश्वनाथ को प्रसन्न करना चाहिए ॥४६-५१॥ हे राजन्! दूसरे देवता की बुद्धि से कभी भी कहीं पर विश्वेश प्रभु को मत देखना। उस भगवान् धूर्जटि के ही अन्दर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य क्रीडा किया करते हैं ॥५२॥ जो विप्र अपना अभ्युदय चाहने वाले हैं उनको चाहिए कि नृपों को शिक्षा देवें। इससे आपका हित स्यात होगा। मेरी इस चिन्ता से आपको क्या प्रयोजन है। यह कहकर फिर मौन धारण करने वाले स्थित विप्र से वह श्रेष्ठ नृप बोला—हे द्विजोत्तम! जो भी आप ने कहा है वह सब मैंने अपने हृदय में धारण कर लिया है। राजा ने कहा—यजन करने की इच्छा वाले आपकी सहायता के कर्म में मैं आपका दास हूं। आप मेरे कोश से समस्त यज्ञ के सम्भारों को ग्रहण कीजिए। जो भी है वह सभी यहां पर है। सहाङ्ग में भी आप प्रभु हैं। हे ब्रह्मन्! आप एकचित्त होकर यजन करिए। आपका वाञ्छित सिद्ध ही मानिए ॥५३-५६॥

राज्यंकरोमि यद् ब्रह्मन् !स्वार्थं तत्रमनागपि।
पुत्रैः कलत्रदेहेन परोपकृतये यते ॥५७
राज्ञांक्रतुक्रियाभ्योपितीर्थेभ्योपिसमन्ततः।
प्रजापालनमेवैकोधर्मःप्रोक्तोमनीषिभिः ॥५८
प्रजासन्तापजोवह्निर्वज्राग्नेरपिदारुणः।
द्विवान्दहतिवज्राग्निः पूर्वो राज्यं कुलंतनुम् ॥५९
यदाऽश्वभृथसिस्नासुर्भवेयद्विजसत्तम !।
तदा विप्रपदाम्भोमिरभिषेकंकरोम्यहम् ॥६०
हवनं ब्राह्मणमुखे यत् करोमि द्विजोत्तम !।
मन्येक्रतुक्रियाभ्योऽपितद्विशिष्टं महामते ॥६१
अभिलाषेषु सर्वेषु जागर्त्यकोहृदीह मे ॥६२
अद्यापिमार्गण.कोऽपि द्रष्टव्य.स्वतनोरपि ॥६३

हे ब्रह्मन्! जो मैं यह राज्य करता हूँ उसमें मेरा थोड़ा सा भी स्वार्थ नहीं है। हे यते! पुत्रों के, कलत्रों के और देह के द्वारा सभी

कुछ दूसरों के उपकार करने के लिए किया जाता है ॥५७॥ राजाओं को ऋतु की क्रियाओं से और समस्त तीर्थों से भी अधिक अपनी प्रजा का पालन करना ही मनीषियों ने एक ही धर्म बतलाया है ॥५८॥ प्रजा के सन्ताप से उत्पन्न होने वाला वह्नि वज्र की अग्नि से भी अधिक दारुण होता है। वज्र की अग्नि तो दो या तीन का दाह कर दिया करता है। और वह्नि जो प्रजा के सन्ताप से उत्पन्न अग्नि पूरे राज्य कुल और तनु को दग्ध कर दिया करता है ॥५८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जिस समय मैं अवभृथ में स्नपन करने की इच्छा वाला मैं होता हूँ उस समय मैं, मैं विप्रों के पद कमलों के जल से मैं अपना अभिषेक किया करता हूँ। हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मण के मुख में जो हवन किया करता हूँ उसको ऋतु की क्रियाओं से भी विशिष्ट मैं हे महामते ! माना करता हूँ। सम्पूर्ण अभिलाषाओं में मेरे हृदय में यही पर एक ही जागरूक रहा करती है कि आज भी कोई अपने तनु का मार्गण देखना चाहिए। अहो ! बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि बहुत से पुण्यों से मेरा यह मनोरथ फलित हो गया है कि हे द्विज ! आज आप कुछ प्रार्थना करने के लिये मेरे घर पर प्राप्त हो गये हैं ॥५६-६३॥

इति राज्ञो महाबुद्धधर्मशीलस्य भाषितम् ॥६४
श्रुत्वा तुष्टमनाःस्रष्टाक्रतुसम्भारमाहरत् ॥६५
साहाय्यप्राप्य राजर्षिदिवोदासस्य पद्मभू. ।
दशाश्वदशभिः काश्यामश्वमेधैर्महामखे. ॥६६
अद्यापि होमधूमौघैर्यद्धाप्तंगगनान्तरम् ।
तदाप्रभृति न व्योमनीलिमानजहात्पदः ॥६७
तार्थं दशाश्वमेधारव्य प्रथितजगतीतले।
तदाप्रभृति तत्राभीदाराणस्यां शुभप्रदम् ॥६८
पुराद्रुमसरोनाम तत्तीर्थं कलशोद्भव !।
दशाश्वमेधिक पश्चाजात विधिपरिग्रहात् ॥६९
स्वधुर्न्यथ ततः प्राप्तामगीरथसमागमात् ,
अतोवपुण्यवज्जातमतस्तत्तीर्थं शुत्तमम् ॥७०

धर्म के शील स्वभाव वाले महान् बुद्धि से सम्पन्न राजा का इस प्रकार से यह भाषित सुनकर स्रष्टा बहुत ही सन्तुष्ट मन वाले हो गये थे और उन्होने क्रतु के सम्पूर्ण सम्भारों का समाहरण किया था। उस राजर्षि दिवोदास की पूर्ण सहायता प्राप्त करके पदमू ब्रह्माजी ने काशी पुरी मे दश महामख अश्वमेधों के द्वारा यजन किया था। उन यज्ञो की होम की धूमो से आज तक भी वहाँ के आकाश का अन्तर व्याप्त होरहा है। तभी से लेकर यह गगनान्तर नीलिमा का त्याग नही किया करता है। उसी समय से इस जगती तल में यह दशाश्वमेघ नामक तीर्थ विख्यात होगया था और तभी से यह शुभों का प्रदाता तीर्थ वाराणसी मे स्थित है। हे कललोद्भव! पहिले यह तीर्थ रुद्रसर इस नाम से प्रसिद्ध था फिर पीछे विधाता के परिग्रह से दशाश्वमेधिक हो गया था। फिर राजर्षि प्रवर भगीरथ के समागम यही पर स्वर्धुनी गंगा भी प्राप्त होगई थी। इसीलिये यह महा तीर्थ अतीव पुण्यशाली एवं उत्तम होगया था ॥६४-७०॥

विधिर्दशाश्वमेधेशं लिङ्गं संस्थाप्य तत्र वै।
स्थितवान्नगतोऽद्यापि क्वापि काशीं विहाय तु ॥७१
राज्ञो धर्मरतेस्तस्यच्छिद्रनावाप किञ्चन।
अतः पुरारे पुरतो अजित्वा किं वदेद्विधिः ॥७२
क्षेत्रप्रभावं विज्ञाय ध्यायन्विश्वेश्वरं शिवम्।
ब्रह्मेश्वरं च संस्थाप्य विधिस्तत्रैव संस्थितः ॥७३
परा तनुरियं काशी विश्वेशस्येति निश्चितम्।
अस्याः संसेवनाच्छम्भुर्न कुप्यति पुरो मयि ॥७४
कः प्राप्य काशीं दुर्मेधाः पुनस्त्यक्तुमिहेहते।
अनेकजन्मजनितकर्मनिर्मूलनक्षमाम् ॥७५
विश्वसन्तापसंहर्तुः स्थाने विश्वपतेस्तनु.।
सन्ताप्यतेतरां काश्या विश्लेषजमहाग्निना ॥७६
प्राप्य काशीं त्यजेद्यस्तु समस्ताघौघनाशिनीम्।
नृपशुः स परिज्ञेयो महासौख्यपराङ्मुखः ॥७७

निर्वाणलक्ष्मीं यः काङ्क्षेत्त्यक्त्वा संसारदुर्गतिम् ।
तेन काशी न सन्त्याज्या यद्यान्वैशादनुग्रहात् ॥७८

वहीं पर श्री ब्रह्माजी ने दशाश्वमेधेश नामक एक शिवलिङ्ग की संस्थापना की थी और स्वयं आप भी उस काशीपुरी का त्याग करके कहीं भी न जाकर वहीं पर स्थित हो गये थे जोकि आज तक भी वहीं पर विराजमान रहते हैं ॥७१॥ धर्म में रति रखने वाला राजा का कुछ भी छिद्र प्राप्त नहीं किया था कि भगवान् पुरारि के समक्ष में उपस्थित होकर उसके सम्बन्ध में कहा करते। उस क्षेत्र के महान् प्रभाव को जानकर विश्वेश्वर प्रभु शिव का ध्यान करते हुए ब्रह्मेश्वर की संस्थापना करके ब्रह्माजी वहीं पर संस्थित हो गये थे ॥७२-७३॥ यह निश्चित है कि यह काशीपुरी भगवान् विश्वनाथ का दूसरा एक परमोत्तम वपु ही है। इसके भली भाँति सेवन करने से मुझ पर कभी भी कोप नहीं करेंगे ॥७४॥ कौन-सा ऐसा दुष्ट बुद्धि वाला है जो इस महापावन काशीपुरी को प्राप्त करके फिर त्याग करने की इच्छा किया करता हो जो कि प्राक्तन अनेक जन्मों में समुत्पन्न कर्मों के निर्मूल करने में समर्थ हो। इस विश्व के सम्पूर्ण सन्तापों का संहार करने वाले प्रभु के स्थान में विश्वपति का यह काशीपुरी के विश्लेष से समुत्पन्न महान् अग्नि से अत्यन्त ही सन्तापित होना है ॥७५-७६॥ इस समस्त प्रकार के पापों के समुदाय का विनाश करने वाली काशीपुरी को प्राप्त करके कौन इसका त्याग करेगा ? अर्थात् फिर यहाँ पहुँच कर कोई भी इस पुरी को नहीं छोड़ना चाहता है। यदि कोई इस पुरी का त्याग करता भी है तो वह महान् सौख्य से पराङ्मुख होने वाला मनुष्यों में साक्षात् पशु के ही समान होता है ॥७७॥ जो निर्वाण लक्ष्मी की इच्छा करता है और संसार की दुर्गति को त्याग देता है उस पुरुष को इस काशीपुरी का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए यदि यह भगवान् ईश के परमानुग्रह से प्राप्त होजावे ॥७८॥

९५—त्रिलोचनाविर्भाववर्णन

श्रुत्वोङ्कारकथामेतां महापातकनाशिनीम् ।
न तृप्तोऽस्मि विशाखाद्य ब्रूहि त्रैविष्टपीं कथाम् ॥१
कथं च कथिता देव्यं देवदेवेन षण्मुख ॥
आविर्भूतिर्महाबुद्धे ! पुण्यात्र्यलोचनीपरा ॥२
आकर्णय मुने ! वच्मि कथां श्रमनिवारिणीम् ।
यथा देवेन कथितां त्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥३
विरजाख्यं हि तत्पीठं तत्रलिङ्गं त्रिविष्टपम् ।
तत्पीठदर्शनादेव विरजा जायते नरः ॥४
तिस्रस्तु सङ्गतास्तत्र स्रोतस्विन्यो घटोद्भव ॥
तिस्रः कल्मषहारिण्यो दक्षिणे हि त्रिलोचनात् ॥५
स्रोतोमूर्तिधराः साक्षाल्लिङ्गस्नपनहेतवे ।
सरस्वत्यथ कालिन्दीनर्मदाचातिशर्मदा ॥६
तिस्रोपि हि त्रिसन्ध्यन्ताः सरितः कुम्भसम्भवः ।
स्नपयन्ति महाधाम लिगं त्रैविष्टपम्महत् ॥७

महा महर्षि प्रवर अगस्त्य जी ने कहा—मैंने आपके द्वारा वर्णित ॐकार की कथा का श्रवण कर लिया है जो कि बड़े २ महान् पातकों का विनाश करने वाली है किन्तु मेरी पूर्णतया तृप्ति नहीं हुई है अब आप कृपा करके त्रैविष्टपी कथा का श्रवण कराइये। हे षण्मुख ! देवों के देव ने देवी जगदम्बा को यह कथा कैसे कही थी। आप तो महती बुद्धि वाले हैं। यह आविर्भूत परम पुण्यमयी त्रैलोचनी है ॥१-२॥ भगवान् स्कन्द ने कहा—हे मुने ! मैं श्रम के निवारण करने वाली कथा को कहता हूँ। अब आप सुनिये। जिस रीति से त्रिविष्टप के समुद्भव वाली कथा देव ने कही थी ॥३॥ एक विरजा नाम वाला उनकी पीठ स्थल है। वहाँ पर त्रिविष्टप नामधारी लिंग है। उस पुण्यमय पीठ के केवल दर्शन कर लेने ही से मनुष्य विरजा हो जाया करता है। हे घटोद्भव ! यहाँ पर तीन स्रोत स्विनी संगत हुई हैं। त्रिलोचन प्रभु से दक्षिण भाग में ये तीनों ही कल्मषों के हरण करने वाली हैं। लिंग के स्नपन कराने

के कारण से ये साक्षात् स्रोत की मूर्तियों की धारण करने वाली हैं। ये तीनों में सरस्वती कालिन्दी और कल्याण प्रदान करने वाली नर्मदा हैं। ये तीनों ही सरितायें तीनों कालों में हाथों में कमल ग्रहण करके महाधाम उस त्रैविष्टप महान् लिंग का स्नपन किया करती हैं ॥४-७॥

लिंगानि सरितस्ताभिः स्वनाम्ना स्थापितान्यपि ।
तेषां सन्दर्शनात्पुंसां तासां स्नानफलं भवेत् ॥८
सरस्वतीश्वरं लिंगं दक्षिणेन त्रिविष्टपात् ।
सारस्वतं पदं दद्याद्दृष्टं स्पृष्टञ्च जाड्यहृत् ॥९
यमुनेशम्प्रतीच्यान्त्व नरैर्भक्त्या समर्चितम् ।
अपि किल्विषवद्भिश्च यमलोकनिवारणम् ॥१०
दृष्टं त्रिलोचनात्प्राच्यां नर्मदेशं सुशर्मदम् ।
तल्लिंगार्चनतो नृणां गर्भवासो निषिध्यते ॥११
स्नात्वा पिलपिलातीर्थे त्रिविष्टपमभ्यपनः ।
दृष्ट्वा त्रिलोचनं लिंगं किं भूयः परिशोचति ॥१२
त्रिविष्टपस्य लिंगस्य स्मरणादपि मानवः ।
त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥१३
त्रिविष्टपस्य द्रष्टारः स्प्रष्टारः स्युर्नसंशयः ।
कृतकृत्याएव एवात्र त एवात्र महाधियः ॥१४

उन ताओं के द्वारा सब ओर अपने २ नामों से लिंगों की स्थापना की गई है। उन लिंगों के दर्शन करने से ही मनुष्यों को उन सरिताओं के स्नान करने का पुण्य फल प्राप्त हो जाया करता है ॥८॥ सरस्वतीश्वर नाम वाला लिंग त्रिविष्टप से दक्षिण दिग्भाग में है। यह लिंग ऐसा प्रभाव वाला है कि इसका दर्शन और स्पर्शन करने पर जड़ता का हरण कर सारस्वत पद प्रदान किया करता है। यमुनेश्वर नामक लिंग पश्चिम दिशा में है जो मनुष्यों के द्वारा भक्ति भाव से समर्चित होता है। इस लिंग की अर्चना से जो किल्विष वाले हैं उनके भी यम लोक का निवारण हो जाया करता है। भगवान् त्रिलोचन से पूर्व दिशा में शर्म प्रदाता नर्मदेश प्रभु हैं। इनकी अर्चना करने से मनुष्यों का मोक्ष

होता है और फिर जननी के उदार में गर्भवास कभी नहीं हुआ करता है। त्रिविष्टप के समीप में जो पिलपिला तीर्थ है उसमें स्नान करके और भगवान त्रिलोचन लिंग के दर्शन करके फिर क्या चिंता का विषय रह जाता है अर्थात् कुछ भी नहीं रहा करता है ॥९-१२॥ त्रिविष्टप लिंग के केवल स्मरण कर लेने से भी त्रिविष्टप का स्वामी हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। त्रिविष्टप के दर्शन करने वाले स्रष्टा हो जाया करते है—इसमें संशय नहीं है। वे ही लोग कृतकृत्य हैं और वे ही लोग महा बुद्धिमान हैं ॥१३-१४॥

आनन्दकानने लिंगं प्रणतयैस्त्रिविष्टपम् ।
त्रिलोचनस्य नामापियैः श्रुतं शुद्धबुद्धिभिः ॥१५
सप्तजन्मार्जितात्पापात्ते पूता नात्र संशयः ।
पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषु दृष्टेषु यत्फलम् ॥१६
तस्यत्त्रिविष्टपेदृष्टे काश्यां मन्येततोधिकम् ।
काश्यां त्रिविष्टपे दृष्टे दृष्टं सर्वं त्रिविष्टपम् ॥१७
क्षणान्निर्धूतपापोसौ न पुनर्गर्भभाग्भवेत् ।
सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वावभृथवान्स च ॥१८
यो वै पिलपिलातीर्थे स्नात्वोत्तरवहाम्भसि ।
सरित्त्रयं महापुण्यं यत्रसाक्षाद्वसेत्सदा ॥१९
तत्र श्राद्धादिक कृत्वा गयाया किं करिष्यति ।
स्नात्वा पिलपिलातीर्थे कृत्वा वै पिंडपातनम् ॥२०
दृष्ट्वा त्रिविष्टपं लिंगं कोटितीर्थफल लभेत् ।
यदन्यत्रार्जितं पापं तत्काशीदर्शनात्व्रजेत् ॥२१

आनन्द कानन में जो लिंग है उसको जिन्होंने प्रणाम किया है और त्रिलोचन प्रभु का त्रिविष्टप नाम वाले लिंग को जिन शुद्ध बुद्धि वालों ने सुना है वे अपने किये हुए सप्त जन्मों के पापों से भी पवित्र हो जाया करते है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। इस पृथ्वी में जितने भी संस्थापित लिंग हैं उन सबके दर्शन का जो पुण्य फल होता है वही त्रिविष्टप के दर्शन से हो जाया करता है और मैं ऐसा मानता हूँ कि काशी

पुरी में स्थापित विश्वनाथ लिंग के दर्शन से इससे भी अधिक पुण्य फल होता है। काशी में त्रिविष्टप के दर्शन करने पर सभी त्रिविष्टप दर्शन का पुण्य होता है। क्षण भर में ही वह निर्धूत पापों वाला हो जाता है और वह पुनः गर्भ का वास प्राप्त नहीं करता है। उसको ऐसा पुण्य होता है कि मानो उसने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और सभी मखभृथों वाला हो गया है। जो पुरुष उत्तरास्यत में अर्थात् उत्तर की ओर बहने वाले जल में पिलपिला तीर्थ में स्नान कर लेता है उसको तीनों सरिताओं के स्नान का फल प्राप्त हो जाया करता है क्योंकि इन तीनों सरिताओं का पुण्य वहाँ पर सदा साक्षात् निवास किया करता है। वहाँ पर श्राद्ध आदि जिसने कर लिया है उसको गया आदि में श्राद्ध करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहा करती है। क्योंकि गया में इससे अधिक क्या इसके बराबर भी पुण्य नहीं होता है। पिलपिला तीर्थ में स्नान करके वहाँ पिण्ड पातन करे और फिर भगवान त्रिविष्टप लिंग के दर्शन करे तो एक करोड़ तीर्थों का फल प्राप्त होता है। जो कहीं दूसरी जगह पर पापों का अर्जन किया है वह सब काशीपुरी के दर्शन से मिट जाया करते हैं ॥१५-२ ॥

काश्यां तु यत्कृतं पापं तत्पैशाचपदप्रदम् ।
प्रमादात्पातकं कृत्वा शम्भोरानन्दकानने ॥२२
दृष्ट्वा त्रिविष्टपं लिंगं तत्पापमपि हास्यति ।
सर्वस्मिन्नपि भूपृष्ठे श्रेष्ठमानन्दकाननम् ॥२३
सप्तापि यत्र तीर्थानि ततोऽप्योङ्कारभूतिका ।
ॐकारादपि सल्लिंगान्मोक्षवर्त्म प्रकाशकात् ॥२४
अतिश्रेष्ठतरं लिंगं श्रेयोरूपं त्रिलोचनम् ।
तेजस्विपु यथा भानुर्दर्शेषु च यथा शशी ॥२५
तथा लिंगेषु सर्वेषु परं लिंगं त्रिलोचनम् । २६
त्रिलोचनावकाना मा पदवी न दवीयसी ।
परं निर्वाणपदवी महामोहैककेवपेः ॥२७
यः कृत्त्रिलोचनार्चानो यत्र क्वचन पूज्यते ।
न तदाजन्म सम्पूज्य लिंगान्यन्यानि सम्यते ॥२८

काशीपुरी में जो भी कुछ पाप किया जाता है वह पैशाच पद का देने वाला होता है। भगवान् शम्भु के इस आनन्द कानन में प्रमाद से पातक करके त्रिविष्टप लिंग के दर्शन करने से उस पाप का क्षय किया करता है। इस समस्त भूमण्डल के पृष्ठ पर यह आनन्द कानन परमातिपरम श्रेष्ठ है। वहाँ पर भी सम्पूर्ण तीर्थ हैं और उससे भी अधिक ओंकार भूमिका है। इस मोक्ष के मार्ग के प्रकाश करने वाले अखिल ओंकार से भी अतिश्रेष्ठ नरसिंह धर्म स्वरूप वाला त्रिलोचन है। जिस तरह से तेजस्वियों में भानु है और देखने के योग्यों में चन्द्रमा है उसी तरह से सभी लिंगों में परमाधिक श्रेष्ठ लिंग त्रिलोचन है ॥२२-२६॥ इन त्रिलोचन लिंग का समर्चन करने वालों को यह पदवी कुछ दूर या कम नहीं है जो महा लोचन की गुफोवधि निर्वाण पद्मा का परम पद होता है। एकबार में ही त्रिलोचन प्रभु की अर्चना से जिस परम श्रेष्ठ श्रेय का समुपार्जन किया जाता है वह सामान्य अन्य लिंगों के पूजन से भी प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥२७-२८॥

कामया त्रिलोचन लिंगं येऽर्चयन्ति महाधियः।
तेऽभ्यास्ति भुवनोकोऽभिमंमप्रीतिमभीप्सुभि ॥२९
कृत्वाऽपि सर्वसन्यास कृत्वा पाशुपतव्रतम्।
नियमेभ्य स्खलित्वाऽपि कुतो यास्यति मानवाः ॥३०
विद्यमाने महालिंगे महापापौघहारिणि।
त्रिविष्टपे पुण्यराशौ मोक्षनिक्षेपसद्मनि ॥३१
समभ्यर्च्य महालिंगं सकृदेवत्रिलोचनम्।
मुच्यते कलुषैः सर्वैरपि जन्मशतार्जितैः ॥३२
ब्रह्महाऽपि सुरापो वास्तेयी वा गुरुतल्पगः।
तत्संयोग्यपि वा वर्षं महापापी प्रकीर्तितः ॥३३
परदाररतश्चापि परहिंसारतोऽपि वा।
परापवादशीलोऽपि तथा विश्रम्भघातकः ॥३४
कृतघ्नोऽपि भ्रूणहाऽपि वृषलीपतिरेव वा।
मातापितृगुरुत्यागी वह्निदोगरदोऽपि वा ॥३५

जो महान् बुद्धिमान् लोग काशी पुरी में त्रिलोचन लिङ्ग का दर्शन किया करते हैं वे त्रिभुवन में रहने वाले और मेरी प्रीति के चाहने वाले लोगों के द्वारा पूजन के योग्य हुआ करते हैं ॥२९॥ सबका भली भाँति त्याग करके भी और पाशुपत व्रत को करके भी तथा नियमों से संयमित होकर भी मानव क्यों डरा करते हैं ? ॥३०॥ महालिङ्ग के विद्यमान होने पर तथा महान् पापों के समूह के हरण करने वाले परम पुण्य के राशि और मोक्ष रूपी निक्षेप का आलय भगवान् त्रिविष्टप के रहते हुए मानवों को कोई भी भय नहीं होना चाहिए। इस महालिंग की भली भाँति अर्चना करने और केवल एक ही बार भगवान् त्रिलोचन का यजन करके भी जन्मों में अर्जित किये हुए समस्त कलुषों से मनुष्य मुक्त हो जाया करता है। ब्रह्महा (ब्राह्मण की हत्या करने वाला) सुरा का पान करने वाला—स्तेयी (चोरी करने वाला)—गुरु पत्नी के साथ सहवास करने वाला तथा उन सबके साथ एक वर्ष पर्यन्त संयोग एवं सम्पर्क रखने वाला पुरुष भी महापापी कहा जाता है। दूसरे की स्त्री में रति रखने वाला- दूसरों की हिंसा (शरीर और मनको ठेस या हानि पहुँचाने का ही हिंसा कहा जाता है केवल वध को ही नहीं कहा जाता) में रति रखने वाला—दूसरों के अपवाद (बुराई या निन्दा) करने के स्वभाव वाला—विश्वास देकर फिर उसका घात करने वाला—कृतघ्न अर्थात् अपने साथ किये हुए उपकार को न मानने वाला—भ्रूण की हत्या करने वाला (गर्भ में स्थित बच्चे को भ्रूण कहते हैं) वृषली (वेश्या या शूद्र आदि की स्त्री) का पति—माता—पिता और गुरु का त्याग कर देने वाला—अग्नि लगाने वाला और विष देने वाला पुरुष भी घोर पापी होते हैं किन्तु ये भी सब भगवान् त्रिलोचन के लिङ्ग को नमस्कार करके ही पापों से निष्कृति को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥३१-३५॥

गोघ्न. स्त्रीघ्नोऽपि शूद्रघ्न कन्यादूषयितापि च।
क्रूरो वा पिशुनो वापि निजधर्मपराङ्मुखः ॥३६
निन्दको नास्तिको वाऽपि कूटसाक्ष्यप्रवादकः।
अभक्ष्यभक्षको वाऽपि ययाऽयाज्यविक्रयी ॥३७

इत्यादिपापशीलोऽपि मुक्त्वैकं शिवनिन्दकम् ।
पापान्निष्कृतिमाप्नोति तत्त्वालिंगं त्रिलोचनम् ॥३८
शिवनिन्दारतो मूढः शिवशास्त्रविनिन्दकः ।
तस्य नो निष्कृतिर्दृष्टा क्वापि शास्त्रेऽपि केनचित् ॥३९
आत्मघाती स विज्ञेयः सदा त्रैलोक्यघातकः ।
शिवनिन्दां विधत्ते यः सोऽनाभाष्योऽधमाधमः ॥४०
शिवनिन्दारता ये च शिवभक्तजनेष्वपि ।
ते यान्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४१
शैवाः पूज्याः प्रयत्नेन कार्या मोक्षमभीप्सुभिः ।
तेष्वर्चितेऽष्वपि शिवः प्रीतो भवत्यसंशयः ॥४२

गाय के हनन करने वाला—स्त्री का वध करने वाला—शूद्र जाति वाले पुरुष को मार देने वाला—किसी कन्या को दूषित कर देने वाला—महान् क्रूर (निर्दयी)—पिशुन (पीछे से बुराई या चुगली करने वाला)—अपने धर्म से पराङ् मुख अर्थात् धर्म विरुद्ध आचरण वाला—निन्दा करने वाला—नास्तिक अर्थात् ईश्वरीय सत्ता को न मानने वाला—कूट साक्ष्य अर्थात् झूठी गवाही का प्रवादक (असत्य बोलने वाला—जो भक्षण करने योग्य नहीं है या शास्त्र और सदाचार जिसके भक्षण करने का निषेध करता है उसको खाने वाला—जो वस्तु बिक्री करने के योग्य नहीं है उनको बेचने वाला इत्यादि बहुत से पापों के करने के स्वभाव वाला भी पुरुष इन किये हुए पापों से त्रिलोचन लिङ्ग को नमन करके छुटकारा पा जाया करता है। केवल भगवान् शिव की निन्दा करने वाला पाप मुक्त नहीं होता है। जो शिव की निन्दा में रति रखता है ऐसा मूढ और जो शिव के शास्त्र की विशेष निन्दा करने वाला है उसकी तो कहीं पर भी निष्कृति देखी ही नहीं गयी है। किसी से भी किसी भी शास्त्र में शिव निन्दक के पाप से छुटकारा पाना नहीं देखा है। ऐसे पुरुष को तो आत्मा का ही हनन करने वाला और सदा त्रैलोक्य का घातक ही समझना चाहिए जो भगवान् शिवकी निन्दा किया करता है उससे भाषण कभी भी नहीं करना चाहिए क्योंकि वह तो अधम से भी

महान् प्रथम होता है। जो मनुष्य भगवान् शिव की निन्दा में रति रखने वाले हैं और शिव के भक्तों की भी निन्दा करते हैं वे महान् घोर नरक में गिरा करते हैं और जब तक चन्द्र-सूर्य स्थित रहते हैं तब तक नारकीय यातनाऐ भोगते हैं। जो मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति के इच्छुक है उन्हे काशी मे शैवो की पूजा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिये। उनके समर्चित होने पर भगवान् शिव परम प्रसन्न हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नही है ॥३६-४२॥

५६—व्यासभुजस्तम्भवर्णन

शृणु सूत ! महाबुद्धे ! यथा स्कन्देन भाषितम् ।
भविष्यं मम तस्याग्रे कुम्भयोनेर्महामतेः ॥१
निशामय महाभाग ! त्वं मैत्रावरुणे ! मुने !।
पाराशर्यो मुनिवरो यथा मोहमुपैष्यति ॥२
व्यस्य वेदान्महाबुद्धिर्नानाशाखाप्रभेदतः ।
अष्टादशपुराणानि सूतादीन्परिपाठ्य च ॥ ३
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यर्यस्त्वचीकरत् ।
महाभारतसञ्ज्ञञ्च सर्वलोकमनोहरम् ॥४
सर्वपापप्रशमनं सर्वशान्तिकरम्परम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याविनश्यति ॥५
एकदा स मुनिः श्रीमान्पर्यटन्पृथिवीतले ।
सम्प्राप्तो नैमिषारण्यं यत्र सन्ति मुनीश्वराः ॥६
अष्टाशीतिसहस्राणि शौनकाद्यास्तपोधनाः ।
त्रिपुण्ड्रितमहाभालालसद्रुद्राक्षमालिनः ॥७
विभूतिभारणो भक्त्या रुद्रसूक्तजपप्रियान् ।
लिङ्गाराधनसंसक्ताञ्छिवनामकृतादरान् ॥८

महा महिम ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य देवजी ने कहा—हे सूत ! आप तो अत्यन्त अधिक बुद्धि वाले हैं जिस प्रकार से मेरा भविष्य महा मति वाले

कुम्भ योनि से भगवान् स्कन्द ने कहा था उसी को आप अब श्रवण कीजिए। भगवान् स्कन्दजी ने कहा था—हे महाभाग! हे मैत्रा वरुणे! हे मुनिवर! अब पराशर के पुत्र मुनिवर जिस तरह से मोह को प्राप्त होंगे उसे सुनिए। अनेक शाखा प्रशाखाओं के भेद से वेदों का विस्तार करके महान् बुद्धि वाले व्यास देव ने सूत आदि शिष्यों को अठारह पुराणों को पढ़ा दिया था। श्रुति-स्मृति और पुराणों का रहस्य जिन्होंने स्पष्ट कर दिया था और महाभारत नामक महान् विशाल ग्रन्थ की रचना की थी जो कि समस्त लोकों में एक परम मनोहर ग्रन्थ है और सभी तरह के पापों का प्रशमन करने वाला सभी तरह की परम शान्ति का करने वाला है जिसके केवल श्रवण करने ही से ब्रह्म हत्या विनष्ट हो जाया करती है। एक समय की बात है कि श्रीमान् वह मुनिवर इस पृथ्वी पर पर्यटन कर रहे थे और घूमते-घामते वे नैमिषारण्य में सम्प्राप्त हो गये थे जहाँ पर कि बहुत-से मुनीश्वर निवास किया करते हैं। जिनका केवल एक तप ही धन है ऐसे अट्ठासी हजार शौनकादि मुनि वहाँ पर रहते थे जो अपने विशाल भाल पर त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए थे और उन के कण्ठ में रुद्राक्ष की मालाएँ शोभित थीं। वे सभी लोग विभूति धारी थे और भक्ति भाव से रुद्र सूक्त के जाप में प्रेम करते थे। वे सब लिङ्ग की आराधना करने में संलग्न मन वाले थे और सभी भगवान् शिव के नाम से परम समादर करने वाले थे ॥१-८॥

एकएवहि विश्वेशो मुक्तिदो नान्य एव हि।
इति ब्रुवाणान्सततं परिनिश्चित मानमान् ॥९
विलोक्य सन्मुनिर्व्यासस्तान्सर्वान् गिरिशात्मन।
उत्क्षिप्य तर्जनीमुच्चैः प्रोवाचेदं वचः पुनः ॥१०
परिनिमथ्य वाग्जालं मुनिश्चित्यासकृद्‌बहु।
इदमेक परिज्ञात सेव्य सर्वेश्वरो हरि. ॥११
वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते।
आदिमध्यावसानेषु हरिरेकोऽत्र नापर. ॥१२

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिसत्यं न मृषा पुनः ।
न वेदात्परं शास्त्रं न देवोऽच्युतात् परः ॥१३
लक्ष्मीशः सर्वदोनान्यो लक्ष्मीशोऽप्यपवर्गदः ।
एकएवहिलक्ष्मीशस्ततोध्येयोनचापरः ॥१४

उन सबको ऐसी परम दृढ़ धारणा थी कि एक ही भगवान् विश्वेश मुक्ति देने वाले हैं और दूसरा कोई भी देव ऐसा नहीं है। ये सभी यही निरन्तर बोला करते थे और उनके मन में इसका ठीक निश्चय होगया था। भगवान् व्यास देव ने गिरीश के स्वरूप में स्थित उन सबको देखकर अपनी तर्जनी को ऊँचा उठाकर यह वचन बोले—६-१०। सम्पूर्ण वाङ्मय का अच्छी तरह से मन्थन करके अनेक बार बहुत कुछ भली भाँति निश्चय करने मैंने यही एक बात को समझ लिया है कि एक सर्वेश्वर श्री हरि का ही सेवन करना चाहिए। वेदों में—रामायण में—पुराणों में और भारत में आदि-मध्य और अवसान में एक श्रीहरि ही है दूसरा कोई भी अन्य नहीं है। यह सत्य पुनः सत्य है और तीसरी बार भी सत्य है। इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है। वेदों से परे कोई भी शास्त्र नहीं है और भगवान् अच्युत से बड़ा अन्य कोई देव नहीं है। भगवान् लक्ष्मी के स्वामी सभी कुछ प्रदान करने वाले हैं अन्य कोई नहीं है। लक्ष्मीश भगवान् अपवर्ग के भी प्रदाता हैं। अतएव केवल एक लक्ष्मीश प्रभु का सदा ध्यान करना चाहिए दूसरे किसी भी देवता का नहीं ॥११-१४॥

भुक्तिमुक्तिरिहान्यस्मान्योदाताजनार्दनात् ।
तस्माच्चतुर्भुजं नित्यं सेवनायो मुमुक्षुभिः ॥१५
विहाय केशवादन्यं ये सेवन्तेऽल्पमेधसः ।
संसारचक्रे गहने ते विशन्ति पुनः पुनः ॥१६
एक एवहि सर्वेशो हृषीकेशः परात्परः ।
तं सेवमानः सतत सेव्यस्त्रिजगतां भवेत् ॥१७
एको धर्मप्रदो विष्णुस्त्वेको ह्यर्थदोहरि ।
एकः कामप्रदश्चक्रीत्वेको मोक्षप्रदोऽच्युतः ॥१८

शार्ङ्गिणमेव परित्यज्य देवमन्यमुपासते ।
ते सद्भिस्तु बहिष्कार्या वेदहीना यथा द्विजाः ॥१९
श्रुत्वेति वाक्यं व्यासस्य नैमिषारण्यवासिनः ।
प्रवेपमानहृदयाः परिप्रोचुरिदं वचः ॥२०

भगवान् जनार्दन से अतिरिक्त अन्य कोई भी देव इस लोक में मुक्ति और मुक्ति दोनों का प्रदान करने वाला नहीं है । इसी लिये सुख की इच्छा रखने वाले पुरुषों के द्वारा चतुर्भुज भगवान् की नित्य सेवा करनी चाहिए । जो मन्द बुद्धि वाले लोग भगवान् केशव को छोड़ कर अन्य देव का सेवन किया करते हैं वे इस गहन संसार चक्र में पुनः पुनः प्रवेश किया करते हैं । सर्वेश हृषीकेश एक ही पर से भी पर देव हैं । निरन्तर उनका सेवन करते हुए पुरुष तीनों जगतों का सेव्य हो जाया करता है । भगवान् विष्णु एक ही धर्म के प्रदान करने वाले हैं और यह हरि एक ही बहुत से अर्थों के दाता हैं । भगवान् चक्र धारी प्रभु कामनाओं के दाता हैं और अच्युत प्रभु एक ही मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं । जो शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाले प्रभु को छोड़कर अन्य देव की उपासना किया करते हैं उनका सत्पुरुषों के द्वारा बहिष्कार कर देना चाहिए जिस तरह वेदों से हीन द्विजों का बहिष्कार किया जाता है । नैमिषारण्य के निवासी मुनि ने श्रीव्यास देव के इस वाक्य का श्रवण करके वे सब प्रकम्पित हृदय वाले हो गये थे और उन्होंने यह वचन कहा था ॥१२-२०॥

पाराशर्य मुने ! मान्यस्त्वमस्माकं महामते ।
यतो वेदास्त्वया व्यस्ताः पुराणान्यपि वेत्सि यत् ॥२१
यतश्च कर्ता त्वमसि महतो भारतस्य वै ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां विनिश्चयकृतो ध्रुवम् ॥२२
तदद्य कोपरक्ताक्षस्सत्यवती सुत ।
भवता यत्प्रतिज्ञातं निश्चित्योत्क्षिप्य तर्जनीम् ॥२३
अस्मिन्न्यायावकाशोऽत्र परिमद्यते नहि ।
प्रतिज्ञातस्य वचसस्तव श्रद्धा भवेत्तदा ॥२४

यदाऽऽनन्दवने शम्भोः प्रतिजानासि वै वच. ॥२५
गच्छ वाराणसी व्यास ! यत्र विश्वेश्वरः स्वयम् ।
न तत्र युगधर्मोऽस्ति न च लग्ना वसुन्धरा ॥२६
इति श्रुत्वा मुनिर्व्यास किञ्चित्कुपितवद्धृदि ।
जगाम तूर्णं सह हित: स्वशिष्यैरयुतोन्मितै ॥२७

ऋषियों ने कहा—हे पाराशर्य मुनिवर ! आप तो महती मति वाले हैं और हम सबके परम मान्य हैं क्यों कि आपने वेदों का विस्तार किया था और आप सभी पुराणों को भी जानते हैं। आप महा भारत जैसे महा विशाल ग्रन्थ की रचना करने वाले भी हैं। आपने तो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का विशेष निश्चय भी अवश्य ही कर लिया है। हे सत्यवती के पुत्र ! दूसरा कौन है जो आप से भी अधिक तत्त्वों का ज्ञाता हो। आपने जो अपनी तर्जनी अंगुलि ऊंचा उठाकर और पूर्ण निश्चय करके प्रतिज्ञा करके कहा है इसमें जो माणवक (बालक) हैं वे अच्छी तरह से श्रद्धा नहीं करते हैं। आपके इस प्रतिज्ञा किये हुए वचन की श्रद्धा तो तभी हो सकती है जब कि भगवान् शम्भु के वचन को आनन्द वन में प्रतिज्ञा को आप जान लेवें। हे श्री व्यास देवजी ! आप स्वयं वाराणसी पुरी में गमन कीजिए जहाँ पर भगवान् विश्वेश्वर स्वयं विराजमान रहा करते है। वहाँ पर उस विश्वनाथ भगवान् की पुरी की ऐसी अद्भुत महिमा है कि वहाँ पर युग के धर्म का भी कोई प्रभाव नहीं है और न वहाँ पर वसुन्धरा ही लग्न है। यह श्रवण करके महामुनि व्यास कुछ अपने हृदय में कुपित से हुए थे और बहुत ही शीघ्र अपने दशों सहस्र शिष्यों के सहित वहाँ पर गये थे ॥२१-२७॥

प्राप्य वाराणसी व्यासः स्नात्वा पञ्चनदेह्रदे ।
श्रीमन्माधवमभ्यर्च्य ययौ पादोदकं ततः ॥२८
यत्र स्नानादिकं कृत्वा दृष्ट्वा चैवादि केशवम् ।
पञ्चरात्रं तत. कृत्वा वैष्णवैरभिनन्दितः ॥२९
अग्रतः पृष्ठतः शार्ङ्गं वाद्यमाने. प्रमोदित ।
जयविष्णो हृषीकेश गोविन्दमधुसूदनः ॥३०

अच्युतानन्तवैकुण्ठमाधवोपेन्द्र ! केशव !।
त्रिविक्रम गदापाणे शार्ङ्गपाणे जनार्दन ॥३१
श्रीवत्सवक्षः श्रीकान्त पीताम्बरमुरान्तक ।
कैटभारेबलिध्वंसिन्कंसारेकेशिसूदन ॥३२
नारायणासुररिपो कृष्ण शौरे ! चतुर्भुज !।
देवकीहृदयानन्द ! यशोदानन्दवर्धन ॥३३
पुण्डरीकाक्ष ! दैत्यारे दामोदरबलप्रिय ।
बलारातिस्तुत हरे ! वासुदेव ! वसुप्रद !॥३४
विष्वक्चक्षुस्तार्क्ष्यरथ वनमालिन्नरोत्तम ।
अधोक्षज क्षमाधार पद्मनाभजलेशय ॥३५

मुनिवर व्यास देवजी ने वाराणसी पुरी में पहुंच कर वहाँ पर पञ्च नद ह्रद में स्नान किया था और श्रीमान् माधव देव का अभ्यर्चन करके फिर वे पादोदक पर चले गये थे। जहाँ पर स्नान आदि सब करके आदि केशव भगवान् का दर्शन किया था। वहाँ पर पाँच रात्रि तक निवास किया था जिसको वहाँ पर स्थित वैष्णवों ने बहुत ही अभिनन्दित किया था। वहाँ पर आगे और पीछे सभी ओर वाद्यमान (बजाये गये) शङ्ख की ध्वनि के साथ श्रीव्यास देव अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान् के अनेक शुभ नामों का समुच्चारण किया था—यथा—हे विष्णो ! आपकी जय हो, हे हृषीकेश—हे गोविन्द ! हे मधुसूदन ! हे अच्युत ! अनन्त ! वैकुण्ठ ! माधव, उपेन्द्र, हे केशव ! त्रिविक्रम ! गदा हाथ में धारण करने वाले ! हे शार्ङ्गपाणे ! जनार्दन, श्री वत्सवक्ष, श्रीकान्त, पीताम्बर, मुर असुर के अन्त करने वाले ! हे कैटभारे ! बलि विध्वंसिन् ! कंसारे ! हे केशी दैत्य के वध करने वाले ! नारायण, असुरों के रिपु—हे श्रीकृष्ण शौरे, चतुर्भुज, हे देवकी देवी के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले यशोदा माता के आनन्द को बढ़ाने वाले ! हे पुण्डरी के समान नेत्रों वाले ! हे दैत्यों के अरि—दामोदर—बलप्रिय—बलारातिस्तुत—हे हरे वासुदेव, हे वसुप्रद ! विष्वक्चक्षु—तार्क्ष्यरथ—वनमालिन्—हे नरों में

सर्वोत्तम ! हे मनोरज ! हे क्षमागार–पद्मनाभ–जल में शयन करने वाले ! ॥२८-३५॥

नृसिंह यज्ञवाराह! गोपगोपालवल्लभ !।
गोपीपते गुणातीत गरुडध्वज गोत्रभृत ॥३६
जय चाणूरमथन! जयत्रैलोक्यरक्षण !।
जयानाथ जयानन्द जयनीलोत्पलद्युते ॥३७
कौस्तुभोद्भूषितोरस्कपूतनाधातुशोषण ।
रक्ष रक्षजगद्रक्षामणे नरकहारक ॥३८
सहस्रशीर्षपुरुष पुरुहूतसुखप्रद ।
यद्भूत यच्च भाव्य वैतत्त्वं कःपुरुषोभवान् ॥३९
इत्यादिनाममालाभि स्तुवन्वनमालिनम् ।
स्वच्छन्दलीलयागायन्नृत्यन्परयामुदा ॥४०
श्यामो विश्वेशभवनं समायातः सहृष्टवत् ।
ज्ञानवापीपुरोभागे महाभागवतैः सह ॥४१
विराजमानमलकण्ठस्तुलसीवरदामभिः ।
स्वयं तामधरो जातः स्वयं जातः सुनर्तकः ॥४२

हे नृसिंह ! हे यज्ञ वाराह ! हे गोपों और गोपालों के परम प्रिय ! गोपीपते ! हे गुणों से अतीत, गरुडध्वज गोत्रभृत्—हे चाणूर के मन्थन करने वाले ! आपकी जय होवे । हे इस सम्पूर्ण त्रिलोकी की रक्षा करने वाले ! आपकी जय हो । हे अनाथ, हे आनन्द ! हे नील कमल के समान द्युति वाले ! आपकी सदा जय हो । हे कौस्तुभ मणि से विभूषित वक्षःस्थल वाले ! हे पूतना की धातुओं के शोषण करने वाले ! हे रक्षा मणे ! इस समस्त जगत् की रक्षा कीजिए, हम का परित्राण करिए । आप तो नरकों के हारक हैं । आप ऐसे महा पुरुष हैं जो सहस्र शीर्षो वाले हैं । हे इन्द्र को सुख प्रदान करने वाले ! जो भी हो चुका है और जो कुछ भी होने वाला है वहाँ सभी स्थितियों में आप एक ही पुरुष हैं । इत्यादि अनेक प्रभु के शुभ नामों की मालाओं के द्वारा वनमाली प्रभु

का संस्तवन करते हुए—स्वच्छन्द लीला से गान करते हुए और परमानन्द पूर्वक नृत्य करते हुए श्री व्यास देवजी परम हर्षित होते हुए भगवान् विश्वनाथ के भवन में समायात हो गये थे। वहाँ पर ज्ञानवापी के आगे के भाग मे महा भागवतों के साथ व्यास देवजी विराजमान हो गये थे। तुलसी की सुन्दर मालाओं से जिनका सुन्दर कण्ठ शोभित था। वे स्वयं वहीं पर भी तालधर होकर स्वयं ही भगवान् विष्णु की भक्ति के भावावेश में मग्न होकर नृत्य करने वाले हो गये थे ।३६-४२॥

वेणुवादनतत्त्वज्ञः स्वयं श्रुतिधरोऽभवत् ।
नृत्यं परिसमाप्येत्थं व्यासःसत्यवतीसुतः ॥४३
पुनरुर्ध्वं भुजं कृत्वा दक्षिणं शिष्यमध्यगः ।
पुनः पपाठ तानेवश्लोकान्गायन्निवोच्चकैः ॥४४
परिनिर्मथ्य वाग्जालं सुनिश्चित्याऽसकृद्बहु ।
इदमेकं परिज्ञातं सेव्यः सर्वेश्वरो हरिः ॥४५
इत्यादिश्लोकसङ्घातं स्वप्रतिज्ञाप्रबोधकम् ।
यावत्पठति स व्यास. सम्यगुत्क्षिप्य वै भुजम् ॥४६
तस्तम्भ तावत्तद्बाहुं शशलादि. स्वलीलया ।
वाक् स्तम्भश्चाऽपि यस्यासीन्मुनेर्व्यासस्य सन्मुने ॥४७
यतोगुप्तं समागम्य विष्णुर्व्यासमभाषत ।
अपराद्धं महच्चाऽत्रभवता व्यासनिश्चितम् ॥४८
तवैतदपराधेन भीतिमेंऽपि महत्तरा ।
एक एव हि विश्वेशो द्वितीयो नास्ति कश्चन ॥४९

श्री व्यास देव वेणु वादन के तत्त्वों के परम ज्ञाता थे, वे स्वयं ही श्रुतिधर हो गये थे। इस प्रकार से सत्यवती के पुत्र व्यास देव ने अपने भगवत्प्रेममय नृत्य को समाप्त करके फिर अपने शिष्यों के मध्य में स्थित होकर अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर उन्होने फिर भी बहुत ही ऊँचे स्वर से गायन करते हुए उन्हीं श्लोकों को पढ़ा था कि मैंने समग्र वाग्जाल का मथन करके और बहुत ही अनेक बार अच्छी तरह से निश्चय करके यही एक सार की बात का ज्ञान प्राप्त किया है कि सर्वेश्वर श्रीहरि

का ही सेवन करना चाहिए। इत्यादि अनेक श्लोकों के समुदाय को जो कि अपनी प्रतिज्ञा का प्रबोधक थे ज्यों ही श्री व्यास देव अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर पढ़ रहे थे वैसे ही उनकी उस भुजा को अपनी ही लीला से नन्दीशादि ने स्तम्भित कर दिया था। उनकी महामुनि व्यास देव की वाणी का भी हे मुने! उसी समय में स्तम्भन होगया था। उसी समय में वहाँ पर भगवान् विष्णु गुप्त रूप से समागत हो गये थे और वे व्यास देवजी से बोले थे कि हे व्यास! आपने निश्चित रूप से यहाँ पर यह एक अत्यन्त महान् अपराध किया है। आपके इस अपराध से मुझे भी बहुत बड़ा भय समुत्पन्न हो गया है। हे व्यास! विश्वेश ही एक सर्वोपरि विराजमान देव हैं। अन्य इनसे ऊपर दूसरा कोई भी नहीं है॥४१-४६॥

तत्प्रसादादहञ्चक्री लक्ष्मीशास्तत्प्रभावतः।
त्रैलोक्यरक्षासामर्थ्यं दत्तंतेनैव शम्भुना॥५०
तद्भक्त्यापरमैश्वर्यं मया लब्धं वरात्ततः।
इदानीन्तुहि तं शम्भुं यदिमेशुभमिच्छसि॥५१
अन्यदापि नवं कार्याभवताभेमुपीदृशी।
पाराशर्य इति श्रुत्वा सञ्ज्ञयाव्याजहारह॥५२
भुजस्तम्भः कृतस्तेन नन्दिना क्षिप्रमाततः।
वाक्स्तम्भस्तद्भयाज्जातः स्पृश मे कण्ठकन्दलीम्॥५३
यथास्तोतुम्भवानीश प्रभवामिभवान्तकम्।
सस्पृश्यविष्णुस्तत्कण्ठंगुप्तमेवजगामह॥५४
तत सत्यवतीसूनुस्तथा स्तम्भितदोर्लतः।
प्रारब्धवान्महेशान परिष्टोतु मुदारधीः॥५५

मैं भी उन्हीं विश्वेश की महिमा के प्रभाव से चक्रधारी बना हुआ हूँ तथा लक्ष्मीश का पद प्राप्त करने वाला हो गया हूँ। उन्हीं भगवान् शम्भु ने मुझे यह त्रैलोक्य की रक्षा एवं परिपालन की शक्ति प्रदान की है। उनकी भक्ति से ही मैंने वरदान के द्वारा यह परम ऐश्वर्य प्राप्त किया है। जो कुछ किया सो किया अब आप उन्हीं शम्भु भगवान् का संस्तवन करो यदि आप मेरा शुभ चाहते हो। मैं यह भी बतलाये देता हूँ कि फिर भी कभी

अन्य समय तथा स्थान में आपको ऐसी अपनी बुद्धि नहीं करनी चाहिए। पराशर के पुत्र व्यास देव ने होश में आकर यह श्रवण करके कहा—उन नन्दी ने अपनी दृष्टि मात्र से ही मेरी इस भुजा का स्तम्भन कर दिया है और मेरी वाणी का स्तम्भन उस भय से ही हो गया है। अब एक हे प्रभो ! आप मेरे कण्ठ की कन्दली का स्पर्श करिए ॥५०-५३॥ अभी मैं महात्मा के पति का संस्तवन करने के लिये समर्थ हो सकता हूँ जो कि इस समस्त संसार के अन्त करने वाले हैं। भगवान् विष्णु ने व्यास देव के कण्ठ का संस्पर्श किया था और गुप्त रूप से ही ऐसा करने से चले गये थे। इस के अनन्तर सत्यवती के पुत्र श्रीव्यास देव ने स्तम्भित भुजा वाला ही रहते हुए आप को उदार बुद्धि से महेशान प्रभु का संस्तवन करने का आरम्भ कर दिया था ॥५४-५५॥

एको रुद्रो न द्वितीयो यतस्तद्
ब्रह्मैवैकं नेह नानास्ति किंचित् ।
यद्यप्यन्यः कोऽपि वा कुत्रचिद्वा
व्याचष्टान्तस्तस्य शक्तिर्मदर्थे ॥५६

यः क्षीराब्धेर्मन्दराघातजातो
ज्वालामाली कालकूटोऽतिभीमः ।
तं भोक्तुं वा कोऽपरोऽभून्महेशा
द्यन्नीलाभिः कृष्णतामाप विष्णुः ॥५७

यद्बाणोऽभूच्छ्रीपतिर्यस्य यन्ता
लोकेशो यत्स्यन्दनम्भूः समस्ता ।
वाहा वेदा यस्य येनेषुपातं
दग्धा प्राभास्त्रं पुरास्तत्समः कः ॥५८

यः कन्दर्पो वीक्षमाणः समानं
देवैरन्यैर्भस्मजातः स्वयं हि ।
पौष्पैर्बाणैः सर्वविश्वैकजेता
को वा स्तुत्यः कामजेतुस्ततोऽन्यः ॥५९

यं वै वेदो वेद नो नैव विष्णु
नैवा वेधा नो मनो नैव वाणी।
तं देवेशं मादृशः कोऽल्पमेधा
याथात्म्याद्वै वेत्त्यहो विश्वनाथम् ॥६०

श्रीव्यास देव ने कहा—इस विशाल विश्व ब्रह्माण्ड में एक ही रुद्र देव सब के प्रमुख देव हैं क्योंकि ब्रह्म एक ही है और वह अनेक न होकर ही एक विभिन्न रूपों में रहता है। यद्यपि कहीं पर भी अन्य कोई बतलाया भी गया है और जिसको शक्ति मेरे आगे है वह वही महेश है ॥५६॥ जो मन्दराचल के प्राघात से क्षीर सागर में ज्वालाओं की माला वाला—अत्यन्त भयानक काल कूट उत्पन्न हुआ था उस को सहन करने के लिये अन्य कौन समर्थ हुआ था। श्री महेश ही ऐसी सामर्थ्य वाले थे जिन्होंने उसे कण्ठ में धारण कर लिया था जिसकी लीलाओं से भगवान् विष्णु भी कृष्णता को प्राप्त हो गये थे ॥५७॥ श्रीपति जिसका बाण हुआ था—जिसका यन्ता लोकेश थे—जिसका स्यन्दन अर्थात् रथ यह सम्पूर्ण भूमि थी—जिस के वहन करने वाले वेद थे ऐसे जिन भगवान् महेश्वर ने त्रिपुर ग्रामों को बाणों के पात से दग्ध कर दिया था उन देवेश्वर के समान अन्य कौन देव हो सकता है ॥५८॥ जिस देवेश्वर को यह कन्दर्प (कामदेव) अन्य देवों के ही समान देखता हुआ स्वयं ही भस्म हो गया था। यह कामदेव अपने पुष्पों के ही बाणों के द्वारा समस्त विश्व पर विजय प्राप्त करने वाला था उस कामदेव को जीत लेने वाले से अन्य कौन देव स्तुति करने के योग्य हो सकता है अर्थात् उनसे अन्य ऐसा कोई भी देव है ही नहीं। जिन महेश्वर देव को वेद भी नहीं जान पाये हैं—न विष्णु भगवान् ने उनको समझ पाया है—ब्रह्मा भी उनके स्वरूप को नहीं पहिचान सके हैं तथा मन और वाणी उनको नहीं जान सकी हैं उन देवेश्वर विश्वनाथ को मुझ जैसा अल्प बुद्धि वाला कैसे जान सकता है उनकी यथात्मता मेरी बुद्धि के बाहर की वस्तु है ॥५९-६०॥

यस्मिन्सर्वं यस्तु सर्वं च सर्वो
यो वै धर्ता योऽविता योऽपहर्ता।

नो यस्यादिर्यः समस्तादिरेको
नोयस्यान्तो योऽन्तकृत्त नतोऽस्मि ॥६१
यस्यैकाख्या वाजिमेधेन तुल्या
यस्या नत्या चैकयाल्पेंद्रलक्ष्मी ।
यस्य स्तुत्या लभ्यते सत्यलोक
यस्यार्चातो मोक्षलक्ष्मीरदूरा ॥६२
नान्यं देवं वेदम्यहं श्रीमहेशा
न्नान्यं देवं स्तौमि शम्भोर्ऋतेऽहम् ।
नान्यं देवं वा नमामि त्रिनेत्रा
त्सत्यं सत्यं सत्यमेतन्मृषा न ॥६३
इत्थं यावत्स्तौति शम्भुं महर्षि
स्तावन्नन्दी शाम्भवादद्वप्रमादात् ।
तद्दोःस्तम्भं त्यक्तवांश्चाप्यभाषे
त्मायं स्मायंब्राह्मणेभ्यो नमो वः ॥६४
इदं स्तवम्महापुण्यंव्यासते परिकीर्तितम् ।
यःपठिष्यतिमेधावी तस्यतुष्यतिशङ्करः ॥६५
व्यासाष्टकमिदम्प्रातः पठितव्यंप्रयत्नतः ।
दुःस्वप्नपापशमन शिवसान्निध्यकारकम् ॥६६

जिसमें यह समस्त चराचर विश्व ब्रह्माण्ड रहता है जो सर्वत्र विराजमान है—जो इसके सृजन का करने वाला है—जो इस जड़-जङ्गम जगत् का परिपालन संरक्षण करने वाला है तथा अन्त में जो स्वयं ही इसका संहार कारी है। जिसका कोई आदि नहीं है, जो समस्त का एक ही स्वयं आदि है, जिसका अन्त भी नहीं है और जो इस जगत् का अन्त करने वाला है उन्हीं प्रभु विश्वेश्वर को मैं नमन करता हूँ ॥६१॥ जिसके एक ही शुभ एवं पावन नाम के उच्चारण का पुण्य—फल एक वाजिमेध यज्ञ के तुल्य होता है, जिसके लिये एक ही बार प्रणाम करने के पुण्य फल के आगे इन्द्र की ऐश्वर्य लक्ष्मी भी अत्यन्त स्वल्प होती है, जिसकी स्तुति करने का पुण्य फल ऐसा होता है कि सत्य लोक की प्राप्ति

को जाया करती है और जिस विश्वनाथ भगवान् की समर्चना से मोक्ष लक्ष्मी भी समीप मे रहा करती है ॥६२॥ मैं तो श्री महेश देव से अन्य किसी भी देव को नही जानता हूँ। मैं भगवान् शम्भु के बिना अन्य किसी भी देव का स्तवन नही करता हूँ। मैं त्रिनयन को छोड़कर अन्य देव को नमन भी नही करता हूँ—यह मेरा कथन सर्वथा सत्य है—शत प्रतिशत सत्य है और पूर्णतया सत्य है—इसमें लेश मात्र भी मिथ्या नहीं है ॥६३॥ इस प्रकार से जब तक व्यास देव शम्भु की स्तुति कर रहे थे तब तक शम्भु की दृष्टि के प्रसाद से नन्दी ने उन महर्षि की बाहु के स्तम्भन का त्याग कर दिया था और बारम्बार मुस्कराहट करते हुए कहा था आप ब्राह्मणो के लिये नमस्कार है ॥६४॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—हे व्यास! यह स्तव महान् पुण्यमय है जो आपने अभी किया है। जो भी कोई मेधावी इस स्तोत्र को पढेगा उससे भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न होंगे। यह व्यास के द्वारा रचित अष्टक है। इसको प्रयत्न पूर्वक अवश्य पढ़ना चाहिए। यह दुःस्वप्नो और पापो के प्रशमन का करने वाला तथा भगवान् शिव की सन्निधि मे पहुँचा देने वाला है ॥६५-६६॥

काशीखण्ड समाप्त

स्कन्द पुराण

अवन्ती खण्ड

५७—महाकालवन प्रशंसा वर्णन

स्रष्टारोपि प्रजानां प्रबलमनभयाद्यं नमस्यन्ति देवा-
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनां च ।
लोकःनामादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा ;
बिभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिंगं कपालम् ॥१
पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्याश्च सरितस्तथा ।
कथ्यतां तानि यत्नेन श्राद्धं येषु प्रदीयते ॥२
स्त्रिलोकेषु विख्याता गंगात्रिपथगानदी ।
सेवितादेवगन्धर्वैर्मुनिभिश्चनिषेविता ॥३
तपनस्यसुतादेवी यमुनालोकपावनी ।
पितृणांवल्लभादेवि ! महापातकनाशिनी ॥४
चन्द्रभागावितस्ताच नर्म्मदाऽमरकण्टकम् ।
कुरुक्षेत्रं गया देवि ! प्रभासं नैमिषन्तथा ॥५
केदारं पुष्पकरञ्चैव तथा कायावरोहणम् ।
तथा पुण्यतमन्देवि महाकालवनं शुभम् ॥६
यत्रास्ते श्रीमहाकालः पापेन्धन हुताशनः ।
क्षेत्रं योजनपर्यन्तं ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥७
भुक्तिदं मुक्तिदं क्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् ।
प्रलयेऽप्यक्षयं देवि दुष्प्रापं त्रिदशैरपि ॥८

आरम्भिक मंगलाचरण का श्लोक है—प्रजाओं के सृजन करने वाले भी देव जिनको महान प्रयत्न भय से नमस्कार किया करते हैं जो परम अवहित मन वाले और ध्यान में युक्त आत्माओं वाले लोगों के चित्त में भली भाँति प्रविष्ट हुआ रहा करता है। समस्त लोकों का आदि देव चन्द्रमा के लेश और व्यक्त लिंग वाले कपाल को तथा सर्पों के वलय को धारण करने वाले भगवान् श्री महाकाल नाम वाले वह प्रभु हैं उनकी सदा जय होवे। जगज्जननी श्री उमादेवी ने कहा—हे देवेश्वर। इस भू मण्डल में जो भी तीर्थ स्थल हैं तथा परम पुण्यमयी सरितायें हैं उनको आप प्रयत्नपूर्वक कहिए जिनमें श्राद्धों का प्रदान किया जाया करता है। श्री ईश्वर ने कहा—समस्त लोकों में परम विख्यात त्रिपथगा गङ्गा नदी है जो देवों-गन्धर्वों और मुनियों के द्वारा सेवित और उपासित होती है। हे देवि! सविता देव की पुत्री लोकों को पावन करने वाली यमुना है जो पितृगणों की बहुत ही अधिक प्यारी है और बड़े से बड़े पातकों के विनाश कर देने वाली है॥१-४॥ हे देवि! चन्द्रभागा, वितस्ता और नर्मदा सरिताएं भी हैं तथा अमरकण्टक—कुरुक्षेत्र—गया—प्रभास क्षेत्र—नैमिषारण्य—केदार—पुष्कर—नागावरोहण—महान् पुण्यतम एवं शुभ महाकाल वन है जहाँ पर पापों के ईंधन के लिए भस्म करने वाले अग्नि के तुल्य श्री महाकाल विराजमान रहते हैं। यह एक योजन पर्यन्त क्षेत्र है जो ब्रह्म हत्या आदि महान् पातकों का भी विनाश कर देने वाला है। यह सम्पूर्ण सुखों के उपभोगों के प्रदान करने वाला तथा संसार के जन्म मरण के आवागमन से छुटकारा देने वाला क्षेत्र है और सभी कलियुग के कल्मषों का विनाशक है। हे देवि! यह प्रलय काल में भी जबकि सभी का विनाश हो जाया करता है अक्षय ही रहा करता है और देवों के द्वारा भी दुष्प्राप होता है॥५-८॥

प्रभावः कथ्यतां देव! क्षेत्रस्यास्य महेश्वर!।
यानि तीर्थानि तिष्ठन्ते यानि लिङ्गानि सन्ति वै ॥९
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥१०

शृणु देवि प्रयत्नेन प्रभावं पापनाशनम् ।
क्षेत्रमाद्यं महादेवि ! सर्वपापप्रणाशनम् ॥११
श्रीमेरोस्सन्निधाने यच्छिखरं रत्नचिन्तितम् ।
वैराजभवन नाम ब्रह्मण. परमात्मनः ॥१२
तत्र दिव्यांगनागीतमधुरस्वरनादिता ।
पारिजाततरुच्छन्नमञ्जरीदामशोभिता ॥१३
बहुवाद्यसमुत्पन्नसुमहास्वरनादिता ।
लयतालयुतानेक गीतवादित्रनादिता ।
विन्यस्ता कोटिभिः स्तम्भैर्निर्मलैर्दर्शशोभिता ॥१४
अप्सरोनृत्यविन्यास विलासोल्लासशोभिता ।
सभाकान्तिमतीनाम्नी देवाना हृपदायिका ॥१५

भगवन्वा उमा देवी ने कहा—हे देव ! आप तो परम महान् ईश्वर हैं। कृपया इस क्षेत्र का प्रभाव मुझे श्रवण कराइये। जो भी तीर्थ विद्यमान रहते हैं और जो भी शिव हैं उन सभी को मैं सुनना चाहती हूँ। मेरे चित्त में इनके श्रवण करने का बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥९-१०॥ श्री महादेवजी ने कहा—हे देवि ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो पापों के नाश करने वाले प्रभाव को सुनिए। हे महादेवि ! यह सबसे आदि में होने वाला क्षेत्र है और सभी प्रकार के पापों का नाश कर देने वाला है ॥११॥ श्री मेरु पर्वत के सन्निधान में जो रत्नों से चिन्हित शिखर है वह परमात्मा ब्रह्मा का वैराज भवन नाम वाला है। वहाँ पर एक कान्ति से सुसम्पन्न और कान्तिमती हो नाम वाली सभा है जो दिव्याङ्गनाओं के गीतों के परम मधुर स्वर से शब्दायमान रहा करती है। जो पारिजात वृक्ष की छन्न मञ्जरियों के मालाओं से शोभा वाली है। जहाँ पर बहुत प्रकार के उत्तमोत्तम वाद्यों से उत्पन्न सुन्दर समुत्पन्न ध्वनियों से निनादित रहा करती है। जो लय और तालों से युक्त बहुत से प्रकार के गीत और वादित्रों की ध्वनियों वाली है। जिसमें परम स्वच्छ आदर्शों (दर्पणों) से शोभित करोड़ों ही स्तम्भ बने हुए हैं और जो अप्सराओं के नृत्यों से एवं विन्यासों के उल्लासों एवं विलासों से

शोभा वाली है। यह देवों को बहुत ही हर्ष के प्रदान करने वाली है ॥१२-१५॥

तस्यां निविष्टं वागीशं शङ्कराराधने रतम् ।
सनत्कुमारं ब्रह्मर्षि ब्रह्मणो मानसं सुतम् ॥१६
मुनिमध्यात्समुत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
पराशरसुतो व्यासः प्रणिपत्य यथाविधि ॥१७
कृताञ्जलिपुटोभूत्वा भवभक्त्यानुभावितः ।
पप्रच्छपरयातुष्ट्या हृषिता गरुडाननः ॥१८
महाकालस्य माहात्म्यं प्राणिनां मोहनाशनम् ।
भगवन् ! क्षेत्रमाहात्म्यं महाकालस्य कथ्यताम् ॥१९
महाकालवनंकस्मात् प्रोच्यते सर्वतोवरम् ।
कथं गुह्यवनं प्रोक्तं पीठं सऊपरन्तथा ॥२०
फलं यथास्यक्षेत्रस्य मृतानाञ्च गतिर्यथा ।
स्नानेन यद्भवेत्पुण्यं दानेनापि च यत्फलम् ॥२१
कथमेतच्छमशानञ्च क्षेत्रं प्रोक्तं यथातथा ।
पृष्टोमेशङ्करेर्भक्त ब्रूहि त्वं शास्त्रकोविद ॥२२

उस सभा में निविष्ट—वागीश श्री शंकर भगवान् के समाराधना में रति रखने वाले—ब्रह्माजी के मानस पुत्र—ब्रह्मर्षि सनत्कुमार मुनि को समस्त मुनि मण्डली के मध्य से उठकर पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने यथा विधि प्रणाम किया था ॥१६-१७॥ भगवान् भव की भक्ति से अनुभावित होकर दोनों अपने हाथों को जोड़कर परम तुष्टि से हृषित गरुडानन ने पूछा था कि इस महाकाल का क्या प्रभाव है जो प्राणियों के मोह के नाश कर देने वाला होता है। व्यास देव ने कहा था—हे भगवन् ! आप इस महाकाल के क्षेत्र के प्रभाव एवं माहात्म्य को कहिये। यह सबसे परम श्रेष्ठ महाकालवन कैसे कहा जाता है ? यह गऊरर पीठ गुह्यवन क्यों कहा गया है ? जिस प्रकार से इस क्षेत्र का फल होता है और जैसे यहाँ पर मृत मानवों की गति हुआ करती है तथा जो यहाँ दान देने से पुण्य होता है एवं यहाँ स्नान करने से जो फल

प्राप्त होता है वह सभी बतलाइये । इस क्षेत्र को श्मशान कैसे और क्यों कहा गया है ? मेरे द्वारा पूछे गये आप भगवान् शङ्कर में भक्ति को भी बतलाइये क्योंकि आप तो समी शास्त्रों के महान् मनीषी हैं ॥१८-२२॥

क्षीयते पातकं यस्मात् तेनेदं क्षेत्रमुच्यते ।
यस्मात्स्थानञ्च मातृणा पीठन्ते नैवकथ्यते ॥२३
मृताः पुनर्नजायन्ते तेनेदमूषरं स्मृतम् ।
गुह्यमेतत्प्रियन्नित्य क्षेत्रं शम्भोर्महात्मन. ॥२४
यस्मादिष्ट हि भूताना श्मशानमतिवल्लभम् ।
महाकालवन यच्च तच्चैवापि विमुक्तिकम् ॥२५
एकाम्रक भद्रकाल करवीरवनन्तथा ।
कोलागिरिस्तथा काशी प्रयागममरेश्वरम् ॥२६
भरतञ्चैव केदारं दिव्य रुद्रमहालयम् ।
दिव्यश्मशानान्येतानि रुद्रस्येष्टानि नित्यशः ॥२७
रमते भगवानेषु सिद्धिक्षेत्रेषु सर्वदा ।
पृथिव्यान्नैमिषंतीर्थमुत्तम तीर्थपुष्करम् ॥२८

भगवान् सनत्कुमार जी ने कहा—जिससे पातकों का क्षय हो जाया करता है ? इसी कारण से इसका नाम क्षेत्र यह पड गया है और क्षेत्र कहा जाया करता है । क्योंकि यह मातृगण का स्थान है इसी कारण से इसको पीठ कहा जाता है । इसमें अपने प्राणों का परित्याग करने वाले फिर दूसरी बार जन्म ग्रहण नही किया करते हैं इसी से इसको ऊपर कहा गया है । यह महान आत्मा वाले प्रभु शम्भु का परम गोपनीय और नित्य ही अतिशय प्रिय क्षेत्र है । इस कारण से समस्त भूतों का यह इष्ट है और अत्यन्त वल्लभ श्मशान है और जो महाकाल वन है वह भी विमुक्ति के प्रदान करने वाला है । एकाम्रक—भद्रक—करवीर वन—कोलागिरि—काशी—प्रयाग—अमरेश्वर—भरत—केदार यह दिव्य रुद्र महालय हैं । ये भगवान् रुद्र को अत्यन्त ही नित्य इष्ट दिव्य श्मशान हैं । भगवान् शम्भु इन सिद्धि के क्षेत्रों में सर्वदा रमण किया करते हैं । इस पृथ्वी में परमोत्तम नैमिष तीर्थ और पुष्कर तीर्थ हैं ॥२३-२८॥

त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं च शस्यते ।
कुरुक्षेत्राद्दशगुणा पुण्या वाराणसी मता ॥२९
तस्माद्दशगुणं व्यास ! महाकालवनोत्तमम् ।
प्रभासाद्यानि तीर्थानि पृथिव्यामिह यानि तु ॥३०
प्रभासमुत्तमं तीर्थं क्षेत्रमाद्यं पिनाकिनः ।
श्रीशैलमुत्तमं तीर्थं देवदारुवनं तथा ॥३१
तस्मादप्युत्तमा व्यास ! पुण्या वाराणसी मता ।
तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं सर्वतीर्थोत्तमं वनम् ॥३२
महाकालवनं गुह्यं सिद्धिक्षेत्रं तपोपरम् ।
किञ्चिद् गुह्यान्यथान्यानि श्मशानान्यूषराणि च ॥३३
सर्वतस्तु समाख्यातं महाकालवनं मुने !।
श्मशानमूषरं क्षेत्रं पीठन्तु वनमेव च ॥३४
पञ्चैकत्र न लभ्यन्ते महाकालपुरादृते ॥३५

इन तीनों लोकों में कुरुक्षेत्र परम प्रशस्त माना जाता है। कुरुक्षेत्र से दस गुणा तथा परम पुण्य स्वरूपा वाराणसी मानी गई है। हे व्यास ! यह महाकाल उत्तम वन उससे भी दस गुना महत्व वाला है। यहाँ पृथ्वी में जो भी प्रभास आदि तीर्थ हैं उन सबमें यह प्रभास सबसे उत्तम तीर्थ है और प्रभु पिनाकी का यह आद्य क्षेत्र है। श्री शैल भी परमोत्तम तीर्थ है तथा देवदारु वन भी श्रेष्ठ तीर्थ है। हे व्यास ! इससे भी उत्तम एवं पुण्यमयी वाराणसी को माना गया है। उससे भी दशगुना सब तीर्थों में उत्तम महाकाल वन को कहा गया है। परम गुह्य एवं सिद्धि का क्षेत्र है तथा ऊषर भी इसी प्रकार का महिमा वाला है। इसी प्रकार से कुछ गुह्य अन्य जो श्मशान तथा ऊषर हैं। हे मुने ! इन सबसे महाकाल वन समाख्यात है। श्मशान—ऊषर क्षेत्र— पीठ और वन ये पाँचों एक ही स्थान में महाकाल पुर के अतिरिक्त कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ करते हैं ॥२९-३५॥

५८—अग्नि आविर्भाव वर्णन

कथमग्निः समुत्पन्नो योनिः शर्वेण धारितः ।
विस्तरेण समाचक्ष्व भगवन्मुनिवन्दितः ॥१
अव्यक्तादीन्ससर्जादावण्डंहिरदजायत ।
जज्ञेसौवर्णवर्णाभो ब्रह्मालोकपितामहः ॥२
स्वयम्भूः स तपस्तपथा दिव्य वर्षशत महत् ।
सन्तप्तोऽभ्याजहाराऽथ भूर्भुवः स्वरिति श्रुतिः ॥३
श्रुतियोगात्तु मनसा पश्चादग्निरजायत ।
अधोमुखः पपाताऽग्निः पृथिवीं निर्दहन् यदा ॥४
पाणिभ्यां ब्रह्मणा सोऽग्निर्भूमेरूर्ध्वं निवेशितः ।
ततो दक्षिणहस्तेन वेद्यामग्निः प्रणीयते ॥५
पुरापतन्नधोज्वालऊर्ध्वंज्वालोयतोऽभूत् ।
उत्तानश्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिर्मितस्तथा ॥६
ज्वालाभिः प्रज्वलन्नूर्ध्वं सर्वशब्दः स्फुलिङ्गवान् ।
हिरण्यवर्णं ब्रह्माणं स ज्वालाभिरुत्कटम् ॥७

महामहर्षि व्यासदेव जी ने कहा—हे मुनियों के द्वारा अभिवन्दित भगवन् ! यह सबका योनि भगवान् शम्भु के द्वारा धारण किया हुआ अग्नि कैसे समुत्पन्न हुए थे ? आप इसको विस्तार से बतलाइये । भगवान् सनत्कुमारजी ने कहा—सबसे आदि काल में अव्यक्तादि का सृजन किया और वह अण्ड समुत्पन्न हुआ था । सुवर्ण के समान आभावाला लोकों के पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे ॥१-२॥ उन भगवान् स्वयम्भू ने दिव्य सौ वर्ष तक महान् तप का समतपन किया था । इसके अनन्तर 'भूर्भुवः स्वः'—इस श्रुति का कथन हुआ । इसके पीछे श्रुति के योग से मन से अग्नि की समुत्पत्ति हुई थी । वह अग्नि नीचे और मुख वाला होकर गिर गया था । जब वह पृथिवी का दाह कर रहा था तब ब्रह्माजी ने दोनों हाथों से उस अग्नि को भूमि के ऊपर निवेशित कर दिया था । इसके दाहिने हाथ से वेदी में यह अग्नि प्रणीत किया जाता है ॥३-५॥

दहिने यह नीचे की ओर ज्वाला वाला होकर गिरा था फिर ऊर्ध्व ज्वाला वाला इसे धारण किया गया था। इस प्रकार से ब्रह्माजी के द्वारा यह तीन प्रकार से निर्मित किया गया था। ज्वालाओं से ऊर्ध्व भाग की ओर प्रज्वलित होता हुआ—सर्वशब्द वाला—स्फुलिङ्गों से पुन यह अग्नि हिरण्य के समान वर्ण वाले ब्रह्माजी से उत्कट बोला—॥६-७॥

किमर्थं तु मया देव भूमिभक्ष्यं निवारितम् ।
बुभुक्षयाहमाविष्टआहारोमेप्रदीयताम् ॥८
एवमुक्तोऽग्नयेब्रह्मा स्वरोमाणिजुहावसः ।
कृशाश्वसादग्निस्तु सर्वरोमाणिब्रह्मणः ॥९
अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः ।
त्वचजुहावब्रह्मा स चखादाग्निस्तमेव च ॥१०
अब्रवीत्तं ततो वह्निस्तृप्तिर्नास्ति ममेश हि ।
जुहाव स्वानि मांसानि त्वचो कृत्य प्रजापतिः ॥११
अब्रवीच्चनमेतृप्तिनचमेदेहनिर्वृतिः ।
जुहाव ब्रह्माचास्थीनि तान्यत्त्वन्स बुभुक्षितः ॥१२
ततोब्रह्माहुताग्नेन कृतोदेहोविधानुकः ।
तमदेहमपोवहित्वं ह्मणमब्रवच्च सः ॥१३
अहोब्रह्मन्नमेतृप्तिर्नचदेहनिवृतिः ।
क्रुद्धेनब्रह्मणातोऽग्निर्हुं कारेणद्विधाकृतः ॥१४

अग्नि ने कहा—हे देव ! मेरे द्वारा भूमि का भक्षण आपने किस कारण से निवारित कर दिया है। मैं तो बुभुक्षा (भूख) से आविष्ट हूँ। मुझे आप आहार प्रदान कीजिए ॥८॥ इस तरह से अग्नि के द्वारा कहे गये ब्रह्माजी ने उस अग्नि के लिए अपने रोमों का हवन किया था। उस कृश अग्नि ने ब्रह्माजी के समस्त रोमों को खा लिया था और फिर वह अग्नि बोला—मेरी तृप्ति नहीं हुई है और मेरे देह की निर्वृत्ति भी नहीं हुई है। फिर ब्रह्माजी ने अपनी त्वचा का हवन किया था। अग्नि ने उसे भी खा लिया था। और फिर उस अग्नि ने कहा था—मेरी तृप्ति तो अभी भी नहीं हुई है। तब उस प्रजापति ने त्वचा से उखाड़कर अपने

मांस की पेशियों का हवन किया था। फिर भी उस अग्नि ने यही कहा था—मेरी अब भी तृप्ति नहीं हुई है और न मेरे इस देह की ही निर्वृत्ति हुई है। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपनी अस्थियों की आहुतियाँ उसे दे दी थी। उनको भी खाते हुए वह भूखा ही रहा था। इसके पश्चात् उस अग्नि ने ब्रह्मा जी को विधातुक देह वाला कर दिया था। फिर वह अग्नि बिना देह वाले ब्रह्माजी से बोला—प्रभो! हे ब्रह्मन्! मेरी तृप्ति नहीं होती है और मेरे देह की निवृत्ति भी नहीं हो रही है तब तो ब्रह्मा परमत्त क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने अपनी हुङ्कार के द्वारा उस अग्नि के दो भाग कर दिये थे ॥९-१४॥

आहतुरुदताबग्नी आहारार्थं प्रजापतिम् ।
हुङ्कारेणपुनर्ब्रह्मा द्विधैकैकञ्चकार वै ॥१५
षयस्तेषां रुदन्तिस्म रुद्रमेकोहि संश्रितः ।
क्रुद्धे नब्रह्मणाव्यास हुङ्कारेणात्रताडितः ॥१६
रोरूयमाणे चाग्नौ तु पुनर्ब्रह्मा कृपान्वितः ।
आह कामाभिभूतानां भुङ्क्ष्व त्व देहधातवः ॥१७
ते काले लब्धकामस्य सातृप्तिः सम्प्रकल्पिता ।
अकाराग्निं सन्निविष्टं दृष्ट्वा मनसि मानसम् ॥१८
अकाराग्निः प्रजग्वाल किमेतदितिचाब्रवीत् ।
ब्रह्माऽभ्याहत्वमपि यथेष्टातृप्तिमाश्रय ॥१९
देवमध्येवहिश्चापि मुनीनामाश्रयेषु च ।
इत्येवमुक्तस्तेनाऽग्नुः तृप्तिमेतामरोचयत् ॥२०
अहमेव प्रदास्यामि पुनापुनरुवाच ह ।
यस्मादेषद्वितीयोऽग्निर्हुङ्कारास्समजायत ॥२१

वे दो भागों में हो जाने वाले अग्नियों ने रुदन करते हुए प्रजापति से अपने आहार के लिये कहा था। फिर ब्रह्माजी ने उन दोनों भागों को एक—एक करके तीन भागों में कर दिया था। वे तीनों भाग रुदन करते थे। उनमें से एक भाग ने रुद्र देव का संश्रय ग्रहण कर लिया था। हे व्यास! क्रुद्ध हुए ब्रह्माजी ने फिर हुङ्कार के द्वारा उस अग्नि को ताड़ित

किया था। ये दोनों अग्नियाँ रो रहे थे तब पुनः ब्रह्माजी को उन पर दया आ गई थी और कृपा से समन्वित होकर ब्रह्माजी ने अग्नि से कहा —जो पुरुष काम से अभिभूत हो उनके देहों की धातुओं का तू भक्षण किया कर ॥१५-१८॥ उन्होंने काल में सकर काम की यह वृत्ति उपकल्पित करली थी। मन में मानस अकाराग्नि को सन्निविष्ट देखकर अकाराग्नि प्रज्वलित हुआ और यह क्या है-ऐसा बोला—ब्रह्माजी ने उस से कहा—तू भी यथेष्ट वृत्ति का समाश्रय ग्रहण करले। देह के मध्य में—बाहिर भी और मुनियों के आश्रमों में अपनी वृत्ति ग्रहण करो। इस प्रकार से कहे हुए उस अग्नि ने इस वृत्ति को बहुत पसन्द कर लिया था। क्यों कि यह दूसरा अग्नि हुङ्कार से समुत्पन्न हुआ है मैं इस प्रकार से दूंगा— यह पुन पुनः कहा था ॥१९-२१॥

साभिमानोऽपमानो वा हुंकारो यत्र कथ्यते।
साच वृत्तिर्ममादेशाद् बुभुक्षा शान्तये तव ॥२२
इकाराग्निं समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत्।
भवतोऽग्नेरियंवृत्तिरन्नभुक्त देहेरिति ॥२३
उकाराग्निं समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत्।
यत्पृथिव्या महत्स्थान भवतस्तत्समाश्रय ॥२४
अहं तव विधास्यामि स्थानमाहारमेवच।
इत्युक्तः सुततेनाग्निर्मः पृथिव्याशिलाचयः ॥२५
यतोऽग्निर्व्यासतेनोक्तो गिरीदुर्गेमहामुने।
ऋकाराग्निं यथाप्येष समुद्रे रक्षामुख ॥२६
सोऽपि भिन्न. समाहूतो ब्रह्मणा स्थानलिप्सया।
त्वञ्चक्षुः सर्वलोकस्य ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥२७
तस्मात्त्व संस्कृतां वाणी द्विजातीनां प्रकाशय।
दैवीं पुण्यासंस्कृताच आयुष्यहृत्स्यसंस्कृता ॥२८

अभिमान के या अपमान के साथ जहाँ पर भी हुङ्कार को कहा जाता है, यह वृत्ति मेरे आदेश से तुम्हारी भूख शान्ति के लिये है ॥२२॥ इकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजी ने यह वचन बोला था—अग्नि आपकी

यह वृत्ति होवे कि जो भी अन्न खाया गया हो उसे आप पाच्य कर दो ॥२३॥ फिर उकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजी ने कहा—जो भी इस पृथिवी में मरुस्थल हो, हे भगवन् ! वहीं पर आप अपना आश्रम बनाइये में आपके लिये स्थान और आहार की व्यवस्था ! इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा कहे हुए उस अग्नि ने पृथिवी में जो भी सिकताओं का समुदाय था, हे महामुने ! व्यास ! उनके द्वारा कहे हुए अग्नि ने गिरि में—दुर्ग में स्थिति की और वहीं पर वह उकाराग्नि ही स्थित होगया है । समुद्र में वडवा मुख अग्नि है । वह भी ब्रह्माजी के द्वारा स्थान की लिप्सा से जिस ब्रह्माजी के द्वारा समाहूत किया गया था । ब्रह्माजी ने उससे कहा—आप समस्त लोक की वसु हैं । इस लिये आप द्विजातियों की परम मनोज्ञ वाणी को प्रकाशित करिए । वाणी दैवी—पुण्या और संस्कृत ही होनी चाहिए । जो वाणी बिना संस्कार वाली होती है वह आयुष्य का हनन किया करती है ॥२४-२८॥

तस्माद्द्विजानां विप्रेन्द्र या वाणी पुण्याप्रकाशिता ।
वाक्प्रभावाद्द्विजातीनां मुखे सा सम्प्रतिष्ठिता ॥२९
अनृताक्षरविन्यासादमङ्गल्याह्यसंस्कृता ।
वक्तारं हन्त्यतोऽस्याग्निः सदासंस्कृतवाग्भव ॥३०
आहूयभूयोऽकाराग्निं प्रजापतिरथानुपम् ।
तां देवराणीमवदत्सोऽपि समीक्षितेक्षण ॥३१
ब्रह्माणमाह वह्निस्तु यावोऽहमुत्तमास्महे ।
स्थानं ममप्रयच्छस्व सर्वलोकेश्वर परम् ॥३२
ब्रह्मा तमाह यस्मात्त्वत्तेऽत्र स्थानसमीहसे ।
तस्मात्तेजोमयपसे रविस्थानं भविष्यति ॥३३
यस्मात्त्वपचलेत्तेजस्तुभुवनं निर्दुर्बलम् ।
तस्मात्त्वात्तेजसायुक्तं पश्येदनिमिषश्चकः ॥३४
इकारमथसर्वभिन्नमभिमाह पितामहः ।
सौम्यरूपामुमहाणं समुद्वीक्ष्य स्तुपागतः ॥३५

इस कारण से द्विजाति की वाणी पुण्या और प्रकाशिता जाननी चाहिए। द्विजातियों की वाक् माता है और वह मख में सम्प्रतिष्ठिता होती है ॥२६॥ मिथ्या से युक्त अक्षरों के विन्यास से—अमाङ्गल्य से असत्कृत वाणी बोलने वाले का अग्नि हनन किया करती है। अतएव द्विज को सदा ही सुसंस्कृत वाणी वाला होना चाहिए ॥३०॥ फिर मकाराग्नि को बुला कर जो कि अचक्षुष था, प्रजापति ने उस देव वाणी को कहा था कि वह भी ममीलित ईक्षण वाला हो गया था। वह्नि ने ब्रह्मा जी से कहा था—हम मुख की वाणी हैं—आप समस्त तेज से परम श्रेष्ठ स्थान मुझे प्रदान कीजिए। ब्रह्माजी ने उससे कहा—क्यों कि आप तेज का स्थान चाहते हैं इसीलिये परम तेजोमय तेरा रवि का स्थान होगा। जिससे तेज चला जाता है वह चक्षु दुर्बल हो जाया करता है। इसी लिये तेज से युक्त आपको अनिमिष कौन देखता है। इस के पश्चात् मंभिन्न इकार अग्नि को ब्रह्माजी ने कहा था। वह अग्नि भी परम सौम्य दृष्टि से ब्रह्माजी को देखकर समुपस्थित हुआ था ॥३१–३५॥

यस्माच्छीघ्र महामत्व ! सौम्यदृष्टिरिहागत ।
तस्माद्दास्याम्यहं स्थान सर्वभूतमनोरमम् ॥३६
त्व मितारमा श्वेतरश्मिश्चन्द्रमास्त्वं भविष्यसि ।
सव तेजोऽधिको दिव्यः सौम्यः परमभासुरः ॥३७
तमस्य सर्व तेजांसि तेजसाऽभिभविष्यति ।
इत्युक्त्वा तं विसर्ज्याऽथ उकाराग्निमथाऽऽह्वयत् ॥३८
इहेह्येहीतिगिरगि ममादायन्यवेशयत् ।
तमस्यः पञ्चमयत्रमूर्ध्न मेतदजायत ॥३९
एगएव स्पर्शाह्निरकाराग्नि प्रतिष्ठिनः ।
तस्मादग्निश्चसूर्यश्च स्तावेतौविनिर्दिशेत् ॥४०
मवाग्निरूपः परमो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ।
ममार्जिरचिरं स्थान प्रयच्छस्वयथातथम् ॥४१
ब्रह्मातमाहत्वमत् स्थान तेरोनवेतले ।
अग्निरनुप्रयुयापेदस्थान यथायमेपरम् ॥४२

स्थानं नैवाऽस्ति नो भव्य ततो ह्येवं भविष्यति ।
अत्र स्थापयितुमिच्छामि यदि संरोचते तव ॥४३

ब्रह्माजी ने कहा—हे महासत्त्व ! क्योंकि आप यहाँ पर परम सौम्य दृष्टि से प्राप्त हुए हैं इसी कारण से मैं आपको समस्त प्राणियों का मनोरम स्थान दूँगा । आप सित स्वरूप वाले—श्वेत किरणों से सम्पन्न चन्द्रमा होंगे । समस्त तेजों से अधिक-दिव्य-सौम्य-परम भासुर वहाँ पर स्थित रहने वाले होंगे जो अपने तेज से समस्त तेजों को अभिभूत कर देगा । यह कहकर ब्रह्माजी ने उसको विसर्जित कर दिया था और इसके पश्चात् उकाराग्नि को समाहूत किया था ॥३६-३८॥ आओ-आओ-यह कहकर उसे लेकर शिर में निवेशित कर दिया था वहीं पर स्थित होते हुए ऊर्ध्व में पाँचवाँ मुख समुत्पन्न हो गया था ॥३९॥ इस प्रकार से यह उकाराग्नि स्वरूप वाला वह्नि प्रतिष्ठित हो गया था । इस लिये अग्नि और सूर्य ये दोनों को रुद्र विनिर्दिष्ट करने चाहिये ॥४०॥ परम भवाग्नि रूप ने ब्रह्मा जी से यह कहा था—मुझे भी कोई अत्यन्त रुचिर स्थान ठीक—ठीक प्रदान कीजिए ॥४१॥ ब्रह्माजी ने उससे कहा—आपको कौन सा स्थान इस भूमि में पसन्द है ? अग्नि ने उत्तर दिया कि मुझ से आप परम सुन्दर स्थान बतलाइये । हमारा कोई भी स्थान ऐसा भव्य नहीं है सो ऐसा ही होगा कि यहीं पर मैं आपको स्थित करने की बात चाहता हूँ यदि आपको वह पसन्द हो जाता है ॥४२-४३॥

५९—महाकालवननिवासविधिवर्णन

भगवन्केन विधिना महाकालवनेऽमरे ।
रुद्रलोकमभीप्सद्भिर्भवं स्तव्य क्षेत्रवासिभिः ॥१
किमनुष्ठेयं नरैः स्त्रीभिः सिद्धयस्त्याश्रमान्विते ।
वसद्भिः किमनुष्ठेय तत्सर्वं प्रब्रवीहि नः ॥२
नरैः स्त्रीभिश्चवस्तव्यं वर्णाश्रमवासिभिः ।
स्वधर्माचारनिरतैर्दम्भमोहविवर्जितैः ॥३

किकुर्वाणैर्नरैः कर्म रुद्रभक्ति प्रवीहि नः ।
त्रिविधा कथिताह्येन मनोवाक्कायसम्भवा ॥४
लौकिकी वैदिकी चान्या भवेदाध्यात्मिकी तथा ।
ध्यानधारणया बुद्धया रुद्राणां स्मरणं हि यत् ॥५
रुद्रभक्तिकरी चैषा मानसीभक्तिरुच्यते ।
व्रतोपवासनियमैर्जितेन्द्रियनिरोधिनाम् ॥६
रुद्रस्य कायिकीभक्तिर्ज्ञानध्यानरतधर्मिणाम् ।
गोघृतक्षीरदधिभिर्गन्धरक्तकुशोदकैः ॥७

महामहर्षि प्रवर व्यास देवजी ने कहा—हे भगवन् ! किस विधि से रुद्र लोक की इच्छा रखने वाले शैव वासी प्रमरों के द्वारा महा काल वन में वास करना चाहिए ? क्या मनुष्यों—स्त्रियों तथा सिद्धि—साधनों से समन्वितों के द्वारा निवास करते हुए क्या करना चाहिए यह सब आप कृपा करके हमको बतलाइये । पुरुषों और स्त्रियों के द्वारा वास करना चाहिए । समस्त वर्णों वाले—सब आश्रमों में रहने वाले—अपने धर्म और आचार में निरत रहने वाले—दम्भ, मोह से वर्जित रहने वाले मनुष्यों को क्या कर्म करते हुए भगवान् रुद्र की भक्ति होवे—यह हमको आप बतलाइये । सनत्कुमारजी ने कहा—तीन प्रकार की भक्ति कही गयी है जो मन—वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाली है ॥१-४॥ दूसरे भी इसके तीन प्रकार होते हैं वे लौकिकी—वैदिकी और अध्यात्मिकी हैं । ध्यान और धारणा की बुद्धि से जो रुद्रों का स्मरण है या रुद्र की भक्ति करने वाली मानसी भक्ति कही जाया करती है । अपनी इन्द्रियों को जीतकर निरोध करने वालों की व्रत—उपवास और नियमों के द्वारा जो भगवान् रुद्र की जो भक्ति की जाती है वह कायिकी भक्ति कही जाती है । ज्ञान और ध्यान में रिपत धर्म वालों की गौ का घृत—क्षीर—दधि से तथा गन्ध रक्त—कुशोदकों से ॥५-७॥

गन्धमाल्यैश्च विविधैर्धान्यैर्निश्चोपपादिता ।
घृतगुग्गुलुधूपैश्च कृष्णागुरुसुगन्धिभिः ॥८

भूषणैर्हेमरत्नाना चित्राभिः स्रग्भिरेव च ।
वास.प्रतिसरस्तोत्रैः पताकाव्यजनादिभि ॥६
नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्वप्रत्युपहारकैः ।
भक्ष्यभोज्यानुपानैश्च यापूजाचाक्षतैर्नरं ॥१०
महेश्वर पुरस्कृत्य भक्तिः सालौकिकी मता ।
देवमन्त्रैर्हविर्योगैर्या क्रिया वैदिकी मता ॥११
दर्शेचपौर्णमास्यांवा कर्तव्य चाग्निहोत्रकम् ।
प्राशन दक्षिणादान पुरोडाशस्चरुक्रिया ॥१२
इष्टिवृत्तिः सोमपान याज्ञिकंसर्वं कर्मच ।
ऋग्यजुस्सामजाप्यानिसहिताध्ययनानिच ॥१३
क्रियन्ते रुद्रमुद्दिश्य सा भक्तिर्वैदिकीस्मृता ।
अग्निभूम्यनिलाकाशनिशाकरदिवाकरान् ॥१४
समुद्दिश्यकृतकर्मतत्सर्वंदैवतंभवेत् ।
आध्यात्मिकीतुत्रिविधारुद्रभक्ति स्थितामुने ॥१५

गन्ध माल्य और अनेक धातुओं से उपवासित घृत—गुगुल—धूपों से —कृष्ण गुरु सुगन्धियों से—हेम और रत्नों के भूषणो से-विचित्र प्रकार की मालाओं से-निवास कर प्रतिसर तथा स्तोत्रों से—पताका और व्यजन आदि से—नृत्य वादित्र और गीतों के द्वारा—सर्व प्रत्युपहारों से -भक्ष्य भोज्यों के अनुपानो से अक्षतों से जो मनुष्यों के द्वारा महेश्वर भगवान् को आगे करके पूजा की जाती है वह लौकिकी शिव भक्ति कही गयी है। वेद मन्त्रों के द्वारा और योगो के द्वारा जो हवि की क्रिया है वही वैदिक पूजा मानी गयी है ॥८-११॥ दर्श में-पौर्णमासी में अग्नि होत्र करना चाहिए-प्राशन—दक्षिणादान—चरु क्रिया—इष्टिवृत्ति-सोमपान सम्पूर्ण याज्ञिक कर्म, ऋक्, यजु और सामवेद के जाप तथा संहिताओं का अध्ययन जो भगवान् रुद्र का उद्देश्य लेकर किये जाते हैं वही वैदिकी भक्ति कही गयी है। अग्नि, भूमि, अनिल, आकाश, निशाकर, दिवाकर, इनका उद्देश्य ग्रहण करके किया हुआ कर्म दैवत कर्म कहा जाता है।

हे मुने ! आध्यात्मिकी रुद्र की भक्ति तीन प्रकार की स्थित मानी गयी है ॥१२-१५॥

साङ्ख्या च यौगिकी चान्या विभागन्तत्र मे शृणु ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि प्रधानादीनिसङ्ख्यया ॥१६
अचेतनानियोज्यानि पुरुषः पञ्चविंशकः ।
चेतन पुरुषोभोक्ता न कार्यतस्यकर्मणा ॥१७
रुद्र षड्विंशकः कर्तासर्वज्ञश्चेतनः प्रभुः ।
अजन्मनित्यमव्यक्तमधिष्ठाताप्रयोजकः ॥१८
पुरुषोऽव्यक्त नित्यः स्यात्कारणञ्चमहेश्वर. ।
तत्त्वसर्गोभवेत्पूर्वं भूतसर्गश्चतत्त्वत. ॥१९
सख्ययापरिसर्गाय प्रधानं त्रिगुणात्मकम् ।
साधर्म्यमारम्यमैश्वर्यं प्रधानवैधर्म्यमिष ॥२०
कारणतञ्चरुद्रस्य कार्यत्वमिदमुच्यते ।
सर्वत्रकर्तृ ताण्द्रे पुरुषेचाप्यकर्तृ ता ॥२१
अचैतन्य प्रधाने च तच्च तत्त्वमिदं स्मृतम् ।
तत्त्वान्तरेण मुच्येते कार्यकारणमेवच ॥२२

साख्या और यौगिक दूसरी होती है । यहाँ पर विभागों को अब आप मुझ से श्रवण करो । सख्या के द्वारा गणना करने पर प्रधान आदि चौबीस तत्त्व होते हैं । ये सब अचेतन योज्य किये गये हैं चेतन एक पुरुष है जो पच्चीसवाँ होता है । चेतन पुरुष ही भोक्ता होता है उसका कर्म से कुछ भी करने के योग्य नहीं है ॥१६-१७॥ भगवान् रुद्र छब्बीसवें हैं जो कर्ता,सर्वज्ञ और चेतन प्रभु हैं । यह अजन्मा, नित्य, अव्यक्त, अधिष्ठाता, प्रयोजक है । पुरुष अव्यक्त, नित्य और कारण महेश्वर हैं । पहिले तत्त्वों का सर्ग होता है और तत्त्वों से भूत सर्ग हुआ करता है । संख्या से परिसर्ग के लिये प्रधान त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व, रज और तम इनके स्वरूप वाला होता है । प्रधान साधर्म्य, आरम्भ, ऐश्वर्य और वैधर्म्य होता है । और यह रुद्र का कारण है । यह कार्यत्व भी कहा जाता है । रुद्र में सर्वत्र कर्तृता है और पुरुष में भी अकर्तृता होती है । प्रधान में अचैतन्य है

और वह यह तत्त्व कहा गया है। तत्त्वान्तर से कार्य्य कारण होते है ॥१८-२२॥

प्रयोजके च वै जात्यं ज्ञात्वातत्वस्य सङ्ख्यया।
संख्याऽस्तोरयुच्यतेप्राज्ञं रुद्रतत्वार्थचिन्तकैः ॥२३
इति तस्यतत्त्वभावं तत्त्वसङ्ख्या च तत्त्वतः।
रुद्रतत्त्वाधिकञ्चापि ज्ञानतत्त्वं विदुर्बुधाः॥२४
सांख्ये ततो भक्तिरेषा सद्भिराध्यात्मिकी मता।
योगिकीमपिमे भक्त्या शृणु भक्ति महासुराः ॥२५
प्राणायामपरोनित्यंध्यायेत नियतेन्द्रियः।
धारणा हृदयेधृत्वा ध्यायते यो महेश्वरम् ॥२६
हृत्कञ्जकर्णिकासीनं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।
शशांकद्योतितजटं व्यालावृतकटीतटम् ॥२७
श्वेतं दशभुजं भद्रं वरदाभयहस्तकम्।
योगजामानसीध्यास रुद्रभक्तिः परास्मृता ॥२८

तत्त्व की संख्या से प्रयोजक मे जात्य का ज्ञान प्राप्त करके संख्य है, यह रुद्र के तत्त्वार्थ के चिन्तक प्राज्ञों के द्वारा कहा जाता है ॥२३॥ इस प्रकार से उसके तत्त्व भाव को और तात्त्विक रूप से तत्त्वो की संख्या और जिस मे रुद्र तत्त्व अधिक है ऐसे ज्ञान तत्त्व को बुधजन जानते हैं। साङ्ख्ये मे यह भक्ति सत्पुरुषों के द्वारा आध्यात्मिकी भक्ति मानी गयी है। यौगिकी भी भक्ति को अब मुझ से आप श्रवण कीजिए। जो यह भक्ति महान् स्वर वाली होती है। जो कोई पुरुष नियत इन्द्रियों वाला होकर हृदय मे धारणा करके नित्य ही प्राणायाम परायण होता हुआ ध्यान करे और महेश्वर प्रभु का ध्यान किया करता है। ध्यान में महेश्वर प्रभु के स्वरूप का ऐसा चिन्तन करता है कि वे मेरे हृदय रूप कमल की कर्णिका मे समासीन हैं, उनके पाँच मुख हैं तथा तीन नेत्र हैं, चन्द्रमा की प्रभा से उनकी जटाएँ द्योतित हैं और कटि-तट व्यालों से समावृत है,उनका एक दम श्वेतवर्ण है, दश भुजाऐं हैं, परम भद्र और वरद तथा अभय हाथों से प्रदान करने वाले हैं। इस प्रकार से जिस मे रुद्र की भक्ति की

जाया करती है यही योगजा मानसी रुद्र भक्ति होती है। हे व्यास देव ! यह भक्ति परा भक्ति कही गयी है ॥२४-२८॥

यएवं भक्तिमान्रुद्रे रुद्रभक्तः सउच्यते ।
विधिन्तुश्रृणुमेव्यासयः स्मृता क्षेत्रवासिनाम् ॥२६
स्वयरुद्रेणविहितो ब्रह्मादीना समागमे ।
कथितो विस्तारात्पूर्व पूर्व पातत्रसन्निधौ ॥३०
निर्ममा निरहङ्कारा निस्सङ्गानिष्परिग्रहाः ।
बन्धुवग च नि स्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥३१
भूतानाकर्मभिर्नित्य त्रिविधैरभयप्रदाः ।
साङ्ख्ययोगविधिज्ञाश्चधर्मज्ञाश्छिन्नसंशया· ॥३२
यजन्तेविविधैर्यज्ञैर्विप्राः क्षेत्रवासिनः ।
महाकालवनेतेषां मृतानायत्फल श्रृणु ॥३३
व्रजन्त्येवसुदुष्प्राप ब्रह्मसायुज्यमक्षय्यम् ।
सम्प्राप्यनपुनर्जन्म लभन्तेमोक्षमक्षयम् ॥३४
पुनरावर्तनं हित्वा विधि माहेश्वरं स्थिताः ।
पनरावृत्तिरन्येषा प्रपञ्चाश्रमवासिनाम् ॥३५
गार्हस्थ्यविधिमासाद्य षट्कर्मनिरतास्सदा ।
वेदोक्तविधिनासम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिता· ॥३६

जो इस प्रकार से रुद्र में भक्तिमान् होता है वह रुद्र का परम भक्त कहा जाया करता है। हे व्यास ! उसकी विधि भी आप मुझ से सुनिये जो क्षेत्र वासियों के लिये कही गयी है। ब्रह्मादि देवों के समागम में स्वयं ही रुद्र प्रभु ने किया है। वहाँ पर पूर्व पुरुषों की सन्निधि में पहिले विस्तार से कही गयी है। ममता से रहित, अहङ्कार से शून्य, सङ्ग से हीन, बिना परिग्रह वाले, अपने बन्धुवर्ग में भी स्नेह से रहित, मिट्टी के ढेले और सुवर्ण दोनों को समान भाव से समझने वाले, अपने अनेक प्रकार के कर्मों के द्वारा प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले, साङ्ख्य योग की विधि के ज्ञाता, धर्म के तत्व को जानने वाले और ऐसे जिनके सभी संशय छिन्न होगये हैं ऐसे विविध प्रकार के यज्ञों के द्वारा क्षेत्र वासी विप्र

यजन किया करते हैं। महाकाल वन में उनके मृत होने पर जो उन्हें फल प्राप्त होता है उसका श्रवण करो। वे लोग परम दुष्प्राप और अक्षय ब्रह्म सायुज्य को ही सीधे गमन किया करते हैं वहाँ सम्प्राप्त होकर अक्षय मोक्ष उनका हो जाता है कि वे पुनर्जन्म नहीं प्राप्त किया करते हैं। माहेश्वर विधि में स्थित होते हुए वे पुनरावर्त्तन का एक दम त्याग कर दिया करते हैं। जो प्रपञ्चाश्रम के कामी लोग हुआ करते हैं ऐसे अन्य जनों का ही पुनरावर्त्तन हुआ करता है। गार्हस्थ्य आश्रम की विधि को प्राप्त करके सदा जो षट् कर्मों में निरत रहा करते हैं वे पुरुष वेदोक्त विधि के द्वारा भली भाँति मन्त्रों और स्तोत्रों में निमग्न रहते हैं ॥२९-३६॥

६०—विद्याधरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

कथं तीर्थमिदं क्षेत्रं जातमत्र महामुने।
प्रसादाद् ब्रूहि मे ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥१
विद्याधरपतिः कश्चिदासीद्रूपधरः पुरा।
अर्पिता पारिजातस्य माला तेन मनोरमा ॥२
गृहीत्वा स च तां मालां गतोवासव वेश्मनि।
नृत्यन्तीवासवस्याग्रे दृष्टा तेन च मेनका ॥३
दत्ता तस्यैदातेन सा माला नृत्य संसदि।
सा मेनका तु तत्स्थाने मालया मोहिता सती ॥४
कोपाविष्टेन शक्रेण शप्तो विद्याधरस्तदा।
पृथिव्यां गच्छ पापिष्ठ ! नृत्यभङ्गस्त्वया कृतः ॥५
विद्याधरपदं त्यक्त्वा मम शापाच्च साम्प्रतम्।
एवमुक्तस्तु शक्रेण वाक्यं विद्याधरोऽब्रवीत् ॥६

महर्षिवरिष्ठ श्री व्यासजी ने कहा—हे महामुने! यहाँ पर यह क्षेत्र तीर्थ कैसे हो गया है? हे ब्रह्मन्! आपकी महती दया होगी आप इसको मुझे बतला दीजिए। मैं इस समय में यही श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा रखता हूँ। श्री सनत्कुमारजी ने कहा—पहिले परम पुरातन काल में

कोई स्वचारी विद्याधर पति था। उसने पारिजात के पुष्पों की एक परम सुन्दर माला का ग्रथन किया था। वह उस माला का ग्रहण करके इन्द्र देव के गृह में गया था। उसने वहाँ पर इन्द्र देव के समक्ष में मेनका नाम वाली अप्सरा को नृत्य करती हुई देखा था। उस नृत्य सभा में वह परम मनोरम माला उसने उस अप्सरा को देदी थी। वह मेनका अप्सरा उसी स्थान में उस माला से परम मोहित हो गई थी। उस समय में इन्द्र को बहुत अधिक कोप हो गया और उसने कोप विष्ट होकर उस विद्याधर को शाप दे दिया था—हे पापिष्ट! तुम पृथ्वी पर चले जाओ क्योंकि तुमने आज हमारी इस सभा में अतीव सुन्दर नृत्य का भङ्ग कर दिया है। तुम अभी इस विद्याधर के पद का त्याग करके मेरे शाप से भूमि वासी बन जाओ। इस तरह से इन्द्र के वाक्य को श्रवण करके वह विद्याधर बोला-॥१-६॥

अजानतामयानत्य अपराधः कृतोऽधुना।
अनुग्रहमतो देव कुरु मे त्वं प्रसादतः ॥७
एवमुक्तस्तदा शक्रो वै विद्याधरमुवाच ह।
गच्छावन्तीं त्वमद्यैव यत्रास्ते गाङ्गटोगुहा ॥८
तस्याश्चोत्तरभागे तु विद्यते तीर्थमुत्तमम्।
ख्यातं त्रिपुलोकेषु नाम्ना विद्याधरं शुभम् ॥९
भक्त्या तत्र कृते स्नाने विद्याधरपतिर्भवेत्।
अतस्त्वमपि तत्रैव कुरु स्नानं प्रयत्नतः ॥१०
एवमुक्तः स शक्रेण आगतोऽवन्ति मण्डले।
स्नानं कृतञ्च तेनैव तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥११
प्रभावात्तस्य तीर्थस्य स विद्याधरतोऽभवत्।
एवं व्याम! समाख्यातं तीर्थं विद्याधरं शुभम् ॥१२
तत्र पुष्पाणि यो दद्याच्चन्दनञ्च विलेपनम्।
लभेत्स भव्यभोगान्स इहलोके परत्र च ॥१३

हे देव! अज्ञान के वश में आकर आज इस समय में मैंने यह अपराध कर दिया है। अतएव मेरे ऊपर प्रसन्नता करके आप अनुग्रह करिये ॥७॥

जब इस तरह से प्रार्थना की गई तो इन्द्र देव उस विद्याधर से बोले—आप आज ही अवन्ती पुरी में चले जाओ जहाँ पर गाङ्गटो गुहा विद्यमान है। उसके उत्तर दिशा के भाग में यह उत्तम तीर्थ विद्यमान है। यह तीर्थ त्रिलोकी में नाम से परम शुभ विद्याधर प्रसिद्ध है। भक्ति भाव से वहीं पर स्नान करने से मनुष्य विद्याधरों का स्वामी बन जाया करता है। इस लिये तुम भी वहीं पर प्रयत्न पूर्वक स्नान करना। इस रीति से इन्द्र देव के द्वारा कहे गये उस विद्याधर ने अवन्ती मण्डल में समागमन किया था। उसने उस परम तीर्थ में स्नान भी किया था। उस तीर्थ के महान् प्रसाद से वह विद्याधरों का पति हो गया था। हे व्यास ! इस प्रकार से यह परम शुभ विद्याधर तीर्थ समाख्यात हुआ था। वहाँ पर जो भी कोई पुष्पों का समर्पण किया करता है तथा चन्दन और विलेपन अर्पित करता है वह इस लोक में समस्त प्रकार के सुखों का उपभोग प्राप्त किया करता है और परलोक में सद्गति पाता है ॥८-१३॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि मर्कटेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थं च विख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ॥१४
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत् ।
विस्फोटानां प्रशान्त्यर्थं बालानाञ्चैव कारणे ॥१५
माषाण मिश्रितान्कृत्वा मसूरांस्तत्र कुट्टयेत् ।
शीतलायाः प्रभावेण बालाः सन्तु निरामयाः ॥१६
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या शीतलान्दुरितापहाम् ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिन्न दारिद्र्यं द्विजोत्तम ॥१७
न च रोगभयं तेषां ग्रहपीडा तथैव च ॥१८

भगवान् श्रीसनत्कुमारजी ने कहा—अब मैं उत्तम मर्कटेश्वर के विषय में वर्णन करूँगा। वहाँ पर विख्यात तीर्थ है जो सभी कामनाओं के प्रदान करने वाला है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके एक सौ गौओं के दान करने का पुण्य—फल प्राप्त किया करता है। विस्फोटों की प्रशान्ति के लिये और बालकों के कारण से उड़दों के साथ मिश्रित करके वहाँ पर मसूरों को कूटना चाहिए। इसका यह प्रभाव होता है कि बालक शीतला देवी के

प्रभाव से नीरोग एवं स्वस्थ हो जाया करते हैं। हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य भक्तिभाव से दुरितों के अपहरण करने वाली शीतला देवी का दर्शन किया करते हैं उनको कुछ भी दुष्कृत नहीं हुआ करता है और कभी भी उन्हें दरिद्रता नहीं सताया करती है। उनको कभी किसी भी रोग का भी भय नहीं होता है तथा ग्रहों की पीड़ा नहीं हुआ करती है। सभी ग्रह शान्त हो जाया करते हैं ॥१४-१८॥

६१—दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णन

दशाश्वमेधिके स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥१
मनुना मानवेन्द्रेण राज्ञा चैव ययातिना ।
रघुणोशनसा चैव लोमशेन महर्षिणा ॥२
अत्रिणा भृगुणा चैव दत्तात्रेयेण धीमता ।
पुरूरवसा पृथ्वेन नहुषेण नलेन च ॥३
अत्र स्नाने संप्राप्तं दशाश्वमेधिकं फलम् ।
संप्राप्ते द्वापरस्यान्ते राज्ञा बाष्कलिना तथा ॥४
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्तं द्विजोत्तम !।
शूलवर्णं तथा लिङ्गं पूजितं भक्तितः सदा ॥५
दृष्ट्वास्पृष्ट्वा यतं देवं प्रागुक्तं लभते फलम् ।
चैत्रेमासिसिताष्टम्या देवं संपूज्य भक्तितः ॥६
प्रदद्यात् दद्याच्च विप्राय सुरूप सगुणान्वितम् ।
यावन्ति तस्य रोमाणि गणयन्ते सङ्ख्यया द्विज ॥७
तावद्वर्ष सहस्राणि शिवलोके महीयते ।
पिय लोकात्परिभ्रष्टः सार्वभौमो भवेद् भुवि ॥८

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—अधिक भाग में दशाश्वमेध घाट पर गंगा भागीरथी में स्नान करके महेश्वर देव के अर्थात् वाराणसी में भगवान् श्री विश्वनाथ जी के दर्शन करके मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के

करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। इस प्रकार के फल प्राप्त करने के अनेक उदाहरण दिये जाते हैं—मानवों में परम शिरोमणि मनु राजा ने–ययाति ने–रघु–उशना और महर्षि लोमश ने—अत्रि ने—भृगु ने —धीमान् दत्तात्रेय ने—परम पवित्र पुरूरवा ने—नहुष ने–तथा राजा नल ने यहाँ दशाश्वमेध पर स्नान करने के द्वारा दश अश्व मेध यज्ञों के करने का फल प्राप्त किया था। हे द्विजोत्तम ! द्वापर के अन्त के प्राप्त होने पर राजा कलि ने दश अश्वमेध यज्ञों का पुण्य-फल प्राप्त किया था। तथा कृष्ण वर्ण वाले लिंग को सदा भक्ति भाव से पूजित किया था। इस देव का दर्शन और स्पर्शन करके पहिले बताया हुआ फल प्राप्त करता है। चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में भक्तिभाव से देव को भली भाँति पूजा करके विप्र के लिए सुन्दर रूप वाले गुण गण से युक्त अश्व का दान करे। हे द्विज ! उसके जितने भी संख्या में रोम होते हैं उतने ही सहस्र वर्ष पर्यन्त वह शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। शिव लोक से परिभ्रष्ट होकर इस भू मण्डल में सार्व भौम (सम्राट) हुआ करता है ॥१-८॥

६२—महाकालयात्रामाहात्म्यवर्णन

अथ यात्रां प्रवक्ष्यामि महाकालस्य यत्नतः।
शिवश्रेयस्करी पुण्यां पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥१
स्नात्वा सरसि रुद्रस्य दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम्।
नमस्कृत्य ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ॥२
गन्धैः पुष्पैर्नमस्कारैः सम्पूज्य त्रिदशेश्वरम्।
प्रणिपत्य ततो गच्छेद्देवं कपालमोचनम् ॥३
तत्र वै देवदेवेशः कपालं न्यस्तवान्स्थितौ।
कपाले तत्क्षणान्न्यस्ते तत्राभूल्लिङ्गमुत्तमम् ॥४
कपालमोचनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।
तत्र वै स्नपनं कुर्याद्दध्यर्पलशतन्तु वै ॥५

तदर्धार्धेनपादेन वित्तशाठ्य विवर्जितः ।
काले पूर्णे स विप्रेन्द्र ! शिवलोके महीयते ॥६
नमस्कृत्य ततो गच्छेत्कपिलेश्वरमुत्तमम् ।
दर्शनात्तस्यदेवस्य मुच्यते ब्रह्मघातकः ॥७

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर परम पूर्वक महाकाल की यात्रा को कहूँगा जो शिव और श्रेय के करने वाली—पुण्यपूर्ण और पुण्य लोक के प्रदान करने वाली है ॥१॥ भगवान् रुद्र के सरोवर में स्नान करके तथा कोटीश्वर शिव का दर्शन करके और नमस्कार करके इसके पश्चात् सनातन महाकाल को गमन करना चाहिए ॥२॥ गन्ध और पुष्पों से तथा नमस्कारों से त्रिदशेश्वर का समर्चन करके तत्पश्चात् प्रणिपात करके फिर कपाल मोचन देव की ओर यात्रा करे ॥३॥ वहाँ पर देव देवेश ने भूमि पर कपाल को न्यस्त किया था । कपाल के विन्यस्त करने पर उसी क्षण में वहाँ पर उत्तम लिंग हो गया था ॥४॥ यह कपाल मोचन नाम वाला तीर्थ सभी पापों का नाश करने वाला है । वहाँ पर स्नान करावे और गो घृत धृत से करावे ॥५॥ उससे आधा पाद से करावे किन्तु वित्त की शठता से रहित होकर करावे । हे विप्रेन्द्र ! काल के पूर्ण होने पर वह शिवलोक में महिमान्वित होता है ॥६॥ फिर उत्तम कपिलेश्वर को प्रणाम करके वहाँ से गमन करे । उनके दर्शन से ब्रह्म घातक भी पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥७॥

हनुमत्केश्वर देवं ततो गच्छेत्समाहितः ।
ऐश्वर्यमतुलं व्यास ! दर्शनादस्य जायते ॥८
ततो गच्छेन्महादेवं पिप्पलादं सनातनम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण मुक्तिः स्याद् द्विजसत्तम !॥९
स्वप्नेश्वरं ततो गच्छेद्भक्तिश्रद्धा समन्वितः ।
दर्शनादस्यदेवस्य दुःस्वप्नञ्च विनश्यति ॥१०
ततो गच्छेन्महादेवमीशानं विश्वतोमुखम् ।
यस्य दर्शन मात्रेण विभवैर्न पतिर्भवेत् ॥११

सोमेश्वरन्ततो गच्छेज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
कुष्टरोगादि दोषेभ्यो दर्शनादस्यमुच्यते ॥१२
वैश्वानरेश्वरं व्यास ततो गच्छेत्समाहितः ।
तस्य वृद्धिस्सदा लोके जायते तस्य दर्शनात् ॥१३
बीजापूरकहस्तन्तु लकुलीशन्ततो व्रजेत् ।
रुद्रत्वं दर्शनात्तस्य जायते नात्रसंशयः ॥१४

वहाँ से परम सावधान होकर हनुमत्केश्वर देव को जाना चाहिए। हे व्यास ! इनके दर्शन से अतुल ऐश्वर्य हो जाता है ॥८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर सनातन पिप्पलाद महादेव को जावे जिसके दर्शन मात्र से ही मुक्ति हो जाया करती है ॥९॥ भक्ति और श्रद्धा के भाव से युक्त होकर फिर स्वप्नेश्वर को गमन करे। उस देव के दर्शन से दुःस्वप्न विनष्ट हो जाता है ॥१०॥ फिर विश्वतोमुख ईशान महादेव को गमन करे जिसके केवल दर्शन ही से पूर्ण विश्व का स्वामी हो जाता है ॥११॥ क्रोध को जीतकर और इन्द्रियों को वश में करके सोमेश्वर को गमन करना चाहिए। इनके दर्शन से कुष्ठ रोगादि के दोषों से मुक्त हो जाता है ॥१२॥ हे व्यास ! वहाँ से फिर समाहित होकर वैश्वानरेश्वर को जावे। उनके दर्शन से लोक में उसकी वृद्धि सदा होती है ॥१३॥ वहाँ से बीजा पूरक हस्त और लकुलीश को जावे। उनके दर्शन से रुद्र का स्वरूप प्राप्त कर लेता है—इसमें बिल्कुल संशय नहीं है ॥१४॥

ततो गच्छेन्महादेव गणपेश्वरमुत्तमम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥१५
अभ्यर्थितस्सदा देवैः पूजितस्सिद्धिकारणात् ।
तेनाभ्यर्थितपूर्वोऽयं विख्यातो विघ्ननायकः ॥१६
वयोवृद्धं ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ।
न रोगो न जराव्याधिर्दर्शनान्नात्र संशयः ॥१७
विघ्ननाशं ततो गच्छेत्प्राणीशं देवमुत्तमम् ।
स्नानं शतघटैस्तस्य कुर्याद्भक्त्या समाहितः ॥१८

तस्य चैव कृते स्नाने लभ्यन्ते सर्व सिद्धयः।
स्वर्गश्चापि सदा व्यास ! दर्शनादस्य जायते ॥१९
मार्गगतमनुल्लङ्घ्य दण्डपाणि ततो व्रजेत्।
यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकोन दृश्यते ॥२०
पुष्पदन्तं ततो गच्छेद्भक्तिश्रद्धा समन्वितः।
यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥२१

इसके पश्चात् उत्तम गणेश्वर महादेव की ओर गमन करे जिसके केवल दर्शन से ही समस्त सिद्धियाँ हो जाया करती हैं ॥१५॥ सदा देवों के द्वारा प्रभ्यर्थना की गई है और सिद्धि प्राप्त करने के कारण से उनकी अर्चना भी की गई है। इसी से यह विघ्नों के स्वामी अभ्यर्थना को पूरी करने वाले विख्यात हो गये हैं ॥१६॥ वहाँ से सनातन महाकाल वयोवृद्ध को गमन करे। इनके दर्शन से रोग नहीं होता है और बुढ़ापे की व्याधि भी नहीं होती है इसमें संशय नहीं है ॥१७॥ इसके अनन्तर विघ्न नाश उत्तम देव प्राणीश की ओर गमन करे। भक्ति से समन्वित होकर सौ घड़ों से उसे स्नान करावे ॥१८॥ उसके स्नान करने पर सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। हे व्यास ! इनके दर्शन से सदा स्वर्ग का वास भी हो जाया करता है ॥१९॥ मार्ग में रहने वाले का उल्लंघन न करके वहाँ से दण्डपाणि को जावे जिसके केवल दर्शन से ही यमलोक नहीं दिखलाई देता है ॥२०॥ फिर वहाँ से भक्ति श्रद्धा से युक्त होकर पुष्प दन्त को जावे जिसके दर्शन मात्र से ही समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥२१॥

गुह्यञ्चैव महाकालं ततो गच्छेत्समाहितः।
यस्य दर्शनमात्रेण गुह्यपापैः प्रमुच्यते ॥२२
ततो गच्छेत्समाधिस्थो दुर्वासेश्वरमुत्तमम्।
यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो नरो भवेत् ॥२३
भ्रागावरोपनं कृत्वा दुर्वासस्य समीपतः।
गौरी गत्वा महादुर्गां त्यजेच्छ्वा समनन्तरं ॥२४

तत्रोच्छ्वासोविमोक्तव्यस्तामर्चेत्तु समाहितः ।
कालेश्वरं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥२५
यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकं न पश्यति ।
वधिरेशं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥२६
यस्य दर्शनमात्रेण वधिरत्वं न जायते ।
यात्रेश्वरस्ततो गच्छेद्यात्रा पूर्णफलप्रदम् ॥२७
कीर्त्तयेदात्मनोनाम स्थानं गोत्रञ्च तत्र वै ।
न कीर्त्तयेद्यदानाम सा यात्रा विफला भवेत् ॥२८

इसके पश्चात् सावधान होकर गुह्य महा काल की ओर जावे जिसके केवल दर्शन से ही गुह्य पातकों से प्रमुक्त हो जाता है ॥२२॥ फिर समाधि में स्थित होकर उत्तम दुर्वासेश्वर को गमन करे जिनके दर्शन से मनुष्य कृतकृत्य (सफल) हो जाया करता है ॥२३॥ दुर्वास के समीप में श्वास का अवरोध करे और महा दुर्गा गौरी के समीप आकर बाद में श्वास का त्याग करे ॥२४॥ वहाँ पर उच्छ्वास का विमोचन करना चाहिए और उस देवी का सावधान होकर अर्चन करे। इसके उपरान्त वहाँ से देवों के देव महेश्वर कालेश्वर को गमन करे ॥२५॥ जिसके केवल दर्शन से ही यमलोक को नहीं देखता है। फिर देवदेव महेश्वर वधिरेश को जावे ॥२६॥ जिसके दर्शन मात्र से ही बधिरत्व नहीं होता है। फिर यात्रा के पूर्ण फल को प्रदान करने वाले यात्रेश्वर को जावे ॥२७॥ वहाँ पर अपने नाम-स्थान और गोत्र का कीर्तन करे। यदि नाम आदि का कीर्त्तन नहीं करता है तो वह यात्रा विफल हो जाया करती है ॥२८॥

देवस्याग्रे ततो व्याम ! उपविश्य समाहितः ।
भक्तियुक्तःस्तुतिं ब्रूयान्नमस्कृत्वा पुनः पुनः ॥२९
मया समर्पिता यात्रा त्वत्प्रसादान्महेश्वर !
संसारसागराद् घोरान्मामुद्धर जगत्पते ॥३०
अनेन विधिना यस्तु महाकालं प्रदक्षयेत् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥३१

गोलक्षं द्विजवर्य्याय दत्वाल्लभते य फलम् ।
तत्फलदेवदेवस्य सकृत्कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥३२
भक्त्या परमयायुक्ता महाकालं प्रदक्षयेत् ।
पदे पदे यज्ञफलमिति मे शङ्करोऽब्रवीत् ॥३३
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ।
पूजितानि भवन्त्यत्र यात्रेश्वर समर्चनात् ॥३४
य एव कुरुते यात्रा शिवध्यानपरायणः ।
स वस्त्रन्दक्षिणा दद्यात्तस्य पुण्यफल श्रृणु ॥३५

हे व्यास ! फिर देवता के सामने समाहित होकर बैठ जावे और भक्ति से युक्त होकर बारम्बार नमस्कार करके स्तुति बोले ॥२६॥ हे महेश्वर ! मैंने अपनी यात्रा समर्पित करदी है । आपके प्रसाद से हे जगत्पते ! इस घोर संसार सागर से मेरा उद्धार करो ॥३०॥ जो इस विधि से महाकाल की प्रदक्षिणा करता है उसने सात द्वीप से युक्त वसुन्धरा की परिक्रमा करली है ॥३१॥ द्विज को एक लाख गौओं का दान करने से जो फल प्राप्त होता है वही देवों के देव की एक बार प्रदक्षिणा करने से प्राप्त होता है ॥३२॥ परम भक्ति से युक्त होकर महाकाल की प्रदक्षिणा करे । भगवान शङ्कर ने कहा है कि मेरी परिक्रमा मे पद-पद में यज्ञ का फल होता है ॥३३॥ यहाँ पर यात्रेश्वर के समर्पण से साठ हजार करोड़ और साठ सौ करोड़ पूजित होते हैं ॥३४॥ जो शिव के ध्यान में परायण होकर इस प्रकार से यात्रा करता है और वस्त्र के सहित दक्षिणा देता है उसका पुण्य फल श्रवण करो ॥३५॥

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्र संशयः ।
एवं यात्रा समाप्याऽथ गत्वा च स्वगृहं नरः ॥३६
यात्रादैवत सस्थाप्य षड्विंशानि द्विजोत्तमान् ।
भोजयेच्चिटवभवनाश्च शिवध्यानपरायणान् ॥३७
सवस्त्रां दक्षिणां दत्वा प्राप्याज्ञां विसर्जयेत् ।
यात्राक्रमेण चैतेन तीर्थान्तरमनुव्रजेत् ॥३८

धर्मोपदेशकेपश्चात् सर्वोपस्करसंयुताम् ।
धेनुम्पयस्विनीं दद्याद्वित्तशाठ्य विवर्जितः ॥३९
भुञ्जीत च स्वयं व्यास ! सर्वभृत्यसमन्वितः ।
दीनानाथ दरिद्रान्ध विकलाश्चापि भोजयेत् ॥४०

यदस्यफलमुद्दिष्ट तद्वदाम शृणुष्व मे ।
कुलाना शतमुद्धृत्य मातापित्रोस्समाहित ॥४१
कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोके स मोदते ॥४२

सात जन्मों में किए हुए पाप से मनुष्य छुटकारा पा जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस प्रकार से यात्रा को समाप्त करके इसके अनन्तर मनुष्य अपने घर जावे ॥३६॥ यात्रा के देखा की संख्या के अनुसार छत्तीस परम श्रेष्ठ—शिव के भक्त और शिव के ध्यान में परायण द्विजों को भोजन करावे ॥३७॥ वस्त्रों के सहित दक्षिणा देकर उनसे आज्ञा प्राप्त करके उनको विदा करना चाहिये। यात्रा के क्रम से एक एक अन्य तीर्थ में जावे ॥३८॥ उसके पीछे किसी धर्म के उपदेश करने वाले द्विज को सभी उपस्करों से युक्त दूध देने वाली धेनु का वित्त (धन) की शठता से रहित होकर दान करना चाहिए ॥३९॥ हे व्यास ! फिर सभी भृत्यों से युक्त स्वयं भोजन करे और जो दीन—अन्धे—अनाथ—दरिद्री और इन्द्रियों से विकल मनुष्य हो उनको भी भोजन कराना चाहिए ॥४०॥ जो भी इस में पुण्य-फल उद्दिष्ट है उसे हम बतलाते हैं। उसको मुझसे आप श्रवण करो। वह यात्री अपने सौ कुलों का उद्धार करके माता पिता का भी उद्धार समाहित होकर कर देता है और सहस्रों करोड़ कल्पों तक शिवलोक में निवास करता हुआ आनन्द प्राप्त किया करता है ॥४१-४२॥

६३—वाल्मीकेश्वरमहिमावर्णन

वाल्मीकेश्वर व्यास ! भक्त्या देवं प्रपूजयेत् ।
मौनी ध्यानपरो भूत्वा सुकवित्वमवाप्नुयात् ॥१

कथमत्र समुत्पन्नो को वाल्मीकेश्वरः प्रभुः ।
यस्य दर्शनमात्रेण कवित्वमुपजायते ॥२
आसीद्व्यास पुरा विप्रः सुमतिर्भृगुवंशजः ।
रूपयौवन सम्पन्ना तस्य भार्या च कौशिकी ॥३
तस्य पुत्रः समुत्पन्नस्त्वग्निशर्मेति नामतः ।
स पित्रा प्रोच्यमानोऽपि वेदाभ्यास न मन्यते ॥४
ततो बहुतिथे काले अनावृष्टिरजायत ।
तदापि बहवश्चान्ये दक्षिणामाश्रिता दिशम् ॥५
ततोऽसौ सुमतिर्विप्र सभार्यः ससुतस्तथा ।
विदिशा कानन प्राप्त कृत्वा चाश्रममाश्रितम् ॥६
आभीरैर्दस्युभिः सार्द्धं सङ्गोऽभूदग्निशर्मणः ।
आगच्छन्ति यथा तेन यस्तं हन्ति स पापकृत् ॥७

महर्षि सनत्कुमार बोले—हे व्यास ! वाल्मीकि के ईश्वर देव को भली भाँति पूजा करनी चाहिए। मौनी और ध्यान में परायण होकर पूजा करने से वह मनुष्य सुकवि होने का पद प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ व्यासजी ने कहा—यह वाल्मीकेश्वर प्रभु कौन हैं और कैसे यहाँ पर समुत्पन्न हुए हैं जिसके दर्शनमात्र से ही कवित्व हो जाया करता है ॥२॥ श्री सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! प्राचीन समय में एक भृगु के वंश में जन्म लेने वाला सुमति विप्र था। रूप लावण्य से युक्त उसकी कौशिकी भार्या थी ॥३॥ उसका एक अग्नि शर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वह पिता के द्वारा कहा गया भी वेदों के अभ्यास को नहीं मानता था ॥४॥ इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय तक वहाँ अनावृष्टि हो गई थी। उस समय में भी बहुत से लोग और यह दक्षिण दिशा का आश्रय वाला हो गया था ॥५॥ फिर यह सुमति विप्र पुत्र और भार्या के सहित विदिशा वन में प्राप्त होगया था और आश्रम बनाकर वहीं पर ही समाश्रित होगया था ॥६॥ उस अग्नि शर्मा का अहीर और दस्युओं के साथ सङ्ग होगया था। उस मार्ग से जो भी आता था उसको वह पाप-कारी मार दिया करता था ॥७॥

स्मृतिर्नष्टागतावेदा गतं गोत्रं गताश्रुतिः ।
कस्मिश्चिदथ काले तु तीर्थयात्रा प्रसङ्गतः ॥८
सप्तर्षयः पथा तेन सुव्रता समुपस्थिताः ।
अग्निशर्माऽथतान् दृष्ट्वा हन्तुकामोऽब्रवीदिदम् ॥९
वस्त्राणीमानिमुञ्चध्वं छत्रकोपानहौतथा ।
हन्तव्याहिमयायूयं गन्तारोयमसादने ।१०
तस्यतद्वचनं श्रुत्वा अत्रिर्वचनमब्रवीत् ।
अस्मत्पीडनजंपापं कथंतेहृदिवर्तते ॥११
वयं तपस्विनो भूत्वा तीर्थयात्राकृतोद्यमाः ।
ममास्ति माताऽथ पिता सुतो भार्या गरीयसी ॥१२
पोषयामि सदातांस्तु एतन्मे हृदि संस्थितम् ।
पित्रादीननुपृच्छत्वं स्वकर्मोपार्जितं प्रति ॥१३
यद्युष्मदर्थं क्रियते पापतत्कस्यकथ्यताम् ।
चेन्नलेकपर्यान्तस्ममामृपाप्राणिभोवधीः ॥१४

इसकी सम्पूर्ण स्मृति नष्ट होगई थी—वेदों को भी खो चुका था—गोत्र नष्ट हो गया और श्रुति भी चली गयी थी। किसी समय में वहाँ तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से उसी मार्ग में सुव्रत सप्तर्षि वृन्द समुपस्थित होगये थे अग्निशर्मा ने उनको देखकर उन्हें मार डालने की इच्छा वाला होकर उनसे यह बोला—।८-९। इन वस्त्रों को तथा छत्र एवं जूतों को यहीं पर छोड़ दो। मेरे द्वारा आप लोग मारे जाओगे और यमपुर को आप सब जाने वाले होगे ॥१०॥ उसके इस वचन को सुनकर अत्रि ऋषि ने यह वचन कहा—हमारी पीड़ा का उत्पन्न होने वाला पाप तेरे हृदय में कैसे विद्यमान हो गया है ॥११॥ हम लोग तो तपस्वी हैं और तीर्थयात्रा करने के लिये उद्यत हुए हैं। अग्नि शर्मा ने कहा—मेरी माता है—पिता—सुत और बड़ी भार्या है ॥१२॥ मैं उनका सदा पोषण करता हूँ—यही मेरे हृदय में स्थित है। अत्रि ने कहा—तू अपने पिता आदि से अपने इस कर्म के द्वारा उपार्जित किये हुए धन के विषय में पूछ ले ॥१३॥ मेरे द्वारा यह पाप कर्म आप लोगों के पोषण के लिए ही किया

जाता है। यह पातक किसका है—यह कहो। क्या उन्होंने यह नहीं कहा
था कि स्वयं प्राणियों का वध मत करो ॥१४॥

नवदाचिन्मयातेतु सपृष्टाईदृशवचः।
युष्माकंवचसामेऽद्य प्रतिबोधः प्रवर्तते ॥१५
गत्वा पृच्छामि तान्सर्वान् कस्य भावश्च कीदृशः।
यूयमत्रैव तिष्ठध्व यावदागमनं मम ॥१६
इत्युक्त्वातान्जगामाशुपितरं स्वमुवाचह।
धर्मस्यप्रतिघातेन प्राणिनापीडनेनच ॥१७
सुमहद्दृश्यतेपाप कस्यैतत्कथ्यतामम।
पिताप्राहाथतन्माता नापुण्यमावयोरिह ॥१८
त्वं जानासिकुरुषे यत्कृतं भोग्यपुनस्त्वया।
तयोस्तद्वचन श्रुत्वा भार्यावचनमब्रवीत् ॥१९
तयाप्युक्त नमेपाप पापमेतत्तवं वसु।
तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोऽहमितिसोऽब्रवीत् ॥२०
तज्ज्ञात्वाभाषितं तेषां चेष्टितञ्चैवतत्त्वत.।
नष्टोऽहमितिमन्वानः शरणमेतपस्विनः ॥२१

अग्नि शर्मा ने कहा—मैंने तो इस प्रकार से उनसे कभी नहीं पूछा
है। आज आपके वचन से ही मुझे यह प्रतिबोध हो रहा है ॥१५॥ मैं
जाकर उन सभी से पूछता हूँ और देखता हूँ कि इस विषय में किसका
क्या भाव है। आप लोग यहीं पर ठहरिये जब तक मैं वापिस लौट कर
यहाँ पर आता हूँ ॥१६॥ यह कह कर वह उनके पास गया और अपने
पिता से बोला कि यह धन जो मैं लाता हूँ वह धर्म का प्रतिघात करके
और प्राणियों को पीड़ा देकर ही लाता हूँ ॥१७॥ यह एक महान् पाप
दिखाई देता है सो यह मुझे बतलाओ कि यह पाप किसको होता है।
तब उसके माता और पिता ने कहा कि इसमें हम दोनों का यह कुछ भी
पाप नहीं है ॥१८॥ तू ही इसे जानता है क्या करता है। जो तू करता
है वह तुझे ही भोगना भी है। उन दोनों के वचन को सुनकर उसकी
भार्या से यह वचन कहा था ॥१९॥ उसने भी यही कहा कि मुझे इसका

कुछ भी पाप नहीं है। यह तो तुम्हारा ही पाप है। यही वचन पुत्र से कहा तो वह बोला—मैं तो बच्चा हूं ॥२०॥ उन सबके कथन को जान-कर और उनके चेष्टित को तात्त्विक रूप से समझ कर वह यह मानता हुआ कि मैं तो विनष्ट ही हो गया अब तो मेरे रक्षक वे तपस्विगण ही हैं ॥२१॥

क्षिप्त्वायलकुटं कृष्णयेनवं जन्तवोहृताः ।
प्रकीर्यकेशांस्त्वरितोऽभृषीणामग्रतः स्थितः ॥२२
प्रणम्य दण्डपातेन ततो वचनमब्रवीत् ।
न मे माता न च पिता न भार्या न च मे सुत. ॥२३
सर्वैस्तैः परित्यक्ताऽहं भवतांशरणंगतः ।
सुष्ठूपदेशदानान्मांनरकात्त्रातुमर्हथ ॥२४
एवं स वादिनं दृष्ट्वा ऋषयोऽभिमथाब्रुवन् ।
भवतोवचनादस्य प्रतिबोधस्समागतः ॥२५
भवताऽयमनुग्राह्यः शिष्योभवतुनेमुने ! ।
तथेत्युक्त्वाथतम्प्राह इमंध्यानंसमाचर ॥२६
अनेनध्यानयोगेन पापपुञ्जं प्रणाशय ।
संस्थितो वृक्षमूलेत्वं परांसिद्धिंगमिष्यसि ॥२७
इत्युक्त्वा ते ययुस्सर्वे सकामः सोऽपि तत्र व ।
तद्ध्यानस्थोऽभवद्योगी वत्सराणि त्रयोदश ॥२८

हे कृष्ण ! इसके अनन्तर उस लाठी को फेंक कर जिससे बहुत-से जन्तुओं को मारा था, केशों को फैला कर शीघ्र ही वह ऋषियों के सामने स्थित हो गया था। दण्ड के समान गिर कर प्रणाम किया और इसके पश्चात् वह वचन बोला—मेरी माता नहीं है और न पिता—भार्या और कोई सुत ही है। मैं उन सबके द्वारा परित्यक्त हूं और आपकी शरणागति में हूं। बहुत अच्छा उपदेश का दान करके मेरी नरकों से रक्षा करो ॥२२-२४॥ इस प्रकार से इसको कहते हुए देख कर ऋषि गण फिर से बोले—आपके ही वचन से इसको प्रतिबोध आगया है। हे मुने ! आपके द्वारा इस पर अनुग्रह करना ही चाहिए यह आपका शिष्य हो जावे।

ऐसा ही होगा-यह कह कर इसके अनन्तर उनसे कहा कि इस ध्यान का समाचरण करो ॥२५-२६॥ इस ध्यान के योग से पापों के समूह का विनाश कर । इस वृक्ष के मूल में स्थित होकर ही तू पर सिद्धि को प्राप्त हो जायगा ॥२७॥ यह कर वे सब चले गये थे । रामनाम से युक्त यह भी उसी ध्यान मे स्थित त्रयोदश वर्ष में योगी होगया था ॥२८॥

निवृत्तास्तुयथातेन मुनयस्तत्प्रशुश्रुवुः ।
उदीरितश्चनिन्तेनवल्मीकेविस्मयान्विताः ॥२९
ततस्तु दृष्ट्वा वल्मीकं काष्ठीभूतोरुशंकुभिः ।
त दृष्ट्वोत्थापयामासुर्मुनयो नयसंयुतम् ॥३०
नमश्चक्रेऽथतान्सर्वान् समुनिर्मुनिपुङ्गवान् ।
तान्प्राहप्रणतोभूत्वातपसादीप्ततेजसः ॥३१
प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानं लब्धंमयाशुभम् ।
दीनोऽहमुद्धृतस्सर्वैर्मग्नोऽहपापकर्दमे ॥३२
श्रुत्वा तस्येति तद्वाक्यमूचुः परमधार्मिकाः ।
वल्मीकेऽस्मिन् स्थितः पुत्र ! यतस्त्वमेकचित्ततः ॥३३
वाल्मीकिरिति ते नाम भुवि ख्यातं भविष्यति ।
इत्युक्त्वा मुनयोजग्मुः स्वां दिशं तपसान्विताः ॥३४
गतेषुमुनिमुख्येषु वाल्मीकिस्तपताम्वरः ।
कुशस्थलीमथागम्य समाराध्यमहेश्वरम् ॥३५
तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रे काव्यं मनोरमम् ।
रामायणञ्च यत्प्राहुः कथासु प्रथमं स्थितम् ॥३६
ततः प्रभृति देवेशो वाल्मीकेश्वरसञ्ज्ञकः ।
ख्यातोऽनन्त्या ततो व्यास ! कवित्वदायको नृणाम् ॥३७

जिस प्रकार से उनके द्वारा निवृत्त हुए थे उन मुनियों ने उस शुश्रूषण किया था । उसने वल्मीक में ध्वनि कही थी । मुनिगण विस्मय से युक्त हो गये थे । इसके अनन्तर ऊरु शंकुओं से काष्ठ के सदृश हुआ वल्मीक को देखा था ॥२९॥ उसको देख कर जो नय से पूर्ण संयुत था

मुनिगण ने उसको उठाया था ॥३०॥ उसने उन सब मुनिश्रेष्ठों को नमस्कार किया था और परम प्रण रत होकर तप से दीप्त तेज होने वाले उन से बोला—॥३१॥ आपके प्रसाद से मैंने आज शुभ ज्ञान प्राप्त किया है। मैं बड़ा दीन हूँ, मैं पापों के बीच में मग्न(फँसा) हुआ था आप सब ने मेरा उद्धार कर दिया है ॥३२॥ उसके इस वचन को सुनकर परम धर्म के ज्ञाता उन ऋषियों ने कहा—हे पुत्र ! इस वल्मीक में एक चित्त होकर आप स्थित रहे थे। इसलिए भूमण्डल में तेरा नाम 'वाल्मीकि' यह प्रसिद्ध होगा। यह कह कर मुनिगण हर्षाश्रुओं से युक्त हुए अपनी अभीष्ट दिशा की ओर चले गये थे। ३३-३४॥ उन प्रमुख मुनियों के चले जाने पर तपस्वियों में श्रेष्ठ वाल्मीकि ने कुश स्थली में समाधान होकर महेश्वर की समाराधना की थी। उस से कवित्व प्राप्त करके उनने एक परम सुन्दर काव्य की रचना की थी जिसको रामायण कहते हैं और जो कथाओं में प्रथम स्थित है ॥३५-३६॥ तभी से लेकर वाल्मीकेश्वर नाम के देवेश अवन्ती पुरी में विख्यात होगये थे। हे व्यास ! यह मनुष्यों को कवित्व प्रदान करने वाले हैं ॥३७॥

६४—गणेशमाहात्म्यवर्णन

लड्डुकैश्च ततो देवैर्विघ्ननाथः समर्चितः ।
तदाप्रभृति विख्यातो विघ्नेशो लड्डुकप्रियः ॥१
यस्मश्चैवमेभक्त्या तस्य विघ्नं नशायते ।
तस्मै ददाति सन्तुष्टः सर्वकामान्विनायकः ॥२
नक्ताहारश्चतुर्थ्यां च स्नात्वा शिप्राविशेषतः ।
रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम् ॥३
रक्तचन्दनतोयेन मन्त्रस्नपनपूर्वकम् ।
चन्दनेनापि रक्तेन तद्विलेप्य प्रपूजयेत् ॥४
धूपं दद्यात्तथा दिव्यं सुगन्धं लड्डुकप्रियम् ।
नैवेद्यैर्लड्डुकाद्यैश्चाज्यखण्डपरिप्लुतैः ॥५

नतस्यजायतेव्यास भयंविघ्नं कदाचन ।
लभतेचतथाभीष्टं मृतश्शिवपुरं व्रजेत् ॥६
अवतीर्णः पुनर्लोके जायते वसुधाधिप. ।
मतिमान् पुत्रवाञ्छूरो नात्रकार्याविचारणा ॥७

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा–इसके अनन्तर लड्डुक देवों के द्वारा विघ्नों के नाश को अर्चना की गयी थी तभी से लेकर विघ्नेश लड्डुक प्रिय विख्यात हो गये थे ॥१॥ जो भक्तिभाव से इसकी पूजा करता है उसको विघ्न कभी नहीं हुआ करता है। उस अर्चन को परम सन्तुष्ट होकर विनायक सभी कामों को दे दिया करते हैं ॥२॥ चतुर्थी तिथि में रात्रि को एक बार आहार करे विशेष रूप से शिप्रा में स्नान करे। स्वयं रक्त वस्त्र धारी होकर रक्त ही पुष्पों से और लाल चन्दन जल से मन्त्रों के द्वारा स्नपन करावे फिर रक्त चन्दन से गणेश के शरीर पर विलेपन करे और विनायक की पूजा करे ॥३-४॥ इसके उपरान्त लड्डुक प्रिय को परम सुगन्ध-सम्पन्न धूप का आघ्राण कराना चाहिए। नैवेद्य में घृत और खांड से खूब परिप्लुत लड्डू देने चाहिए ॥५॥ हे व्यास ! उस अर्चना करने वाले मनुष्य को भय और विघ्न कभी भी नहीं होते हैं और वह अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति किया करता है मृत्यु होने पर वह सीधा शिवपुर गमन करता है ॥६॥ फिर लोक में जन्म लेकर राजा होता है, बुद्धिमान्, पुत्रवान् और शूर होता है, इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥७॥

६५–सोमवतीतीर्थमाहात्म्यवर्णन

तीर्थंसोमवतीनाम लिङ्गसोमेश्वरं तथा ।
अभूदेतत्कथं नाम श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥१
शृणुव्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थं सुशोभनम् ।
सोमेश्वरं तथालिङ्गमेतत्सत्यवदामिते ॥२
यो देवो भगवान्सोमो लोकस्याप्यायनं परम् ।
आसीत्तस्य पुरा व्यास ! पिता विप्रो महातपाः ॥३

अवन्त्याञ्च महाभागो योऽग्निनामातपोनिधिः ।
वर्षाणां त्रीणि दिव्यानि सहस्राणि तपो महत् ॥४
ऊर्ध्वबाहुस्सर्वतेपे ब्रह्मध्यानपरायणः ।
ऊर्ध्वंगत ततोव्यास ब्राह्म तेजोमहात्मनः ॥५
नेत्राभ्यांतस्यसुस्राव काशयंश्चदिशोदश।
तेजस्तत्सहसादृष्ट्वा ततोदेशोद्‌भवं स्वतः ॥६
दिशश्च तद्यदा व्यास ! सर्वान्धर्तु मशक्नुवन् ।
सुस्राव च तदा दिग्भ्यस्तद्धितेजोऽतिदुस्सहम् ॥७

महर्षि व्यासजी ने कहा—तीर्थ का नाम सोमवती तथा लिङ्ग का नाम सोमेश्वर हुआ था—यह कैसे हुआ—यह मैं तात्त्विक रूप से सुनना चाहता हूँ ॥१॥ सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! जिस तरह से सुशोभन सोमतीर्थ समुत्पन्न हुआ तथा सोमेश्वर लिङ्ग हुए—यह सभी आपको सत्य बतलाता हूँ ॥२॥ जो भगवान् सोमदेव हैं जो कि लोक को परम तृप्ति करने वाले हैं। हे व्यास ! पहिले उनका महान् तपस्वी विप्र पिता था ॥३॥ अवन्ती पुरी में जो महान् तपस्वी महाभाग अग्नि नाम वाला था। उसने दिव्य तीन हजार वर्ष तक महान् तप किया था ॥४॥ ब्रह्म के ध्यान में तत्पर होते हुए उसने ऊर्ध्वबाहु होकर तप किया था। हे व्यास ! तब उस महात्मा का ब्रह्म तेज ऊर्ध्व को चला गया था ॥५॥ दशों दिशाओं में प्रकाश करता हुआ उसका तेज नेत्रों से स्रवित हुआ था। सम्पूर्ण देश मे स्वतः उत्पन्न हुए उस तेज को सहसा देखकर हे व्यास ! जब दिशाऐं सबको धारण करने मे असमर्थ हो गईं थी तो वह अत्यन्त दुस्सह तेज दिशाओं से स्रवित हुआ था ॥६-७॥

लोकांश्चभामयन्सर्वान् धरण्यावेपपातह ।
सोमोजातस्ततस्तेनशीतांशुश्चजनप्रियः ॥८
सरित्सोमात्समुत्पन्ना व्यासतेनैवतेजसा ।
प्रविष्टासा नदीशिप्राममृतेनाति पूरिता ॥९
ततस्सोमवती शिप्रा विख्याता ह्यतिपुण्यदा ।
सोमयुक्ता नदी शिप्रां दृष्ट्वा पापं व्यपोहति ॥१०

स्यातावस्त्रिपुलोकेषु पापिनापुण्यदायिनी ।
ब्रह्महावासुरापोवास्तेयोवागुरुतल्पग ॥११
चत्वारोऽप्यत्रपापेन मुच्यन्तेदर्शनाद्ध्रुवम् ।
अमासोमौयदायुक्तौ सोमवत्यां तदामुने ॥१२
स्नान दान जयोधीमाञ्जपहोमं समाचरेत् ।
अक्षयंतस्यतत्सर्वं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१३
तिलोदकप्रदानेनपिण्डदानेनकालिज ।
अकालेकालिकीतृप्ति पितृणाञ्चययोदिता ॥१४

समस्त लोकों में प्रकाश करता हुआ यह तेज फिर भूमि में गिरा था। उससे सोम समुत्पन्न हुआ उससे वह शीतल किरणों वाला और जनों का परम प्रिय था ॥८॥ हे व्यास ! उसी तेज से एक सोमा नदी समुत्पन्न हुई थी वह अमृत से परिपूरित नदी शिप्रा नदी में प्रविष्ट हो गई थी ॥९॥ तभी से फिर अत्यन्त पुण्य देने वाली शिप्रा सोमवती विख्यात हो गई थी। सोम से युक्त शिप्रा के दर्शन करके मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाता है ॥१०॥ तभी से यह नदी तीनों लोकों में पापियों का पुण्य प्रदान करने वाली विख्यात हो गई थी। चाहे कोई ब्राह्मण की हत्या करने वाला हो अथवा सुरा पीने वाला हो—चोर हो या गुरु शय्या पर गमन करने वाला हो ॥११॥ ये चारों ही महा पातकी यहाँ पर केवल दर्शन से ही निश्चय ही पाप से मुक्त हो जाया करते हैं। हे मुने ! अमावस्या और सोम जब दोनों युक्त हो तो वह सोमवती होती है उसमें ॥१२॥ जो धीमान् स्नान—दान-जप-होम का समाचरण करता है उसका वह सभी अक्षय हो जाता है और वह जब तक चन्द्र और सूर्य स्थित हैं रहा करता है ॥१३॥ हे कालिज ! तिलोदक दान से-पिण्ड दान से अकाल में कालिकी तृप्ति और पितृगणों की जैसी कही गयी है ॥१४॥

सर्वं प्रदुर्लभानिप्रा सोमस्तोमग्रहस्तथा ।
सोमेश्वरस्सोमवारस्सकाराः पञ्चदुर्लभाः ॥१५
शिप्रासोमजलंव्याम कोटितीर्थफलप्रदम् ।
अमासोमसमायोगेपितृतीर्थंसमस्मृतम् ॥१६

अमायांसोमवारश्च दृश्यतीपातोयदाभवेत् ।
शतगुणगयायास्तुसोमवत्यांप्रकीर्तितः ॥१७
एवंसोमवतीतीर्थं जातमत्रमहामुने ! ।
सोमदृष्ट्वाथपतित क्षितौब्रह्माजगद्गुरुः ॥१८
रथे तं स्थापयामास लोकानां हितकाम्यया ।
स तु वेदमयो व्यास ! धर्मज्ञस्सत्यसङ्ग्रहः ॥१९
युक्तोवाजिसहस्रेण ब्रह्मणाप्रेरितस्तदा ।
दृष्ट्वासोमंततोदेवा रथे तं ब्रह्मणायुतम् ॥२०
तुष्टुवुस्सर्वभावेन हृष्टाः सर्वे समाहिताः ।
तस्य संस्तूयमानस्य तेजस्सोमस्य भास्वरम् ॥२१

सर्वत्र शिप्रा दुर्लभ है। सोम—सोमग्रह—सोमेश्वर और सोमवार ये पाँच प्रकार दुर्लभ होते हैं ॥१५॥ हे व्यास ! शिप्रा का सोमजल करोड़ तीर्थों का पुण्य—फल प्रदान करने वाला है। अमा का और सोम का योग होने पर—पितृ तीर्थ के सदृश कहा गया है ॥१६॥ अमा में सोमवार और जब यदि व्यतीपात होवे, गया से सौ गुना सोमवती में कहा गया है ।१७॥ हे महामुने ! इस प्रकार से यहाँ पर सोमवती तीर्थ हुआ था। जगत् के गुरु ब्रह्माजी ने भूमि पर पड़े हुए सोम को देखा था। ॥१८॥ लोकों के हित की कामना से उसको रथ में स्थापित कर दिया। हे व्यास ! वह तो वेदों से परिपूर्ण—सत्य सग्रह वाले और धर्म के ज्ञाता थे ॥१९॥ उस समय में एक सहस्र अश्वों से युक्त और ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित था। रथ में ब्रह्मा से युक्त सोम को देवों ने देखा था ॥२०॥ उनने सर्व भाव से परम प्रसन्न और सावधान होकर सबने स्तवन किया था। संस्तूयमान उस सोम का तेज परम भास्वर होगया था ॥२१॥

आप्यायमानं त्रील्लोकान् पापतधरणीतले ।
ब्रह्मातेनरथेनाथ सागरान्तावसुन्धराम् ॥२२
त्रिः सप्तकृत्वोतिशयाच्चकारसप्रदक्षिणम् ।
तस्ययत्पतितंतेजो व्याससोमस्यशीतलम् ॥२३

तदेवौषधयो दिव्याजाताभुविसुनिर्मलाः ।
याभिर्धार्योह्ययंलोकः प्रजाश्चैवचतुर्विधाः ॥२४
तुष्टोऽथभगवान्सोमो जगतस्सर्वदोमुने ।
दशवर्षसहस्राणि तेपेऽतिदुस्सहंतपः ॥२५
ततस्तस्मै ददौस्वाम्यंब्रह्मलोकपितामहः ।
बीजौषधीनां विप्राणां सोमोराजाबभूवह ॥२६
सप्तविंशतिसोमाय दाक्षायण्योमहाव्रताः ।
पत्न्यःप्राचेतसोदक्षोददौनक्षत्रसञ्ज्ञकाः ॥२७
सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमोभार्यायुतस्तदा ।
समारेभेराजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥२८

तीनों लोकों की तृप्ति करने वाला वह धरणी तल पर गिर गया था । ब्रह्माजी ने उस रथ से सागरों के सहित वसुन्धरा की इक्कीस बार अतिशय से प्रदक्षिणा की थी । उसका जो तेज हे व्यास ! सोम का शीतल गिरा था वे ही परम दिव्य सुनिर्मल ओषधियाँ भूमि में उत्पन्न हो गई थीं जिनसे यह लोक चार प्रकार की प्रजा धारण करने के योग्य हो गया था ॥२२-२४॥ हे मुने ! जगत् को सब कुछ देने वाला भगवान् सोम परम तुष्ट हो गये थे और दस हजार वर्ष पर्यन्त अतीव दुस्सह तप किया था ॥२५॥ इसके अनन्तर ब्रह्म लोक के पितामह ब्रह्माजी ने उसको स्वामि पद प्रदान किया था । सोम बीजौषधियों का विप्रों का राजा हो गया था ॥२६॥ प्राचेतस दक्ष ने उस सोम के लिये दाक्षायणी—महान् व्रत वाली सत्ताईस नक्षत्र संज्ञा से सम्पन्न पत्नियाँ प्रदान की थीं ॥२७॥ उस समय में भार्याओं से युक्त सोम ने उस महान् राज्य को प्राप्त करके सहस्र और शत दक्षिणा वाला राजसूय यज्ञ का आरम्भ कर दिया था ॥२८॥

होताभगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान्भृगुः ।
हिरण्यगर्भस्तोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥२९
सदस्यो भगवान् विष्णुस्सनकादिभिरावृतः ।
ददौ स दक्षिणां सोमस्त्रींल्लोकान्मुनिसत्तम ॥३०

सिनीवालीकुहूश्चैव द्युतिः पुष्टि प्रभावसुः ।
कीर्तिर्धृ तिश्च लक्ष्मीस्त देव्यो दिव्यास्मिपेवरे ॥३१
प्राप्यावभृथमव्यग्रस्सर्वदेवर्षिपूजितः ।
अतीवराजतेचन्द्रो दश प्रोद्भासयन्दिशः ॥३२
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यम् ऐश्वर्यं मृषिसंकृतम् ।
विबभ्राम मतिर्व्यास ! तदामृतमवस्य च ॥३३
बृहस्पतेर्यदा भार्या ताराना‌म्नी यशस्विनीम् ।
जहार तमसा साध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥३४
याच्यमानस्तदा सोमो देवैर्देवर्षिभिस्तथा ।
नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसाय च ॥३५

उस यज्ञ में भगवान् अत्रि होता हुए थे-भगवान् भृगु अध्वर्यु थे—हिरण्य गर्भ उद्गाता थे और ब्रह्मत्व का पद स्वयं ब्रह्माजी ने प्राप्त किया था ॥२६॥ सनकादि प्रमुखों से समावृत भगवान् विष्णु सदस्य थे । उसने सुसमाहित होते हुए तीन लोक सोम को दक्षिणा दी थी ॥३०॥ सिनीवाली—कुहू—द्युति—पुष्टि—प्रभावसु—कीर्ति—धृति और लक्ष्मी [redacted] दिव्य देवियों ने उसकी सेवा की थी ॥३१॥ अवभृत को प्राप्त कर समस्त देवर्षियों के द्वारा वन्दित हुआ अव्यग्र वह चन्द्रमा दशों दिशाओं को प्रोद्भासित करता हुआ अत्यन्त अधिक शोभा सम्पन्न हो गया था ॥३२॥ हे व्यास ! ऋषियों के द्वारा सत्कार किया हुआ वह दुष्प्राप्य ऐश्वर्य प्राप्त करके उसकी बुद्धि जो कि अमृत मय था विभ्रान्त हो गयी थी ॥३३॥ उस समय में अङ्गिरा के पुत्र का अपमान करके बृहस्पति की भार्या परम यशस्विनी तारा नाम वाली का जो कि अत्यन्त ही साध्वी थी अन्धकार से इसने हरण कर लिया था ॥३४॥ उस समय में देवों और देवर्षियों के द्वारा कहा गया भी था किन्तु सोम ने उस आङ्गिरस के लिये उस तारा को नहीं विसर्जित किया था ॥३५॥

बृहस्पतेस्तत पक्षं शक्रोजग्राहकोपतः ।
महिषिष्योमहातेजा। हितुः पूर्वं बृहस्पतेः ॥३६

ततोयुद्धमभूत्तत्र सुघोरंशक्रसोमयोः ।
देवानां दानवानाञ्च व्यासत्रासङ्करं महत् ॥३७
सर्वेभीतास्ततोदेवा ब्रह्माणं शरणं गताः ।
अग्रतोब्रह्मणोयुद्धं कथितं सोमशक्रयोः ॥३८
देवानांवचनं श्रुत्वा सार्द्धंदेवैः पितामहः ।
आगत्य युद्धसमयेऽवारयद्देवदानवान् ॥३९
वारितास्ते स्थितास्तत्र युद्धं त्यक्त्वा सुरासुराः ।
तारामादाय स तदा ददावाङ्गिरसे द्विजः ॥४०
ताञ्चमप्रसवां दृष्ट्वा आहभार्यांबृहस्पतिः ।
मन्यदीयोनितेयोन्यां गर्भोधार्यःकथञ्चन ॥४१
उत्ससर्जततस्तारा कुमारं देवरूपिणम् ।
ऐषिकास्तम्भमादाय ज्वलन्तमिवपावकम् ॥४२

इसके उपरान्त जोर से इन्द्र ने बृहस्पति के पक्ष को ग्रहण किया वह पहिले बृहस्पति के पिता का शिष्य था ।।३६।। इसके पश्चात् इन्द्र और चन्द्र का अतीव भयानक युद्ध हुआ था । हे व्यास ! वह युद्ध देवों को और दानवों को भी महान् भय समुत्पन्न करने वाला अत्यन्त भीषण था ।।३७।। उस उग्र युद्ध से सभी देवता डर गये थे और फिर वे श्रीब्रह्माजी की शरण मे प्राप्त हुए थे । ब्रह्माजी के सामने सोम और शक्र के युद्ध को कहा था ।।३८।। देवों के इस वचन का श्रवण कर पितामह देवों के साथ ही युद्ध के समय में आकर उन्होने देवों और दानवों को रोक दिया था ।।३९।। रोके हुए सुर-असुर युद्ध का त्याग करके वहीं पर स्थित हो गये थे । उनने उस समय में तारा को लाकर आङ्गिरस (बृहस्पति) को द्विज (सोम) ने दे दिया था ।।४०।। उस तारा को प्रसव से दूषित देख कर बृहस्पति भार्या से बोले— दूसरे का गर्भ तेरी योनि में कभी भी धारण नहीं होना चाहिए ।।४१।। इस वचन के पश्चात् तारा ने ऐषिकास्तम्भ लेकर जलती हुई अग्नि के समान देवरूपी कुमार को उत्सर्जित कर दिया था ।।४२।।

स तेजो जातमात्रोऽपि देवानामाक्षिपद्यशः ।
ततस्संशयमापन्ना ऊचुस्तारां दिवौकसः ॥४३
कस्याय ब्रूहि सुभगे! सोमस्याथ बृहस्पतेः ।
नाचचक्षे देवतानां वेधाः पप्रच्छ ताम्पुनः ॥४४
यदत्र सत्यं तद्ब्रूहि तारे! कस्य सुतो ह्ययम् ।
साप्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं विभुम् ॥४५
सोमस्येति महासौम्यः कुमारो देवसन्निभः ।
सोमस्य [redacted] सुतं ज्ञात्वा परिष्वज्य पितामहः ॥४६
बुधइत्यकरोन्नाम तस्यपुत्रस्य वै तदा ।
परदारापहाराच्च यत्पापं तनुदुस्सहम् ॥४७
तेनसोमोऽभवत्कुष्ठोक्षयरोगयुतस्तदा ।
ततोराज्येस्वकं पुत्रं स्थापयित्वायथाविधि ॥४८
अवन्तीमाजगामाशु सोमोदेवदिदृक्षया ।
सोमाहे सोमवत्याञ्च अमायोगेजितेन्द्रियः ॥४९

जात मात्र ही उस तेज ने देवों के यश को आक्षिप्त कर दिया था । तब तो संशय को प्राप्त हुए देवों ने तारा से कहा ॥४३॥ हे सुभगे ! यह तो बतलाओ कि यह गर्भ किस का है सोम का है या बृहस्पति का है ? देवों से उसने कुछ नहीं कहा था तब फिर ब्रह्माजी ने उससे पूछा था ॥४४॥ हे तारे ! इसमें जो भी सत्य है वही बतला दो कि यह सुत किस का है । उस तारा ने हाथ जोड़ कर वरद विभु ब्रह्माजी से यह कहा— ॥४५॥ यह महान् सौम्य देवों के सदृश कुमार सोम का है । पितामह ने उस पुत्र को सोम का जानकर समालिंगन किया था ॥४६॥ उसी समय उस पुत्र का 'बुध' यह नामकरण कर दिया था । पराई स्त्री का अपहरण करने से जो पाप है वह शरीर से दुस्सह हुआ करता है ॥४७॥ उस समय में उस पाप से सोम कोढ़ वाला और क्षय से युक्त हो गया था । इसके अनन्तर राज्य पर अपने पुत्र को विधि पूर्वक स्थापित करके वह शीघ्र ही सोम देव को देखने की इच्छा से अवन्ती पुरी में आगया था ।

सोमवार और सोमवती अमावस्या के योग में उस इन्द्रियों को जीतने वाले ने स्नान किया था ॥४८-४९॥

स्नात्वा सम्पूजयामास सोमस्तोमेश्वरं ततः ।
तस्य भक्त्या च सन्तुष्टः प्राह सोमं महेश्वरः ॥५०
मत्प्रसादाद्वपुः कान्तं तव सोम! भविष्यति ।
सोमेश्वरमितिख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५१
एवं तु व्यासतत्तीर्थं लिङ्गं चैवातिदुर्लभम् ।
कथितं तवप्रभावेन मयातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥५२
श्रावणं प्राप्य यो मासं सोमनाथं जितेन्द्रियः ।
नित्यं पश्येन्नरोव्यास! तस्यपुण्यफलं शृणु ॥५३
सौराष्ट्रे सोमनाथस्य पूजाया. प्रत्यहं फलम् ।
लभते स नरो व्यास! नात्र कार्या विचारणा ॥५४

स्नान करके फिर सोम ने सोमेश्वर प्रभु का भली भाँति पूजन किया था। उसकी भक्ति से परम तुष्ट हुए महेश्वर ने सोम से कहा था ॥५०॥ हे सोम ! मेरे प्रसाद से तेरा शरीर कान्त हो जायगा। फिर वह सोमेश्वर इस नाम से विख्यात हो गया था जो भुक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाला था ॥५१॥ हे व्यास ! इस प्रकार से वह तीर्थ और लिंग अत्यन्त दुर्लभ है। मैंने तेरे भाव से परम तुष्ट होते हुए अब तुमको बतला दिया है ॥५२॥ जो कोई जितेन्द्रिय होकर श्रावण के महीना में वहाँ पहुँच कर नित्य ही सोमनाथ का दर्शन करता है उस मनुष्य का पुण्य —फल सुनो ॥५३॥ सौराष्ट्र में सोमनाथ की पूजा का प्रतिदिन फल होता है वह नर हे व्यास ! प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए ॥५४॥

६६—सौभाग्यतीर्थमाहात्म्यवर्णन

तीर्थे सौभाग्यके स्नात्वा दृष्ट्वा सौभाग्यकेश्वरम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सौभाग्यं परमं लभेत् ॥१

घृततीर्थेनरः स्नात्वा घृतेनस्नापयेच्छिवम् ।
घृतमग्नावथोहुत्वा रुद्रलोकेमहीयते ॥२
देवीयोगेश्वरीप्राच्यं सुरासुरनमस्कृताम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं योगमवाप्नुयात् ॥३
शङ्खावर्त्तेनरः स्नात्वा सर्वपापविवर्जितः ।
धनधान्यसमायुक्तो जायतेनिर्मलेकुले ॥४
शुद्धोदकेचतुर्दश्या मुक्त्यर्थंस्नानवान्नरः ।
शिवं सुरेश्वरं दृष्ट्वा ततोमोक्षगतिर्भवेत् ॥५
तथान्यत्सप्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
किंपुनरिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥६
पूर्वंत्रेतायुगेव्यास! सुनेत्रोनामवैद्विजः ।
तस्यपुत्रः समुत्पन्नोविश्वावसुरितिस्मृतः ॥७

महा महर्षि श्री सनत्कुमार जी ने कहा—सौभाग्य तीर्थ में स्नान करके और सौभाग्येश्वर का दर्शन करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर परम सौभाग्य को प्राप्त होता है ॥१॥ घृत तीर्थ में स्नान करके मनुष्य घृत से ही शिव का स्नपन करावे। इसके अनन्तर अग्नि में घृत का हवन करे तो वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥२॥ सुर और असुरों के द्वारा वन्दित योगेश्वरी देवी की अर्चना करके मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पाकर परम योग को प्राप्त किया करता है ॥३॥ शंखावर्त्त में मनुष्य स्नान करके सब पापों से रहित हो जाता है और धन-धान्य से समायुक्त होकर निर्मल कुल में समुत्पन्न होता है ॥४॥ चतुर्दशी तिथि में शुद्धोदक में मनुष्य मुक्ति के लिए ही स्नान वाला होता है। फिर सुरेश्वर शिव का दर्शन करके मोक्ष की गति वाला हो जाया करता है ॥५॥ एक अन्य त्रिलोकी में प्रसिद्ध तीर्थ को बतलाऊँगा और किंपुन इस नाम से विख्यात है जो कि ब्रह्म हत्या का विमोचन कराने वाला है ॥६॥ हे व्यास! पहिले त्रेता युग में एक सुनेत्र नामक द्विज था। उसका विश्वावसु नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥७॥

यवक्रीतस्य शापेन स पिता तेन घातितः ।
ब्रह्महत्यान्वितो व्यास! तीर्थात्तीर्थं परिभ्रमन् ॥८
तीर्थं किं पुनके स्नात्वा धारातीर्थं गतो द्विजः ।
तत कपिलधाराया चिन्तयित्वाऽऽत्मना स्वयम् ॥९
कथ मे ब्रह्महत्याया यायात्पापं प्रशान्तिताम् ।
एवं हि चिन्तयन् सोऽथ पुनरायादवन्तिकाम् ॥१०
अत्र तीर्थे पुनः स्नाति यावद्वाणी ततोऽशृणोत् ।
किंपुनर्ध्यायसे ब्रह्मन् येन स्नातो द्विजोत्तमः ॥११
नतेऽस्तिब्रह्महत्यावै तीर्थस्नानेननाशिता ।
गच्छशीघ्र गृहं विप्र! पापहीनोयथासुखम् ॥१२
पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम् ।
तत्रस्थित्वा महेशेन पुन.पत्तनमीक्षितम् ॥१३
पत्तनेश्वरइत्याख्यो देवदेवोमहेश्वरः ।
यस्तुगन्धैश्चपुष्पैश्च धूपैर्दीपैर्मनोरमैः ॥१४

यव क्रीत के शाप से उसने उस पिता को मार डाला था । हे व्यास ! वह फिर ब्रह्म हत्या से युक्त होकर तीर्थ से तीर्थ में परिभ्रमण करता था ॥८॥ उस द्विज ने किंपुनक तीर्थ में स्नान किया था, फिर धरा तीर्थ में चला गया था, फिर कपिलधारा में उसने स्वयं ही अपने आप चिन्तन किया था ॥९॥ मेरी ब्रह्म हत्या का पाप कैसे शान्ति को प्राप्त होवे । इस तरह से चिन्तन करता हुआ वह पुनः अवन्ती पुरी में आ गया था ॥१०॥ इस तीर्थ में जब वह पुनः स्नान करता है तो उसने वाणी का श्रवण किया था । हे ब्रह्मन् ! किंपुन का ध्यान करो । द्विजोत्तम जिसके द्वारा स्नान किये हुए हो ॥११॥ तुझे अब ब्रह्म हत्या नहीं रही है क्योंकि वह उस तीर्थ के स्नान से नष्ट होगई है । हे विप्र ! अब सुखपूर्वक घर जाओ क्योंकि तुम पाप से हीन हो गये हो ॥१२॥ आगे फिर उत्तम एक अन्य पत्तनेश्वर को बतलाता हूँ । वहाँ पर स्थित होकर महेश ने पुनः पत्तन को देखा था ॥१३॥ वह महेश्वर देवों के भी देव पत्तनेश्वर इस नाम

वाले थे जिसको गन्ध-पुष्प और सुन्दर धूप तथा दीपों से पूजना चाहिए ॥१४॥

भावयुक्तो नरो व्यास! पूजयेद्विधिवत्सदा ।
यथावत्तिष्ठतेलिङ्गं वंशच्छेदोनजायते ॥१५
हंसयुक्तो नयानेन शिवलोकंसगच्छति ।
तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम ॥१६
दुर्धर्षमिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ।
पुरा दिवाकरो व्यास! चक्रे दुर्धर्षनामतः ॥१७
तीर्थमस्मिन्नदीतीरे विख्यातं सूर्यसंस्कृतम् ।
तेजःपुञ्जोऽभवल्लिङ्गं गणगन्धर्वपूजितम् ॥१८
सप्तम्यामथवाष्टम्यासंक्रान्तौरविवासरे ।
तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वाभुत्रिरात्रमुपोषितः ॥१९
दृष्ट्वामहेश्वरंतत्र शिप्राकूलेव्यवस्थितम् ।
पूजयित्वातुभावेन यत्फलंतच्छृणुष्वमे ॥२०
पितृमातृकुलसर्वं समुद्धृत्यशिवंव्रजेत् ।
तत्रयच्छतियोदानं गोहेमादिविशेषतः ॥२१

हे व्यास! भक्तिभाव से युक्त सदा मनुष्य विधिपूर्वक पूजन करे। लिंग यथावत् स्थित है और भवंक का वंशच्छेद नहीं होता है ॥१५॥ फिर वह हस से युक्त यान के द्वारा शिवलोक को चला जाया करता है। अब एक और तीर्थ को कहूँगा जो कि त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है ॥१६॥ यह तीर्थ दुर्धर्ष नाम से विख्यात है और वह भी ब्रह्म हत्या के पाप से छुड़ाने वाला है। हे व्यास! पहिले दिवाकर ने इसका दुर्धर्ष नाम किया था ॥१७॥ इस नदी में यह तीर्थ सूर्य के द्वारा संस्कृत होता हुआ विख्यात है। गन्धर्वों के गणों द्वारा पूजित यह लिंग तेज का पुञ्ज हो गया था ॥१८॥ सप्तमी या अष्टमी तिथि में संक्रान्ति में—रविवार में वहाँ स्नान करके शुद्ध होकर तीन रात्रि तक उपोषित रहे ॥१९॥ वहाँ पर शिप्रा के तट पर व्यवस्थित महेश्वर का दर्शन करे और भावपूर्वक पूजा करे। इसका जो फल होता है वह मुझसे श्रवण करो ॥२०॥ माता और पिता

के सम्पूर्ण कुलों का उद्धार करके वह अन्त में शिवलोक में गमन किया करता है। वहाँ पर जो गौ और सुवर्ण आदि का विशेष रूप से दान दिया करता है ॥२१॥

तावत्तदक्षयंलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
तथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि गोपीन्द्रं तीर्थमुत्तमम् ॥२२
गौतमेनपुरायत्र इन्द्रः शापाद्भगीकृतः।
भगव्रीडायुतः शक्रः प्रविश्य वनमुत्तमम्। २३
अतोषयत्तदोग्रेण तपसा शङ्करम्पुरा।
तुष्टेन शम्भुना विप्रा ये भगास्तच्छरीरगाः ॥२४
गोसहस्रीकृतास्तेन गोपीन्द्रमिति कथ्यते।
तत्र स्नात्वा दिवं याति शक्रतुल्यपराक्रमः ॥२५
येमृतास्तेपुनर्जन्मनाप्नुवन्तिमहीतले।
गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वापुण्यप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥२६
ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु गङ्गायाःफलमादिशेत्।
गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा पुष्कररण्डकम् ॥२७
पुष्पकेणविमानेन प्रयातिदिविमोदते।
नरकादुद्धरत्याशु नरः स्नात्वोत्तरेश्वरे ॥२८

उसका वह दान तब तक अक्षय रहता है जब तक ये चन्द्र और सूर्य स्थिर रहा करते हैं। अब एक अन्य उत्तम गोपीन्द्र तीर्थ को बतलाऊँगा ॥२२॥ जहाँ पर प्राचीन समय में गौतम के शाप से इन्द्र को भगों वाला कर दिया था। भगों के चिन्हों से लज्जा से युक्त होकर इन्द्र ने वन में प्रवेश कर लिया था ॥२३॥ पहिले इन्द्र ने अत्यन्त उग्र तप से भगवान् शम्भु को सन्तुष्ट कर दिया था। हे विप्र! परम प्रसन्न हुए शम्भु ने जो उसके शरीर में रहने वाले भग थे उनको एक सहस्र गौ कर दिया था जो गोपीन्द्र इस नाम से कहा जाता है। उसमें स्नान करने से इन्द्र के समान पराक्रम वाला होकर दिवलोक को चला जाया करता है ॥२४-२५॥ जो इस मही के तल में मृत हो गये वे फिर दूसरा जन्म प्राप्त नहीं किया करते हैं। गंगा तीर्थ में मनुष्य स्नान करके बहुत अधिक पुण्य को

प्राप्ति किया करता है ॥२६॥ ज्येष्ठ मास की दशमी में गंगा का फल कहते हैं—गंगा तीर्थ में मनुष्य स्नान करके और पुष्कर रण्डक के दर्शन करे ॥२७॥ वह पुष्पक विमान के द्वारा शिवलोक में चला जाता है और महान् प्रसन्न होता है। उत्तरेश्वर में मनुष्य स्नान करके शीघ्र ही नरक से उद्धार प्राप्त करता है ॥२८॥

इष्टभोगसमापन्नो यातिस्वर्ग नसंशयः ।
भूतेश्वरेनरः स्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत् ॥२९
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्मृ तः सुरपुरं व्रजेत् ।
शिप्रायां तु नरः स्नात्वा कैलासं तु नमस्यति ॥३०
सूर्याहृतं तमोयद्वत्तद्वत्पापं प्रणश्यति ।
लम्बालिकांचया पश्येत् समाधिनियमेनच ॥३१
समुक्तः सर्वपापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ।
घण्टेश्वरं प्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिपूजितम् ॥३२
यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलं लभेत् ।
अर्चयेद्यस्तुदेवेशं गन्धपुष्पैरनुक्रमात् ॥३३
शिवलोकेवसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
पुष्पेश्वरं तुयःपश्येच्छुचिःस्नातोजितेन्द्रियः ॥३४
सगाणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुर्लभम् ।
लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वासमभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥३५

अभीष्ट भोगों से सुसम्पन्न होता हुआ स्वर्ग को चला जाया करता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। मनुष्य भूतेश्वर में स्नान करके इसके उपरान्त भगवान् भूतेश्वर की अर्चना करे और वह पूजा गन्ध पुष्पादि नैवेद्य के द्वारा करनी चाहिए। ऐसा मनुष्य मृत्यु प्राप्त करके सुरपुर में गमन किया करता है। मनुष्य क्षिप्रा में स्नान करके कैलास को नमस्कार करता है ॥२९-३०॥ जिस तरह से सूर्य से तम आहृत होता है उसी भाँति उसका पाप नष्ट हो जाया करता है। जो समाधि के नियम से लम्बालिका का दर्शन करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है जैसे सर्प अपनी कंचुली से मुक्त हो जाया करता है। अब घण्टेश्वर के

विषय में वर्णन करूँगा जिसको सुरों ने भी पूजित किया है ।।३१-३२।। वहाँ पर कूप का जल पीकर अतुल सौभाग्य को प्राप्त करता है जो गन्ध और पुष्पों के द्वारा अनुक्रम से देवेश की अर्चना किया करता है ।।३३।। वह उस समय तक शिव लोक में वास करता है जब तक चौदह इन्द्र हुआ करते हैं। जो शुचि होकर पुण्येश्वर का दर्शन किया करता है और इन्द्रियों को जीतकर वहाँ स्नान करता है वह गणपत्य के पद को प्राप्त करता है जो कि सुरों को भी बहुत ही दुर्लभ होता है। लुम्पेश्वर तीर्थ में मनुष्य स्नान करके महेश्वर भगवान् का अभ्यर्चन किया करता है ।।३४-३५।।

न यातिनरकमर्त्यः स्वर्गलोकेमहीयते ।
तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ।।३६
पूजितं ब्रह्मणा पूर्वं स्थविरास्यं विनायकम् ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यो विनायकम् ।।३७
गन्धधूपैश्च पुष्पैश्च भक्ष्यभोज्यैः फलं श्रृणु ।
समीहिता भवेत्सिद्धिर्मृतः शिवपुरं व्रजेत् ।।३८
नवनद्याः समीपे तु पार्वतीम्पूजयेद्बुधः ।
गन्धपुष्पैश्चधूपैश्च सौभाग्यमतुलं लभेत् ।।३९
कामोदके नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कामं रतिप्रियम् ।
स्वर्गं च देवगन्धर्वैरपूज्यमवपुर्भवेत् ।।४०
प्रयागेतुनरः स्नात्वा प्रयागेशन्तु पश्यति ।
सर्वलोकाननिक्रम्य शिवलोकेमहीयते ।।४१

वह मनुष्य कभी भी नरकों में नहीं जाया करता है और स्वर्गलोक में महिमान्वित हुआ करता है तथा अन्य भी बतलाऊँगा जो कि देवों को भी परम दुर्लभ है ।।३६।। प्राचीन समय ब्रह्माजी ने स्थविर नाम वाले विनायक की पूजा की थी। वहाँ पर स्नान करके पवित्र होकर जो विनायक की पूजा किया करता है ।।३७।। वह पूजा गन्ध से—पुष्पों तथा भक्ष्य-भोज्यों के द्वारा किया करता है उसका पुण्यफल श्रवण करो। उसको चाही हुई सिद्धि होती है और मृत होकर वह शिवपुर को गमन

किया करता है ।।३८।। बुध पुरुष को भव नदी के समीप में पार्वती देवी को पूजा करनी चाहिये और गन्ध पुष्पों तथा धूप से अर्चना करे तो वह अतुल सौभाग्य का लक्ष्य प्राप्त करता है ।।३९।। कामोदक तीर्थ में मनुष्य स्नान करके घोर रति प्रिय काम का दर्शन करे तो वह स्वर्ग में देवों और गन्धर्वों के द्वारा स्पृहा करने के योग्य वपु वाला हो जाया करता है ।।४०।। प्रयाग में मनुष्य स्नान करके जो प्रयागेश के दर्शन करता है वह सभी लोकों का अतिक्रमण करके शिव लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ।।४१।।

६७—प्रतिकल्पाभिधानवर्णन

शृणुष्वावहितोव्यास कथामेकाग्रमानसः ।
मयाव्यासमुखात्प्राप्ताकल्पभेदेकथाशुभा ।।१
गुह्याद्गुह्यतराश्रेष्ठादेयायस्यनकस्यचित् ।
नास्तिकायकृतघ्नायनाशिष्यायकदाचन ।।२
एषापुण्यतमाव्यास! कथापापहरापरा ।
यस्याःश्रवणमात्रेण कल्पदोषो न बाधते ।।३
प्रमाणं कल्पपर्यन्तं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषु च ।।४
यावत्सङ्ख्या परिमिता तावती शृणु सत्तम! ।
अहोरात्रं विभजते सूर्यो भानुपदंःपदम् (भानुपदैव्रतम्) ।।५
तामुपादाय गणनां शृणु सङ्ख्यां द्विजोत्तम ।
निमिषैःपञ्चदशभिः काष्ठात्रिंशत्तु ताःकलाः ।।६
त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशद्भिस्तर्मनीषिणः ।
अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रादित्यगतिस्तथा ।।७

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! मन को एकाग्र करके परम सावधान होकर एक कथा का श्रवण करो । कल्प के भेद में यह शुभ कथा मैंने भी व्यास के मुख से प्राप्त की थी । यह कथा परम गोप-

नीय से भी अधिक गोपनीय है जिस किसी को इसे नहीं देना चाहिए। जो नास्तिक हो—कृतघ्न हो और शिष्य न हो उसे तो इसे कभी भी नहीं देना चाहिये ॥१-२॥ हे व्यास! यह परम पुण्यतम है और यह कथा परम पापों के हरण करने वाली है। जिसके केवल श्रवण कर लेने ही से कल्प का दोष बाधा नहीं दिया करता है ॥३॥ परमेष्ठी ब्रह्माजी का सभी मन्वन्तरों में और कल्प कल्पान्तरों में कल्प पर्यन्त प्रमाण होता है ॥४॥ हे श्रेष्ठतम! जितनी संख्या परिमित है उतनी का तुम श्रवण करो। सूर्य मानुषदों के द्वारा पद की अहोरात्रों के द्वारा विभाजन किया करता है। पद मनुष्यों का और देवों का होता है ॥५॥ हे द्विजोत्तम! उसी गणना का ग्रहण करके संख्या को सुनो। पन्द्रह निमिषों की काष्ठा है और तीस काष्ठाओं की एक कला होती है। तीस कला का मुहूर्त होता है और मनीषी का तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है तथा चन्द्र की और आदित्य की गति कही जाती है ॥६-७॥

रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषुनित्यशः।
तदहस्तु मनुष्याणां रात्रिश्चैवनुतादृशी ॥८
पक्षामासा ऋतुरब्दमयनञ्च प्रकीर्तितम्।
पितृणाञ्चैव देवानां ब्रह्मणश्च यथातथम् ॥९
यावत्सङ्ख्या समाख्याता आयुरन्तश्च तादृशः।
अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः ॥१०
पक्षौ द्वौ तोऋतोमासौ मासौद्वावृतुरुच्यते।
अयनंत्रिभि प्रोक्तमब्देद्वेअयनेस्मृते ॥११
दक्षिणं चोत्तरञ्चैवं सङ्ख्यानतत्त्वविशारदैः।
मानेनानेनयोमास. पक्षद्वयमसन्वितः ॥१२
पितृणांतदहोरात्रमितिकालविदोविदुः।
शुक्लपक्षस्तथाहस्तेषां कृष्णपक्षस्तु शर्वरी ॥१३
कृष्णपक्षेदिवातस्माद् पितृणांवर्ततेततः।
मानुषेणतुमानेन योवत्सरपरस्स्मृतः ॥१४

इन सभी में नित्य ही विशेष रूप से रवि की गति होती है। मनुष्यों को वह दिन है और वैसी ही रात्रि है ॥८॥ पक्ष—मास—ऋतु—शब्द और अयन कहे गये हैं। ये पितृ गणों के—देवों के और ब्रह्मा के यथोचित रूप से हुआ करते हैं ॥९॥ जितनी संख्या कही गई है और वैसा ही आयु का अन्त होता है। पन्द्रह अहोरात्र ही पक्ष इस शब्द से कहा गया है ॥१०॥ दो पक्षों का एक मास होता है और दो मासों का एक ऋतु हुआ करता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और वर्ष में दो अयन (दक्षिणायन-उत्तरायण) होते हैं ॥११॥ संख्या के तत्व पण्डितों ने दक्षिण और उत्तर कहा है। इस मान से जो मास होता है वह दो पक्षों से युक्त हुआ करता है ॥१२॥ पितृगण का वह एक अहोरात्र है—ऐसा ही काल के वेत्ता कहते हैं। जो शुक्ल पक्ष है वह दिन कहा गया है तथा कृष्ण पक्ष पितृगणों की रात्रि हुआ करती है ॥१३॥ यहाँ पर कृष्ण पक्ष में पितृगणों के श्राद्ध होते हैं जो मनुष्यों के मान से एक सम्वत्सर ही कहा गया है ॥१४॥

देवानां तदहोरात्रं दिवाचैवोत्तरायणम् ।
दक्षिणायनं स्मृतां रात्रिःप्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥१५
दिव्यमब्दं शतगुणमहोरात्रं मनोःस्मृतम् ।
अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्षउच्यते ॥१६
पक्षाद्दशगुणो मासोमासैर्द्वादशभिर्गुणैः ।
ऋतुर्मनूनासम्प्रोक्तःप्राज्ञैस्तत्वार्थदर्शिभिः ॥१७
षड्भिस्तैर्वर्षं आख्यातस्तेन सङ्ख्या निबध्यते ।
चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥१८
तावतीतु भवेत्सन्ध्या सध्यांशश्चतथाविधः ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायाः परिमाणतः ॥१९
तस्याश्चतावतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम् ॥२०
तस्यापि तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
कलिर्वर्षसहस्रन्तु सङ्ख्यातोऽत्र मनीषिभिः ॥२१

तस्य तावतिका सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
एवांद्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ॥२२

देवों का वही एक अहोरात्र होता है । देवों का जो उत्तरायण है वही दिन होता है और दक्षिणायन को रात्रि तत्वार्थ के कोविदों मार्गों ने कहा है ॥१५॥ तीन गुणा दिव्य शब्द (वर्ष) मनु के एक अहोरात्र होते हैं । दश गुना अहोरात्र मनु का पक्ष कहा जाया करता है । पक्ष से दश गुना मास होता है । द्वादश मासों के गुणों से मनुष्यों का ऋतु कहा गया है । ऐसा तत्वों के ज्ञाता प्राज्ञ लोगों के द्वारा ही बतलाया जाता है ॥१६-१७॥ उन छः ऋतुओं से एक वर्ष कहलाता है उससे ही संख्या को निबद्ध किया जाता है । चार हजार वर्षों का कृतयुग (सत्ययुग) होता है ॥१८॥ उतनी ही उस युग की सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश होता है । परिमाण से तीन सहस्र वर्ष त्रेता के होते हैं ॥१९॥ उसकी भी उतनी ही सन्ध्या और उसी तरह का सन्ध्यांश हुआ करता है । दो सहस्र वर्ष का द्वापर युग कहा गया है ॥२०॥ उसकी भी उतनी ही सन्ध्या और वैसा ही सन्ध्यांश भी होता है । कलियुग का परिमाण एक ही सहस्र वर्ष की संख्या वाला मनीषियों ने कहा है ॥२१॥ इसकी भी उतनी सन्ध्या और वैसा ही सन्ध्यांश हुआ करता है । यह बारह सहस्रों की युगों की संख्या कही गई है ॥२२॥

दिव्येनानेनमानेन युगगं हशा निबोध मे ।
सगजं सपुनस्तात जगत्सर्वमिदंततम् ॥२३
कृतं त्रेताद्वापरञ्च कलिश्चैव चतुर्युगम् ।
युगं तदेकसप्तत्या गुणितं द्विजसत्तम ॥२४
मन्वन्तरमितिप्रोक्तं स त्वानार्थं विशारदैः ।
अयनं चापि तत्प्रोक्तं द्वयमनेदक्षिणोत्तरे ॥२५
मनुःप्रलीयतेह्यत्र सम्प्राप्ते जगत प्रभो ।
ततापरोमनुःकालमेतावन्तं भरतर्षभ ॥२६
समतीतेतुराजेन्द्रो प्रोक्तस्संवत्सरस्सर्वं ।
तदेवपायनंप्रोक्तं मुनिनातत्वदर्शिना ॥२७

ब्रह्मणस्तदहःप्रोक्तः कल्पश्चेति समुच्यते ।
सहस्रयुगपर्यन्तं सानिशाप्रोच्यतेबुधैः ॥२८

इस तरह से मुझसे आप इस दिव्य मान से युगों की संख्या को समझ लो। हे तात ! फिर उसने इस विस्तृत सम्पूर्ण जगत का सृजन किया था ॥२३॥ कृतयुग–त्रेता—द्वापर और कलियुग ये चार युग हैं। इन चारों युगों की इकहत्तर चौकड़ी गुणित होकर द्विजसत्तम मन्वन्तर कहा गया है और यह संख्या के विशारदों ने गणना की है। इसिए और उत्तर दो अयन भी कहे गये हैं ॥२४-२५॥ हे प्रभो ! इस जगत् के समाप्त होने पर मनु का लय हो जाया करता है। इसके अनन्तर फिर इतने ही काल तक दूसरा मनु हुआ करता है ॥२६॥ हे राजेन्द्र ! समतीत होने पर यही सम्वत्सर कहा गया है और यही अयन तत्वों के दर्शी मनु ने बताया है। ब्रह्मा का वह एक दिन कहा गया है और वह कल्प भी कहा जाया करता है। बुधों के द्वारा एक सहस्र युग पर्यन्त [redacted] निशा (रात्रि) कही जाती है ॥२७-२८॥

निमज्जत्यथ तत्रोर्वी सशैलवनकानना ।
तस्मिन् युगसहस्रे तु पूर्णे भरतसत्तम ॥२९
ब्राह्मं दिवसपर्यन्तं कल्पो निःशेष उच्यते ।
युगानि समतीतानि साग्राणि कथितानि ते ॥३०
कृतत्रेतादियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ।
चतुर्दशैतेमनवः कथिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥३१
वेदेषु स पुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः ।
प्रजानाम्पतयोव्यास धन्यमेषांप्रकीर्तितम् ॥३२
मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः ।
नशक्यमन्तस्तेषांवै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥३३
विसर्गस्च प्रजानांवै संहारस्यच भारत! ।
मन्वन्तरेषु संहारः श्रूयते भरतर्षभ ॥३४
यत्र तिष्ठन्तिवेदेवाः सर्वसप्तर्षिभिस्सह ।
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेनच समन्विताः ॥३५

हे भरत सत्तम ! उन एक हजार युगों के पूर्ण हो जाने पर पहाड़ और वन एवं काननों से युक्त यह पृथ्वी उस समय में निमज्जित हो जाया करती है ॥२९॥ ब्रह्मा के दिवस पर्यन्त में ही एक कल्प पूर्ण हो जाया करता है। अब के सहित सभी युगों को मैंने तुम्हें बतला दिया है ॥३०॥ कृत और त्रेता युग में नियुक्त मनु का अन्तर कहा जाता है। वे मनु चौदह कोटि की वृद्धि करने वाले बताये गये हैं ॥३१॥ हे व्यास ! यह वेदों में और समस्त पुराणों में प्रभविष्णु प्रजाओं के पति हैं जिनका होना बहुत ही धन्य कीर्तित किया गया है ॥३२॥ मन्वन्तरों में संहार होते हैं और संहारों के अन्त में जन्म अर्थात् उत्पत्तियाँ हैं। उनका अन्त सौ वर्षों में भी कहा नहीं जा सकता है ॥३३॥ हे भारत ! प्रजाओं का विसर्ग और संहार का वर्णन नहीं किया जा सकता है। हे भरत के वंश में परम श्रेष्ठ ! मन्वन्तरों में संहार सुना जाता है ॥३४॥ जिनमें महर्षियों के सहित समस्त देववृन्द तप से, ब्रह्मचर्य से और श्रुत से समन्वित होते हुए स्थित रहा करते हैं ॥३५॥

पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते ।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥३६
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः ।
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥३७
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥३८
स एव विष्णुर्व्यास महेशाविधिसंयुतः ।
महाकालवने रम्ये वामचक्रे स ईश्वरः ॥३९
प्रलयो न बाधते व्यास ! महाकालवनोत्तमे ।
कल्पे कल्पे च वै रम्या पुरी ह्येषा कुशस्थली ॥४०
निरामया निरातङ्का निर्विकारा युगे युगे ।
मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानि सम्भवन्ति च ॥४१
अस्मिन्नवनेरम्ये ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रजानां पतयो ये ते दक्षप्राचेतसस्तथा ॥४२

एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर एक पूर्ण कल्प कहा जाता है। उसमें सूर्य की तीव्रतम किरणों से सब भूत दग्ध हो जाया करते हैं ॥३६॥ द्विजगण देवगणों के साथ ब्रह्माजी को आगे करके सुरों में परम श्रेष्ठ प्रभु हरि नारायण में प्रवेश किया करते हैं ॥३७॥ कल्पों के अन्त समयों में समस्त भूतों का बारम्बार सृजन करने वाला वही है। वह देव अव्यक्त व शाश्वत है और उसी का यह संपूर्ण जगत् है ॥३८॥ हे व्यास! महेश और विधाता से समन्वित वह ही विद्यमान रहा करता है। वह ईश्वर, परम रम्य महाकाल वन में निवास किया करता था ॥३९॥ हे व्यास! परमोत्तम महाकाल वन में प्रलय की कोई बाधा नहीं हुआ करती है। यह कुशस्थली सुरम्य पुरी कल्प-कल्प में अतीव सुन्दर हो जाती है ॥४०॥ युग-युग में यह पुरी आमय (पीड़ा) से रहित, आतङ्क (भय) से हीन और विकारों से शून्य होती है। मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा उपदिष्ट कल्प हुआ करते हैं ॥४१॥ इस परम सुरम्य वन में लोकों के पितामह ब्रह्माजी तथा दक्ष और प्राचेतस जो प्रजाओं के पति हुए थे ॥४२॥

मरीचि. कश्यपोरुद्रोयेचान्ये भार्गवादयः ।
कल्पादौसृजतेलोकान्चराचरान्यथातथा ॥४३
एवमादौ पुराव्यास कल्पं कल्पान्तकंसदा ।
वाराहोवामनोविष्णुः पितृणांवंतथं वच ॥४४
कल्पभेदास्समाख्याता महाकालवनेशुभे ।
चतुराशीतिकल्पानिसञ्जातानिद्विजोतम ॥४५
तावन्ति ज्योतिर्लिङ्गानि वने तिष्ठन्ति सत्तमा ।
पुनर्जाता पुनर्नष्टा महीसागरपर्वताः ॥४६
पुनः पुनर्भविष्यन्तिह्येषाऽचलास्मृता ।
तस्मात्सर्वेषुकालेषुसर्वलोकेषु गीयते ॥४७
प्रतिकल्पेति सञ्ज्ञा सा भुवि व्यास! भविष्यति ।
यस्याञ्च मानवा दान्ताः स्नानदानादिकं तथा ॥४८

जपं होमं तथा श्राद्धं पितृनुद्दिश्यदीयते ।
नतेषाम्पुनरावृत्तिः कोटिकल्पशतैरपि ॥४८

मरीचि, कश्यप और अन्य भार्गव आदि कल्प के आदि में यथा-तथा चर एवं अचर लोकों का सृजन किया करते हैं ॥४३॥ हे व्यास ! पहिले इस प्रकार से आदि में सदा कल्प और कल्पान्तक वाराह–वामन और विष्णु हुए थे और उसी प्रकार से पितृगणों के भी हुए थे ॥४४॥ इस महाकाल वन में कल्पों के भेद समाख्यात हुए हैं । हे द्विजोत्तम ! चौरासी कल्प हुए हैं ॥४५॥ हे द्विजोत्तम ! उतने ही उस वन में ज्योतिर्लिङ्ग स्थित हैं । यह भूमि सागर और पर्वतों के समुदाय सब पुनः समुत्पन्न हुआ करते हैं और पुनः विनष्ट भी हो जाया करते हैं ॥४६॥ ये सभी बारम्बार होंगे किन्तु यह पुरी अचल कही गयी है । इसी कारण से सभी कालों में और समस्त लोकों में इसका गान किया जाता है ॥४७॥ हे व्यास ! भू मण्डल में यह प्रतिकल्पा यह संज्ञा होगी । जिसमें इमन थील मानव स्नान—दान आदि जप—होम और पितृगण का उद्देश्य करके श्राद्ध दिया करते हैं उन की फिर सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी यहाँ पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है ॥४८-४९॥

प्रतिकल्पामनुप्राप्य दृष्टादेव महेश्वरम् ।
वैशाखेपौर्णमास्यांवं स्नापयेदेकवासरम् ॥५०
अनङ्गतो रज बलान्तो क्षिप्राम्भसि च मानवः ।
न तस्य दुष्कृतं किञ्चिद्विष्णुलोकं स गच्छति ॥५१
मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेनयत्फलम् ।
तत्फलं प्राप्नुयाज्जन्तुःप्रतिकल्पं क्षणादपि ॥५२
प्रतिकल्पे च कल्पान्ते सदैवाऽऽसीत्पुरी शुभा ।
तस्मात्सर्वजनैःख्याता प्रतिकल्पा द्विजोत्तमाः ॥५३
य एतस्यां महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
न तेषां पण्यभेदोऽयं स्वप्नयज्जायते क्षणात् ॥५४
य. शृणोतिकथां पुण्यां प्रतिकल्पोद्भवां शुभाम् ।
श्रावयेद्वा प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥५५

प्रतिकल्पा की प्राप्ति करके तथा महेश्वर देव का दर्शन करके वैशाख मास मे पूर्णमासी तिथि मे एक दिन स्नपन करावे। प्रसङ्ग से रज से क्लान्त मानव शिप्रा के जल मे स्नान करे तो फिर उसको कुछ भी दुष्कृत नही रहता है और वह सीधा विष्णु भगवान् के लोक में चला जाता है ॥५०-५१॥ सहस्रों मन्वन्तरों से काशी के वास से जो फल प्राप्त होता है वही पुण्य-फल प्रतिकल्प में क्षण भर मे जन्तु प्राप्त कर लिया करता है ॥५२॥ प्रतिकल्पों और कल्पान्त मे पुरी सदा ही परम शुभ थी। हे द्विजोत्तम! इसी कारण से वह सब जनों के द्वारा प्रतिकल्पा ख्यात हुई है ॥५३॥ जो महान् भाग्य वाले मनुष्य इसमे प्रीति किया करते हैं उनको यह कल्प का भेद क्षण भर मे स्वप्न की भाँति हो जाया करता है ॥५४॥ जो इस परम पुण्यमयी कथा का श्रवण किया करता है जोकि प्रतिकल्प से उत्पन्न हुई परम शुभ है। अथवा प्रयत्न पूर्वक श्रवण कराता है वह ब्रह्महत्या का अपोह कर दिया करता है ॥५५॥

६८—शिप्रामाहात्म्य एवं ज्वरानुग्रह वर्णन

एवंव्यासपुरीरम्या सामभूतामनातनी।
युगेयुगेयथाजाता तथाख्यातामयानघ ॥१
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो वेदविदांवर!।
शिप्रायाश्च कथा पुण्या पवित्रां पापहारिणीम् ॥२
सुन्दरकुण्ड समाख्यात पिशाचमोचन तथा।
नीलगङ्गा इतिप्रोक्ता कर्कराजमतः परम् ॥३
पुष्कराणिचसर्वाणि गयातीर्थमनुत्तमम्।
गोमतीकुण्डमाख्यातंनाम्नाधर्मसरस्तथा ॥४
ख्यातंसङ्गमजंतीर्थ शनेर्जन्मकथाशुभा।
च्यवनाश्रमेचयावार्ता तथानानालयेशुभे ॥५
पुरुषोत्तममहिमानंकालेकेनकथंभवेत्।
एतद्वेदितुमिच्छामि यत्तेमनसिवर्तते ॥६

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—इस प्रकार से हे व्यास ! सनातनी नाम होने वाली रम्यपुरी जो है अनघ ! युग-युग में जैसी हुई थी उसी प्रकार की मैंने बतलादी है ॥१॥ व्यासजी ने कहा—हे वेदों के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ! मैं पुनरपि आप से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ जो कि शिप्रा नदी की परम पुण्यमयी—अत्यन्त पवित्र और पापों के हरण करने वाली कथा है ॥२॥ आपने एक सुन्दर कुण्ड बतलाया था तथा पिशाच मोचन कहा था । आपने नील गङ्गा कही थी और इसके आगे परम एक रात्र वर्णित किया था । नव पुष्कर और प्रत्युत्तम गया तीर्थ तथा गोमती कुण्ड का वर्णन किया था । उसी प्रकार से धर्मसार नाम का वर्णन किया था ॥३-४॥ गगन से समुत्पन्न तीर्थ व्याख्यान किया था तथा शनि के शुभ जन्म की कथा का वर्णन किया । च्यवन ऋषि की जो वार्त्ता है वह तथा शुभ नागालय में जो वार्त्ता थी वह बतलाई थी ॥५॥ पुरुषोत्तम की महिमा का वर्णन किया । किन्तु किस समय में किस के द्वारा कैसे यह सब हुआ—यही मैं जानना चाहता हूँ आपके मन में जो भी हो कृपया कहिए ॥६॥

शृणुव्यास ! महाभाग कथापापहरापराम् ।
यस्मिन्काले यथा जाता महाकालवनेशुभे ॥७
नास्ति वत्स ! महीपृष्ठे शिप्राया सदृशी नदी ।
यस्यास्तीरे क्षणान्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेनवै ॥८
वैकुण्ठेजायतेशिप्राजवरद्वीपमुरालये ।
यमद्वारेत्वपापघ्नी पातालेऽमृतसम्भवा ॥९
वाराहकल्पेसंप्रोक्ता विष्णुदेहेतिनामतः ।
शिप्रायत्रया ममाख्याता कामधेनुसमुद्भवा ॥१०
विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्मुनिसत्तम ! ।
वक्तुमर्हसि शिप्रायाः समासेन कथां शुभाम् ॥११
महाकालमादाय भिक्षार्थं व्यचरन्महीम् ।
महादेवोऽपिशुद्धात्मा ममंतोऽपि पुरार्थतः ॥१२

अप्राप्तभिक्षोभिक्षार्थी वैकुण्ठमगमद्विभु ।
गतस्त्वातिथ्यवेलायामभन्देवो यतस्ततः ॥१३
लोकनिन्दापरः क्रुद्धः क्षुधितोबहुवासरैः ।
भिक्षांदेहीतिभोब्रह्मन् क्षुधितोऽहं समागत ॥१४

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे महाभाग व्यास ! इस पापों के हरण करने वाली परमोत्तम कथा का तुम अब श्रवण करो। यह कथा अवन्ती पुर महाकाल वन में जिस समय में जिस रीति से हुई थी ॥७॥ हे वत्स ! इस मही मण्डल के पृष्ठ पर शिप्रा के समान अन्य कोई भी नदी नहीं है। जिसके तट पर कुछ ही समीप में रहकर सेवन करने से क्षणभर में ही मुक्ति हो जाया करती है ॥८॥ यह शिप्रा बैकुण्ठ में उत्पन्न होती है और सुरालय में ज्वरों का हनन करने वाली है। यमराज के द्वार पर पापों का विनाश किया करती है और पाताल में अमृत सम्भवा होती है ॥९॥ यह वाराह कल्प में नाम से विष्णुदेहा कही गयी थी और अवन्ती में यह शिप्रा कामधेनु से समुद्भव वाली कही गई है ॥१०॥ महर्षि व्यासजी ने कहा—हे महर्षि श्रेष्ठ ! हे भगवन् ! यह तो आपने अति अद्भुत बात बतलाई है। अब आप इस शिप्रा नदी की कथा सविस्तार से कहने के योग्य होते हैं ॥११॥ महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—विशुद्ध आत्मा वाले महादेव प्रभु सब लोकों में सभी और ब्रह्म कपाल को लेकर भिक्षा के लिये मही में विचरण करते थे ॥१२॥ भिक्षार्थी विभु भिक्षा प्राप्त न करने वाले बैकुण्ठ में गये थे। देव जहाँ तहाँ भ्रमण करते हुए आतिथ्य के समय में गये थे ॥१३॥ लोगों की निन्दा में तत्पर बहुत दिनों से भूखे और अत्यन्त क्रुद्ध थे और यही कहते थे—हे ब्रह्मन् ! भिक्षा दो, मैं भूखा यहाँ पर आगया हूँ ॥१४॥

कपालंचकरे कृत्वा इत्युवाचपुन.पुनः ।
गृह्यताहरभिक्षाते ददामीतिहरिस्तदा ॥१५
इत्युक्त्वाकरमुद्यम्य तर्जन्यंगुलिमदर्शयत् ।
तदारुद्रसमाभ्मातत्रिशूलेनाहनद्रुषा ॥१६

सदांगुलिसमुद्भूतं बहुशुश्रावशोणितम् ।
पूर्णंपात्रचतेनाशुशङ्करस्यकरेस्थितम् ॥१७
तदोद्वेलितपात्राद्वै धाराजातासमन्ततः ।
तस्मात्स्थानात्समुद्भूताशिप्रासृग्धारसम्भवा ॥१८
वैकुण्ठाच्चाभवत्सद्यो नदीत्रैलोक्यपावनी ।
एवं शिप्रासरिच्छ्रेष्ठा त्रिपुलोकेषुविश्रुता ॥१९
ज्वरघ्नी च यथा प्रोक्ता तथा व्यास ! ब्रवीम्यहम् ।
यदा बाणासुरोदैत्यः कृष्णेन सह संयुगे ॥२०
योधयामास दैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेलनः ।
सहस्रबाहुर्भिर्वीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥२१

कपाल को हाथ में लेकर बारम्बार यही बोल रहे थे । उस समय में भगवान् हरि ने कहा था—हे हर ! भिक्षा ग्रहण करो । मैं आपको भिक्षा देता हूँ । इतना कहकर हाथ को उद्यत करके तर्जनी अंगुलि प्रदर्शित की थी । उस समय में समाध्मान रुद्र भगवान् ने क्रोध से त्रिशूल के द्वारा हनन किया था ॥१५-१६॥ उस समय में अंगुलि से समुत्पन्न बहुत—सा रुधिर स्रावित हुआ था । उससे भगवान् शङ्कर के हाथ में स्थित पात्र शीघ्र पूर्ण हो गया । उस समय में पात्र से उद्वेलित होकर चारों ओर धारा बन गई । वहीं पर उसी स्थान से रुधिर की धार से समुत्पन्न शिप्रा प्रकट हुई थी ॥१७-१८॥ तुरन्त ही यह नदी वैकुण्ठ से त्रैलोक्य पावनी हो गई । इस प्रकार से यह शिप्रा नदी परम श्रेष्ठ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गयी थी ॥१९॥ हे व्यास ! जिस प्रकार से यह ज्वरघ्नी हुई उसे मैं बतलाता हूँ । जिस समय में बाणासुर दैत्य श्रीकृष्ण के साथ रणक्षेत्र में युद्ध कर रहा था । अनिरुद्ध के द्वारा जिसका अपमान हो गया ऐसा वह दैत्येन्द्र बड़ा वीर था और सहस्रों बाहुओं से अनेक आयुधों से समन्वित था ॥२०-२१॥

तस्मात्क्रोधाद्वासुदेवः चक्रमादायसत्वरः ।
चिच्छेददोः सहस्रन्तुक्षुरप्रेणाशुमिणाना ॥२२

सतदाभग्नसंकल्पश्छिन्नदोश्चरणादितः ।
युद्धात्पराङ् मुखोभूत्वा शंकरंशरणंययौ ॥२३
तदागतंमहादैत्यं समीपेभयविह्वलम् ।
विलोक्यकृपयाविष्टो गतः संग्राममूर्द्ध नि ॥२४
छित्वाबाहुसहस्रं वै दैत्यराजस्यसंयुगे ।
क्रुद्धः कृष्णोमहाबाहुः परसेनान्तकोबली ।२५
स्थितोयत्राचलोव्यासगतस्तत्रमहेश्वरः ।
वारयामासकृष्णंवैशरोघाश्चसमाकिरन् ॥२६
अन्योन्यंतौसमासाद्य युद्धंकृत्वाचदारुणम् ।
शस्त्रास्त्रैश्चमहाघोरैः सर्वप्राणिभयंकरैः ॥२७
वैष्णवास्त्रं तदाकृष्णसन्दधेहरजिघांसया ।
पाशुपतञ्चनामास्त्रसर्वसंहारकारकम् ॥२८

इस कारण से परम क्रोध में भरे हुऐ वासुदेव ने शीघ्रता से संयुत हो चक्र ग्रहण कर लिया और आशुगामी क्षुरप्र से उसके सहस्र बाहुओ का छेदन कर दिया था ॥२२॥ उस समय मे अपने सङ्कल्पों को भग्न कर देने वाला वह कटे हुए बाहुओं वाला और चरणों से भी पीडित होता हुआ युद्ध से पराङ् मुख होकर भगवान् शङ्कर की शरणागति में गया था ॥२३॥ उस समय में भय से अत्यन्त विह्वल समीप मे समागत महादैत्य को देखकर कृपा से समाविष्ट होकर संग्राम स्थल में सब से आगे पहुँच गये थे ॥२४॥ युद्ध में दैत्यराज की सहस्र बाहुओ का छेदन करके महाबाहु श्रीकृष्ण शत्रु की सेना का हनन करने वाले बलवान् अधिक क्रोधित हुए थे ॥२५॥ हे व्यास ! श्रीकृष्ण जहाँ पर अब स्थित थे और अचल थे वही पर महेश्वर गये थे । बहुत से शरो के समूहो को समाकीर्ण करते हुए श्रीकृष्ण का वारित किया था ॥२६॥ उन दोनों ने परस्पर मे प्राप्त होकर और परम दारुण युद्ध करके जो कि समस्त प्राणिया के लिये महान् भयङ्कर तथा अत्यन्त घोर शस्त्रास्त्रो से किया गया था ॥२७॥ उस समय मे महादेव को मारने की इच्छा से श्रीकृष्ण ने वैष्णवास्त्र

का सन्धान किया और शिव ने सबका संहार कर देने वाला अपना पाशु-पत नाम वाला अस्त्र सँभाला था ॥२८॥

मन्दधैर्यैस्तदाशम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः ।
हाहाकारस्तदाजातः सर्वलोकेषु श्रूयते ।।२६
मोहनास्त्रंपुनः कृष्णोहरोपरिमुमोचह ।
तेनास्त्रेणतदाशम्भुर्मोहितोदेवमायया ।।३०
जृम्भमाणः स्थिरः संख्ये किञ्चित्कालं मुहुर्मुहुः ।
सव्यसनः पुनर्जातो यदा रुद्रो महाहवे ।।३१
तदाक्रोधाभिभूतेन कृतोमाहेश्वरोज्वरः ।
ललाटफलकात्तस्यो वीरभद्रो महाबलः ।।३२
त्रिनेत्रस्त्रिशिरोह्रस्वस्त्रिपादोवक्रराकृतिः ।
क्षुधोजटिलभस्माङ्गोमहाव्याधिदुं रत्ययः ।।३३
कृष्णसेनांनमामाद्य महादेवेनप्रेरितः ।
प्रामिनाकदनं चक्रे सर्वेषांकृष्णसङ्गिनाम् ।।३४
परामुग्न पराभग्नाज्वराभिघात पीडिता ।
बभूव महता व्यास । सेना कृष्णेनपालिता ।। ३५

उस समय में श्रीकृष्ण के प्राणों का हरण करने के लिये अत्युत्सुक शिव ने उस समय में पाशुपत का सन्धान कर लिया था। उस समय में हा हा कार मच गया था जो कि सभी लोकों में सुना गया था ।।२६।। पुनः श्रीकृष्ण ने हर के ऊपर मोहनास्त्र का परिमोचन किया। उस अस्त्र से उस समय में देव माया से शम्भु मोहित हो गये थे ।।३०।। कुछ समय तक युद्ध स्थल में बारम्बार में जँभाई लेते हुए स्थिर हो गये थे। उस महा युद्ध में जिस समय में पुनः संज्ञा (होश-हवास) प्राप्त करने वाले हो गये थे ।।३१।। उस समय में क्रोध से अभिभूत शिव ने माहेश्वर ज्वर समुत्पन्न किया। ललाट के फलक से सुन्दर महा बलवान् वीरभद्र उत्पन्न हुआ। वह वीरभद्र तीन नेत्रों वाला-तीन मस्तकों वाला—छोटा कद वाला—तीन चरणों से युत—वक्र की आकृति वाला-क्षुधा-जटाधारी-अङ्गों में भस्म लेपन करने वाला—महान् व्याधि से समन्वित और

दुरत्यय था ॥३२-३३॥ श्रीकृष्ण की सेना को प्राप्त कर महादेव के द्वारा उसे प्रेरित किया गया था। उसने श्रीकृष्ण के साथी सब प्राणियों का विनाश किया था ॥३४॥ हे व्यास! श्रीकृष्ण के द्वारा पालित सेना सहसा ही पराङ्मुख—पराजय—ज्वर के अभिघात से पीड़ित हो गई थी ॥३५॥

तथा मुनाऽऽपालोभयजृम्भमाणा रुजार्दिताम् ।
स्वसेनांभग्नसकल्पांमाहेश्वरज्वरपीडिताम् ॥३६
ससर्जवैष्णवंजाप कृष्णः परमकोपनः ।
तेनसहवैष्णवस्य माहेश्वरज्वरेणच ॥३७
अन्योन्यमभवद्युद्धं घोरं घोरतरं महत् ।
संग्राम बहुनकृत्वा भग्नोमाहेश्वरोज्वरः ॥३८
सर्वलोकेषु गत्वा वं न शान्ति प्रतिजग्मिवान् ।
महाकालवने रम्ये प्राप्तस्तेनाभिपीडितः ॥३९
निमग्नश्चैवक्षिप्रायां ततःशान्तिपरावयौ ।
दृष्ट्वामाहेश्वरं शान्तं ज्वरं परमकोपनम् ॥४०
वैष्णवोऽपिसमासाद्य तस्या मज्जनमाचरत् ।
तस्याः प्रभावमन्नष्टौ ज्वरौ हरिहरोद्भवौ ॥४१
तस्मात्सर्वेषु कालेषु ज्वरघ्नी साऽभवत्क्षणात् ।
ज्वराभिभूता ह्यासाद्य जनाः परमदुःखिता ॥४२
निमज्जन्तिचक्षिप्रायां वसन्ति च समाहिता ।
नतेषांबाधते पीडाज्वरोद्भूताकदाचन ॥४३
सरमुक्त तदाव्यास महान्हरिहरेणच ।
येशृण्वन्तिकथां दिव्यां नराश्चैकाग्रमानसा ॥
न तेषां जायते किञ्चिज्ज्वरसन्तापज भयम् ॥४४

रुज से अर्दित—पीड़ाई पैदा हुई—भग्न सकल्प वाली—माहेश्वर के ज्वर से पीड़ित इस प्रकार की अपनी सेना को देखकर परम कोप वाले श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर का सृजन किया था। उस वैष्णव ज्वर का माहेश्वर ज्वर के साथ परस्पर में परम घोर और उससे भी अत्यन्त घोर

महान् युद्ध हुआ था। बहुत संग्राम करके माहेश्वर ज्वर भग्न हो गया था ॥३६-३८॥ समस्त लोकों में जाकर भी कहीं पर शान्ति प्राप्त नहीं की थी। उससे अभिपीड़ित होकर रम्य महाकाल वन में प्राप्त हुआ ॥३९॥ इसके पश्चात् वहाँ पर शिप्रा में निमग्न हो गया और शीघ्र ही परम शान्ति को प्राप्त हुआ। परम कोप युक्त माहेश्वर ज्वर को शान्त देखकर वैष्णव भी वहाँ आकर उस ने भी उसी नदी में मज्जन किया था। उनके प्रभाव से दोनों हरि और हर से उत्पन्न ज्वर नष्ट हो गये थे ॥४०-४१॥ इसी लिये सभी समयों में वह क्षणभर में ज्वरघ्नी हो गई। ज्वर से अभिभूत परम दुःखित मनुष्य वहाँ प्राप्त होकर शिप्रा में निमज्जन किया करते हैं और समाहित होकर वास किया करते हैं। फिर कभी भी उनको ज्वर से होने वाली पीड़ा बाधा नहीं दिया करती है ॥४२-४३॥ हे महान् व्यास! उस समय में हरि और हर ने सत्य कहा था। जो एकाग्र मन वाले मनुष्य इस दिव्य कथा का श्रवण किया करते हैं उनको ज्वर के सन्ताप से होने वाला कुछ भी भय नहीं हुआ करता है ॥४४॥

६६—विष्णु स्तोत्र और ध्यान

विष्णुभक्तिः परा नित्या सर्वार्तिदुःखनाशिनी।
सर्वं पापहरा पुण्या सर्वसुखप्रदायिनी ॥१
एषा ब्राह्मी महाविद्या न देया यस्य कस्यचित्।
कृतघ्नाय ह्यशिष्याय नास्तिकायानृताय च ॥२
ईर्ष्यकाय न रक्षाय कामिकाय कदाचन।
सद्गतं सर्वं विघ्नन्तियत्तद्धर्मं सनातनम् ॥३
एतद्गुह्यतमं शास्त्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
पवित्रं च पवित्राणां पावनानां च पावनम् ॥४
विष्णोर्नामसहस्रं च विष्णुभक्तिकरं शुभम्।
सर्वसिद्धिकरं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥५
ॐ अस्य श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेयऋषिः।
विष्णुर्देवता अनुष्टुप्छन्दः सर्वकामावाप्त्यर्थे जपे विनियोगः॥६

सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलं,
करतलधृतशैलं वेणुनादे रसालम् ॥७
व्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं,
तरुणतुलसिमालं नौमि गोपालबालम् ॥८

महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा—भगवान् विष्णु की भक्ति परम प्रधान है जो निन्दा और सभी दुःखों की भ्रान्ति का विनाश करने वाली है। यह समस्त पापों के हरण करने वाली—पुण्यमयी और सब सुखों के प्रदान करने वाली है ॥१॥ यह बाह्यी महा विद्या है। इसको चाहे जिस किसी को नहीं देना चाहिए। जो कृपण हो—पाखण्डी हो—नास्तिक हो तथा मूर्ख हो उसे कभी न देवे ॥२॥ जो ईर्ष्यालु हो—क्रूर हो और कामुक हो उसे भी इस विद्या को नहीं देना चाहिए। अपने रहने वाले सब का विघ्न का देती है—यही सनातन धर्म है ॥३॥ यह परम गोपनीय शास्त्र है जो सब पापों का नाशक है यह पवित्रों में परम पवित्र है और पावनों में परम पावन है ॥४॥ भगवान् विष्णु के सहस्र नाम परम शुभ विष्णु की भक्ति के करने वाले हैं। मनुष्यों की समस्त सिद्धियों के के करने वाले तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों ही में प्रदान करने वाला है ॥५॥ इस विष्णु सहस्र नामक स्तोत्र मन्त्र का मार्कण्डेय ऋषि है—विष्णु देवता है—अनुष्टुप् छन्द है—समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिये ही जप में विनियोग है ॥६॥ ध्यान—जल से परिपूर्ण मेघ के समान श्रीविष्णु का नीला वर्ण है—उदारता और शील से दर्शित स्वरूप है—हाथ पर शैल को धारण करने वाले हैं—रसमयी वेणु का वादन करने वाले हैं—व्रजवासियों के कुल के मनुष्यों का सदा परिपालन करने वाले हैं—कामिनियों की केलि में अतीव चञ्चल हैं—तरुण तुलसी की माला को धारण करने वाले गोपाल के बाल स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥७-८॥

ॐ विश्व विष्णुर्हषीकेशः सर्वात्मा सर्वभावनः।
सर्वं च सर्वं योजयो भूतग्रामाऽऽश्रयाशयः ॥६

अनादिनिधनो देवः सर्वज्ञः सर्वसम्भवः ।
सर्वव्यापी जगद्धाता सर्वशक्तिधरोऽनघः ॥१०
जगद्बीज जगत्स्रष्टा जगदीशो जगत्पतिः ।
जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाता जगन्मयः ॥११
सर्वाऽऽकृतिधरः सर्वविश्वरूपी जनार्दनः ।
अजन्मा शाश्वतो नित्यो विश्वाधारो विभु प्रभुः ॥१२
बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधरोहरः ।
कालाग्निप्रभवो वायुः प्रलयान्तकरोऽक्षयः ॥१३
महार्णवो महामेघो जलबुद्बुदसम्भवः ।
सस्कृतो विकृतो मत्स्यो महामत्स्यस्तिमिङ्गिला ॥१४

अब विष्णु के सहस्र नामावली का आरम्भ होता है—विश्व स्वरूप वाले—विषयेन्द्रियों के स्वामी—सबके आत्मा—सब पर कृपा करने वाले विष्णु हैं। सर्वत्र गमन करने वाले—शर्वरी के स्वामी—भूत ग्रामों के आश्रयों के भी आश्रय हैं॥९॥ आदि और अन्त से रहित है। देव—सभी कुछ के ज्ञाता, सबकी समुत्पत्ति करने वाले हैं। सर्वत्र सब में व्यापक—इस जगत् के धाता—सभी प्रकार की शक्तियों के धारण करने वाले तथा निष्पाप हैं॥१०॥ इस जगत् की उत्पत्ति के बीज स्वरूप हैं—जगत् के सृजन करने वाले—जगत् के स्वामी और इस जगत् की रक्षा करने वाले हैं। जगत् को ज्ञान देने वाले गुरु—जगत् के नाथ—जगत् के पालक और सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले हैं ॥११॥ सभी आकृतियों के करने वाले—सम्पूर्ण विश्व के स्वरूप वाले तथा जनों की पीडा को दूर करने वाले हैं। कभी जन्म न धारण करने वाले—निरन्तर स्थित रहने वाले—नित्य—विश्व के आधार—व्यापक और कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ प्रभु हैं। अर्थात् करने न करने और विपरीत करने की शक्ति से समन्वित समर्थ है ॥१२॥ बहुत से स्वरूपों से संयुत—एक ही रूप वाले—सबका स्वरूप धारण करने वाले—हर—कालाग्नि के समुत्पन्न करने वाले—वायु—प्रलय के अन्त करने वाले और क्षय से रहित हैं ॥१३॥ महान् सागर—महान् मेघ—जल के बुलबुले से समुत्पन्न—

संस्कार समग्र——विकार युक्त—मत्स्य—महान् मत्स्य स्वरूप और तिमिङ्गल हैं। उसका भक्षण करने वाली सागर में एक परम विशाल मछली को तिमिङ्गल कहते हैं ॥१४॥

अनन्तोवासुकिःशेषोवराहोधरणीधरः।
पयः क्षीरविवेकाढ्योहंसोहैमगिरि स्थितः ॥१५
हयग्रीवो विशालाक्षो हयकर्णो दयाकृतिः।
मन्थनो रत्नहारी च कूर्मो धरधराधरः ॥१६
विनिद्रो निद्रितोनन्दी सुनन्दोनन्दनप्रियः।
नाभिनालमृणालोच स्वयंभूश्चतुराननः ॥१७
प्रजापतिपरो दक्षः सृष्टिकर्ता प्रजाकरः।
मरीचिः कश्यपोदक्ष सुरासुरगुरु कविः ॥१८
वामनो वाममार्गी च वामकर्मा बृहद्वपुः।
त्रैलोक्यक्रमणो दीपो बलियज्ञ विनाशन ॥१९
यज्ञहर्ता यज्ञकर्ता यज्ञेशो यज्ञभुग्विभुः।
सहस्रांशुर्भगो भानुर्विवस्वानरविरंशुमान् ॥२०

अनन्त (शेष)—वासुकि—शेष—धरणी को धारण करने वाले—वराह हैं। दूध और जल के विवेचन से सुसम्पन्न हंस हैमगिरि पर स्थित रहने वाले हैं ॥१५॥ हयग्रीव—विशाल लोचनों वाले—हय के समान कर्णों वाले—और अश्व के सदृश आकृति वाले हैं अथवा दया के आकार से युक्त हैं—मन्थन करने वाले—रत्नों का हरण करने वाले—कूर्म—धरा को प्रधर धारण करने वाले हैं ॥१६॥ निद्रा से रहित—परम निद्रा वाले—आनन्द स्वरूप—सुनन्द और नन्दन प्रिय हैं। नाभि के कमल नाल के मृणाल वाले हैं—स्वयं ही समुत्पन्न (ब्रह्मा) और चार मुखों वाले हैं। अर्थात् ब्रह्मा भी विष्णु भगवान् का ही एक स्वरूप है ॥१७॥ परम प्रजापति—दक्ष—सृष्टि के करने वाले—प्रजाओं को समुत्पन्न करने वाले—मरीचि—कश्यप—दक्ष—सुरों के गुरु तथा असुरों के गुरु हैं। अर्थात् सब प्रजापतियों और ऋषियों का स्वरूप भी विष्णु का ही रूप है ॥१८॥

वामन—वाम मार्ग वाले—वाम कर्म करने वाले तथा बृहत् शरीर से

समन्वित हैं। लोकों लोकों में संक्रमण करने वाले—दीप अर्थात् प्रकाश दाता और राजा बलि के यज्ञ का विनाश करने वाले हैं ॥१६॥ यज्ञों के हरण करने वाले—यज्ञों के करने वाले—यज्ञों के स्वामी—यज्ञों में भाग ग्रहण करने वाले—आदित्य—सहस्र किरणों से युक्त (सूर्य)—भग—भानु विवस्वान्—अंशुमान्—रवि हैं ॥२०॥

तिग्मतेजाश्चाल्पतेजाः कर्मसाक्षी मनुर्यमः ।
देवराजः सुरपतिर्दानवारिः शचीपतिः ॥२१
अग्निर्वायुसखो वह्निर्वरुणो यादसांपतिः ।
नैर्ऋतो नादनोऽनादीरक्षपश्चोघनाधिपः ॥२२
कुबेरोऽवित्तवान्वेणो वसुपालो विलासकृत् ।
अमृतस्रावणः सोमः सोमपानकरः सुधीः ॥२३
सर्वौषधिकरः श्रीमान्निशाकरदिवाकरः ।
विषारिर्विषहर्ता च विषकण्ठधरो गिरिः ॥२४
नीलकण्ठो वृषी रुद्रो भालचन्द्रो ह्युमापतिः ।
शिवः शान्तो वशी वीरो ध्यानी मानी च मानदः ॥२५
कृमिकीटो मृगव्याधो मृगहा मृगलाञ्छनः ।
बटुको भैरवो बालः कपाली दण्डविग्रहः ॥२६
श्मशानवासी मांसाशी दुष्टनाशी वरान्तकृत् ।
योगिनीत्रासको योगी ध्यानस्थो ध्यानवासन ॥२७

तीक्ष्ण तेज से युक्त—स्वल्प तेज वाले—सबके किये हुए कर्मों को देखने वाले—मनु—यम—देवों के राजा—सुरों के स्वामी—दानवों के शत्रु—इन्द्राणी के पति—अग्नि—वायु के सखा—वह्नि—वरुण—यादवों के पति—नैर्ऋत—नादन—अनादि—रक्षपश और कुबेर हैं ॥२१-२२॥ कुबेर—वित्त वाले—वेण स्वरूप—वसुपाल—और विलासों के करने वाले हैं। अमृत के स्रवण करने वाले—सोम—सोमरस को पीने वाले—सुधी हैं ॥२३॥ सम्पूर्ण औषधियों के करने वाले, श्री सम्पन्न निशाकर (चन्द्रमा) और दिवाकर (सूर्य) हैं। विष के शत्रु, विष के हरण करने

वाले, विष (गरल) को कण्ठ में धारण करने वाले—गिरि हैं ॥२४॥ नीलकण्ठ—वृष वाले—रुद्र—भाल में चन्द्र को धारण करने वाले, उमा के स्वामी—शिव—शान्त स्वरूप—वन में रहने वाले—वीर—ध्यान में मग्न—मानयुक्त और दूसरों को मान के देने वाले हैं ॥२५॥ कृमि कीट—मृगों के व्याध—पशुओं के हनन करने वाले—मृग के चिह्न वाले (चन्द्रमा)—वटुक वीर स्वरूप भैरव (शिव के प्रधान गण) बाल—कपाल धारी और दण्ड के चिह्न वाले हैं ॥२६॥ श्मशान में निवास करने वाले—मांस का भक्षण करने वाले—दुष्टों के नाशक—वीरों के अन्त करने वाले हैं। योगियों को भाग्यदाता—योगी—ध्यान में स्थित और ध्यान धारण हैं ॥२७॥

सेनानीः सेनदः स्कन्दो महाकालो गणाधिपः।
आदिदेवो गणपतिर्विघ्नहा विघ्ननाशनः ॥२८
ऋद्धिसिद्धिप्रदो दन्ती भालचन्द्रो गजाननः।
नृसिंह उग्रदंष्ट्रश्च नखी दानवनाशकृत् ॥२९
प्रह्लादपोषकर्ता च सर्वदैत्यजनेश्वरः।
शलभः सागरः साक्षी कल्पद्रुमविकल्पकः ॥३०
हेमदो हेमभागी च हिमकर्ता हिमाचलः।
भूधरो भूमिदो मेरुः कैलासशिखरो गिरिः ॥३१
लोकालोकान्तरो लोकी विलोकी भुवनेश्वरः।
दिक्पालो दिक्पतिर्दिव्यो दिव्यकायो जितेन्द्रियः ॥ ३२
विरूपो रूपवान्रागी नृत्यगीतविशारदः।
हाहा हूहूश्चित्ररथो देवर्षिर्नारदः सखा ॥३३
विश्वेदेवाः साध्यदेवा घृताचीश्च चलोऽचलः।
कपिलो जल्पको वादी दत्तो हैहय संघराट् ॥३४

सेनानी (सेना के अधिपति कार्तिकेय)—सेना देने वाले, स्कन्द, महाकाल, गणों के स्वामी, आदि देव, गणपति (गणेश), विघ्नों के हनन करने वाले, विघ्नों के नाशक हैं ॥२८॥ ऋद्धियों और सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदान करने वाले, दन्ती (एक दाँतधारी), मस्तक में चन्द्रमा को धारण

करने वाले, गज के समान मुख-से संयुत, नृसिंह, उग्र दाढ़ों वाले, नखों से (विशाल एवं तीक्ष्ण नखों वाले) युक्त, दानवों के विनाशकारी हैं ॥२९॥ प्रह्लाद के पोषण करने वाले, समस्त दैत्यजनों के स्वामी, शरभ, सागर, साक्षी कल्प वृक्ष के विकल्प वाले अर्थात् समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले कल्पद्रुम के ही सदृश हैं ॥३०॥ हेम के दाता, हेम के भागी, हिम के करने वाले, हिमवान् पर्वत, भूधर, भूमि के दाता, सुमेरु, कैलाश का शिखर, गिरि हैं ॥३१॥ लोकालोक पर्वत के अन्तर, लोकी, विलोकन करने वाला, भुवनों के स्वामी, दिशाओं के पालक, दिशाओं के पति, परम उत्तम, उत्तम आकृति तथा काया वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं ॥३२॥ विगत रूप वाले, परम सुन्दर रूप से संयुत, राग युक्त, नृत्य और गीतों में महान् मनीषी हैं। हाहा हूहू, चित्ररथ, देवर्षि नारद और सदा हैं ॥३३॥ विश्वेदेवा, साध्य देव, धूनाशी, चल, अचल (वह जो चलायमान न हो), कपिल, जल्पक, नादी, दत्त, हैहय और यदुराट् हैं ॥३४॥

वसिष्ठो वामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरो भृगुः।
जामदग्न्योमहावीरः क्षत्रियान्तकरोह्यपि ॥३५
हिरण्यकशिपुश्चैवहिरण्याक्षोहरप्रियः।
अगस्तिः पुलहोदक्षः पौलस्त्योरावणोघटः ॥३६
देवारिस्तापसस्तापीविभीषणहरिप्रियः।
तेजस्वीजिदरस्तेजी ईशो राजपतिः प्रभुः ॥३७
दाशरथो राघवोरामोरघुवंशविवर्धनः।
सीतापतिःपति श्रीमान्ब्रह्मण्योभक्त वत्सलः ॥३८
सन्नद्धः कवची खड्गी चीरवासा दिगम्बरः।
किरीटी कुण्डली चापी शङ्खचक्री गदाधरः ॥३९
कौशल्यानन्दनोदारो भूमिशायी गुहप्रिय।
सौमित्री भरतो बालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः ॥४०
लक्ष्मणः परवीरघ्नः स्त्रीसहायः कपीश्वरः।
हनुमानृक्षराजश्च सुग्रीवो वालिनाशनः ॥४१

दूतप्रियो दूतकारी ह्यङ्गदो गदतां वरः ।
मनध्वंसी वनी वेगी वानरध्वजलांगुली ॥४२

वसिष्ठ, वामदेव और सप्तर्षियों में परम श्रेष्ठ भृगु हैं। जामदग्न्य, महावीर और क्षत्रियों का अन्त करने वाले ऋषि परशुराम हैं ॥३५॥ हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष-हर का प्रिय, अगस्ति, पुलह, दक्ष, पौलस्त्य, रावण, वर हैं ॥३६॥ देवारि, तापस, तापी, विभीषण और हरि के प्रिय, तेजयुक्त, तेज को देने वाले, तेजी, ईश, राजपति और प्रभु हैं ॥३७॥ दशरथ के पुत्र, राघव, राम, रघु के वंश की वृद्धि करने वाले, सीता के पति, स्वामी, श्रीमान्, ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले), भक्तों पर प्रेम करने वाले हैं ॥३८॥ सन्नद्ध, कवच धारी, खड्गयुक्त, चीरों के वस्त्रों वाले, दिगम्बर (नग्न), किरीट पहनने वाले, कुण्डलों को धारण करने वाले, चाप से युक्त, शङ्ख और सुदर्शन चक्र के धारी, गदा को धारण करने वाले हैं ॥३९॥ कौशल्या को आनन्द देने वाले पुत्र, उदार, भूमि पर शयन करने वाले, गुह के प्यारे, सुमित्रा पुत्र, भरत, बाल शत्रुघ्न और भरत के ज्येष्ठ भाई हैं ॥४०॥ लक्ष्मण, दूसरों के वीरों का हनन करने वाले, स्त्री की सहायता से युक्त, कपियों में ईश्वर, हनुमान्, रीछों का राजा जाम्बवान्, सुग्रीव और बालि का वध करने वाले हैं ॥४१॥ दूत प्रिय, दूतों के करने वाले, अङ्गद, बालने वालों में श्रेष्ठ, वनों का विध्वंस करने वाले, वनी, वेग और वानरों के ध्वज का लांगुली हैं ॥४२॥

रविदंष्ट्री च लङ्काहा हाहाकारो वरप्रदः ।
भवसेतुर्महासेतुर्बद्धसेतू रमेश्वरः ॥४३
जानकीवल्लभः कामी किरीटी कुण्डली खगी ।
पुण्डरीक विशालाक्षो महाबाहुर्घनाकृतिः ॥४४
चञ्चलश्चपलः कामी वामो वामाङ्गवत्सलः ।
स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्त्रैणः स्त्रियो वामाङ्गवासकः ॥४५
जितवैरी जितकामो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
शान्तो दान्तो दयारामो ह्येकस्त्री सतधारकः ॥४६

सात्त्विकः सत्त्वसंस्थानो मदहा क्रोधहा खरः ।
बहुराक्षससम्वीतः सर्वराक्षसनाशकृत् ॥४७
रावणारी रणक्षुद्रदशमस्तकच्छेदकः ।
राज्यकारी यज्ञकारो दाता भोक्ता तपोधनः ॥ ४८
अयोध्याधिपतिः कान्तो वैकुण्ठोऽकुण्ठविग्रहः ।
सत्यव्रतो व्रती शूरस्तपी सत्यफलप्रदः ॥४९

रवि के द्वारा बाधा, लङ्का का हनन कर्त्ता, हा हा कार, वरदान के देने वाले, इस संसार से पार होने का सेतु, महान् सेतु और रमा (लक्ष्मी) के ईश्वर हैं ॥४३॥ जानकी के प्रिय, कामी, किरीट धारी, कुण्डल पहिनने वाले, खगी अर्थात् गरुड़ पर सवारी करने वाले, पुण्डरीक के सदृश विशाल नेत्रों से युक्त, बड़ी भुजाओं वाले, मेघ के समान आकार वाले हैं ॥४४॥ परम चपल, चपन, काम युक्त, कामी वाले, कामाक्षी के अंगों पर प्रेम करने वाले, स्त्रियों के प्रिय, स्त्री परायण, स्त्रियों में ही रमे रहने वाले, स्त्री के काम अङ्ग में काम देने वाले हैं ॥४५॥ वैरियों को जीतने वाले, काम पर विजयी, क्रोध को पराजित करने वाले, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, परम शान्त, दमनशील, दयाराम और एक ही स्त्री के व्रत को धारण करने वाले हैं ॥४६॥ परम सात्त्विक, सत्व के संस्थान वाले, मद के हर्त्ता, क्रोध के हरण कर्त्ता, खर, बहुत से राक्षसों से सम्वीत और समस्त राक्षसों के नाश करने वाले हैं ॥४७॥ रावण के शत्रु, रण में क्षुद्र दश माथों के छेदन करने वाले, राज्य करने वाले, यज्ञों के कर्त्ता, दान देने वाले, भोग करने वाले और तप को ही धन मानने वाले हैं ॥४८॥ अयोध्या के स्वामी, कान्त (सुन्दर), वैकुण्ठ, अकुण्ठित विग्रह वाले, सत्य के व्रत में समास्थित, व्रतधारी, शूर, तप करने वाले सत्य फल के दाता हैं ॥४९॥

सर्वसाक्षी स्वर्गश्च सर्वप्राणहरोऽव्ययः ।
प्राणश्चापाप्यपानश्च व्यानोदानः समानकः ॥५०
नागः कृकलः कूर्मश्च देवदत्तो धनञ्जयः ।
सर्वप्राणविदो व्यापी योगधारणधारकः ॥५१

तत्त्वविस्तत्त्वदस्तत्त्वो सर्वतत्त्वविशारदः ।
ध्यानस्थो ध्यानशाली च मनस्वी योगवित्तमः ॥५२
ब्रह्मज्ञो ब्रह्मदोब्रह्मज्ञाताब्रह्मसम्भव ।
अध्यात्मविद्विदोदीपो ज्योतिरूपोनिरञ्जनः ॥५३
ज्ञानदोऽज्ञानहा ज्ञानी गुरुः शिष्योपदेशकः ।
सुशिष्यः शिक्षितः शाली शिष्यशिक्षाविशारद ॥५४
मन्त्रदो मन्त्रहा मन्त्री तन्त्री तन्त्रजनप्रिय. ।
सन्मन्त्रो मन्त्रविन्मन्त्री मन्त्रमन्त्रैकमञ्जन. ॥५५
मारणो मोहनो मोही स्तम्भोच्चाटनकृत्खलः ।
बहुमायो विमायश्च महामायाविमोहकः ॥५६
सहस्राक्षः सहस्रपात्सहस्रवदनोज्ज्वलः ।
सहस्रनामानन्ताक्षःसहस्रबाहुर्नमोऽस्तुते ॥५७

सबके द्रष्टा—सबत्र गमनशील—सबके प्राणों का हरण करने वाले—अव्यय (नाश रहित)—प्राण—अपान—व्यान—उदान और समान हैं। ये शरीर में रहने वाली पाँच प्रकार की वायु है जो जीवन के आधार हैं ॥५०॥ नाग—कृकल—कूर्म—देवदत्त—धनञ्जय—(ये पाँच अन्य वायु हैं)—सब के प्राणों के ज्ञाता—व्यापी—योग के धारण करने वालो के धारक है ॥५१॥ तत्वो का ज्ञाता, तत्व प्रदान करने वाला, तत्व से युक्त सब तत्वों के विशारद, ध्यान में स्थित, ध्यानशाली, मन को नियन्त्रित रखने वाले और परम श्रेष्ठ योग के वेत्ता हैं ॥५२॥ ब्रह्म के ज्ञाता, ब्रह्म ज्ञान के दाता, ब्रह्म को पहिचानने वाले, ब्रह्म से सम्भव, अध्यात्म वेत्ताओं के ज्ञाता, दीप स्वरूप, ज्योति रूप और निरञ्जन हैं ॥५३॥ ज्ञान के दाता, अज्ञान के हर्ता, ज्ञान से युक्त, अज्ञान के नाशक, शिष्यों को उपदेश देने वाले, सुशिष्य, शिक्षित, शोभा युक्त और शिष्यों की शिक्षा के विशारद (महा पण्डित) हैं ॥५४॥ मन्त्रों के दाता, मन्त्रों के हनन करने वाले, मन्त्रों से युक्त, तन्त्र युक्त, तन्त्र जनों के प्रिय, सत मन्त्रों वाले, मन्त्रों के वेत्ता, मन्त्री और मन्त्र तथा मन्त्रो के एक ही मञ्जन करने

वाले हैं ॥५५॥ मारण करने वाले, मोहन करने वाले, मोह युक्त, स्तम्भन और उच्चाटन करने वाले, खल, बहुत माया से समन्वित, बिना माया वाले और महा माया को मोह करने वाले हैं ॥५६॥ सहस्र नेत्रों वाले, सहस्र चरणों से युक्त, सहस्र मुख वाले, अतीव उज्ज्वल, सहस्र नामों वाले, अनन्त नेत्रों से युक्त, और सहस्र बाहुओं से संयुत हैं ऐसे आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥५७॥

विष्णोर्नामसहस्रं वै पुराणं वेदसम्मतम् ।
पठितव्यं सदा भक्तैः सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥५८
इति स्तवाभियुक्तानां देवानांतत्र वैद्विज ।
प्रत्यक्षं प्राह भगवान्वरदो वरदार्चितः ॥५९
व्रियतां भोः सुराः ! सर्वेवरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ।
तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि नाऽत्रकार्या विचारणा ॥६०
वरदोऽसि यदा विष्णो वरमेतं ददस्व नः ।
अदितेर्गर्भसम्भूत शक्रस्याऽप्यनुजोभव ॥६१
इति सम्प्रार्थितो देवैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः ।
तथेत्युक्त्वा च भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥६२
ततः कतिपये काले भगवानदितिनन्दनः ।
विष्णुरूपधरोऽनन्तोवामनत्वात्ववामनः ॥६३

यह भगवान् विष्णु के नामों का सहस्र पुराण है तथा वेदों के द्वारा सम्मत है । इस सदा ही भक्तों को पढ़ना चाहिए । यह समङ्गल से रहित सभी प्रकार के मङ्गल करने वाला है ॥५८॥ हे द्विज ! इस स्तव से युक्त देवों को वहीं पर वरों के द्वारा समर्चित वरदान देने वाले भगवान ने प्रत्यक्ष रूप से कहा था ॥५९॥ श्री भगवान् ने कहा—हे सुर गण ! आप सब हमसे अभिवाञ्छित वरदान माँग लो । यह सभी मैं आपको दे दूँगा । इसमें कुछ भी विचारणा मत करो अर्थात् वर मिलेगा या नहीं—ऐसा सन्देह मत करो ॥६०॥ देवगण ने कहा—हे विष्णो ! अब वरदान देने की ही कृपा करते हैं तो हमको यह वरदान प्रदान कीजिए कि आप स्वयं अदिति के गर्भ से समुत्पन्न होकर इन्द्र के छोटे भाई हो जाइये

॥६१॥ देवों के द्वारा इस प्रकार से सम्प्रार्थित होते हुए जिन देवों में ब्रह्मा और इन्द्र पुरोगामी थे। तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होवे—यह कहकर भगवान् विष्णु वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥६२॥ इसके अनन्तर कुछ काल में भगवान विष्णु रूपधारी अदिति के पुत्र हुए थे। जो अनन्त थे तथा बौना होने से वामन नामधारी हुए थे ॥६३॥

बलिर्वैरोचनो व्यास वाजिमेधशतेन च।
ईजे द्विजवरश्रेष्ठ! इन्द्राराज्यजिहीर्षया ॥६४
ऋत्विजं कश्यपं कृत्वा होतारं भृगुसत्तमम्।
ब्रह्मा तत्राभवच्चैवस्वयमेवपितामहः ॥६५
अध्वर्युं भगवानग्निर्बभूव मुनिसत्तमः।
उद्गाता नारदश्चैव वसिष्ठश्च सभासदः ॥६६
ये यत्र विहिताःसर्वेतत्रतत्रमुनीश्वराः।
बलिस्तत्राऽभवद्व्यास दीक्षितोराजसत्तम. ॥६७
एव प्रवर्तमानेषु यज्ञेषु मुनिसत्तम।
हूयतां भुज्यतां चैव दीयतां धीयतां तथा ॥६८
इति वाचः शुभास्तत्र श्रूयन्ते च द्विजोत्तम!।
तस्मिन्काले सुचित्रेषु वामनोऽगाच्छुचिस्मितः ॥६९

हे व्यास! विरोचन का पुत्र बलि सौ वाजिमेध यज्ञों के द्वारा यजन कर रहा था। हे द्विज वरों में श्रेष्ठ! इस बलि ने यह यजन इन्द्र के राज्य के हरण करने की ही इच्छा से किया था ॥६४॥ उस बलि ने यज्ञ में कश्यप को तो ऋत्विज नियुक्त किया था और भृगु श्रेष्ठ को होता बनाया था तथा पितामह ब्रह्माजी ही स्वयं उस यज्ञ में ब्रह्मा हुए थे ॥६५॥ भगवान अग्नि उसमें अध्वर्यु थे जो कि परम श्रेष्ठ मुनि थे। नारद उद्गाता थे और वसिष्ठ सभासद थे ॥६६॥ जो जहाँ पर विहित किए थे वहीं-वहीं पर सब मुनीश्वर अपना २ कर्म कर रहे थे। वहाँ यज्ञ में हे व्यास! श्रेष्ठतम राजा बलि दीक्षित हुआ था ॥६७॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार से यज्ञों के प्रवर्त्तमान होने पर "हूयतां, भुज्यतां, दीयतां,

धीमतां" अर्थात् आहुतियाँ डाला या हवन करो, भोजन कराओ, दान दो, धारण करो—इस प्रकार की वाणियाँ जो परम शुभ थीं वहाँ पर सुनाई दे रही थीं। हे द्विजोत्तम! उसी समय में उन सुचित्रित यज्ञों में सुविस्मित वाले वामन आ गये थे ॥६८-६९॥

पठमानो मुखाग्रेण चातुर्वैदिकमन्त्रकान्।
द्वारे तिष्ठति राजेन्द्र वामनो द्विजसत्तमः ॥७०
प्रतिहारेण वै व्यास! सर्वं राज्ञे निवेदितम्।
उत्थाय च महाराजो बलिर्विरोचनिस्तदा ॥७१
अर्घ्यमादाय तत्रैव जगाम स्वैः सभासदैः।
पूजयित्वा यथान्यायं वामनं लोकभावनम् ॥७२
आनयित्वा सभामध्ये दत्त्वाऽऽसनपरिग्रहम्।
कुतस्त्वागमनं ब्रह्मन्किन्तेऽभीष्टं ददामि वै ॥७३
राजराजासिता सृष्टिर्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
ततोऽहमागतो भूमन्यज्ञं चैव दिदृक्षया ॥७४
वरुणस्यच यज्ञो वै दृष्टो मे वै पुराऽनघ!।
यज्ञाधिपस्तेन नूनं न च यज्ञं वै दृष्टवानहम् ॥७५
धर्मस्यापि च यज्ञो मे प्रजापतेश्च सत्तम।
वायोर्यज्ञो महाराज दृष्टो मे विधिपूर्वकः ॥७६
राजर्षीणां च ये यज्ञा दृष्टास्तेऽपि महाव्रत!।
यादृशं वै महाराज यज्ञं ते दृष्टवानहम् ॥७७
ईदृशो राजराजेन्द्र न भूतो न भविष्यति।
तस्मादिहागतो राजन्! याचनार्थं नराधिप ॥७८

अपने चारों वेदों के मन्त्रों का मुख से पढ़ते हुए एक परम श्रेष्ठ द्विज, प्रहरी ने कहा—हे राजेन्द्र! द्वार पर खड़ा हुआ है ॥७०॥ हे व्यास! द्वारपालों ने सभी कुछ वामन के विषय में राजा बलि से निवेदन कर दिया था। उसी समय में विरोचन का पुत्र महाराज बलि ने उठकर अर्घ्य लेकर अपने सभासदों के साथ वे सबके सब वहाँ पर गये थे। यथाविधि पूजा करके अर्थात् लोकों पर कृपा करने वाले वामन देव की

अर्चना की थी ॥७१-७२॥ फिर उन वामन देव को सभा के मध्य में लिवाकर ले आये और वामन आदि निवेदित किया था। बलि ने पूछा—हे ब्रह्मन्! आपका आगमन कहाँ से हुआ है? आपका काम अभीष्ट है जिसे मैं आपकी सेवा मे समर्पित करूं? ॥७३॥ वामन देव ने कहा—हे राज राज! हे भूमन्! यह समस्त सृष्टि परमेष्ठी ब्रह्मा की है वहीं से मैं इस यज्ञ के देखने की इच्छा से समागत हुआ हूँ ॥७४॥ हे अनघ! मैंने पहिले वरुण का यज्ञ देखा था और यज्ञों के अधिपति का भी निश्चय ही मैंने यज्ञ का दर्शन किया था ॥७५॥ हे सत्तम! मैंने धर्म्म का और प्रजापति का भी यज्ञ देखा था किन्तु हे राजन्! मैंने जैसा यह आपका यज्ञ देखा है। हे महाराज राज राजेन्द्र! इस प्रकार का यज्ञ तो न कभी पहिले हुआ और न होगा। हे राजन्! हे अनघ! इसी कारण से आपसे कुछ याचना करने के ही लिए मैं यहाँ पर आया हूँ ॥७६-७८॥

याचस्व त्वं द्विजश्रेष्ठ! किं तेऽभीष्टं ददाम्यहम् । ७९
देहि मे राजराजेन्द्र! पदानि त्रीणि मेदिनीम् ।
वासार्थं रोचते तेऽद्य यदि पार्थिवसत्तम! ॥८०
किमिदं याचितं विप्र! स्वल्पं ते नहि ते परम् ।
गजवाजिरथा: क्षोणी रत्नानि विविधानि च ॥८१
दासदासीवं रारोहा:स्त्रियोनानावसूनिच ।
द्रव्याणिवाससीशुभ्रेयाचस्वत्वंद्विजोत्तम ॥
पात्रोऽसि कृतकृत्योऽसि वेदवेदाङ्गपारग! ॥८२
न मे किञ्चित्स्पृहा राजन्विद्यते भुवि मानद ।।
देहि त्वं त्रिपदां भूमिं यदि-श्रद्धाऽस्ति तेऽधुना ॥८३
इत्युक्ते वामनेनाथ वलिर्वचनमब्रवीत् ।
गृहाण त्रिपदां भूमिं वासस्यार्थं हि मानद ॥८४

राजा बलि ने कहा—श्रेष्ठ द्विज! आप याचना कीजिए। मैं आपके अभीष्ट पदार्थ को दूंगा ॥७९॥ श्री वामन देव ने कहा—हे राज राजेन्द्र! आप मुझे केवल तीन पद भूमि, दीजिए जो मेरे निवास के लिए पर्याप्त

है। हे राजाओं में परम श्रेष्ठ ! यदि यह आपको रुचिकर हो तो आज ही दे दीजिए ॥८०॥ बलि ने निवेदन किया—हे विप्र ! आपने बहुत थोड़ा सा यह क्या माँगा है। यह आपके लिए देना अधिक सुन्दर नहीं है। हे द्विजोत्तम ! मेरे समीप में दान देने के लिए आप जैसे श्रेष्ठ महानुभाव को अनेक पदार्थ हैं। गज, अश्व, रथ, भूमि, विविध प्रकार के रत्न दास, दासी, परम सुन्दरी नारियाँ, नाना भाँति के धन, द्रव्य, शुभ वस्त्र हैं। आप भी इनकी याचना कीजिए। आप तो समस्त वेदों और वेदों के अंग शास्त्रों के पारगामी मनीषी हैं। आप सभी प्रकार के ज्ञान के समुचित पात्र हैं और कृतकृत्य हैं ॥८१-८२॥ श्री वामनदेव ने कहा—हे मान के देने वाले ! हे राजेन्द्र ! इस भूमण्डल में मुझे किसी भी पदार्थ के प्राप्त करने की स्पृहा नहीं है। यदि इस समय में आपकी श्रद्धा हो तो मुझे केवल तीन पद परिमित भूमि ही दीजिए ॥८३॥ वामन देव के द्वारा ऐसा वचन करने पर बलि ने यह वचन कहा था—हे मानद ! अपने निवास के लिए तीन पद भूमि ग्रहण कीजिए ॥८ ॥

इत्युक्त्वासपराजर्षिर्ददौभूमिंद्विजाय वै ।
वारितोऽपितदाव्यासभृगुणादैवनोदितः ॥८५
दत्तमात्रे जलेतस्यो ब्रह्माण्डं चाक्रमद्धरिः ।
सार्धपादद्वय जाता सशैलवनकानना ॥८६
वसुधेयं तदा व्यास! बलिना याचितं वसु ।
जित्वाऽसुरगणान्सर्वान्राज्यं दत्वा शतक्रतोः ॥८७
पश्चात्कुमुद्वती प्राप्तो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥८८
ऋद्धिसिद्धयाश्रमे पुण्ये तीर्थं कृत्वाऽश्रमसंभवम् ।
निवासमकरोद्धयान तत्रैव स सुरोत्तम ॥८९

यह कहकर उस राजर्षि ने द्विज को भूमि के दान का तत्पण कर दिया था। हे व्यास ! उस समय में देव के द्वारा प्रेरित हुआ राजा भृगु (शुक्राचार्य) के द्वारा निवारित भी किया गया था कि भूमि के दान का वचन मत दो। संकल्प के जल के देते ही श्री हरि ने तुरन्त ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आक्रमण कर दिया था। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिसमें

शैल, वन और कानन सभी ये ढाई पद में ही माप लिया गया था ॥८५-८६॥ उस समय में हे व्यास ! राजा बलि के द्वारा समर्पित सम्पूर्ण वैभव जीतकर तथा सब असुरों को पराजित करके इन्द्र को सम्पूर्ण राज्य दे दिया था ॥८७॥ इसके पश्चात् वामन के स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु कुमुद्वती में प्राप्त हो गये थे ॥८८॥ उस ऋद्धि और सिद्धियों के परम पुण्यमय आश्रम में आत्म सम्भव अर्थात् अपने द्वारा उत्पन्न तीर्थ बनाकर हे व्यास ! सुरोत्तम वामन देव ने वहाँ पर अपना निवास किया था ॥८९॥

वामनेन कृतं तीर्थं वामनं कुण्डमुच्यते ।
भाद्रेमासिसितेपक्षेद्वादशा श्रवणान्विता ॥९०
वामनद्वादशी प्रोक्ता हत्याकोटिविनाशिनी ।
अस्मिंस्तीर्थे नरा स्नात्वा ह्यपोष्यैकादशीं यदा ॥९१
रात्रौ जागरणं कुर्याद्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
द्वादश्यां वं विशेषेण महादानानिकुर्वते ॥९२
नतेषांदुर्लभं किञ्चित्त्रिषुलोकेषु विद्यते ।
एवं वं वामन तीर्थं पुरा प्रोक्तं महर्षिणा ॥९३
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ।
प्राप्यते तेन सर्वं हि नाऽत्र कार्याविचारणा ॥९४

वामन देव के द्वारा किया हुआ तीर्थ वामन कुण्ड कहा जाता है। भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष में श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि वामन द्वादशी कही गई है। यह करोड़ों हत्या के पापों का विनाश करने वाली है। इस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके जब एकादशी का उपवास करे और रात्रि में जागरण करे 'तो वह ब्रह्म' भूय कल्पित होता है अर्थात् ब्रह्म के ही समान हो जाया करता है। इस द्वादशी में विशेष रूप से महान् दान करे उस पुरुष के लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहा करता है। इस प्रकार से पहिले महर्षि ने वामन तीर्थ का वर्णन किया था। यह समस्त पापों के हरण करने वाला पुण्यमय सब कामनाओं

के वरों के प्रदान करने वाला है उस मनुष्य के द्वारा सभी कुछ प्राप्त कर लिया जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥९०-९४॥

७०—कुटुम्बेश्वरमाहात्म्यकथन

शृणुव्यासपरं तीर्थं भुविविख्यातमुत्तमम् ।
कुटुम्बेश्वरेतिविख्यातो नाम्नाचत्रमहेश्वरः ॥१
तस्यतीर्थं वरं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
यस्मिंस्तीर्थे नरःस्नात्वा कुटुम्बीजायतेध्रुवम् ॥२
कुटुम्बार्थं तपस्तेपे पुरा दक्षः प्रजापतिः ।
नारदेन पुरा व्यास पुत्रषष्ठिर्विनाशिता ॥३
प्रजाकामः स धर्मात्मा सुचिरं व्रतमाचरत् ।
सपत्नीको महातेजा निराहारो जितेन्द्रियः ॥४
अस्मिंस्तीर्थे शुचिः स्नातो जपन्ब्रह्म सनातनम् ।
वर्षाणामयुतं व्यास! तपस्तेपे सुदारुणम् ॥५
तेन तीर्थप्रसादेन लभेत्स बहुलाप्रजाम् ।
प्रजापतिरितिख्यातोजातोदक्षःप्रतापवान् ॥६
ब्रह्माऽपि तत्र वै पश्चात्तप कृत्वा सुदुष्करम् ।
निष्कलं कमलं रूपं प्राप्नवांस्तत्क्षणाद्विधिः ॥७

महामहर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! भू मण्डल में परमप्रसिद्ध उत्तम और परम प्रधान तीर्थ के विषय में श्रवण करो। यह तीर्थ कुटुम्बेश्वर विख्यात है और नाम से महेश्वर है ॥१॥ उसका यह तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है जो समस्त तीर्थों के फलों का प्रदान करने वाला है जिस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके निश्चय ही कुटुम्बी हो जाया करता है ॥२॥ पहिले प्रजापति दक्ष ने कुटुम्ब के लिए तपस्या की थी। हे व्यास ! नारद ने पहिले साठ पुत्र विनाशित कर दिये थे ॥३॥ प्रजा की कामना वाले उस धर्मात्मा ने बहुत काल पर्यन्त व्रत का समाचरण किया था और अपनी पत्नी को साथ में लेकर, इन्द्रियों को जीतकर और आहार का

त्याग करके ही महान तेज वाले ने यह व्रत लिया था ॥४॥ हे व्यास ! इस तीर्थ मे शुचि होकर स्नान किया था और सनातन ब्रह्म का जप करते हुए दश हजार वर्ष तक परम दारुण तपश्चर्या की थी ॥५॥ उस तीर्थ के प्रभाव से हे व्यास ! उसने बहुत-सी प्रजाओं की प्राप्ति की थी। तभी से वह प्रजापति विख्यात हो गया था और दक्ष परम प्रताप वाला हो गया था ॥६॥ वहाँ पर पीछे ब्रह्माजी ने भी सुदुष्कर तप किया था। विधाता ने इसी समय मे निष्कल कमल का रूप प्राप्त कर लिया था ॥७॥

महादेवोऽपि तत्रैव प्राप्तवान्ब्रह्मणः पदम् ।
चतुर्मुखधरं लिङ्गं दृश्यतेऽद्यापिसत्तम ॥८
भद्रपीठधरा देवी भद्रकालीति विश्रुता ।
तत्रैव च सदा व्यास क्रीडतिस्म धृतव्रता ॥९
द्वारे तिष्ठति तत्रैव भैरवः क्षेत्रपालकः ।
पादेन खञ्जतांयातः पुरा दैत्यवरार्दितः ॥१०
पुत्रवत्पालितो देव्या सदा तिष्ठति तत्स्थले ।
ये ते देवगणाः सर्वे तस्मिंस्तीर्थे प्रतिष्ठिताः ॥११
ऋषयोऽपि महाभागाः सदा पर्वणिपर्वणि ।
आयान्ति चैव सन्ध्यायं बहुपुत्रप्रदेसरे ॥१२
अस्मिंस्तीर्थे सदाचाराःस्नानं कुर्वन्ति येनराः ।
नतेषांदुर्लभंकिञ्चिज्जायतेजन्मजन्मनि ॥१३
महाबाधासु घोरासु महामारीषु तत्परैः ।
हवनं क्रियते नित्यं सर्षपं राजिकैर्यवैः ॥१४

महादेव ने भी यही पर ब्रह्म के पद को प्राप्त किया । हे सत्तम ! आज भी चार मुखों का धारण करने वाला लिंग दिखलाई दिया करता है ॥८॥ भद्र पीठ धरा देवी जो भद्र काली इस नाम से विश्रुत है। हे व्यास ! वहीं पर सदा व्रत धारण करके क्रीड़ा किया करती थी ॥९॥ वहीं पर द्वार पर क्षेत्र का पालन करने वाला भैरव स्थित रहा करता है। पहिले यह दैत्य वर के द्वारा अर्दित होकर एक पैर लँगड़ा हो गया ॥१०॥ देवी ने इसका पुत्र के ही भाँति पालन किया और वह सदा ही

उसके ही स्थल में स्थित रहता है। जो देवगण हैं वे सभी उस तीर्थ में प्रतिष्ठित हैं ॥११॥ ऋषि वृन्द भी महान् भाग वाले सदा ही पर्व—पर्व पर उस बहु पुत्रों को प्रदान करने वाले सर पर सन्ध्या के लिये आया करते हैं ॥१२॥ जो सदाचरण वाले इस तीर्थ में मनुष्य स्नान किया करते हैं उनको प्रति जन्म में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ॥१३॥ महान् घोर बाधाओं में और महामारियों में तत्पर मनुष्य सर्षप (सरसों) यव (जौ) और राजिक (राई) से नित्य हवन किया करते हैं ॥१४॥

वायसैर्विविधैर्भोगैस्तेषां दोषो न जायते ।
दुर्भिक्षे राज्यभ्रंशे च सग्रामे भृशदारुणे ॥१५
पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदि समाहित ।
सर्वं दु खविनिर्मुक्तोजायतेनाऽत्रसंशयः ॥१६
स्नात्वा कुटुम्बके तीर्थे पूजयित्वा महेश्वरम् ।
दान कूष्माण्डकं दद्याद् ब्राह्मणाय तपस्विने ॥१७
सौवर्णमणिमुक्ताभिर्वासोऽलङ्कारसयुतम् ।
धनधान्यसमायुक्तः कुटुम्बी जायतेनरः ॥१८
फाल्गुनेच सिते पक्षे या वै चतुर्दशी भवेत् ।
त्रयोदशीयुता व्यास शिवरात्रिस्तयोच्यते ॥१९
तद्दिने च नरा स्नात्वा रात्रौ जागरणं चरेत् ।
बिल्वोदकेन गन्धेन बहुपुष्पफलैस्तथा ॥२०
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वासोऽलङ्कारकादिभि. ।
पूजयेद्योनरो भक्त्या गिरीशं गणं परम् ॥२१

विविध भोगों के द्वारा तथा वायस से जिनके द्वारा हवन किया जाता है उनको कोई भी दोष नहीं होता है। दुर्भिक्ष (अकाल) में—राज्य के भ्रंश हो जाने पर—संग्राम में और जो अत्यन्त दारुण समय हो उसमें तथा सभी तरह की आपत्ति में समाहित होकर क्षेत्रपाल की पूजा करता है वह सभी दुःखों से छुटकारा पा जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१५-१६॥ कटुम्बक तीर्थ में स्नान करके और महेश्वर का अर्चन

करके किसी तपस्वी ब्राह्मण को कूष्माण्ड (पेठा) का दान देना चाहिए ॥१७॥ वह मनुष्य सुवर्ण-मणि-मुक्ताओं से, वस्त्र और अलङ्कारों से संयुत होकर धन-धान्य से समन्वित होता हुआ कुटुम्बी हो जाया करता है ॥१८॥ फाल्गुन मास के सित पक्ष में जो चतुर्दशी तिथि होवे । हे व्यास ! त्रयोदशी तिथि से जो युक्त होती है वह शिवरात्रि कही जाया करती है ॥१९॥ उस दिन में मनुष्य को स्नान करके रात्रि में जागरण करना चाहिए । बिल्व के पत्र तथा फल—जल—गन्ध—अक्षत से पुष्प और फल-धूप, दीप, नैवेद्य तथा अलङ्कार आदि से जो मनुष्य भक्ति भाव से भगवान् गिरीश का गणों के सहित पूजन करता है ॥२०-२१॥

तस्य पापं क्षयं याति शिवलोके महीयते ।
द्वादशैकादशीपुण्यं लभते भुवि मानवः ॥२२
अश्वमेधफलं तस्य जागरे च क्षणेक्षणे ।
ततस्तु प्रातरुत्थाय स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥२३
कृत्वा तु विधिवद् व्यास ! शिवपूजार्चनं तथा ।
विप्रांश्च भोजयेत्सप्त तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२४
कपिलाना सवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।
वाजपेयसहस्रस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा ॥२५

उस मनुष्य के समस्त पाप क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं और फिर वह पवित्र होकर [illegible] अर्चन के प्रभाव से शिव लोक में जाकर प्रतिष्ठित होता है, भूमण्डल में मनुष्य बारह एकादशियों के उपवास का फल प्राप्त किया करता है । उसके एक-एक क्षण के रात्रि जागरण में अश्वमेध यज्ञ का पुण्य—फल प्राप्त होता है । इसके उपरान्त प्रातः काल में उठकर अर्थात् जागरण का कृत्य समाप्त करके स्नान—दान आदि की क्रिया करे । हे व्यास ! फिर विधि—विधान के सहित भगवान् शिव की अर्चना करनी चाहिए और सात विप्रों को सुन्दर सुस्वादु पदार्थों का भोजन करावे । इसका जो पुण्य—फल होता है उस का भी श्रवण करो ॥२२-२४॥ वत्सों के सहित कपिला गौओं का जो संख्या में चौदह सहस्र हों उनके दान करने का तथा एक सहस्र वाजपेय यज्ञों के करने का पुण्य

–फल यह मानव प्राप्त कर लेता है, इसमें अन्यथा लेश मात्र भी नहीं है ॥२४॥

७१—अखण्डेश्वरमहिमावर्णन

शृणु व्यास महापुण्यतीर्थं परम शोभनम् ।
देवप्रयागमाख्यान सर्वं प पप्रणाशनम् ॥१
देवानां च पर स्थान यत्र तीर्थं पर तप ।
सोमतीर्थोत्तरे भागे प्रयागस्यच दक्षिणे ॥२
शि (क्षि) प्रायाः पूर्वभागे च तत्र तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
तत्र तीर्थे नर स्नात्वा पश्येच्चैव सुरोत्तमम् ॥३
देव माधवमित्याख्य भुवि सर्व फलप्रदम् ।
ददातितस्यदेवेन्द्रोवान्छितार्थं जगत्पतिः ॥४
आनन्दमंरवस्तत्र सर्वदेवनमस्कृत ।
यस्य दर्शन मात्रेण सर्वपापक्षयो भवत् ॥५
न तस्य जायते व्यास ! यातनाभंरवीकदा ।
स्वर्गद्वारे सदा व्यासजायते निर्भय पुमान् ॥६
ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुध हस्तयोः ।
गरानन्देव्यतीपातेकन्याचन्द्रे वृषेरवौ ।
दशाला जायते वत्स ! गङ्गाजन्म परं शुचि ॥७
तद्दिने च नरा स्नात्वा सर्वतीर्थफलं लभेत् ।
अखण्ड न परं तीर्थं शृणु व्यास ! शिव परम् ॥८

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! सबसे अधिक परम महान् पुण्य वाले तीर्थ के विषय में सुनो । यह तीर्थ देव प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है और यह सभी तरह के पापों का विनाश कर देने वाला है ॥१॥ हे परन्तप ! जहाँ पर यह तीर्थ है वह देवों का परम स्थान है । यह सोम तीर्थ के उत्तर भाग में और प्रयाग के दक्षिण में तथा शिप्रा नदी के पूर्व भाग में यहाँ पर ही यह तीर्थ प्रतिष्ठित है । वहाँ उस तीर्थ में मनुष्य

स्नान करके सुरोत्तम प्रभु का दर्शन करे ॥२-३॥ यह देव माधव नाम वाले हैं और भू मण्डल में समस्त फलों के प्रदाता हैं । जगत् के स्वामी देवेन्द्र उस मनुष्य को वाञ्छितार्थ प्रदान किया करते हैं ॥४॥ वहाँ पर आनन्द भैरव देव हैं जिनको सभी देवगण नमस्कार किया करते हैं और जिसके केवल दर्शन से ही सब पापों का क्षय हो जाया करता है ॥५॥ हे व्यास ! उसको कभी भी भैरवी यातना नहीं हुआ करती है । वह मनुष्य निर्भय होकर स्वर्ग के द्वार पर हे व्यास ! सदा पहुँच जाया करता है ॥६॥ ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि में जब कि बुधवार हो और हस्त नक्षत्र हो, गरानन्द में, व्यतीपात में, कन्या के चन्द्रमा में और वृष राशि पर स्थित सूर्य में हे वत्स ! परम पवित्र गङ्गा का जन्म दशाला होता है । उस दिन में मनुष्य वहाँ पर स्नान करके समस्त तीर्थों का पुण्य—फल प्राप्त कर लिया करता है । हे व्यास ! इससे भी पर अखण्ड तीर्थ है उसके विषय में श्रवण करो ॥७-८॥

यस्य श्रवणमात्रेण व्रतभङ्गो न जायते ।
एक एव पुरा ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥९
धर्मधर्मे तिविख्यातः सदाचाररतः शुचिः ।
बहुव्रतधरो दान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥१०
किञ्चिद्दोपप्रसङ्गेन व्रतपूर्तिनं चाभवत् ।
एवं वहुतिथे काले नारदो देवदर्शनः ।.११
तस्य गेहागतो ब्रह्मन्नातिथ्यार्थं महातपाः ।
तदोत्थाय द्विजो नित्यं बहुमानपुरः सरम् ॥१२
सत्कृत्य नारदं भूमन्विधिदृष्टेन कर्मणा ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठ पप्रच्छ मुनिसत्तम ॥१३
भगवन्भवता सर्वं विदितं ज्ञानचक्षुषा ।
अस्माकं च परं दोषः किञ्चिज्जातः पुराऽनघ ॥१४
येन पापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गोऽभवद्ध्रुवम् ।
कारणं ब्रूहि मे नाथ किं दोषोऽत्र तु गण्यते ॥१५

यह ऐसा तीर्थ है जिसके विषय मे श्रवण करने ही से व्रत का भंग नही होना है। हे महान्! पहिले एक ब्रह्म वेत्ताओं मे परम श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसका धर्म शर्मा नाम विख्यात था। वह सदाचार मे रति रखने वाला और परम पवित्र था। बहुत से व्रतों का धारण करने वाला, दमन शील तथा वेदों और वेदो के सम्पूर्ण अग—शास्त्रो का पारगामी विद्वान् था ॥९-१०॥ कुछ दोष के प्रसग होने से इसके व्रत की पूर्ति नही हुई थी। इस प्रकार से बहुत-सा समय व्यतीत हो जाने पर देव दर्शन भगवान् नारदजी हे महान्! उसके घर में आये थे उस समय में महान् तपस्वी वह द्विज उनके आतिथ्य करने के लिये उठा था और नियम ही बहुमान पूर्वक हे श्रीमन्! विधि युक्त कर्म के द्वारा उसने नारदजी का सत्कार किया और हे मुनिसत्तम! उस श्रेष्ठ द्विज ने पूजा करके उनसे पूछा था ॥११-१३॥ हे भगवन्! आपने तो ज्ञान की चक्षु के द्वारा यह सभी जान लिया है। पहिले हे अनघ! हमको कुछ दोष उत्पन्न हो गया। जिस पाप के प्रसंग से व्रत का भग निश्चित रूप से हो गया। हे नाथ! उसका कारण आप बतलाइये कि यहाँ पर क्या दोष गिना जाता है ॥१४-१५॥

श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठ ! भवद्भिश्च पुराकृतम् ।
महाराष्ट्रे सुविख्यातो ब्राह्मणो धनसञ्चकः ॥१६
ब्रह्मदत्तस्तथमो विप्रो वेदब्राह्मणनिन्दकः ।
धनलोभी पराक्रान्तः सर्वधर्मबहिर्मुखः ॥१७
नास्तिको देवतीर्थेषु परद्रव्यापहारकः ।
परस्त्रीषु रतो नित्यं द्यूतवादी च तस्करः ॥१८
एवमायुः परिक्षीणो धनहीनोऽभवत्तदा ।
इतस्ततोऽभ्रमद्भ्रष्टो नदीतीरे सुविह्वलः ॥१९
गतश्चौर्यप्रसङ्गेन यात्रिकैः सह सङ्गतः ।
किञ्चित्कालेषु दुःखीनो मृतिम्प्राप्तो ज्वरादितः ॥२०
नीतः सयमिनो विप्रस्तत्काल यमकिङ्करैः ।
यमराजपुरं प्राप्तो बहुपापकरो द्विजः ॥२१

देवर्षि नारदजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! आपने जो पहिले किया था उसको सुनो। महाराष्ट्र में धन का सञ्चय करने वाला एक सुविख्यात ब्राह्मण था ॥१६॥ ब्रह्मदत्त यह विप्र वेदों और ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला, धन का लोभी, पराक्रान्त, और सभी धर्मों से बहिर्मुख था ॥१७॥ देवों और तीर्थों के विषय में वह परम नास्तिक था और पराये द्रव्य का अपहरण करने वाला था। वह नित्य ही पराई स्त्रियों में रत रहता था-द्यूत वादी और तस्कर था ॥१८॥ इस तरह से वह आयु से क्षीण हो गया था और उस समय में धन से हीन हो गया था। इधर—उधर घूमता रहता था, भ्रष्ट होकर नदी के तट पर सुविह्वल होकर पहुंच गया था ॥१९॥ चोरी के प्रसंग से यात्रियों के साथ सङ्गत होकर गया कुछ काल में रोग से पीड़ित होकर दुःशील वह मृत्यु को प्राप्त हो गया था ॥२०॥ उसी समय में यमराज के दूतों के द्वारा वह विप्र संयमनी (दण्ड विधान का स्थल) पर ले जाया गया। बहुत अधिक पाप कर्म करने वाला वह द्विज यमराज की पुरी में प्राप्त हो गया था ॥२१॥

दृष्टोऽसौ धमराजेन तदा पापपरायण.।
निरीक्ष्य सहसोवाच धर्मपूर्वमिदं वचः ॥२२
शृणुध्वं किंकरा. सर्वे यूयमेकाग्रमानसाः।
अनेनाचरितं सर्वंदुष्कर्मसर्वं किल्बिषम् ॥२३
गोदातीरे मृतः पापी तस्य नः कारणं नहि।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च यानि तीर्थान्यहर्निशम् ॥२४
आयान्ति गौतमीतीरे सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ।
तेषां तु वायुसंस्पर्शो जाताऽस्यान्ते (न्त) कलेवरे ॥२५
तेनपुण्यप्रभावेणनोऽस्माकंकारणं क्वचित्।
माह्योभवद्भिर्नैवायं मुच्यतांभोः पुराः सराः ॥२६
एवं तैर्मोचितो विप्रः पुनर्ब्रह्मगतिं गतः।
तेन पापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गी गतो भुवि ॥२७
ब्रह्मन्केन प्रकारेण सर्वपापक्षयो भवेत्।
किं तप. किं च दानं वा किं तीर्थं व्रतसेवनम् ॥२८

येन पुण्यप्रभावेण व्रत भंगो न जायते ॥२९

उस समय में धर्मराज ने इसको देखा कि यह तो बड़ा ही पाप परायण है। उसको देखकर वह धर्म पूर्वक यह वचन सहसा ही बोल उठे ॥२८॥ हे सब किङ्करो ! सुनिए और सभी एकाग्रमन वाले हो जाइये। हमने सभी पापो से पूर्ण दुष्कर्म किये हैं किन्तु यह महापापी गोदावरी नदी के तीर पर मरा है वहाँ पर हमारा कोई कारण नही है। तीन करोड़ और आधा करोड़ जो भी तीर्थ हैं वे सब रात दिन यहाँ पर गौतमी के तट पर आया करते हैं। बृहस्पति के सिंहराशि पर स्थित होने पर भी वे आते हैं। उन सब तीर्थों की वायु का संस्पर्श इसके शरीर के अन्दर में हुआ है ॥२१-२५॥ उस पुण्य के प्रभाव से हमारा कहीं पर कोई कारण नहीं है। आप लोगों को यह ग्रहण नहीं करना चाहिए। पूर्व में ही आप लोग इसको छोड़ दो ॥२६॥ इस रीति से उन यम के दूतों के द्वारा छोड़ा गया वह विप्र पुनः ब्रह्मपति को प्राप्त हो गया। उस पाप के प्रसंग से वह व्रत भंगी हो गया था ॥२७॥ ब्राह्मण ने कहा— हे महान् ! किस प्रकार से समस्त पापों का क्षय होता है ? क्या तप है, क्या दान है और क्या क्या तीर्थों तथा व्रतों का सेवन है ? जिस पुण्य के प्रभाव से व्रत भंग नहीं होता है ॥२८-२९॥

शृणु द्विजवर श्रेष्ठ ! महाकालवनं स्मृतम् ।
यत्र रुद्रसरः प्रोक्तमृषिणा तत्त्वदर्शिना ॥३०
कोटिकोटिसुतीर्थानि वर्तन्ते द्विजसत्तम ! ।
कोटितीर्थं तिविख्यातं तस्माद् द्विज ! सनातनम् ॥३१
तत्तीर्थस्योत्तरे भागे सुतीर्थं सर्वकामदम् ।
नाम्नाऽप्सरसरः ख्यातमखण्डेश्वरसन्निधौ ॥३२
यस्यदर्शनमात्रेण सर्व यज्ञफलं लभेत् ।
तस्माद्धि सत्वरो वत्सगच्छत्वं तत्समाधिरम् ॥३३
इति तस्य वचः श्रुत्वा सद्विजोऽगात्सुमुद्रताम् ।
स्नात्वाऽप्सरसरे व्यास दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥३४

सद्यः पुण्यवतां लोकान्प्राप्तो वै द्विजसत्तमः ।
एवं व्यास ! महातीर्थमखण्डेश्वरमुत्तमम् ॥३५

श्री नारद जी ने कहा—हे श्रेष्ठ द्विज गण ! सुनिए । महाकाल वन कहा गया है । जहाँ पर तत्त्व दर्शी ऋषि ने रुद्र सर कहा है ॥३०॥ हे द्विज सत्तम ! वहाँ पर करोड़ो-करोड़ों सुन्दर तीर्थ वर्तमान रहते हैं । हे द्विज ! इसी से वह सनातन कोटि तीर्थ नाम से विख्यात है ॥३१॥ उस तीर्थ के उत्तर भाग में समस्त मनोरथों का प्रदान करने वाला सुतीर्थ है । वहाँ पर अखलेश्वर की सन्निधि में अखण्ड सर नाम से एक सर प्रसिद्ध है ॥३२॥ जिसके केवल दर्शन से ही सम्पूर्ण यज्ञों के फलों का लाभ होता है इस कारण से हे वत्स ! तुम वहाँ पर चले जाओ और अधिक विलम्ब मत करो ॥३३॥ इस उसके वचन को सुनकर वह द्विज कुमुद्वती को चला गया था । हे व्यास ! उसने अखण्ड सर में स्नान किया था और महेश्वर देव का दर्शन किया था ॥३४॥ वह द्विजों में श्रेष्ठ तुरन्त ही पुण्य वालों के लोकों को प्राप्त हो गया था । इस प्रकार से अखलेश्वर उत्तम महान् तीर्थ है ॥३५॥

७२—हनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णन

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवंत्रिदशपूजितम् ।
हनुमत्केश्वर नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१
योवैसरसियः स्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम् ।
कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोके समोदते ॥२
हनुमत्केश्वरोयस्तु पृष्टः पूर्वस्त्वयानघ ! ।
कथाकथयहं तस्य व्रतपूर्वांसनातनीम् ॥३
त्रैलोक्यकण्टकः पूर्वो रावणोनामराक्षसः ।
विष्णुनारामरूपेण लंकायांविनिपातितः ॥४
घातयित्वातुतंदुष्टं सीतामादायजानकीम् ।
वानरैस्तहऋक्षैश्च नगरींस्वामुपागतः ॥५

तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिः परिवारितः ।
कथावसानेरामेण ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः ॥६
पृष्टोऽधिकोद्वयोर्वापिशम्भुवासुदेवयोऽस्तुकः ।
तदादाशरथिप्राहअगस्त्योमुनिसत्तमः ॥७

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर देवों के द्वारा समर्चित एक अन्य देव के विषय में वर्णन करूँगा जिनका नाम श्री हनुमत्केश्वर है और वह भुक्ति और मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं। दीप सर में जो स्नान करके श्री हनुमत्केश्वर प्रभु का दर्शन किया करता है वह एक सहस्र करोड़ कल्पों तक वायु लोक में आनन्द का लाभ प्राप्त किया करता है। श्री व्यास देव जी ने कहा—हे अनघ ! आपने जो पहले हनुमत्केश्वर कहा था अब इसकी क्रम पूर्वक सनातनी कथा कहने की कृपा कीजिए। श्री सनत्कुमार जी ने कहा—पहिले होने वाला एक त्रैलोक्य का कण्टक स्वरूप अर्थात् दुःख दायी रावण नाम वाला राक्षस था। उसका विनिपातन श्रीराम रूपधारी भगवान् विष्णु ने किया था। उस दुष्ट रावण का वध करके और जनक महाराज की पुत्री सीता को लेकर समस्त वानर और रीछों के सहित वापिस अपनी नगरी अयोध्या में समागत हो गये थे। वहाँ अपना राज्यासन ग्रहण करके ऋषिगण से समावृत मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य जी से कथा के अवसान में श्रीराम ने पूछा था कि भगवान् शङ्कर और वासुदेव इन दोनों से समुत्पन्न होने वालों में अधिक कौन-सा है। उस समय में मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी ने महाराज दशरथ के पुत्र श्री राम से कहा था ॥१-७॥

अनौपम्योयथादेवो युद्धेशौर्येमहेश्वरः ।
श्रेयोवायुसुतस्तद्वत्सत्यमेतद्ब्रवोमिते ॥८
एवञ्च त्वायहनुमान्यच्छिवेनोपमामम ।
कृतामुनिवरेणेह प्रत्यक्षं राघवस्यहि ॥९
गमिष्येनगरीन्कर्ता लिंगमेकं प्रयाचितुम् ।
राक्षसेन्द्रं महाभाग विभीषणमकल्मषम् ॥१०

ततोगतस्सलंकायां विभीषणमुवाचह ।
देहिमत्वं महाभाग लिंगमेकञ्चशोभनम् ॥११
उक्तञ्चराक्षसेन्द्रेण गृहाणेंतद्यथारुचि ।
एतानिषड्वैलिंगानि रावणस्यार्पितानिवै ॥१२
त्रैलोक्यविजयात्पूर्वं ममभ्रात्रामहात्मना ।
एतेषु यद्भोरुचते लिंग कथय सुव्रत ! ॥१३
तत्प्रयच्छामितेऽद्यैव सत्यमेतत्प्लवंगम ! ।
ततोजग्राहहनुमाल्लिंगंमौक्तिकसन्निभम् ॥१४

युद्ध में और पूरवीरता में महेश्वर देवता के समान अनुपम वायुसुत को समझना चाहिए और यह वायु के ही समान है—यह मैं बिल्कुल सत्य आपको बतला रहा हूं ॥८॥ इसके अनन्तर हनुमान् जी ने इस प्रकार से श्रवण करके कि मेरी शिव प्रभु के साथ उपमा यहाँ पर मुनिवर ने की है जो कि श्री राघव के प्रत्यक्ष में को गयी थी। मैं अब लङ्का नगरी में जाऊंगा और वहाँ पर एक लिङ्ग की याचना करूंगा और वह भी कल्मषों से रहित राक्षसों के स्वामी महान् भाग वाले विभीषण से ही करूंगा। इसके उपरान्त वह लङ्का मे गया था और विभीषण से बोला—हे महाभाग ! मुझे एक परम शोभन लिङ्ग दीजिए। उसी समय मे उस राक्षसों के इन्द्र ने कहा—इसको आप अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण कीजिये। ये छै लिङ्ग हैं जो कि रावण के द्वारा सस्थापित किये गये हैं। मेरे भाई महात्मा ने त्रैलोक्य विजय करने के पूर्व मे ही इन लिङ्गों की सस्थापना की थी। हे सुव्रत ! इन छओ लिंगों मे आप बतलाइये कौन-सा शिव लिङ्ग आपको अभीष्ट है ? हे प्लवङ्गम ! उसी को मैं आज ही आपको दिये देता हू—यह सर्वथा सत्य ही है। इसके पश्चात् हनुमान् जी ने एक जो मौक्तिक के सदृश लिङ्ग था उसी को ग्रहण कर लिया था ॥९-१४॥

यदेतद्दृश्यतेवीर ! तत्पर्प्रच्छममानघ ।
श्रुत्वा हनुमतोत्रावयमयोवाचविभीषणः ॥१५

दत्तमेतन्महावीर लिंगंयत्कृतवानसि ।
थ् यतेहिपुरावृत्तं लिंगमेतद्धनेश्वरः ॥१६
रुद्रभक्त्यासमायुक्तस्त्रिकालमप्यपूजयम् ।
रावणेनयदाबद्धस्तदानीहिधनेश्वरः ॥१७
लिंगस्यास्यप्रभावेण विमुक्तस्समपद्यत ।
प्रसादात्तस्यलिंगस्य धनेशोधनरक्षकः ॥१८
गृहीत्वा तन्महालिंगं स्वस्थो जातोऽथ वानरः ।
गृहीत्वा तु ततो लिंग प्रस्थितो विमलेऽम्बरे ॥१९
सप्तमेदिवसेचैव सम्प्राप्तोऽवन्तिकांपुरीम् ।
सरथाप्यरुद्रसरसस्तीरेस्नानमथाकरोत् ॥२०
महाकालस्यपूजार्थं गमनंप्रत्यचिन्तयत् ।
उद्धर्तुंकामस्तल्लिंगमुद्धर्तुं नचाशाक्तः ॥२१

हे वीर ! जो यह दिखलाई दे रहा है हे अनघ ! उसे ही आप मुझे प्रदान कर दीजिए । इस थी हनुमान् जी के वाक्य का श्रवण करके इसके पश्चात् विभीषण बोला—हे महावीर ! जिस लिंग को आपने पसन्द किया है वही मैंने आपको दे दिया है । इसके विषय में ऐसा पुरावृत्त सुना जाता है कि रुद्र की भक्ति में समायुक्त होकर धनेश्वर ने इसको तीनों कालों में पूजा की थी । रावण के द्वारा जब वह बद्ध हुआ तो उसी समय में धनेश्वर कुबेर इसी लिंग के प्रभाव से विमुक्त हो गया था। इसी लिंग के प्रभाव से धनेश्वर धन का रक्षक हुआ था । उस महालिंग को ग्रहण करके वह वानर हनुमान् परम स्वस्थ हो गये थे । श्री सनत्कुमार जी ने कहा—उस लिंगलिंग को ग्रहण करके विमल अम्बर में उन्होंने प्रस्थान किया था । सातवें दिन में वे अवन्तिका पुरी में सम्प्राप्त हुए थे । रुद्र सर के तट पर उसको संस्थापित करके इसके पश्चात् उन्होंने वहाँ पर स्नान किया था । महाकाल भगवान् की पूजा के लिये उन्होंने गमन के प्रति सोचा था । उस लिंग के उद्धार करने की कामना वाले उन्होंने सभी सोचा था किन्तु वे उद्धार न कर सके थे ॥१५-२१॥

ततो व्यवस्थितो देवः प्राह तं वायुनन्दनम् ।
अस्मिन् क्षेत्रे हनुमंस्त्वं स्वाम्ना स्थाप्य पूजय ॥२२
हनुमत्केश्वरश्चाथ लोकेख्यातं भविष्यति ।
शैलवच्चोन्नतं लिंगं स्थापितं वायुसूनुना ॥२३
शनौपश्येन्नरोयस्तु हनुमत्केश्वरं शिवम् ।
तस्यशत्रुभयंनास्ति सग्रामेजयमाप्नुयात् ॥२४
नचचौरभयंतस्य नदारिद्रयं न दुर्गतिः ।
तैलाभिषेकं यः कुर्याद्धनुमत्केश्वरं शिवम् ॥२५
तस्यरोगाः प्रलीयन्तेग्रहपीडानजायते ।
ये पश्यन्तिनराभक्त्यातेषांमोक्षोभविष्यति ॥२६

इसके अनन्तर व्यवस्थित देव ने उन वायु के पुत्र से कहा था—हे हनुमन् ! इसी क्षेत्र में आप अपने नाम से मेरी स्थापना करके मेरी पूजा करो ॥२२॥ इसके अनन्तर यह हनुमत्केश्वर—इस नाम से लोक मे विख्यात होगे । फिर वायुसुत ने शैल के समान उन्नत उस लिंग की वहाँ स्थापना की थी ॥२३॥ जो मनुष्य शनिवार के दिन में हनुमत्केश्वर भगवान् शिव का दर्शन करता है उसको शत्रु का भय कभी नहीं हुआ करता है और वह संग्राम में जय की प्राप्ति किया करता है । उस पुरुष को कभी भी चोर का भय नहीं होता है—दरिद्रता नहीं हुआ करती है और कभी भी कोई दुर्गति नहीं होती है । जो कोई हनुमत्केश्वर शिव का तैल से अभिषेक किया करता है उसके समस्त रोग प्रलीन हो जाया करते हैं और उसे ग्रहों की पीड़ा कभी नहीं हुआ करती । जो मनुष्य भक्ति की भावना से उनका दर्शन किया करते हैं उनका निश्चय ही मोक्ष हो जाता है ॥२४-२६॥

शङ्करादित्यमाहात्म्यवर्णन

अवन्त्यामङ्कपादाख्ये पश्येद्रामजनार्दनौ ।
ययोर्दर्शनमात्रेण यमलोकं नपश्यति ॥१

कथं तावङ्कपादाख्ये यातावत्रमहामुने ।
नपश्येद्यमलोकं स यद्यपिब्रह्महाभवत् ॥२
भारावतारणार्थाय देवौरामजनार्दनौ ।
अवतीर्णौयदोर्वंशेदिव्यरूपौमहाद्युतौ ॥३
कंसं हत्वाथचाणूरमुग्रसेनं नराधिपम् ।
अभिषिच्यस्त्वयंराज्ये यदुसिंहउवाचतम् ॥४
किंकार्यं तेमयाब्रूहि कर्तव्यन्तेसुतेहते ।
एवमुक्तस्सराजावै उग्रसेनोऽब्रवीदिदम् ॥५
सर्वं सम्पत्स्यतेकृष्ण! भवतोहिनदुर्लभम् ।
विज्ञाताखिलविज्ञानौभवितारावुभावपि ॥६
गच्छेतामुज्जयिन्यावं कृतविद्यौभविष्यथ ।
ततस्मान्दीपनिविप्रं जग्मतूरामकेशवौ ॥७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—अवन्ती में अङ्कपाद नाम वाले स्थान में राम जनार्दन दोनों का दर्शन करना चाहिए। जिनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य फिर यम लोक को नहीं देखा करता है। श्री व्यास देव जी ने कहा—हे महामुने! इस प्रकार अङ्कपाद नाम वाले स्थल में वे दोनों कैसे प्राप्त हुए थे। यद्यपि ब्रह्म हत्यारा ही क्यों न हो तो भी इनके दर्शन का ऐसा प्रभाव होता है कि वह मनुष्य यमलोक का कभी दर्शन नहीं किया करता है ॥१-२॥ सनत्कुमारजी ने कहा—भूमि के बढ़े हुए भार को उतारने के लिए श्रीराम और जनार्दन दोनों देव अवतीर्ण हुए थे और यदु के वंश में महती द्युति से सम्पन्न दिव्य रूप वाले इन्होंने अवतार लिया था। मथुरा के राजा कंस को मारकर और चाणूर का वध करके नराधिप उग्रसेन का अभिषेक किया था और फिर यदुओं में सिंह के समान उन्होंने उनसे कहा था—अब दुष्ट आपके सुत के मार देने पर मुझसे आपका क्या कार्य शेष रह गया है और मुझे अब क्या करना चाहिए—यह बताओ। इस प्रकार से जब उनसे कहा गया तो वह राजा उग्रसेन यह बोला—हे कृष्ण! आपसे सभी कुछ हो जायगा, कुछ भी दुर्लभ नहीं है। सम्पूर्ण विज्ञान के जानने वाले आप दोनों ही होंगे। अब आप दोनों

ही उज्जयिनी पुरी में चले आइये वहाँ पर आप कृतविद्य अर्थात् विद्या प्राप्त करने वाले होंगे। इसके अनन्तर वे दोनों बलराम और केशव सान्दीपनि विप्र के समीप में चले गये थे ॥३-७॥

कण्ठस्थांश्चक्रतुर्वेदानाचारमखिलञ्चतौ ।
सरहस्यं धनुर्वेदं ससंहारं तथैव च ॥८
अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्याततदद्भुतमभूद्द्विज ।
सान्दीपनिरसम्भाव्य तयोः कर्मातिमानुषम् ॥९
विचिन्त्यतौतदामेनेप्राप्तौचन्द्रदिवाकरौ ।
ततःकिञ्चित्सनोवाचस्नातुंतीर्थमथोययौ ॥१०
शिष्यैस्तु सहितो विप्रो महाकालमथाविशत् ।
शिष्यैस्सह प्रविष्टौ द्वौ तदा तौ रामकेशवौ ॥११
वन्द्यमानोमहाकालस्तदाकेशवमब्रवीत् ।
त्वयानाथेनदेवानां मनुष्यत्वेहिविष्णुना ॥१२
मुख्यमानोऽस्मसाधूनामज्ञानाच्चसर्वदा ।
जनपीडाकरायेतु सदा या बलदर्पिता- ॥१३
युवाभ्यांतेहतास्सर्व कंसप्रमुखतोनृपा ।
मुनिसिद्धसुरादीनांस्थितिःकार्यात्वयानघ ॥१४
करिष्यामि तमित्युक्त्वा स नमस्यस्ततो ययौ ।
दृष्ट्वा सान्दीपनि शिष्या ऊचुरेवं दिनेदिने ॥१५

दोनों ने चारों वेदों को कण्ठस्थ कर लिया था और सम्पूर्ण आचार का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। रहस्य से समन्वित एवं संहार के सहित धनुर्वेद को जान लिया था। यह समस्त ज्ञान चौंसठ अहोरात्र में ही प्राप्त कर लिया था। हे द्विज ! यह एक परम अद्भुत ही घटना थी। उन दोनों बालकों का मनुष्य की शक्ति से बाहिर असम्भाव्य कर्म के विषय में सान्दीपनि ने स्वयं बहुत कुछ चिन्तन किया था और वे इन दोनों को चन्द्र और सूर्य ही मानते थे। इसके पश्चात् उसने कुछ भी नहीं कहा था और वह तीर्थ में स्नान करने के लिए चला गया था। वह विप्र अपने शिष्यों के सहित महाकाल के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ था। उस समय में शिष्यों के

सहित वे दोनों राम और केशव भी प्रविष्ट हुए थे। वन्दना किये गए महाकाल ने भगवान् केशव से कहा था—देवों के स्वामी आपके इस मानवीय शरीर मे स्थित रहकर विराजमान होने से साधु पुरुषों को परम सुख हुआ था और जिनको ज्ञान नही था उनको भी सर्वदा सुख था। जो जनो को पीडा करने वाले थे अथवा सर्वदा अपने बल का घमण्ड रखते थे वे सभी कंस आदि प्रमुख राजा आपके दोनों के द्वारा निहत कर दिए हैं। हे अनघ ! आपको मुनि, मित्र और सुर आदि की स्थिति करनी चाहिए। उनको मैं इसे करूंगा, यह कहकर नमस्कृत हुए वह वहाँ से चले गये थे। शिष्यों ने सान्दीपनि को देख कर दिन-दिन में इसी प्रकार से कहा था ॥८-१५॥

कोपिनायद्वयत्तेपावचस्त्वत्यद्भुतं यत ।
स्वयमयोस्तनोऽष्टु माश्चर्यंशिष्यभाषितम् ॥१६
ततस्तयोस्थित शब्दः संश्लेषश्च तथा तयोः ।
तावागतौ गृह तत्र गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥१७
नवैज्ञातोमयावीरौयदिवृष्णिकुलोद्भवौ ।
ततस्मान्दीपनिकृष्णः कृतकृत्योऽब्रवीद्वच. ॥१८
गुर्वर्थं किन्ददामीतिमहरामेणहर्षितः ।
तच्छ्रुत्वावचनं हृष्ट गुरुःप्रोवाचहर्षित. ॥१९
पुत्रामिच्छाम्यहत्वत्तोयोमृतो लवणाम्भसि ।
पुत्रएकोहिमेजातस्सचापितिमिनाहृत ॥२०
प्रभासेतीर्थयात्राया त्वमेवतमिहानय ।
तथेतिचाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमतेगत. ॥२१

क्योंकि यह अत्यन्त अद्भुत वचन था। इस पर कोई भी श्रद्धा नहीं करता था। इसके अनन्तर शिष्यों के द्वारा कहे हुए वचन को जो आश्चर्य युत था देखने के लिए स्वयं ही आ गये थे। इसके अनन्तर उस प्रकार का शब्द लक्षित हुआ था और उन दोनों का संश्लेष हुआ था। वहाँ पर वे दोनों गृह मे समागत हो गए थे। तब श्री गुरुदेव ने यह वचन कहा

था—वृष्णि कुल में समुद्भूत आप दोनों वीरों को मैंने नहीं पहिचाना है। इसके उपरान्त भगवान् कृष्ण कृतकृत्य होते हुए सान्दीपनि से बोले—राम के सहित हर्षित मैं श्री गुरुदेव को सेवा में क्या भेंट करूँ! यह वचन सुनकर परम हर्षित गुरुजी ने अतीव सुन्दर वचन कहा था ॥१६-१६॥ मैं तो केवल आपसे अपने पुत्र को चाहता हूँ जो लवण सागर में मृत हो गया है। मेरे एक ही तो पुत्र उत्पन्न हुआ था वह भी तिमि के द्वारा निहत हो गया है। प्रभास क्षेत्र की तीर्थ यात्रा में यह दुर्घटना हुई थी आप ही उस को यहाँ पर लाइये। हे गुरुदेव! ऐसा ही किया जायगा, यह बलराम की अनुमति से श्रीकृष्ण ने गुरु को उत्तर दिया था ॥२०-२१॥

तं समुद्रउवाचेद दैत्यः पञ्चजनोमहान् ।
तिमिरूपेणतंवालं ग्रस्तवान्मयिसंस्थितः ॥२२
ततः पञ्चजनं हत्वा ग्राहरूप महाबलम् ।
तन्मध्यस्य चजग्राह शङ्खं ग्रस्तोहियः पुरा ॥२३
जलमध्यस्थिते नैवग्राहेणातीवलीलया ।
तस्योदरेयदावालनददर्शजनार्दनः ॥२४
यमालयगतं मत्वा तदावरुणमब्रवीत् ।
भगवन्यादसामीश रथोमेदीयताम्महान् ॥२५
येनाहवेहितान्जित्वापश्येयंप्रेतपंयमम् ।
पुराजिरेहतदैत्यादानवावलदर्पितः ॥२६
मयायेनरथेनाद्य समह्य दीयतांरथः ।
न्यासभूतोरथोयस्ते विभूतोपरतेरणे ॥२७
मयाधर्मंपुरस्कृत्य दीयता सह्यपाम्पते ! ।
एतच्छ्रुत्वाप्रहृष्टात्माज्ञात्वाकार्यायिनंहरिम् । २८

समुद्र ने श्री कृष्ण से कहा था—एक महान् पञ्चजन दैत्य है उसने ने तिमि के स्वरूप से उस बालक को मेरे अन्दर स्थित होते हुए ग्रस लिया था। इसके अनन्तर समुद्र के मध्य में स्थित महान् बलशाली ग्राह के रूप वाले उस पञ्चजन का वध करके शंख को प्राप्त किया था जो पहिले इस-

ने ग्रस लिया था। वह जल के मध्य में स्थित अत्यन्त बल वाला ग्राह था। उसके उदर में जब जनार्दन प्रभु ने उस बालक को नहीं देखा था तो यह मानकर कि वह यमालय को चला गया है। उस समय में यादवों के स्वामी भगवान ने वरुण से यह कहा था कि मुझे एक महान् रथ दो। जिस रथ के द्वारा युद्ध में शत्रुओं को जीतकर मैं प्रेतों के स्वामी यम-राज के समीप पहुँच सकूं। पहिले र में बल से दर्पित दैत्य और दानव निहत किये गये हैं और मैंने जिस के द्वारा युद्ध किया है वही रथ मुझे इस समय में दो। रण के उपरत हो जाने पर वह रथ न्यास के रूप में आपके समीप में रखा हुआ है। हे अपांपते। वही रथ मुझे दो जो मैंने धर्म कार्य को पहले करके रखा था। यह श्रवण करके वरुण परम प्रसन्न आत्मा वाला हुआ और उसने श्री हरि को उस समय में कार्यार्थी समझ लिया था ॥२२-२८॥

ददौतु रथमक्षोभ्य रणेतस्मिंसुरासुरैः।
ततोहरिस्समालोक्य रथं रत्नपरिष्कृतम् ॥२९
द्वीपिचर्मपरीधानं वंयाघ्रपरिवारितम्।
नानाचित्रविचित्राङ्गं गरुडध्वजराजितम् ॥३०
सयुक्तं शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः।
अजयन्देवदेवेन्द्रदानवासुरराक्षसैः ॥३१
अनेकायुधसम्पूर्णमणिविद्रुमभूषितम्।
सहस्रसूर्यप्रतिमनादवच्चतुर्युगम् ॥३२
किङ्किणीशतशोभाढ्यं घण्टाचामरलङ्कृतम्।
सवर्त्ताकारविषमं खगेन्द्रवरकेतनम् ॥३३
दृष्ट्वाकृष्णस्सरामस्तु मुमुदे वीतविस्मयः।
प्रदक्षिणमुपागत्य देवताभ्यः प्रणम्यच ॥३४
आरुरोह रथं विष्णुर्विमानं साग्रजोऽजनः ॥३५

वरुण देव ने तुरन्त ही वह रथ भगवान को समर्पित कर दिया था जो रण में सुरों और असुरों के द्वारा अक्षोभ्य था अर्थात् किसी के द्वारा भी उसे कोई क्षोभ नहीं दिया जाता था। इसके अनन्तर हरि ने रत्नों

से परिष्कृत उस दिव्य रथ का समवलोकन किया था ॥३३॥ वह रथ हाथी के चर्म से मढ़ा हुआ था और व्याघ्रों के चर्म से परिवारित था। वह नाना प्रकार के चित्रों से विचित्र अंगों वाला था और गरुड़ की ध्वजा से शोभायमान था। शैव्य, सुग्रीव, मेघ पुष्प और बलाहकों से समन्वित था तथा देव देवेन्द्र, दानव, असुर और राक्षसों के द्वारा अजेय था। वह रथ अनेक आयुधों से सम्पूर्ण था और मणियों तथा चित्रों से विभूषित था। वह रथ एक सहस्र सूर्यों के समान तेज युक्त था, चार चक्र और चार युगों वाला था। वह भगवान् विष्णु के विराजमान होने वाला रथ सैकड़ों किङ्किणियों की शोभा से समन्वित था तथा घण्टा और चामरों की चन्द्रिका से संयुत था। वह मन्वन्तर आकार से विषम था तथा खगेन्द्र चिह्न के केतन (ध्वजा) वाला था। भगवान् श्री कृष्ण और श्री बलराम को विस्मय से रहित होकर बहुत ही प्रसन्नता हुई थी। प्रदक्षिणा को समुद्यत होकर और देवगणों को प्रणाम करके अपने अग्रज के सहित भगवान् विष्णु उस विमान रथ पर समारूढ़ हुए थे ॥३०-३५॥

तदो जगाम त्वरितो जनार्दनो
जगन्निवासो यमलोकमाश्रिताम् ।
दिशं सहस्रं . किरणैर्वृ ताम्पुरी
ददर्श शङ्खं परिगृह्य चाच्युत. ॥३६
तत्रप्रध्मापयामास शङ्खं सङ्गधनुर्धर. ।
तेनैशब्देनवित्रस्ताः कृतान्तालयवासिनः ॥३७
नरकान्तर्गतामर्त्याः पापाचारपरायणाः ।
सुखमापुः प्रशान्ताश्चवह्वयःकृष्णदर्शनात् ॥३८
शस्त्राणि कुण्ठतां प्रापुर्यन्त्राणि विविधानि च ।
विदीर्णानि तदा चाशु देवदेवस्य दर्शनात् ॥३९
असिपत्रवनंनाम शीर्णपर्णमजायत ।
रौरवनामनरकमभंरवमभूत्तदा ॥४०
अभैरवभैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचिकम् ।
शृङ्गाटं शृङ्गसदृशं लोहमूध्यप्यमूचिका ॥४१

दुस्तरासुतराजाता नदीवैतरणीनृणाम् ।
नरकान्तेतदाजातेगतेविश्वेश्वरेविभौ ॥४२

इसके अनन्तर जगत् के निवास अच्युत जनार्दन भगवान् ने शङ्ख का परिग्रहण करके सहस्रों किरणों से परिवृत यम लोक के समाश्रित दिशा वाली उस यमराज की पुरी को देखा था ॥३६॥ शंख और धनुष के धारण करने वाले प्रभु ने वहाँ पर उस अपने शंख को बजाया। उस शंख की ध्वनि से यमराज के लोक के समस्त निवास करने वाले भय-भीत हो गये थे। जो लोग नरकों में अन्दर रहने वाले मनुष्य थे और पापों के समाचरण में तत्पर रहते थे उन्होंने परम सुख की प्राप्ति की थी। भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से अग्नियाँ एक दम प्रशान्त हो गई थीं। जितने भी शस्त्र थे वे सब कुण्ठित दशा को प्राप्त हो गये थे और विविध भाँति के यन्त्र भी देवों के देव के दर्शन से बहुत ही शीघ्र उस समय में विदीर्ण हो गये थे ॥३७-३६॥ असिपत्र वन नाम वाला जो नरक था वह शीर्ण पत्र हो गया था और उस समय में रौरव नाम वाला महा भीषण नरक उस समय में अभैरव हो गया अर्थात् उसकी भीषणता दूर हो गई थी ॥४०॥ भैरव नाम वाला नरक अभैरव हो गया और कुम्भीपाक नाम वाला नरक अपाकिक हो गया अर्थात् उसकी पाचन क्रिया समाप्त हो गई थी। जो शृङ्गार नाम वाला नरक था वह शृङ्ग के समान था और लोह सूचा भी बिना सूचियों वाला हो गया। जो वैतरणी नदी परम दुस्तर थी वह भी मनुष्यों के लिये सुतरा हो गई। उसी समय में जब कि नरकों के समीप विभु विश्वेश्वर पहुँचे तो उनकी सभी यातनाओं की क्रियाएँ समाप्त हो गई थी ॥४१-४२॥

पापभयात्ततस्सर्वे तेमुक्तानरकान्नराः ।
पदमव्ययमासाद्य दृष्ट्वा विष्णुं तमोपहम् ॥४३
विमानेषुसहस्रेषु ह्यारूढास्तेसमन्ततः ।
समीक्ष्यपुण्डरीकाक्षं मुक्तास्तेसर्वपातकात् ॥४४
ततश्शून्यमभूज्जातं सर्वनिरयमण्डलम् ।
दर्शनात्तस्यदेवस्य विष्णोर्विश्वस्वरूपिणः ॥४५

तसोदूताः कृतान्तस्यकृष्णञ्चयुद्धकारिणम् ।
धारयामासुरव्यग्रा विशन्तं नरकान्प्रति ॥४६

माचीरानेनमार्गेण रथमानयमानवाः ।
प्रयान्त्यधोगति पापात्परस्त्रीस्वापहारकाः ॥४७

यमादिष्टानराः पापाद्धे मोच्या वर्षकोटिभिः ।
दृष्ट्वा तएवसद्यस्त्वा गतास्स्वर्गमघावृताः ॥४८

एतच्छ्रुत्वावचस्तेषां कृपयापीडितोभृशम् ।
पुनः प्रोवाचमधुहा मोक्षायाहमुपागतः ॥४९

पापो के क्षय हो जाने से फिर वे सभी नरक वासी मनुष्य नरकों से विमुक्त हो गये थे। अव्यय पद को प्राप्त करके और तम का अपहरण करने वाले भगवान् विष्णु का दर्शन प्राप्त करके वे सभी और सहस्रों विमानों में समारूढ हो गये थे। भगवान् पुण्डरीकाक्ष का दर्शन प्राप्त करके वे नरकों में रहने वाले प्राणी सभी पापों से विमुक्त हो गये थे। हे मुने ! इसके पश्चात् तो ऐसा हुआ था कि यह सम्पूर्ण नरकों का मण्डल एक दम शून्य हो गया था अर्थात् वहाँ पर कोई भी रहा ही नहीं था। यह सारा प्रभाव विश्व स्वरूपी भगवान् विष्णु देव के दर्शनों का ही था। इसके अनन्तर यमराज के दूतों ने युद्धकारी श्रीकृष्ण को नरकों में प्रवेश करने पर अव्यग्र होते हुए निवारित कर दिया था ॥४३-४६॥ यमराज के किंकरों ने कहा था—हे वीर ! इस मार्ग से रथ को मत लाओ। जो पराये धन तथा परायी स्त्री का अपहरण करने वाले मनुष्य होते हैं वे ही अपने किये हुए पाप के कारण से इस मार्ग से अधोगति को जाया करते हैं। जिस नरक की यातना को भोगने के लिये मनुष्यों को आदेश दिये गये थे और जो करोड़ों वर्षों तक भोगने करने के योग्य थे वे भी आपका दर्शन प्राप्त करके अघों से आवृत भी तुरन्त ही स्वर्ग लोक को चले गये हैं। इस उनके वचन को सुनकर कृपा से अत्यन्त पीड़ित होकर मधुरिपु प्रभु ने पुनः यह कहा था—मैं तो उनके मोक्ष के लिये ही आया हूँ ॥४७-४९॥

सर्वेषां स्वर्गदाताऽहं यमलोकनिवारकः ।
अञ्जसा यमराड्दूता यमायाख्यातमेव च ॥५०
एतच्छ्रुत्वा वचो दूतास्सत्वरा यममागताः ।
सर्वमाचक्षिरे वृत्तं यथानारकिमोक्षणम् ॥५१
ततो यमो रुषाविष्टः प्राह तान्यमकिङ्करान् ।
य कश्चिदागतो मर्त्यो मर्यादाभेदकृन्नर ॥५२
तं गत्वा वारयध्वं वै गृहीत्वानीयतामिह ।
अयं नरान्तको यातु किङ्करस्सह किङ्करैः ॥५३
एवमुक्तो यमेनाथ किङ्करस्स नरान्तकः ।
गत्वा तं वारयामास वाग्भिरुग्राभिरच्युतम् ॥५४
यदा निवारितस्तस्थौ तदा क्रुद्धो नरान्तकः ।
तदा शरैरतीवोग्रैस्ताडितस्तेन केशवः ॥५५
बलदेवोऽपि समरे ताडितो विविधैश्शरैः ।
तावुभौ ताडितौ घोरैः समन्ताद्यमकिङ्करैः ॥५६

मैं सभी को स्वर्ग के प्रदान करने वाला हूँ और इस यमलोक का निवारण करने वाला हूँ। तुरन्त ही उन यमराज के दूतों ने यमराज से जाकर यही कह दिया। यह वचन सुनकर यम के दूत बहुत ही शीघ्रता से यमराज के समीप में पहुँच गये थे और उन्होंने यह सभी वृत्त जैसे कि नारकियों का मोक्ष हुआ यमराज से निवेदित कर दिया। यमराज ने कहा—यह नरान्तक किंकर अपने किंकरों के साथ वहाँ पर चला जावे और वहाँ जाकर उनको रोक दो। उसे पकड़ कर यहाँ मेरे पास लाओ। इस प्रकार से यम के द्वारा कहे हुए उस नरान्तक किंकर ने बहुत ही उग्र वचनों से उन भगवान् अच्युत को रोक दिया। जब वह वारित किये जाने पर भी वहीं डटे तो वह नरान्तक बहुत क्रुद्ध हुआ था और उस समय में बहुत ही उग्र शरों से उस नरान्तक ने भगवान् केशव पर प्रहार किया। बलदेवजी को अनेक शरों के द्वारा ताड़ित किया। ये दोनों ही श्रीकृष्ण और बलराम परम घोर बाणों से चारों ओर से यमराज के किंकरों के द्वारा प्रताड़ित हुए थे ॥५०-५६॥

आदायधनुषीदिव्ये अघ्नतुर्यमकिंकरान् ।
बाणैरनेकसाहस्रैः क्रुद्धौरामजनार्द्दनौ ।।५७
नरान्तकोऽपिसमरे बलेनबलिनाहितः ।
पपातगदयाभिन्नो मूर्ध्निनिर्गतलोचनः ।।५८
ततोनरान्तकेवीरे पतितेयमकिंकरे ।
किंकराणामभूत्सैन्यमार्तेरणपाङ्मुखम् ।।५९
तेदूतारामकृष्णाभ्यां हन्यमानाभयातुराः ।
यमायकथयामासुर्नरान्तकनिपातनम् ।।६०
ततोयमोयमोययौक्रुद्धः समन्तात्किंकरैर्वृतः ।
तत्र प्राह यमः क्रुद्धोनोजितोऽहंपुरापरैः ।।६१
ततोवादित्रघोषैस्तु मुरजानकगोमुखैः ।
नानाडमरुकाद्यैश्चचित्रगुप्तंचगच्छति ।।६२
देवाविद्याधराः सिद्धा द्रष्टुं प्राप्ता महाबलम् ।
कृतान्तस्य रणेऽक्षोभ्यं धामपाल जगत्पतिम् ।।६३

तब तो बलराम और जनार्दन दोनों बहुत ही क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने सहस्रों बाणों से अपने दिव्य दिव्य धनुषों को ग्रहण करके उन यमराज के किंकरों का हनन कर दिया। वह नरान्तक भी उस समर स्थल में परम बलशाली बलरामजी के द्वारा खूब ही पीड़ित किया गया और गदा के प्रहार माथे मे भिदा हुआ वह निकले हुए नेत्रों वाला होकर गिर गया। इसके अनन्तर जब वह नरान्तक वीर यमराज का किंकर युद्ध स्थल में गिर गया तो उसके पतन होते ही यमराज के किंकरों की वह सम्पूर्ण सेना रण से पराङ्मुख हो गई। वे समस्त दूत राम कृष्ण के द्वारा हन्यमान होते हुए भयभीत होकर यमराज के पास पहुँचे और उन्हों ने यमराज से उस नरान्तक के निपात होने का समाचार कह दिया। इसके उपरान्त यमराज अत्यन्त क्रुद्ध होकर सभी ओर से अपने किंकरों द्वारा परिवृत होकर वहाँ पर गया और क्रोधाविष्ट होकर उसने कहा—पहिले आज तक मुझे कभी दूसरों ने नहीं जीता है। इसके पश्चात् वादित्रों

की ध्वनियों से—मुरज—पानक और गोमुख के शब्द से तथा अनेक डमरू आदि के घोषों के साथ चित्रगुप्त के आने पर वहाँ पर समस्त देव गण—विद्याधर और सिद्ध उस वृत्तान्त के युद्ध में महान् बलवान् जगत् के स्वामी कामपाल को देखने के लिये प्राप्त हो गये थे जो कि असंख्य थे ॥५७-६३॥

ततस्तेकिंकरा: सर्वेचित्रगुप्तेननोदिता:।
रथामावृत्यबाणौघै: प्रबबाधुस्समन्तत: ॥६४
बलश्चकेशव स रथे जघ्नतुस्तावुभावपि ।
रणेचविविधैर्बाणैश्चित्रगुप्तस्यपश्यत: ॥६५
विक्षार्यंचसहस्राणि किंकराणांसमन्तत: ।
कृतान्तानीकिनीमध्ये कृतान्तइवकेशव: ॥६६
चचार रणदुर्द्धर्षं कामपालेन पालित: ॥६७
ततश्चित्रगुप्तोरणे किंकरौघ
विदीर्णं निरीक्ष्याऽतिनादं चकार ।
शरै: पञ्चभि: कृष्णमायान्तमाजौ
जघानाष्टभिर्वक्त्रदेशे सभिन्न: ॥६८
शरार्तोरथोपस्थआसीत्तदानी
तमालोक्यभिन्नं रणे नष्टमज्ञम् ।
रथ स्व समादाय यात: कृतान्त
स्ततश्चित्रगुप्तेशरार्त प्रमुप्त ॥६९
रणे कीर्तिलुप्तेभयक्षोभयुक्ता:
स्वसैन्यैश्चयुक्तामयार्तानिषण्णा: ॥
प्रधानाश्च भग्ना विचित्राश्च भग्ना
स्ततश्चित्रगुप्तं निनाम्याऽऽय भग्नम् ॥७०

इसके अनन्तर चित्रगुप्त के द्वारा प्रेरित हुए वे सब किंकर कृष्ण बलराम के रथ को चारों ओर से घेर कर बाणों के समूह से प्रहार कर रहे थे । उन्होंने उस युद्ध में भी बलराम और श्रीकृष्ण दोनों ने ही अपार क्रूर बाणपात किये थे । चित्रगुप्त के देखते हुए उस युद्ध स्थल में

अनेक प्रकार के बा ो के द्वारा हनन हो रहा था। उस समय में भगवान् केशव ने साक्षात् कृतान्त के ही समान उस यमराज की सेना के मध्य में यमराज के किंकरों में सभी ओर से सहस्रों को विशीर्ण करके कामपाल के द्वारा पालित वह रण में दुर्धर्ष होकर विचरण कर रहे थे ॥६४-६७॥ इसके पश्चात् चित्रगुप्त ने उस युद्ध में अपने किंकरों के एक बहुत बड़े समुदाय को विशीर्ण होते हुए देखा और ऐसी बुरी दशा उन अपने किंकरों की देखकर चित्रगुप्त ने आर्त्तनाद किया था ॥६८॥ उसने पाँच शरों के द्वारा आते हुए श्रीकृष्ण पर हनन किया और वह आठ बाणों से मुख प्रदेश में भिन्न हो गया। उस समय में वह शरों से अत्यन्त आर्त होकर रथ के समीप में ही था। उसको रण में भिन्न तथा बेहोश देखकर शरों से आर्त्त और चित्रगुप्त के प्रमुख हो जाने पर कृतान्त अपने रथ को लेकर स्वयं वहाँ पर समागत हो गया। रण में कीर्त्ति के लुप्त हो जाने पर भय और क्षोभ से युक्त तथा अपनी सेनाओं के सहित भय से आर्त्त एवं सब ऐंठे हुए थे। सभी प्रधान भग्न हो गये थे—विचित्र भी भग्न हो गये थे और फिर चित्रगुप्त को भी भग्न हुआ सुन लिया था ॥६९-७०॥

सकालस्तमायान्तमालोक्यदराद् ।
वरं सैन्यमादाय देवारिशत्रुम् ।
विनाशाय युध्यद्युगान्ते प्रजाना
यथा वाडवो ज्वायवृद्धः प्रवृत्तः । ७१

तमायान्तमालोक्य काल कराल
शरैरावृणोदन्तकं कालकल्पैः ।
स कालः करालं समादायदण्डं
मुमोचाच्युते पश्यतान्देवतानाम् ॥७२

ततः कालदण्डः प्रजानां विनाशो
हरेस्सन्निकाशं समभ्याजगाम ।
ततो देवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्राः
परं विस्मयं प्रापुरन्वीक्ष्य रामम् ॥७३

ज्वलन्तञ्च जग्राह कालस्य दण्डं
स रामो वरं लीलयानन्तमूर्तिः ।
कालदण्डे गृहीते बलेनाहवे
मोक्तुकामे पुनः कालनाशाय वै ॥७४
तूर्णमभ्येत्य तत्रान्तरे पद्मजस्तं ।
रणे वारयामास कृष्णं तदा ॥७५
मां मुञ्चेत्यब्रवीद्वेधाः कालं कालायुधं बली ।
त्वयाबलवतावीर चराचरधराधरा! ।
धार्यतेशिरसादेव समारेनास्ति ते समः ॥७६
त्वयाविश्वपतिर्विष्णुरुत्सङ्गे नसदोह्यते ।
कोऽन्योऽस्तित्वत्समोरामयोजगद्दहनेक्षमः ॥७७

उस काल ने देवों के अरियों के शत्रु उसको आते हुए दूर से ही देखकर बहुत अच्छी सेना लेकर उनके विनाश के लिये युद्ध करने लगा जैसे प्रजाओं के अन्त करने में ज्वालाओं से प्रवृद्ध पावक प्रवृत्त होता है ॥७१॥ उस आते हुए करालवाल को देखकर काल के तुल्य शरों से उस मस्तक को आवृत कर दिया। उस काल ने कराल दण्ड को लेकर देवताओं के देखते हुए अच्युत पर उसका प्रहार कर दिया। प्रजाओं का विनाश वह काल दण्ड था जो कि श्रीहरि के समीप में आकर प्राप्त हुआ। इसके अनन्तर श्रीराम को देखकर देव—गन्धर्व—यक्ष और मुनीन्द्र परम विस्मय को प्राप्त हो गये थे ॥७२-७३॥ अनन्त मूर्ति उन श्रीबलराम ने लीला से ही परम श्रेष्ठ जाज्वल्यमान काल के दण्ड को ग्रहण कर लिया। बलराम जी के द्वारा उस युद्ध में काल दण्ड के ग्रहण करने पर पुनः काल के विनाश करने के लिये उसके छोड़ने की इच्छा करने पर भगवान् ब्रह्माजी उसी बीच में उस युद्ध स्थल में शीघ्र उपस्थित हुए थे और उस समय में उन्होंने श्रीकृष्ण को निवारित कर दिया। ब्रह्माजी ने कहा—हे बल! इस कालायुध काल को मत छोड़ो। हे वीर! बलवान् आप के द्वारा तो इस चराचरों को धारण करने वाली इस भूमि को शिर से ही धारण किया जाता है। इस संसार में आप के तुल्य अन्य कोई भी नहीं

है। आपके द्वारा विश्व के पति भगवान् विष्णु सदा उत्सङ्ग के द्वारा धारण किये जाया करते हैं। हे राम ! जो जगत् के ग्रह न करने में समर्थ हैं वैसा अन्य आपके समान कौन है। अर्थात् कोई भी नहीं है ॥७४-७७॥

जगत्स्रष्टाजगद्गोप्ताजगद्धर्ताजगत्पतिः ।
पाल्यतेयस्त्वयासोऽपिविष्णुर्विश्वैकनायकः ॥७८
कस्ते स्तुतिकरोऽस्तीह को गुणान्वेत्तुमर्हति ।
ततो वयं त्वदङ्कस्था विष्णुनाभिभवायनाः ॥७९
इत्युक्त्वाबलदेवञ्च वासुदेवंपुनर्वचः ।
उवाच चतुरास्यस्तु स्तुतिपूर्वंवृतस्सुरैः ॥८०
कृष्ण ! कृष्ण ! करालास्य ! कालस्यास्य कृपां कुरु ।
यतो भवन्तमायान्तं विष्णुं विश्वैकनायकम् ॥८१
वेत्तिनाथं जगन्नाथ नरकार्णवतारकम् ।
त्वयावंभगवन्पूर्वंयमः सस्थापितः पदे ॥८२
नृणांदुष्कृतकर्तृणां नरकाययम. प्रभो ! ।
तस्मादस्य जगन्नाथ क्षम्यतापुरुषोत्तम ! ॥८३
विभो ! कृतापराधस्त्वद्ह्रियतेविवक्षितम् ।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्कृष्णोधातः शृणुगुरोर्मम । ८४
सान्दीपनेस्समानीतस्सुतस्तेनागताविह ।
समर्प्यतागुरुश्रेष्ठ श्रेष्ठायगुरुदक्षिणा ॥८५

इस समस्त जगत् के सृजन करने वाले—जगत् की रक्षा करने वाले—जगत् के धारण करने वाले और इस जगत् के पति—विश्व के एक ही नायक जो विष्णु देव हैं वे भी आपके ही द्वारा पालित होते हैं। यहाँ पर कौन स्तुति के करने वाला है और कौन गुणों को जानने को योग्य होता है। विष्णु के द्वारा अभिभवायन हम आपके ही अङ्क में स्थित हैं—यह कहकर पुनः बलदेव और वासुदेव को सुरों से समावृत ब्रह्माजी ने स्तुति पूर्वक कहा—हे कृष्ण। हे कृष्ण ! आप तो कराल मुख वाले हैं—इस काल के ऊपर कृपा करिए। कारण यह है कि विश्व के एक नायक

विष्णु भगवान् आपको मारते हुए यह नहीं जानता था कि आप समस्त जगत् के माप घोर नरकों के सागर से तारने वाले हैं। हे भगवन् ! आपने ही पहिले इस यमराज को इस पद पर संस्थापित किया। हे प्रभो ! जो दुष्कृत करने वाले मनुष्य हैं उनको दण्ड देने के लिये ही इस यम को आपने यह पद प्रदान किया है। हे जगन्नाथ ! हे पुरुषोत्तम ! इसी कारण से अब इनको आप क्षमा कर दीजिए। हे विभो ! इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि इसने आपका अपराध किया है किन्तु अब उसके क्षमापन के लिये आप ही बतलाइये कि आपका क्या विचारित है। यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे धाता ! आप मेरा कथन श्रवण कीजिए—मेरे गुरु सान्दीपनि का पुत्र यहाँ लाया गया है। इसी लिये हम दोनों यहाँ पर आये हैं। हम अपने परम श्रेष्ठ गुरु देव के लिये गुरु दक्षिणा समर्पित करें। हे विभो ! हम दोनों ने प्रतिज्ञा की है कि हम गुरु सान्दीपनि के पुत्र को लाकर उन्हें देंगे इसी लिये उसका पालन कीजिए ॥७८-८५॥

आवाभ्यां च प्रतिज्ञाता तस्मात्सा पाल्यतां विभो ! ।
एतत्पितामहः श्रुत्वा यमं समरनिर्जितम् ॥८६
समाहूयाऽब्रवीद्विष्णुर्यद्ब्रवीति कुरुष्व तत् ।
तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु विरञ्चिमिदमब्रवीत् ॥८७
भगवन्निश्वकृल्लोकेनैवमार्गंस्त्वयाकृतः ।
यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनः शरीरवान् ॥८८
शरीरसहितो याति नैतदत्रप्रपद्यते ।
तच्छ्रुत्वाऽऽहपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभुः स्वयम् ॥८९
विश्वकृद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छति करोतु तत् ।
तस्मादर्पय पुत्रं त्वं मुनेस्सान्दीपनेश्च वै ॥९०

पितामह ने यह सुनकर समर भूमि में निर्जित किये हुए यमराज को बुलाकर कहा कि जो भगवान् विष्णु बोल रहे हैं उसे तुम शीघ्र करो। यह सुनकर धर्मराज ने विरञ्चि देव से यह कहा—हे भगवन् ! इस विश्व

की रचना करने वाले पापने ही यह मार्ग निर्मित किया है कि जो हम
यमलोक में प्राप्त हो जाया करता है वह काया से रहित शरीर वाला
होता है। जो शरीर के सहित होता है वही जाया करता है सो तेम
शरीर धारी यह प्राप्त हो नही होता है। यह श्रवण करके इस सम्पू
विश्व के स्वय विभु ब्रह्माजो ने पुनः कहा था कि क्यों कि इस विश्व
रचना करने वाले और इस विश्व के हृदय जो भी चाहते हैं वही
करो। इस लिये मुनि सान्दीपनि के पुत्र को तुम इनका समर्पित क
॥८६-९०॥

नरकाय पुनः कृत्वा तच्चानयमहामते ।
तच्छ्रुत्वाधर्मराजस्तु पुत्रंसान्दीपनेस्तया ॥९१
ससर्जबालरूपञ्चतदारमानंतदुद्भवम् ।
अर्पयामासकृष्णाय बालरूपसमन्वितम् ॥९२
समक्ष देवतानाच तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततः प्राप्यगुरो. पुत्र प्रभु प्रीत प्रजापतिम् ॥९३
प्राह प्राप्तो मया ब्रह्मन् स्वरूपो द्विजदारकः ।
अद्यप्रभृति लोकेश ! देशे मद्वरणाद्भुवे ॥९४
अवन्त्यामंकपादाख्ये मृतानेदान्तिवेयमम् ।
महाकालोत्तरे देवमाद्यं वै पुरुषोत्तमम् ॥९५
विश्वरूपञ्चगोविन्द शङ्खोद्धारंचकेशवम् ।
ये पश्यन्तिकुशस्थल्यामेतेश्चामूर्तिपञ्चकम् ॥९६
तेनरानगमिष्यन्तिविरञ्चेनिरयपर्वाचित् ।
तथैवागमनादत्र मम यामस्य नारकाः ॥९७
विमुक्तास्ते त्वया घोरात् प्राप्नुवन्त्यखिलादिवम् ।
इत्युक्ते वचने वेधाः प्रोवाच प्रीतिमान्हरिम् ॥९८

हे महामते ! पुनः मनुष्य के शरीर की रचना करके उसको यहाँ पर
लाओ। यह श्रवण करके धर्मराज ने सान्दीपनि मुनि के पुत्र की रचना
की थी जो कि बालक के रूप वाला उसी स्वरूप से युक्त और उससे
उदय को प्राप्त करने वाला ही था। ऐसे बालरूपी उसको भगवान् श्री-

कृष्ण के लिये उस धर्मराज ने वह समर्पित कर दिया था ॥९१-९२॥ समस्त देवताओं के समक्ष में यह एक अद्भुत जैसी घटना घटित हुई थी। इसके अनन्तर प्रभु ने अपने गुरु के पुत्र को प्राप्त करके प्रजापति पर परम प्रसन्नता उनको हुई थी और उन्होंने कहा था—हे ब्रह्मन्! मैंने ठीक सुन्दर स्वरूप वाला द्विज का बालक प्राप्त कर लिया है। श्रीकृष्ण ने कहा—हे लोकेश! आज से लेकर मेरे चरणों से अंकित देश में अवन्ती में अंकपाद नाम वाले स्थान में जो पुन पुरुष हैं वे आकर यमराज का मुख नहीं देखेंगे। महाकालोत्तर में आद्यदेव पुरुषोत्तम, विश्वरूप, गोविंद और दामोदार केशव भगवान् का जो दर्शन किया करते हैं और कुशस्थली में इनकी पाँच मूर्तियों का अवलोकन करते हैं, हे ब्रह्मन्! ये मनुष्य कभी भी कहीं पर नरक का दर्शन नहीं करेंगे। उसी भाँति यहाँ पर मेरे आगमन से तथा बलरामजी के आगमन से नारक लोग अर्थात् नरकों में निवास करने वाले मनुष्य विमुक्त हो गये हैं। ये सब इस घोर नरक से जो आपने इन्हें दिया था विमुक्त होकर सब के सब दिवलोक को प्राप्त होते हैं। इस वचन के कहने पर ब्रह्माजी परम प्रीति वाले होकर श्री हरि से बोले—हे श्री कृष्ण! आपने जो कुछ भी वचन कहा है वह सदा सफल होगा ॥९३-९८॥

यत्त्वयोक्तं वचः कृष्णतदस्तुसकलंसदा।
ये च त्वामादिपुरुषं प्रथमं पुरुषोत्तमम् ॥९९
प्रणम्य ये च द्रक्ष्यन्ति स्नात्वा शिवसरस्यपि।
अथोज्वलं महाकालं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१००
एवमुक्तो हरिः पुत्रमादायबलेन (हलिना) सह (?) ॥१०१
आपृच्छयदेवसंदेवमारुरोहरथंततः।
पाञ्चजन्यमापूरयामास कृतकार्योजनार्दनः ॥१०२
मोक्षायनिरयस्थानं नृणांवैपापकर्मणाम्।
ततस्तेनाद्भुतशब्देन स्मरणेनाच्युतस्य च ॥१०३
दिव्यानिविमानानारुह्य दिवमेवागमिष्यन्ततः।
शून्यंतन्मण्डलं जातं नारायणसमागमे ॥१०४

कालोऽपि दण्डं मामाद्य बलदेवात्पुरं पुरम् ।
प्रविवेश ततो धाता तत्रैवान्तरधीयत ॥१०५

जो मनुष्य प्रथम पुरुषोत्तम आदि पुरुष आपको प्रणाम करके और शिप्रसर में भी स्नान करके अघोऽवसर महाकाल का दर्शन करेंगे वे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से कहे हुए भी हरि बलराम जी के साथ द्विज पुत्र को लेकर और देव महाराजों से अनुमति ग्रहण करके रथ पर समारूढ़ हो गये थे। कुछ कार्य जनार्दन प्रभु ने शंख का नाद किया था। पाप कर्म करने वाले मनुष्यों के नित्य स्थान के मोक्ष के लिए ही वह शब्द की ध्वनि की थी। इसके पश्चात् वे उस शंख के शब्द से तथा भगवान् अच्युत के स्मरण करने से परम दिव्य विमान पर चढ़कर वे सबके सब स्वर्ग लोक को चले गये थे। भगवान् नारायण के वहाँ पर समागम होने से वह पूरा मण्डल शून्य ही गया था ॥९९-१०४॥ काल भी दण्ड प्राप्त करके बलदेवजी के पाले २ प्रविष्ट हुआ था और इसके पश्चात् धाता (ब्रह्मा) वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ॥१०५॥

कृष्णोऽपि बलवान्वीरः प्राप्य उज्जयिनीपुरीम् ।
बलदेवसहायस्तु रथेनाशुगामिना ॥१०६
ततस्सान्दीपनेः पुत्रमर्पयामास केशिहा ।
कुरुवेयस्प्रतिज्ञात ततस्मादनृणोऽभवत् ॥१०७
एवं सान्दीपने पुत्र दृष्ट्वा च पुनरागतम् ।
नागरास्तत्र राजा च विस्मयपरमययु ॥१०८
तौवीगमर्चयामासुर्मन्वादेवोत्तमोत्तमौ ।
सान्दीपनिस्त्वाथेद तौवगमजनार्दनौ ॥१०९
इह स्थास्यसि च कीर्तिर्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
स्थाने तु वयमेतस्मिन् स्थास्यामो यदुनन्दनौ ॥११०
नविशातौमयावीरौ यदुवृष्णिकुलोद्भवौ ।
नरनारायणौदेवौ देवकार्यार्थमागतौ ॥१११

नाल्पमृत्युर्भवेत्तस्य न व्याधिर्न च दुर्गतिः ।
प्राप्नोत्यन्ते चस्नानाच्च स्वर्गलोके महीयते ॥११२

भगवान् श्री कृष्ण भी ओर उज्जयिनी जी पुरी मे आ गये थे। बलदेव जी भी उनके साथ में सहायक थे। वे शीघ्रगामी रथ के द्वारा वहाँ पहुँच गये थे और केशी दैत्य के हनन करने वाले प्रभु ने सान्दीपनि मुनि को उनका पुत्र लाकर अर्पित कर दिया था। अपने गुरुजी से जो पुत्र को लाकर दे देने की प्रतिज्ञा की थी उस गुरु ऋण से वे उऋण हो गये थे। इस प्रकार से सान्दीपनि मुनि के पुत्र को जो मर गया था पुनः वापिस समागत हुआ देख कर वहाँ के सभी नगर निवासी लोग और राजा भी परम विस्मित हो गये थे। उन सबने उन दोनों श्री बलराम और श्री कृष्ण की अर्चा की थी और सभी ने उन दोनों को परमोत्तम देव मान लिया था मुनि सान्दीपनि ने उन दोनों श्री राम और जनार्दन से यह वचन कहा था—यहाँ पर लोक में आपकी यह कीर्ति जब तक समस्त भूतों का सम्प्लव होगा स्थिर रहेगी। हे यदुनन्दनो ! इस स्थान में हम लोग स्थिर रहेंगे। यदु वृष्णि कुल मे उद्भव प्राप्त करने वाले आप दोनों वीरों को मैंने नहीं पहिचाना था कि साक्षात् नर नारायण देव देवों के कार्यों को सुसम्पादित करने के लिए ही इस लोक में समागत हुए हैं। यहाँ पर प्राप्त जो भी कोई होता है और यदि यहाँ स्नान कर लेता है तो वह कभी भी अल्प आयु में मरने वाला नहीं होता। उसे कभी भी कोई व्याधि भी पीड़ित नहीं करेगी और न किसी प्रकार की उसकी दुर्गति ही होगी। अन्त में इसका ऐसा प्रभाव होगा कि वह स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है ॥१०६-११२॥

शशिनं विश्वरूपञ्च माधवं चक्रिणं तथा ।
सत्यार्णिविष्णुकेशानि ▒ कमादस्तुपञ्चनम ॥११३
एतां यात्रां प्रवक्ष्यामि यथा कार्या मनीषिभिः ।
मन्दाकिन्यां पुनःस्नानो दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥११४
शंखोद्धारे नरस्नात्वा प्रसन्नेद्‌ बलकेशवौ ।
स्नानं कुशस्थलः कुण्डे गोविन्दञ्च समर्चयेत् ॥११५

चक्रिणञ्चनयोर्दृष्ट्वा विश्वरूपतनोव्रजेत् ।
तस्याग्रतः करोकुण्डेस्नानं कृत्वायथाविधि ॥११६
पुनस्तेन प्रकारेण प्रपश्येद् बलकेशवौ ।
स्नानं कृत्वा नरः कुण्डे गोविन्दस्य समर्चयेत् ॥११७
तथैव चक्रहस्तौ तौ दृष्ट्वा केशवमाव्रजेत् ।
शिप्राम्भसि नरः स्नात्वा भक्त्या सम्पूज्य केशवम् ॥११८

चक्री, विश्वरूप, बलदेव माधव, और चक्री ये चार विष्णु भेद हैं और मन्दुराद पाँचवाँ भेद है। इनकी यात्रा के विषय में मैं कहूंगा कि किस प्रकार से मनीषियों को यह करनी चाहिए। मन्दाकिनी में स्नान करके श्रीराम जनार्दन का दर्शन करके फिर शङ्खोद्धार में स्नान करके बलराम और केशव भगवान का दर्शन करना चाहिए। इसके पश्चात् कुण्ड में स्नान करके श्री गोविन्द प्रभु का अर्चन करे ॥११३-११५॥ इसके पश्चात् चक्री भगवान् का दर्शन करे और इसके बाद में विश्व रूप की सेवा में उपस्थित होना चाहिए। उनके आगे करो कुण्ड में विधिपूर्वक स्नान करे और फिर उसी प्रकार से श्री बल और केशव का दर्शन करना चाहिए। इसके पश्चात् कुण्ड में स्नान करके श्री गोविन्द प्रभु का समर्चन करे ॥११६-११७॥ उसी भाँति से चक्र हाथ में रखने वाले का दर्शन करके भगवान केशव के समीप में गमन करना चाहिए। शिप्रा के जल में मनुष्य को स्नान करके भक्ति की भावना से भगवान केशव का भली-भाँति पूजन करना चाहिए ॥११८॥

परावृत्यः कपालेतु ता ब्राह्मणभोजयेच्छुचि. ।
प्रातर्वै भोजयेत्तत्र पञ्चविप्रांश्चसुव्रतान् ॥११९
गोदक्षिणाश्चशक्तिनेतु विश्वरूपायचैहय ।
गोविन्दाय नरः प्रोक्तस्सर्वंदद्याच्चकेशवम् ॥१२०
उपोष्य द्वादशीविप्रायाकपार्दसमर्चयेत् ।
गन्धपुष्पैश्चधूपैश्चनैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥१२१
श्राद्धं यः कुरुतेतत्र तस्यपुण्यफलं शृणु ।
कुम्भाना शतमुद्धृत्य विमानैस्सार्वकामिकैः ॥१२२

गीतनृत्यादिभोगैश्च वैकुण्ठे सुचिरं वसेत् ।
पुनर्लोकमिमंप्राप्य पवित्रेजायते कुले ॥१२३
प्राप्नोत्यनन्तसन्तानं विष्णुलोकं पुनर्व्रजेत् ॥१२४

घण्टापाद से वापिस लौटकर परम पवित्र होकर उस रात्रि में वहीं पर निवास करे। प्रातः काल होने पर पर सुवर्ण पाँच विप्रों को वहाँ पर भोजन करावे सांसो प्रभु को गौ की दक्षिणा विश्व रूप के लिए हय की दक्षिणा, गोविंद के लिये गज की दक्षिणा बताई गई है। केशव भगवान के लिए सर्वस्व दक्षिणा में देवे ॥११९-१२०॥ द्वादशी का उपवास करके विप्र के लिए घण्टापाद का समर्पण करना चाहिए। गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य और विविध प्रकार के अन्य उपचारों से समर्चन करना चाहिए। जो वहीं पर श्राद्ध करता है उसका सब पुण्य फल श्रवण करो। वह मनुष्य जो श्राद्ध वहाँ पर किया करता है अपने सौ कुलों का उद्धार करके समस्त कामनाओं से परिपूर्ण विमानों के द्वारा तथा गीत और नृत्य आदि महान् सुखोपभोगों के द्वारा वह वैकुण्ठ लोक में चिरकाल पर्यन्त निवास किया करता है। फिर सुकृति के अनन्तर इस लोक में आकर किसी महान् पवित्र कुल में समुत्पन्न हुआ करता है। वहाँ पर वह मनुष्य अनन्त सन्ततियों का सुख प्राप्त किया करता है और फिर भी वह विष्णु लोक में ही गमन किया करता है ॥१२१-१२४॥

७४–रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम् ।
प्रवरं सर्वतीर्थानां सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥१
तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा यःपश्यतिमहेश्वरम् ।
केदारेश्वरफलं प्रोक्तं तदवाप्तिलभेन्नरः ॥२
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वकीयकुलसंयुतः ।
विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकेसमोदते ॥३
जटागृह नरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वाजितेन्द्रियः ।
दृष्ट्वा जटेश्वरं देवं ततःपापाद्विमुच्यते ॥४

महास्नपनमादौ च कृत्वा गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।
मातृकं पैतृकं चैव कुलानां तारयेच्छतम् ॥५
इन्द्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चेन्द्रेश्वरं शिवम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शक्रलोके महीयते ॥६
कुण्डेश्वरं तु यः पश्येच्छिवध्यानपरायणः ।
लभते स नरो व्यास! शिवदीक्षाफलं शुभम् ॥७

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर मैं उत्तम केदारेश्वर का वर्णन करता हूँ जो संसार के समस्त तीर्थों में परम वरिष्ठ है और सभी लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ पर स्नान करके परम पवित्र होकर जो मनुष्य महेश्वर प्रभु का दर्शन किया करता है वह मनुष्य केदार तीर्थ में जो पुण्य-फल कहा गया है उसे यहाँ पर भी प्राप्त कर लिया करता है। अपने कुलों के सहित समस्त पापों से विमुक्त होकर सूर्य के समान आभा वाले विमान के द्वारा शिव लोक में आनन्द का लाभ लिया करता है ॥१-३॥ जटा मकुट नामक तीर्थ में स्नान करके जो मनुष्य शुचि होकर अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला जटेश्वर देव का दर्शन करता है वह फिर पाप से एक दम छुटकारा पा जाया करता है। आदि में यहाँ स्नान करके फिर भगवान् शिव के मन्दिर में जाना चाहिए। ऐसा मनुष्य अपने मातृ कुल को और पितृ कुल को दोनों के सौ-सौ की संख्या में तार दिया करता है। इन्द्र तीर्थ में नर स्नान करके फिर जो इन्द्रेश्वर शिव के दर्शन किया करता है वह भी सब तरह के अपने किए हुए पापों से विमुक्त होकर इन्द्रलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है। जो कुण्डेश्वर के दर्शन किया करता है, हे व्यास देव! वह मनुष्य शिव की दीक्षा के परम शुभ का फल का लाभ पा जाता है ॥४-७॥

गोपतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गोपेश्वरं शिवम् ।
शिवलोकं सर्वयाति ह्यमृतामरोपया ॥८
स्नात्वा तु चित्रपिटातीर्थे शिवदेवं प्रणम्य च ।
तिर्यग्योनिं नरो नैव प्रयाति मुनिपुङ्गव! ॥९

विजयेचनरः स्नात्वाआनन्देश्वरपूजनात् ।
विमुक्तःसर्वपापेभ्यःस्वर्लोकेविजयीभवेत् ॥१०
अथान्य सम्प्रवक्ष्यामि कुशस्थल्या विनिर्मितम् ।
देवं रामेश्वरं श्याम! भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११
चित्रकूटात्पुरारामो मैथिल्यालक्ष्मणेनच ।
अत्ररामं समागत्य पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥१२
कानितीर्थानिपुण्यानि किंवाक्षेत्र महामुने ।
यत्रगत्वानचाप्नोतिवियोगः सहबान्धवैः ॥१३
अनेनवनवासेन मरणेनपितुःप्रभो ।
भरतस्यवियोगेन प्रतप्येऽहं त्रिभिर्मुने ॥१४

एक गोपतीर्थ वहाँ है, उसमें स्नान करके मनुष्य गोपेश्वर भगवान् शिव के दर्शन करता है वह सीधा शिव लोक में गमन किया करता है जैसे अमृत के पान से अमर हो जाता है। त्रिपिटा तीर्थ में स्नान करके और देवेश्वर शिव को प्रणाम करके हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! वह मनुष्य फिर कभी भी तिर्यग योनि को प्राप्त नहीं किया करता है। विजय नाम वाले तीर्थ में स्नान करके श्रीआनन्देश्वर प्रभु के पूजन करने से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता हुआ स्वर्ग लोक में पहुँच कर विजय वाला हुआ करता है। इसके अनन्तर मैं एक अन्य तीर्थ के विषय में वर्णन करता हूँ जो कुशस्थली में विनिर्मित तीर्थ है। वहाँ पर हे श्याम देव ! भुक्ति और मुक्ति इन दोनों के प्रदान करने वाले रामेश्वर देव विराजमान हैं। पहिले परम पुरातन समय में श्रीराम अपनी प्रिया मैथिली और भाई लक्ष्मण के साथ चित्रकूट से यहाँ पर समागत हुए थे और उन्होंने मुनियों में परम वरिष्ठ से पूछा था—श्रीराम ने कहा—हे महा मुनिवर ! यहाँ पर कौन-कौन से परम पुण्यमय तीर्थ हैं और क्षेत्र हैं जहाँ पर मनुष्य अपने बान्धवों के साथ कभी वियोग की प्राप्ति नहीं किया करता है। हे प्रभो ! हे मुनिवर ! मेरा मन तो इस सारे वन के निवास से और पूज्य पिताश्री के मरण हो जाने से तथा भरत जैसे परम प्रिय एवं श्रेष्ठ भाई के वियोग हो जाने से इन तीनों बातों से बहुत ही सन्तप्त रहा करता है ॥८-१४॥

सद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वाविप्रर्षभस्तदा ।
ध्यात्वातुसुचिरं कालमिदंवचनमब्रवीत् ॥१५
साधुपृष्टंत्वयावीर रघूणां यशवर्धन ।
मत्पित्राकृतं क्षेत्र प्रयाच्यशिवमादरात् ॥१६
अवन्तीविषये राम पुरा तस्मिन् कुशस्थली ।
उज्जयिनीति वै नाम्ना ख्याति लोके गता विभो ! ॥१७
तस्यांगत्वादशरथं पिण्डदानेनतर्पय ।
सुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोऽव्यवस्थितः ॥१८
देवः सदाशिवोराजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः ।
दृष्टेतस्मिञ्जगन्नाथे वियोगोनैवजायते ॥ १९
तत्र गच्छन्तियेविप्रा राजानोवैमहाबलाः ।
लभन्तेतेपरं स्थानं यत्र देवोमहेश्वरः ॥२०
तीर्थानामपि तत्तीर्थं भो विष्णोऽवन्तिमण्डले ।
आजगाम ततोऽवन्ती सा शिप्रा यत्र पुण्यदा ॥२१

उस समय में इस श्रीराघवेन्द्र प्रभु के द्वारा कहे हुए वाक्य का श्रवण करके विप्रों में परम श्रेष्ठ ने चिरकाल पर्यन्त ध्यान करके इस वचन को कहा—हे वीर ! आपने बहुत ही अच्छी बात मुझ से पूछी है । आप तो रघु के वंश की वृद्धि करने वाले हैं। मेरे पिताजी ने भगवान् शिव से प्रहृष्ट हो से याचना करके बड़े ही आदर से इस क्षेत्र को किया है। हे राम ! अवन्ती देश में पहिले एक कुशस्थली है । हे विभो ! यह उज्जयिनी-इस नाम से लोक में ख्याति को प्राप्त हुआ है। वहाँ पर जाकर आप महाराज दशरथ को पिण्ड दान के द्वारा सन्तृप्त करिए। वहाँ सुर और असुरों के गुरुदेव साक्षात् महाकाल समवस्थित रहा करते हैं। हे राजन् ! वहाँ पर सदा शिव देव सभी वाञ्छित मनोरथों के फलों के प्रदान करने वाले हैं। प्रभु श्रीजगन्नाथ के दर्शन करने पर कभी भी वियोग नहीं हुआ करता है। जो विप्रगण वहाँ पर जाया करते हैं तथा महान् बलवान् राजा लोग गमन किया करते हैं वे परम श्रेष्ठ स्थान को

प्राप्त किया करते हैं वहाँ पर महेश्वर देव विराजते हैं। हे विष्णो! इस अवन्ती मण्डल में यह तीर्थ समस्त तीर्थों का भी एक तीर्थ होता है। इसके उपरान्त वहाँ पर परम पुण्यों के देने वाली शिप्रा समागत हो गई थी ॥१५-२१॥

तस्यास्नात्वाततोरामस्तर्पयामासपूर्वजान् ।
महाकाल यदाद्रष्टु प्रस्थेरघुनन्दनः ॥२२
वाण्याततोऽशरीरिण्या देवदेवेन भाषितम् ।
भोभोराघव ! भद्रन्ते स्वनाम्ना स्थापयस्व माम् ॥२३
अत्रस्थान मयादत्त माविचारय राघव । ।
ततोहृष्टमनारामो लक्ष्मणवाक्यमब्रवीत् ॥२४
अनुगृहीत सौमित्रे देवदेवेनशम्भुना ।
तस्मात्स्थापयतीर्थेऽस्मिल्लिङ्गं रामेश्वरं शुभम् ॥२५
वाक्य लक्ष्मणः श्रुत्वा स्थापयामास शङ्करम् ।
दृष्ट्वा देवं पुरो रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥२६
एहिलक्ष्मणशीघ्रन्त्वं शिप्रायाजलमानय ।
करिष्यामियतोभ्रातर्देवस्यस्नपनं शुभम् ॥२७
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतयाकिंकरिष्यमि ।
रामनाऽहंमवंकालदानभावं करोमिते ॥२८

उसमें इसके उपरान्त श्रीराम ने स्नान किया था और अपने पूर्वजों का तर्पण किया। जिस समय में श्रीरघुनन्दन ने महाकाल भगवान् के दर्शन करने के लिये प्रस्थान किया उस समय में बिना शरीर वाली आकाश वाणी के द्वारा देवों के देव ने कहा—हे राघवेन्द्र! आपका कल्याण हो। अब आप अपने ही शुभ नाम से मेरी यहाँ पर स्थापना कर दो। हे राघव! यहाँ पर मेरे द्वारा दिया हुआ यह स्थान है। इसका कुछ भी विचार मत करो। इसके उपरान्त प्रसन्न मन वाले श्रीराम ने लक्ष्मण को से यह वचन कहा—हे सौमित्रे! मैं देवों के देव शम्भु भगवान् के द्वारा अनुगृहीत हुआ हूँ। इस लिये यह तीर्थ में परम शुभ श्रीरामेश्वर शिव लिङ्ग की स्थापना करो। श्रीराम के इस वचन का श्रवण करके लक्ष्मण

जी में श्रीशङ्कर भगवान् की स्थापना की थी। श्रीराम ने अपने आगे देवेश्वर का दर्शन करके लक्ष्मण से यह वचन कहा—हे लक्ष्मण ! आप यहाँ पर शीघ्र आइए और शिप्रा नदी का जल ले आओ। हे भाई ! क्योंकि मैं देवेश्वर का शुभ स्नपन करूंगा। लक्ष्मण ने वाक्य कहा—सीताजी से क्या करेंगे। मैं राम नाम वाला हूँ। सभी कामों में मैं आप का दास भाव करूंगा ॥२२-२८॥

इयंचपुष्टाद्दृढा पीवराचमनाप्यतः ।
वद राघवसत्येन अनया किंकरिष्यसि ॥२६
श्रुत्वापूर्वंहितद्वाक्यं लक्ष्मणेनप्रभाषितम् ।
विमनाराघवस्तस्थौ सीताचापिवरानना ॥३०
यदुक्तंलक्ष्मणेनाथ तच्चसीताचकारह ।
स्नात्वाभुक्त्वाचतौवीरौ महाकालमुपागतौ ॥३१
नीत्वाविभावरींतत्र गमनायमनोदधे ।
उत्तिष्ठवत्ससौमित्रे व्रजामोदक्षिणां दिशम् ॥३२
सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ताकथञ्चन ।
व्रजत्वमनयासार्द्धं भार्ययाकमलेक्षण ॥३३
नाहमग्रे वने यामि नवायोध्यांकथञ्चन ।
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिमुवाचरघुनन्दनः ॥३४
कथं पूर्वमयोध्याया निर्गतोसिमयासह ।
वने वसम्यहंरामनववर्षाणिपञ्चच ॥३५

हे राघव। यह तो परम पुष्ट-सुदृढ़ और मुझसे भी अधिक पीवर हैं। हे राघवेन्द्र! सत्यतापूर्वक यह बतलाइये कि इससे आप क्या करेंगे? ॥२६॥ प्रथम हितवाक्य का श्रवण करके लक्ष्मण ने यह भाषित किया था। श्री राघवेन्द्र उदास होकर स्थित हो गये थे और वह आनन (मुख) वाली सीता भी स्थित हो गई थी ॥३०॥ जो लक्ष्मण ने कहा था वही सीताजी ने किया था। उन दोनों वीरों ने स्नान और भोजन करके दोनों महाकाल में समुपागत हुए थे। वहाँ पर उस रात्रि को व्यतीत करके फिर गमन

करने के लिये मन किया। हे सौमित्रे ! उठो, चलो दक्षिण दिशा को चलें सौमित्रि (लक्ष्मण) ने यह वाक्य कहा—मैं कैसे भी नहीं जाऊँगा। हे कमल के समान नेत्रों वाले ! आप ही इस भार्या के साथ गमन कीजिए। मैं न तो आगे वन में जाऊँगा और न अयोध्या ही को किसी भी प्रकार से जाऊँगा। इस तरह से बोलते हुए लक्ष्मण से श्रीराघवेन्द्र ने कहा—पहिले मेरे साथ में आप अयोध्या से कैसे निकल कर आये हैं ? आपने उस समय में तो मुझ से यही कहा कि हे राम ! मैं चौदह वर्ष तक वन में निवास करूँगा ॥३१-३५॥

प्रसादः क्रियतामद्य नयमामपिराघव ।
इदानीं त्वमर्द्धपथे कथंस्थातासिचानुहन् ॥३६
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ता वनं पुनः ।
लक्ष्मणं विकृतं ज्ञात्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥३७
मामनुव्रज सौमित्रे एको यास्यामि कानानम् ।
द्वितीया च त्विय सीता उक्तो रामेण लक्ष्मणः ॥३८
धनु सगृह्यविमना उत्तस्थौलक्ष्मणस्तदा ।
प्राप्तौप्राकारमर्यादां क्षेत्रसीमां परन्तपौ ॥३९
स्वनिवतस्वसौमित्रे समर्पयचमेधनुः ।
रामवाक्यमुपश्रुत्य सीतांवैलक्ष्मणोऽब्रवीत् ॥४०
किमर्थं हि परित्यक्तः कोऽपराधः कृतो मया ।
रामेण च विरक्तः प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥४१
रामं ततोऽब्रवीत्सीता किमर्थं लक्ष्मणस्त्वया ।
देवसत्यस्त्यक्तोऽयं सुमित्रानन्दवर्धनः ॥४२

हे राघव ! मेरे ऊपर आप प्रसाद कीजिए मुझ को भी वन में ले चलिए। अब इस समय में आधे मार्ग में बीच में हा हे शत्रुहन ! क्यों स्थित हो रहे हो ? लक्ष्मण ने यही वाक्य कहा—मैं फिर वन में नहीं जाऊँगा। इस प्रकार से लक्ष्मण को परम विकृत जान कर श्रीराम ने यह वचन कहा—हे सौमित्रे ! मेरे पीछे गमन करो, मैं एक ही वन को जाऊँगा, दूसरी यह सीता है। इस तरह से श्रीराम के द्वारा लक्ष्मण से

कहा गया। उस समय में धनुष ग्रहण करके लक्ष्मण उदास होकर स्थित हो गये थे। इस प्रकार से वे दोनों परस्पर प्राकार मर्यादा वाली (चहार दिवारी से जिसकी हद बनी हुई थी) क्षेत्र की सीमा पर प्राप्त हो गये थे। श्रीराम ने कहा—हे सौमित्रे! मेरे धनुष को मुझे देवो और आप वापिस लौट जाओ। श्रीराम के इस वाक्य का श्रवण कर लक्ष्मणजी ने सीताजी से कहा—मुझे किस लिये परित्यक्त किया गया है? मैंने क्या अपराध किया है। श्रीराम के द्वारा परित्याग किया गया मैं निश्चय ही अब अपने प्राणों का त्याग कर दूंगा। इसके अनन्तर सीताजी ने श्रीराम से कहा—हे देव! आपके द्वारा परम और सुमित्रा के आनन्द के बढ़ाने वाले लक्ष्मण का परित्याग क्यों किया जा रहा है? ॥३६-४२॥

राघवस्त्वब्रवीत्सीता नाऽहं त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम्।
न कदाचिदपि स्वप्ने लक्ष्मणस्येदमप्रियम् ॥४३
श्रुतपूर्वन्तु सुश्रोणि! क्षेत्रस्यास्य विचेष्टितम्।
अस्मिन् क्षेत्रे न सौभ्रात्र सर्वो हि स्वार्थतत्परः ॥४४
परस्परं न मन्यन्ते स्वार्थनिष्ठैकहेतव.।
न शुश्रूषन्ति पितृन् पुत्रा. पुत्राणाञ्चतथापिता ॥४५
नच शिष्योगुरोर्वाक्यं गुरुर्वा शिष्यकर्म च।
अर्थानुबन्धिनी प्रीतिर्न कश्चित्कस्यचित्प्रिय. ॥४६
एवमुक्तवाक्ययोरामो लक्ष्मणोजानकीतथा।
लिंग तत्रप्रतिष्ठाप्याद्यवनाम्नारघुनन्दनः ॥४७
रामतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम्।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥४८

श्रीराघवेन्द्र ने सीताजी से कहा—मैं लक्ष्मण को नहीं त्यागूंगा। हे सुश्रोणि! पहिले कभी भी स्वप्न में भी लक्ष्मण का ऐसा अप्रिय वचन नहीं सुना था—यह इसी क्षेत्र का विचेष्टित है। इस क्षेत्र में सौभ्रात्र भाव नहीं होता है। यहाँ पर सभी स्वार्थ में तत्पर रहा करते हैं। स्वार्थ की निष्ठा ही जिनका एक मात्र हेतु होता है वे लोग परस्पर में किसी को नहीं माना करते हैं। पुत्र गण पिता की बात नहीं सुना करते हैं और पिता पुत्रों का

कुछ भी ध्यान नहीं रखते हैं । शिष्य गुरु के वाक्य को नहीं मानते हैं और गुरु भी शिष्य के कर्म को कुछ नहीं समझते हैं । यहाँ पर जो भी प्रीति होती है वह अर्थ (मतलब) के अनुबन्धन वाली ही हुआ करती है वास्तविक रूप से कोई भी किसी का प्यारा या प्रेम करने वाला नहीं होता है । यह जानकर श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकी वहाँ गये थे । श्री रघुनन्दन ने अपने ही नाम से यहाँ पर शिव लिङ्ग की स्थापना की थी । इस श्रीराम तीर्थ में मनुष्य स्नान करके तथा श्रीरामेश्वर प्रभु का दर्शन करके समस्त अपने इन पापों से विमुक्त हो जाया करता है और वह अन्त में विष्णु लोक में गमन किया करता है ॥४३-४८॥



७५—विष्णुमाहात्म्यवर्णन

महाकाल किमर्थं तु शिवादिवपदस्मृतम् ।
कोटीश्वर किमर्थं तु पावकं तत्किमुच्यते ॥१
नरदीपः किमर्थं तु द्वितीयावटमातरः ।
अभयेश्वर किमर्थं तु गन्धोद्धारणमेव च ॥२
शूलेश्वर किमर्थं तु किमोङ्कारस्य कथ्यते ।
धूतपाप किमर्थं तु किमङ्गारेश्वरं तथा ॥३
पुरी चोज्जयिनी दिव्या सप्तकल्पा कथं स्मृता ।
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ स्थानानामानि यानि च ॥४
शृणु व्यास यथा ख्याता पुरी दिव्या गुणप्रदा ।
स्वर्णशृङ्गा तु प्रथमे द्वितीये तु कुशस्थली ॥५
तृतीये त्ववन्तिका प्रोक्ता चतुर्थे त्वमरावती ।
विस्याला पञ्चमे कल्पे पुरी चूडामणीनिभ ॥६
षष्ठे त्वपावनीश्रेयोज्जयिनी सप्तमे पुरी ।
पुनरन्ते तु कल्पस्य स्वर्णशृङ्गादिका स्मृता ॥७

महा महर्षि श्री व्यासदेवजी ने कहा—यह महा काल किस लिये हुआ था ? अथवा यह शिव पद कैसे कहा गया है ? कोटीश्वर किस लिये है

और यह पावक क्यों कहा जाता है ? नारदीय किस लिये है तथा द्वितीया पद मातर क्यों है—प्रमयेश्वर किस लिये है और यज्ञोद्भव का क्या क्या प्रयोजन है ? धूतेश्वर किस लिये है और ओंकार क्यों कहा जाता है ? भूत पाप का क्या अर्थ है तथा ओंकारेश्वर का क्या प्रयोजन है ? पहिले यह दिव्या उज्जयिनी सातकल्प कैसे कही गयी है ? हे मुनि श्रेष्ठ ! इसके जो भी नाम हैं उन सबको कहिए । श्रीसनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास देव ! अब आप श्रवण करिए जिस तरह से यह मुमुक्षु को देने वाली दिव्या पुरी विख्यात हुई थी । प्रथम कल्प में यह स्वर्णशृङ्गा विख्यात थी—दूसरे कल्प में यही कुशस्थली नाम वाली कही गयी थी । तीसरे कल्प में इसको अवन्तिका कहा गया है और चौथे कल्प में अमरावती नाम से यह प्रसिद्ध हुई थी । पाँचवें कल्प में यही पुरी चूडामणी—इस नाम से विख्यात हुई थी । छठवें कल्प में इसको पद्मावती कहा गया और सातवें कल्प में इसीको उज्जयिनी पुरी बोला जाता है, फिर कल्प के अन्त में यह स्वर्णशृङ्गा आदि नाम वाली कही गयी है ॥१-७॥

एतानि सप्तनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥८
उज्जयिन्यां पुरा राजा बभूव किल पार्थिवः ।
तस्य पुत्रो महावीर्यो नाम्ना कनकदानवः ॥९
युद्धाय स महावीर्यं शक्र युद्धे समाह्वयत् ।
क्रोधादिन्द्रणसंग्रामे युध्यमानो निपातितः ॥१०
निहत्य दानवं शक्रो भयात्तस्यामुरस्य तु ।
जगाम स कनकान्वेषी कैलासस्य कराल्यम् ॥११
दृष्ट्वा प्रणम्य देवेशं त्र्यम्बकं कृत्तिवाससम् ।
भीतो विज्ञापयामास सहस्राक्षस्तपोधन ॥१२
अभयं देहि मे देव! दानवादस्य कारणे ।
शक्रस्येत्थं वचः श्रुत्वा शरणागतवत्सल ॥१३
ददावभयमेवासौ मा भैस्त्वमन्धकाद्विभे ।
कृत्वा रूप महादेवो विश्वरूप सुभैरवम् ॥१४

जो कोई मनुष्य प्रातः काल मे उठकर इन सात नामों को पढ़ता है वह सात जन्मों मे किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है—इस मे कुछ भी संशय नहीं है। इस उज्जयिनी नगरी मे पहिले अन्धक नाम वाला राजा हुआ। उसका एक पुत्र था जो महान् वीर्य वाला था, उसका नाम कनक दानव था। उस महान् वीर्य वाले ने युद्ध के लिये युद्ध भूमि में इन्द्र देव का आह्वान किया। इन्द्र को बहुत ही अधिक क्रोध आया और उसने संग्राम भूमि मे युद्ध करते हुए उस को निपातित कर दिया अर्थात् मार डाला। इन्द्र ने युद्ध मे दानव को मार तो दिया किन्तु फिर वह अन्धासुर के भय से भगवान् शङ्कर के अन्वेषण करने वाला होकर शङ्कर के निवास स्थान कैलाश पर्वत पर चला गया। वहाँ पर अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले देवेश्वर का दर्शन करके उनको इस ने प्रणाम किया। सहस्र नेत्रों से समाकुल इन्द्र ने अत्यन्त भय भीत होकर प्रार्थना की थी—हे देव! अन्धक दानव से मुझे अब आप अभय का दान दीजिए। शरण में समागत प्राणी पर दया स्नेह करने वाले प्रभु शङ्कर ने इन्द्र देव के इस वचन को सुनकर उसे पूर्ण विश्वास दिया कि तुम अन्धक से भय मत करो। महादेव ने सुभैरव विश्वरूप धारण कर लिया था ॥८-१४॥

सर्पैर्लिहद्भिरत्युग्रैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्विषोल्बणैः।
पातालोदररूपं च भैरवाराधनादिभिः ॥१५
भुजैरनेकसाहस्रं च हुताशधृतस्तथा।
सिंहचर्मोत्तरीयाणं व्याघ्रत्वगुत्तरीयकम् ॥१६
गजाजिनकृताटोपं चन्द्राग्निरविलोचनम्।
महामहोग्रतुल्याभिजट्टाभिर्भूषितं सदा ॥१७
क्षोभयन्नालयन्नवीन् पातालस्यतलावधि।
ईदृग्रूपं विधायैशो दनुजं स्वभवनावहम् ॥१८
अथानन्तमहीभीमः पादेनैकेन शङ्करः।
तत्र वहिर्हृदोऽज्ञात. सर्वदैवतवन्दितः ॥१९
स्थानं शिवपदं बद्धियम्पदाकान्त्यान्यिषु।
यस्मादनपुरानोटिः शादांगुष्ठम्यधारिता ॥२०

कोटितीर्थं ततःख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।
अगस्त्येनतथाकोटिस्तीर्थानामथधारिता ॥२१

बहुत तीक्ष्ण दाढ़ों वाले—विष से महान् उल्वण अत्यन्त उग्र—फैलाये हुई फणों वाले सर्पों से भूषित थे जो कि पाताल के उदर में घोर महान् भैरव ध्वनियों से निनाद करने वाले थे । बहुत से प्रकार के शस्त्रास्त्रों का धारण करने वाले बहुत से सहस्र भुजाओं से युक्त उनका स्वरूप था । सिंह के चर्म का परिधान करने वाला तथा व्याघ्र चर्म का अम्बरीय धारण करने वाला उनका स्वरूप था । गजचर्म से प्रावृत किये हुए तथा चन्द्र और अग्नि के समान नेत्रों वाले थे । महान् पर्वतों के तुल्य जानुओं से सदा भूषित थे । पाताल के उदर के मध्य में सब को क्षोभ करने वाले थे । ईश ने उस समय में ऐसा वपु था और दैत्यों को भय देने वाला अपना स्वरूप बना लिया । तब भगवान् शंकर ने भीम स्वरूप से युक्त होते हुए एक पाद से इस मही में समवष्टम्भ किया । वहीं पर समस्त देवों के द्वारा वन्दित एक कुण्ड उत्पन्न हो गया, वही क्षिप्रपद—इस नाम से विख्यात हो गया क्यों कि विभु ने अपने पाद से इसे आक्रान्त कर दिया । क्यों कि यहाँ पर पहिले पादांगुष्ठ की धारिता कोटि थी अतएव सम्पूर्ण पापों का प्रणाश करने वाला यह कोटितीर्थ—इस शुभ नाम से ही विख्यात हो गया । यहाँ पर महामुनि अगस्त्यजी ने एक कोटि तीर्थों की धारित की थी, इसलिये भी लोक में ऐसा परम शुभ नाम सदा ही कहा गया है ॥१४-२१॥

ततोपीदृक शुभं लोके कोटितीर्थं सदा स्मृतम् ।
दृष्ट्वा तु त्रिदशा सर्वे स्नाता वै हितकाम्यया ॥२२
महाकालं कृत रूपं महाकालस्ततः स्मृतः ।
अन्धासुरोपिदनुजः पुनः स्वाहृत युधि ॥२३
कोपेनमहताविष्टोरणसूर्यप्यवारयत् ।
सर्वैन्योनिगतं प्राप्तायस्तेत्रिदशाःस्थिताः ॥२४
महत्यासेनयासार्द्धं रथवारणयुक्तया ।
तद दानवान्वीक्ष्य महाहृदकुन्तोष्मान् ॥२५

वेपन्तस्तेऽसुसन्नद्धाः शम्भुं शरणमाययुः ।
माभैष्टेत महाकालो देवानूचे त्रिलोचनः ॥२६
गृहीत्वा शूलमातिष्ठद् दृष्ट्वादष्टाधरो रुषा ।
कोपयुक्ते विरूपाक्षे ज्वालाभिः पूरितं नभः ॥२७
अन्धकेनाथ रुष्टेन शर कोटिस्तु दुःसहा ।
मुक्ता जगाम देवानां नाशाय शलभाकृतिः ॥२८

समस्त देव गणो ने इस तरह से देखा तो उन सभी ने अपने हित की कामना से वहाँ पर स्नान किया था ॥२२॥ महान् काल के तुल्य अपना स्वरूप किया इसी कारण इसे महाकाल इस नाम से कहा गया है । अन्धासुर ने भी अपने पुत्र को युद्ध में मृत हुआ सुनकर महान् क्रोध से समाविष्ट होते हुए उसने संग्राम के तूर्य वाद्य बजवा दिये थे । वह अपने समस्त सेना के ही साथ में निकल पड़ा और वहीं पर सम्प्राप्त हो गया जहाँ पर देवगण स्थित थे । उन देवों ने बड़ी भारी विशाल और रथ के आवरणों से युक्त सेना के साथ उसी समय में महान् संग्राम को करने के लिये उद्यम करने वाले सब दानवों को देखा । वे सुसम्बद्ध थे किन्तु काँप उठे थे और भगवान् शम्भु के शरण में आ गये थे । उस समय में त्रिलोचन महाकाल भगवान् ने उन देवों से कहा—डरो मत । तब उन्होंने अपने त्रिशूल को उठाया और क्रोध से अपनी दाढ़ों से अधरों को काटते हुए स्थित हो गये थे । भगवान् विरूपाक्ष के क्रोध से युक्त होने पर आकाश ज्वालाओं से पूरित हो गया । परम रुष्ट हुए अन्धक असुर ने अत्यन्त दुस्सह एक करोड़ शरों को छोड़ा था जो कि शलभों के समान आकृति वाले समस्त देवों के विनाश करने के लिये छोड़े गये थे ॥२३-२८॥

विस्फुलिङ्गार्चिषं वह्निं मन्यमानः पिनाकधृक् ।
शरजालं स्फोटकेतं च बाणैरताडयत् ॥२९
अन्धकोऽपि हि युद्धस्थो शिथिलः शिथिलायुधः ।
निरुद्धः शम्भुना बाणैरलिभिः पंकजं यथा ॥३०
तस्य सैन्यं च बहुधा स्वगणैर्युद्धयोधिभिः ।
योधयद्भिर्दिव्यैः रथान्युद्धान्निरुपमाश्रितैः ॥३१

ततोऽन्धकेन सैन्यं स्वं भिन्नं दृष्ट्वा तथा सुरैः ।
आत्मानञ्च महेशेन विद्धं च बाणकोटिभिः ॥३२
विकलीकृतदेहोऽसौ भयमार्गस्त्वरवेगतः ।
चकारतामसीं मायां मायाशतविदां वरः ॥३३
तयान्तर्हितदेहोऽसौ जगामदिशमुत्तराम् ।
शम्भोर्भीतिहरं विप्रद्व भ्राम्यमुविभिन्नहृत् ॥३४
येनाध्वनागतोदैत्यस्तेनदेवोजगामह ।
पदन्नदृश्यतेक्वासौ गतोऽदृष्टः पुनः पुनः ॥३५

पिनाक नामक धनुष के धारण करने वाले भगवान् ने विस्फुलिंग वाली अग्नियों (ज्वालाओं से युक्त अग्नि)को छोड़ दिया और उन्होंने उनके सैकड़ों ही खण्ड २ कर दिये थे तथा अपने बाणों से उसका ताड़न किया था ॥२९॥ वह अन्धक असुर भी युद्ध स्थल में स्थित होता हुआ बहुत ही शिथिल आयुधों वाला होकर स्वयं भी परम शिथिल हो गया । जिस प्रकार से भौंरे कमल को एक दम चूस लिया करते हैं उसी तरह से यह अन्धकासुर भी शम्भु के द्वारा बाणों से एक दम निरुद्ध कर दिया गया था ॥३०॥ इसकी प्रायः सभी सेना युद्ध भूमि में संग्राम करने वाले शिव के भक्तों के द्वारा जो कि परम दिव्य और शोभन थे और न्यायानुसार विधि का समाश्रय ग्रहण करने वाले थे, निरुद्ध कर दी गयी थी ॥३१॥ इसके पश्चात् अन्धक ने अपनी सेना को देवों के द्वारा भिन्न हुई देखकर और अपने आपको महेश के द्वारा करोड़ों बाणों से विद्ध देखकर विकलीकृत देह वाला यह भय का आश्रय लेने वाला हो गया और फिर सैकड़ों मायाओं के विज्ञाता इसने अपनी एक तामसी माया की । उस माया से अन्तर्हित देह वाला यह उत्तर दिशा की ओर चला गया जो कि भगवान् शम्भु की भीति (भय) का हरण करने वाली थी । भिन्न हृदय वाला यह भू मण्डल में भ्रमण कर रहा था । जिस मार्ग से यह दैत्य गया उसी से देव भी गये थे किन्तु यह कहीं पर भी गया हुआ दृष्ट दिखाई नहीं देता और भोगता हुआ बारम्बार चला जा रहा था ॥३२-३५॥

उवाचचान्धकश्शब्द तथोवाचमहेश्वरः ।
तत्रतीर्थं मथोत्पन्नं वाचन्धकमितिश्रुतम् ॥३६
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा यो वै दद्यात्सशर्करम् ।
नवम्यां मार्गशीर्षस्त शुक्लाया श्रद्धयान्वितः ॥३७
अक्षयंतद्भवेत्सर्वं दाता शिवपुरं व्रजेत् ।
पितृनेद्दिश्ययत्किञ्चिद्दीयतेभक्तितःशिवे ॥३८
तृप्तास्तिष्ठन्ति ते तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
तमसा छादितादेवा. सर्वभूवु. समाकुला। । ३९
सम्भ्रान्तमनसस्सर्वे नकिञ्चिदविमेनिरे ।
एतस्मिन्नन्तरेव्यास नरादित्यः स्व तेजसाः ॥४०
उत्तस्थौ नररूपेण कुर्वन्विर्वितिमिरा दिशः ।
नष्टे समसि दैत्येऽपि प्रकाशे प्रकटे सति ॥४१
देवामुदमवापुस्ते दृष्ट्वाऽनन्त तुलोचनं. ।
स्तुवन्तोविविधं. स्तोत्रैर्नररूपदिवाकरम् ॥४२

वहाँ पर अन्धक ने शब्द बोला तथा महेश्वर प्रभु ने भी बोला। वहाँ पर वाचन्धक तीर्थ उत्पन्न हो गया—ऐसा सुना गया है। वहाँ पर स्नान करके परम शुचि होकर जो कोई शर्करा के सहित दान किया करता है और मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि में श्रद्धा युक्त होकर दान किया करता है तो वह अक्षय हो जाता है। सबका दान करने वाला शिवपुर को गमन किया करता है। हे शिवे ! पितृगण का उद्देश्य करके भक्ति भाव से जो कुछ भी दिया जाता है तो वे पितृगण परम सन्तृप्त होकर जब तक भूत सम्प्लव होता है तब तक स्थित रहा करते हैं। उस समय में दैत्य की माया से विहितश्रम से ऐसा अन्धकार हो गया कि सभी देवगण तमसाच्छादित होते हुए परम समाकुल हो गये थे।।३६-३९।। सभी सम्भ्रान्त मन वाले होकर कुछ भी नहीं मान रहे थे। इसी बीच में हे व्यास ! नरादित्य अपने तेज से नररूप से उत्थित हो गये और उन्होंने सभी दिशाओं को बिना अन्धकार वाली कर दिया। अन्धकार के नष्ट हो जाने पर वह दैत्य भी प्रकाश में प्रकट होगया। उस

दैत्य के प्रकट हो जाने पर देवों ने अपने लोचनों से अनन्त को देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की। देवों ने अनेक स्तोत्रों के द्वारा उन नर रूप धारी दिवाकर भगवान् का स्तवन किया था ॥४०-४२॥

उदितस्तेन रूपेण दीप्तोयस्माद्दिवाकरः ।
तेनास्य नाम ते चक्रुर्नरदीपइतीश्वराः ॥४३
यः पश्यति नरो भक्त्या नरदीपं दिवाकरम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥४४
षष्ठ्यामर्कदिने विप्र सप्तम्यामुपवासकृत् ।
दिनक्षयेऽप्यसंक्रान्तौ ग्रहणे विषुवत्यथ ॥४५
कुण्डे स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जपन्नियतमानसः ।
॥४६

गीत वाद्य पुरः कृत्वा प्रणम्याष्टाङ्गमेव च ॥४७
प्रातर्मध्येपराह्णे वा कृत्वार्कस्य प्रदक्षिणम् ।
सम्मुक्तः सर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृतैरपि ॥४८
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
सूर्यलोकं प्रयात्याशु सुरैरपि दुर्लभम् ॥४९

क्योंकि वह दिवाकर प्रभु नर के रूप को धारण करके उदित हुए और परम प्रदीप्त हो गये इसी कारण से उन ईश्वरों ने नरदीप यह नाम उनका रखा। जो कोई मनुष्य भक्ति से इस नर रूप दिवाकर का दर्शन किया करता है चाहे भले ही वह ब्रह्म हत्यारा ही क्यों न हो तो भी समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है। हे विप्र ! रविवार से युक्त षष्ठी में तथा सप्तमी में उपवास करने वाला—दिन के क्षय में—संक्रान्ति में—ग्रहण में—विषुवदिन में कुण्ड में स्नान करके शुचि होकर नियत मन वाला होता हुआ जाप करे और नरदीप का अवलोकन करे तथा स्तोत्र, आदित्य मङ्गल-धूप-दीप एवं विविध नैवेद्यों से गीत वाद्य पहिले करके आठों अङ्गों से प्रणाम करे। प्रातः काल, मध्याह्न और अपराह्न काल में सूर्य की प्रदक्षिणा करे तो वह मनुष्य सब पापों से जो कि सात जन्मों में भी

किये गये हैं मुक्त हो जाया करता है। अन्त मे इस नर लीला का संवरण करने के पश्चात् वह करोड़ो सूर्यो के सदृश—सब कामनाओं की पूर्ति वाले विमानो के द्वारा सूर्य लोक मे प्रयाण किया करता है जो कि बड़े २ देवों को भी परम दुर्लभ होता है ॥४३-४६॥

शक्रात्प्राप्यपुरायस्माद्भानुरत्रप्रतिष्ठितः ।
नरेणैव प्रसादेन नरदीपस्ततो ह्ययम् ॥५०
तदैवास्यपुराव्यास ! यात्रा शक्रेणनिर्मिता ।
आगमिष्याम्यहं पार्थ सार्द्धं देवैः समाहितः ॥५१
ज्येष्ठेऽतीतेद्वितीयायां नरदीपेतुसर्वदा ।
तत्राहमागतोज्ञेयो लोकं देवस्यवर्पणात् ॥५२
ततोऽनन्तरमागम्य देवा ये त्रिदशालये ।
दृष्ट्वा देवं तथारव नरदीपमुदीपनम् ॥५३
कृत्वायात्राञ्चतेयान्तिदेव यात्रास्यमेतत ।
य पश्येन्मानवोभक्त्यानरदीपरथस्थितम् ॥५४
सर्वपापविनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ।
रथयात्रामयो वक्ष्ये नरदीपस्य या पुनः ॥५५
ता कृत्वा चैव तत्पुण्यं मुनीभि. परिकीर्तितम् ।
ज्येष्ठेऽतीते द्वितीयायां रथस्थो हि दिवाकरः ॥५६

क्योंकि पहिले परम पुरातन समय मे इन्द्र देव से प्राप्त करके भानु को यहाँ पर प्रतिष्ठित किया और यह प्रतिष्ठापन नर के द्वारा ही प्रसाद से हुआ अतएव तभी से यह नरदीप नाम वाला हो गया है। हे व्यास ! उसी समय से पहिले इन्द्र ने यह यात्रा निर्मित की और कहा—हे पार्थ ! मैं परम समाहित होकर देवों के साथ यहाँ पर आऊगा। ज्येष्ठ मे द्वितीया तिथि मे सर्वदा इस नरदीप मे यहाँ पर देव के दर्शन होने से लोगों को मुझे आया हुआ ही समझना चाहिए। इसके पश्चात् आकर जो देव त्रिदशालय में यहाँ पर आकर मुदीपन नरदीप देव का दर्शन करके जो यात्रा किया करते है वे फिर देव दात्रालय में गमन किया करते है।

जो मनुष्य भक्तिभाव से रथ में स्थित नरदीप का वर्णन करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर सूर्य लोक में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित हुआ करता है। जो वहाँ की रथ यात्रा होती है उसे मैं फिर कहूँगा। उसको सम्पन्न करके जो कुछ उसका पुण्य—फल होता है उसे मुनियों ने कीर्तित किया है। सतीत ज्येष्ठ में द्वितीया तिथि के दिन में भगवान् दिवाकर रथ में संस्थित हुआ करते हैं ॥५०-५६॥

कुशस्थल्यां द्विजश्रेष्ठैर्ब्राह्मणैर्यः प्रणीयते ।
उत्तरां दिशमायान्तं यः पश्यति विवस्वतम् ॥५७
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य लभतेऽसौऽखिलं फलम् ।
निवृत्तं केशवार्काद्योरथं पश्यति मानवः ॥५८
मुण्डीरस्वामिनोयात्रा कृतातेननसंशयः ।
रथमाकर्षतेयस्तु रज्ज्वाकर्षणतंमुने ! ॥५९
कुलमुद्धरते सोऽपि पूर्वान्पितृपितामहान् ।
दक्षिणाभिमुखं यान्तं नरदीप द्विजोत्तम ! ॥६०
ये यथना प्रपश्यन्ति ते यान्ति च त्रिविष्टपम् ।
सूर्येण वेष्ठते येन रथं देवमयापिवा ॥६१
सर्वकामानवाप्नोतिकृतपुण्यस्तथायते ।
प्रदक्षिणान्तु पूर्यस्य भक्त्याकुर्वन्ति ये नराः ॥६२
प्रदक्षिणीकृतातैस्तुसप्त द्वीप वसुन्धरा ।
प्राप्नुवन्त्यायथोभक्त्या योनीयातिदिवाकरम् ॥६३

कुशस्थली में श्रेष्ठ द्विजों के द्वारा ब्राह्मणों से प्रणयन किया जाता है। जो कोई उत्तर दिशा में आये हुए दिवस्पति का दर्शन करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का पूरा फल प्राप्त करता है। जो मानव केशवार्क से निवृत्त रथ को देखता है उसने मुण्डीर स्वामी की यात्रा पूर्ण करली है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे मुने ! जो मनुष्य रज्जु के आकर्षण के द्वारा रथ का आकर्षण किया करता है वह भी अपने कुल का उद्धार कर दिया करता है जो कि पूर्व के पिता पितामह आदिक होते हैं उन सब का उद्धार कर देता है। हे द्विजोत्तम ! जो लोग परम संयत होते हुए दक्षिण

दिशा की ओर अभिमुख होकर गमन करते हुए नर दीप का दर्शन किया करते हैं वे सीधे ही त्रिविष्टप को चले जाया करते हैं। जो सूत्र के द्वारा दीप को—रथ को अथवा देव को वेष्टित किया करते हैं वे भी परम पुण्य के करने वाले हैं और अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करते हैं। जो मनुष्य भगवान् दिवाकर की भक्ति से प्रदक्षिणा करते हैं उनने तो मानो सातों द्वीपों वाली सम्पूर्ण वसुन्धरा की प्रदक्षिणा कर ली है अर्थात् सम्पूर्ण वसुन्धरा की परिक्रमा करने का फल उन्हें प्राप्त हो जाया करता है। प्रातःकाल में उठकर भक्ति भाव से जो कोई मौन व्रत धारण करने वाला भगवान् दिवाकर के समीप में जाया करता है उसको सर्वा और पुण्य फल बतलाते हैं ॥५७-६३॥

दृष्ट्वातुपूर्वद्वारेण नमस्कृत्यद्विजोत्तम ।
प्रविश्य दक्षिणेनैव रथचक्रं प्रपूजयेत् ॥६४

तेनद्वारेण निष्क्रम्य प्रणिपत्यव्रजेत्ततः ।
पश्चिमद्वारमाश्रित्य रथस्य सूर्यमर्चयेत् ॥६५

चामरे च वितानञ्च घण्टां वापि निवेदयेत् ।
पूर्वद्वारे तु गोदेया तथाऽश्वं च दक्षिणे ॥६६

पश्चिमे चगजः प्रोक्त उत्तरेरथ एव च ।
सुर्यादिवतु योयाति रथदीपस्य मानव ॥६७
गौ सूर्यनिजमार्गेण स्वालोक्यं लभते ध्रुवम् ।
प्रदक्षिणा महामेरोः कृता तेन महामुने ! ॥६८

पदात्पदको सहस्र यो व्यतीपातशतेन च ।
अश्वानाऽश्व सहस्रेणयायायातत्फलभेत् ॥६९
नरदीपेरथाग्रे यथनं कारयंस्तु यः ।
प्रिया न विच्युतिस्तस्य सूर्यलोके महीयते ॥७०

हे द्विजोत्तम ! पूर्व दिशा के द्वार को देखकर नमस्कार करे—दक्षिण द्वार से प्रवेश करके रथ चक्र का पूजन करना चाहिए ॥६४॥ उस द्वार से निकलकर प्रणिपात करके वहीं से गमन करे। पश्चिम दिशा के द्वार

का मादम ग्रहण करके रथ में स्थित सूर्य का पूजन करना चाहिये । वहाँ पर दो भवन, वितान और घण्टा निवेदित करे । पूर्व द्वार में दो देनी चाहिए । दक्षिण द्वार पर भवन समर्पित करे । पश्चिम द्वार पर हाथी देवे और उत्तर दिशा के द्वार पर रथ समर्पित करे । इस तरह से जो मानव रथ दीप की यात्रा करे वह मनुष्य गो—सूय—शिव और इन्द्र के स्वालोक्य के सुख का लाभ प्राप्त किया करता है । हे मुने ! यह समझ लो कि उस मनुष्य ने महामेरु की प्रदक्षिणा करली है अर्थात् उसे मेरु की परिक्रमा करने का पुण्य प्राप्त होता है । जो सौ स्वर्णपात्रों में एक सहस्र गौओं का दान करता और सहस्र अश्वों का दान करता है यात्रा में उसका फल उसे प्राप्त हो जाया करता है । नर दीप के रथ पर समारूढ होने पर जो वमन कराया करता है उस पुरुष की श्री से कभी भी विच्युति नहीं हुआ करती है और अन्त में वह सूर्यलोक में महत्त्व की प्राप्ति किया करता है ॥६२-७०॥

सूर्यस्य पुरतो वाप्यां मासं नित्यं विगाह्य च ।
यस्तमालोकते मर्त्यो दुस्स्वप्नं तस्य नश्यति ॥७१
मकरप्राप्तेऽनुदिनं व्यासं नरदीपं प्रपश्यति ।
उत्तमं स्थानमासाद्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥७२
प्रक्रीडय बन्धुभिः सार्द्धं मृतः सूर्यपुरं व्रजेत् ।
प्रणष्टे तिमिरे विप्र आसेस्तत्र सुप्रभे ॥७३
इतेऽन्धके महेशेन शूलेनामितशालिना ।
महृष्टाश्च सुरास्सर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥७४
शङ्खं दध्मौ तदा विष्णुः सुराणां हितकाम्यया ।
तत्र तीर्थमभोत्पन्नं शङ्खोद्धारणसञ्ज्ञकम् ॥७५
[illegible]म् ।
॥७६
देवस्य दक्षिणे भागे शूलेनासक्षितं स्थित. ।
समुद्रं स्नात्वा नराऽष्टम्यां ये पश्यन्ति जितेन्द्रियाः ॥७७

सूर्यदेव की सामने में स्थित वापी बावड़ी में जो अवगाहन करके मनुष्य उसका दर्शन करता है उसके दु स्वप्न का कुफल नष्ट हो जाता है ॥७१॥ हे व्यास देव ! भक्ति से जो अनुदिन नर दोप के दर्शन किया करता है वह आयुत्तम स्थान पाकर पुत्र-पौत्रादि समन्वित होता है और अपने बन्धुओं के साथ आनन्द सहित क्रीड़ा करके मृत्यु प्राप्त करने पर वह सूर्य के पुर में गमन करता है। हे विप्र ! उस तिमिर के नष्ट हो जाने पर सर्वत्र सुन्दर प्रभा के उत्पन्न होने पर तीन शिखा वाले त्रिशूल से भगवान महेश्वर के द्वारा अन्धक दैत्य के निहत हो जाने पर ब्रह्मा, इन्द्र आदि प्रधान सभी सुरगण बहुत ही प्रसन्न हो गये थे। उसी समय में सुरगणों की हित की कामना से भगवान विष्णु ने अपना शङ्ख बजाया था। वहीं पर शङ्खोद्धारण नाम वाला तीर्थ समुत्पन्न हो गया था ॥७२-७५॥ हे विप्रेन्द्र ! वहाँ पर विष्णु सन्निहित रहते हैं। लिंग के समीप में अनादि चतुर्मुख लिंग सन्निहित हैं। देव के दक्षिण भाग में शूल से पालसित स्थित रहते हैं। जो इन्द्रियों को जीत लेने वाले लोग चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि में उनका दर्शन किया करते हैं उनका महान् पुण्य होता है ॥७६-७७॥

ते क्षीणाशेषपापौघाः प्राप्स्यन्ति परमां गतिम् ।
योगिनीनां बलिं यस्तु यथावत्सम्प्रदास्यति ॥७८
भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्नासौ केनापि बाध्यते ।
द्वादश्यां समुपोष्यैव स्नात्वा देवं जनार्दनम् ॥७९
य. पश्येच्छार्ङ्गिनं देवं सोऽच्युतं स्थानमाप्नुयात् । ८०
यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यस्सर्वभूतो न च सर्वभूत ।
विश्वं यतश्चैव हि विश्वहेतुर्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥८१

उन मनुष्यों के अशेष पापों के समूह क्षीण हो जाते हैं और वे परम श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुआ करते हैं। जो वहाँ पर योगिनियों को बलि यथावत् सम्प्रदान करता है वह भूत प्रेत और पिशाच आदि के द्वारा कभी भी बाधित नहीं किया जाता है। द्वादशी के दिन भली भाँति उपवास करके स्नान करने के पश्चात् जो देव जनार्दन शार्ङ्गधारी देव का दर्शन किया

करता है वह प्रच्युत स्थान को प्राप्त करता है ॥७८-८०॥ जो स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप वाला है—अकटित प्रकाश से युक्त है—जो सर्वभूत है और सर्वभूत नहीं है—जिससे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और जो इस विश्व का हेतु है उस परम पुरुषोत्तम के लिए नमस्कार है ॥८१॥

७६—गयातीर्थमाहात्म्यवर्णन

शृणु व्यास ! प्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमतः परम् ।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं गयानामेतिनामतः ॥१
यत्रस्नात्वानरो नित्य मुच्यतेचऋणत्रयात् ।
देवान् पितृन्समभ्यर्च्य विष्णुलोक स गच्छति ।
कीकटेषुगयापुण्या नदीपुण्या पुना पुनः (पुनः पुना) ॥२
तीर्थानामुत्तमतीर्थं पुण्योराजगिरिस्तथा ।
(च्यवनस्याश्रमः पुण्यः पुण्योराजगिरिस्तथा) ॥३
सकथं विदितोदेशे महाकालवने शुभे ।
एतद्वेदितुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ! ।
शृणु व्यास ! कथाम्पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ॥४
गत्वा. श्रवणमात्रेण पितरोयान्तिसद्गतिम् ।
पुराकृतयुगे पुण्ये युगादिदेवनामतः ॥५
राजासीत्मतुधर्मात्मापुण्यश्रवणकीर्तनः ।
तस्यपालयतः सम्यक्प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥६

भगवान् सनत्कुमारजी ने कहा था—हे व्यास ! अब मैं एक इससे भी परमोत्तम भागे तीर्थ के विषय में बतलाता हूँ । आप उसका श्रवण कीजिएगा ॥१॥ समस्त तीर्थों में 'परम उत्तम नाम से गया कहे जाने वाला एक श्रेष्ठ तीर्थ है । जिस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य नित्य ही तीनों ऋणों से छुटकारा पा जाया करता है । देवों को और अपने पितृगणों को वहाँ पर भली भाँति अभ्यर्चन करके वह मनुष्य सीधा विष्णु लोक को चला जाता है ॥२॥ श्री व्यासदेव ने कहा था—व्यासजी बोले—कीकटों

में यथा परम श्रेष्ठ पुण्यमयी पुनः पुनः नदी है। तीर्थों में उत्तम तीर्थ तथा पुण्यमय राजगिरि है। च्यवन का आश्रम पुण्यमय है तथा राजगिरि पुण्यमय है। परम शुभ महावास वन में और देश में यह मैंने विदित हुआ है—हे तपोधन ! मैं यह जानना चाहता हूँ। आप विस्तार से कहिए। श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! अब आप पापों का हरण करने वाली इस परम पुण्यमयी पवित्र कथा का श्रवण कीजिए जिसके श्रवण करने मात्र से ही पितृगण सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं। पुरातन समय में परम पुण्यमय कृतयुग में एक युगादि देव नाम का राजा हुआ था। वह बहुत ही धर्मात्मा और पुण्य श्रवण तथा कीर्तन वाला था। उसकी प्रजा ऐसी थी जिसका वह अपने औरस पुत्र पौत्रों के समान ही पालन किया करता था ॥१-७॥

बभूवुः सर्वे सम्पन्ना वर्द्धमानाः समन्ततः ।
धर्मश्चतुष्पदो नित्यं यस्मिन्राज्ञि प्रशासति ॥८
कालवर्षी च पर्जन्यो ऋतवः स्वाङ्गधारिणः ।
बहुसस्यफला पृथ्वी गावश्च बहुदुग्धदाः ॥९
वेदवादरता विप्राः क्षत्रियाश्चाहवशालिनः ।
वैश्यायनपरा नित्यं शूद्राः शुश्रूषणे रताः ॥१०
वर्णाश्रमरताः सर्वे सर्वधर्मोपदेशकाः ।
श्रुतिस्मृतिपरो धर्मो हृष्टपुष्टजनाकरः ॥११
नाधिव्याध्यभिसम्भूता म्रियन्ते केऽपि मानवाः ।
दुःशीला दुर्भगा नार्यो विधवा नो तथैव च ॥१२
बहुपुत्राः सुपुत्राश्च मृतपुत्रानवन्ध्यकाः ।
रूपशीलगुणोपेताः पतिव्रतपरायणाः ॥१३
सुमार्गपरसङ्कीर्णा दस्युदोषविवर्जिताः ।
धूपगन्धसुगन्धिता दीपिताश्च गृहे गृहे ॥१४

सभी प्रजाजन सर्व सम्पन्न और सभी प्रकार से वर्द्धमान हुए थे। उस राजा के प्रशासन काल में जिस समय में नित्य ही धर्म चार चरणों वाला अर्थात् सर्वाङ्ग पूर्ण था। मेघ समय पर वर्षा करने वाला था और

सभी ऋतुएं अपने २ धर्मों के समाचरण करने वाली थी। भूमि बहुत शस्यों के फलने वाली थी और गौऐं बहुत अधिक दुग्ध देने वाली थीं। विप्रगण सब वेदों के पाठ करने में रति रखने वाले थे और क्षत्रिय लोग बाहु बल से सम्पन्न थे। वैश्य धन परायण अर्थात् बहुत ही सम्पत्तिशाली थे तथा शूद्रगण सबकी शुश्रूषा करने में रत रहा करते थे। सभी लोग अपने २ वर्णों और आश्रमों में निरत रहने वाले थे। सभी धर्मों के उपदेशक थे। उस समय में श्रुति तथा स्मृति में परायण ही धर्म था और हृष्ट-पुष्ट जनों को स्थान था। वह ऐसा शासन एवं धर्म का प्रभाव था कि उस समय में कोई भी मनुष्य आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक रोग) से अभिसम्भूत दिखलाई नहीं देते थे। नारियाँ भी बुरे स्वभाव वाली—बुरे भाग्य वाली तथा विधवाऐं नहीं होती थी। उस समय में धार्मिक राजा के शासन का ऐसा प्रभाव था कि स्त्रियां बहुत पुत्रों वाली—श्रेष्ठ पुत्रों वाली—मृत वत्सा और वन्ध्याऐं नहीं थी। सभी नारियाँ रूप लावण्य और गुणों से समन्वित थी तथा पातिव्रत धर्म में परायण रहने वाली थी। समस्त पृथ्वी सुवर्ण कर बहुलीयां थी तथा दस्यु (चोर डाकुओं) के दोष से रहित थी। सभी जगह घर घर में हवन भोजन, दान निरन्तर हुआ करते थे ॥८-१४॥

जपदानतपोहोमस्तुतिमङ्गलक्रियापराः।
जनाः सर्वत्र दृश्यन्ते स्वधर्मपरायणाः ॥१५

चतुष्पच्चरो धर्मो ह्यधर्मः पादविग्रहः।
एवं राजा स धर्मात्मा युगादिदेवसन्निभः ॥१६

येनेयं पालिता पृथ्वी धर्मेण रक्षिताः प्रजाः।
अवन्त्यां च पुरा व्यास ! यज्ञकोटिं समाचरत् ॥१७

तस्मिन्काले ऽतिविक्रान्तस्तुहु (हु) ण्डनामदानवः।
तेन सर्वं वशं नीतं चराचरमिदं जगत् ॥१८

घोरं तप्त्वा तपः पुण्यं महाबलमवाप्य सः।
नैव देवान्मनुष्यांश्च वेदमार्गविवर्जिताः ॥१९

देवतापूजनं नास्ति स्वधास्वाहा न दृश्यते ।
उत्पन्नो धर्ममार्गोऽयं शाश्वतो वै दुरासदः ॥२०
नष्टप्राया सुरास्तेन कृताः सर्वोत्तमोत्तमाः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः पितृणां सह साधुभिः ॥२१

सर्वत्र सब मनुष्य जप—दान—तप—होम—स्तवन—यज्ञ और क्रियाओं में परायण रहा करते थे। सब जगह मनुष्य धर्म में तत्पर ही दिखलाई दिया करते थे। धर्म चारों पदों से युक्त सर्वाङ्ग सम्पूर्ण था और अधर्म केवल एक ही चरण से युक्त था। इस तरह से वह राजा युगादि देव नाम वाला धर्मात्मा था जिसके द्वारा यह पृथ्वी धर्म से पालित थी और प्रजा सब वर्धमान हो रही थी। हे व्यास! अवन्ती पुरी में पहिले एक करोड़ यज्ञों का समाचरण किया था। उस समय में अत्यन्त विक्रम वाला एक तुहुण्ड नाम वाला दानव था। उसने इस समस्त चराचर जगत् को अपने ही वश में ले लिया था। इसने अत्युग्र परम पुण्यमय घोर तपस्या की थी और इस खल ने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर लिया था। कोई भी देवगण पूजा के योग्य नहीं है—न कोई यज्ञादि ही है—सब वेद के निर्दिष्ट मार्ग से रहित हो जाइये-देवों का पूजन भी कुछ नहीं है। स्वधा और स्वाहा कहीं पर भी दिखलाई ही नहीं दे रहे थे। धर्म का मार्ग उत्पन्न हो गया था जो शाश्वत तथा दुरासद था। उसने सभी सुर नष्ट प्राय कर दिये थे जो कि सबसे उत्तमों में भी उत्तम थे। वे सब सुर गण पितरों और साधुओं के सहित मिलकर ब्रह्माजी की शरण में गये थे ॥१९-२१॥

किं कुर्मः क्व नु गच्छामस्तुहु (ह) ण्डेन पराजिताः ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२२
सुरैः सार्धं गतः सर्वैर्विष्णुलोकं जगाम ह ।
तत्र गत्वा समाराध्य विष्णुं देवगणैः सह ॥२३
स्तुतिभिः सुरगणास्ते नविष्णोरतुलतेजसः ।
अथ कृत्स्नं सुमर्वर्णनेलाम्पनोऽस्मदुरगार च ॥२४

तदा तेषाशमिच्छन्ती वैष्णवी चा (वागुवाचा)शरीरिणी ।
श्रू यताम्भोः सुरश्रेष्ठा भवतां श्रे य उत्तमम् ॥२५
यूययातक्षितौक्षिप्रं महाकालवनं प्रति ।
गुह्याद्गुह्यतरं पुण्य पवित्रं पापनाशनम् ॥२६
नोयत्रमायिनांमाया प्रकाशयति भूतले ।
सर्वतीर्थ मयंतीर्थं कोटितीर्थं वरप्रदम् ॥२७
यत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा सर्वकामफलप्रदा ।
दैत्यान्तकारिणीदिव्या महाकाली कुलेश्वरी ॥२८

समस्त सुरगणों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी कि हम लोग क्या करें और कहाँ पर चले जावें। इन सब को हुहुण्ड ने पराजित कर दिया है। ब्रह्माजी ने जो समस्त लोकों के पितामह हैं उनके इस वचन को सुनकर वे उठ खड़े हुए थे, और उन सब को साथ में लेकर विष्णु लोक का चले गये थे। वहाँ पहुंच कर देवगणों के सहित भगवान् श्री विष्णु की समाराधना की थी। उन सबने अतुल तेज वाले विष्णु की स्तुति पुरुष सूक्त के द्वारा की थी। इन सभी ने अपने अभ्युदय के ही लिए यह संस्तवन किया था उसी समय मे उन सब के कल्याण की इच्छा करने वाली बिना शरीर वाली वैष्णवी वाणी ने कहा था—"हे सुरश्रेष्ठो ! आप सब लोग श्रवण कीजिए जोकि आपका परम उत्तम श्रेय है। आप सभी लोग बहुत ही शीघ्र भूमण्डल मे महाकाल वन में चले जाइये। यह परम गुप्त से भी गुप्त, पुण्यमय और पवित्र तथा समस्त पापों का नाश करने वाला क्षेत्र है। जहाँ पर ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि भूतल में बड़े से बड़े मायाधारियों की भी माया प्रकाश नहीं किया करती है। यह स्थल ऐसा तीर्थ है जो सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण है और करोड़ो तीर्थों के वर का प्रदान करने वाला है। जहाँ पर समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ क्षिप्रा नदी प्रवाहित होती हुई विराजमान है जो सभी मनोरथों को पूर्ण कर देने वाली है। वहाँ पर परम दिव्य कुलेश्वरी महाकाली विराजमान रहा करती हैं जो कि दैत्यों के अन्त कर देने वाली हैं ॥२२-२८॥

कोटिकोटिगणाकीर्णा मातृणांशक्तिवर्द्धनी ।
गयायत्रमहापुण्या फल्गुश्चैवमहानदी ॥२९
पुरुषोत्तमगिरिः श्रेष्ठो यत्रवुद्धगयास्मृता ।
तथैवचगयाख्याता त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥३०
विष्णो षोडशपदीतीर्थं गदाधरविनिर्मितम् ।
सर्वपापहरापुण्या यत्र प्राचीसरस्वती । ३१
महासुरनदीप्रोक्ता पञ्चतिष्ठन्ति पुण्यदाः ।
न्यग्रोधश्चाक्षयोनित्यः पुराप्रोक्तोमहर्षिणा ॥३२
तत्रैव सा शिलाप्रोक्ता प्रेतमोक्षकरीशुभा ।
तत्रैववसतेसर्वा देवताः पितृकल्पजाः ॥३३
सर्वाक्षरमयोङ्कारः सर्वदेवमयोहरिः ।
सर्वतीर्थमयादेवा गयातीर्थमनुत्तमम् ॥३४
शीघ्रंगच्छनतत्रैव परासिद्धिमवाप्स्यथ ।
यत्रप्रविष्टमात्रेण पितरोनिरयस्थिताः ॥३५
ते सर्वे स्वर्गमायान्ति ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥३६

यह महाकाशी देवी करोड़ों ही गणों से समाकीर्ण रहा करती है। और मातृगण की शक्ति के वर्द्धन करने वाली है। यह ऐसा स्थल है जहाँ पर महापुण्यमयी गया विद्यमान है और महानदी फल्गु बहती है। वहाँ सब पर्वतों में परम श्रेष्ठ पुरुषोत्तम गिरि है जहाँ पर बुद्ध गया कही गयी है। उसी भाँति यह गया भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध होकर ख्यात हुई है। भगवान् गदाधर के द्वारा निर्मित वहाँ विष्णु का षोडशपदी तीर्थ विद्यमान है। वहाँ पर समस्त पापों के हरण करने वाली परम पुण्यमयी प्राची सरस्वती है। महासुर नदी कही गयी है। ऐसे यहाँ पर पाँच पुण्य फलों के प्रदान करने वाली नदियाँ स्थित रहा करती हैं। पुरातन समय में महर्षि के द्वारा कथित नित्य और अक्षय न्यग्रोध भी यहाँ पर विद्यमान है। यहाँ पर ही वह शिला बताई गयी है जो परम शुभ और प्रेतों के मोक्ष करने वाली है। वहीं पर पितृ कल्पज समस्त देवगण निवास किया करते हैं। सर्वाक्षरमय ओङ्कार है अर्थात् ॐकार में सभी अक्षरों का समा-

वेद होता है और श्री हरि भगवान् व सभी देवता विराजमान रहा करते हैं। देवगण सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण होते हैं तथा गया तीर्थ सर्वोत्तम तीर्थ है। वहीं पर बहुत ही शीघ्र ही आप लोग चले जाइए। वहाँ आप सब परासिद्धि को प्राप्त करेंगे। जिस क्षेत्र में प्रविष्ट होने मात्र से ही नरकों में स्थित पितृगण सबके सब स्वर्ग में आ जाया करते हैं और ब्रह्म स्वरूप कल्पित किये जाते हैं अर्थात् ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं ॥२६-३६॥

७७—नागतीर्थमहिमावर्णन

नागतीर्थं त्वया ब्रह्मन्पुराप्रोक्तं यशस्विना ।
तस्यतीर्थवरस्याऽपिमहिमानञ्चसत्तम ॥१
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ।
कियत्काले समाख्यातमेतद्विस्तरतो वद ॥२
शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामितवाग्रे नागतीर्थजाम् ।
कथांपुण्यतमांतुभ्य भुविपापहरांपराम् ॥३
यस्याः श्रवणमात्रेण पापमुक्तो भवेन्नरः ।
पुरा नागा परिभ्रष्टा मातुःशापात्परन्तप ॥४
जनमेजयेन दग्धास्ते मोक्षिता ह्यास्तिकेन च ।
पप्रच्छुस्ते द्विजश्रेष्ठाः जरत्कार्वात्मजं तदा ॥५
ब्रह्मंस्त्वत्प्रसादेनमोक्षिताह्यव्यवाहनात् ।
जनमेजयस्ययज्ञेऽस्मिन्देवराजस्यसन्निधौ ॥६
अस्माकं भूतिमन्विच्छन्व्याससत्यार्थं परंतप ।
यस्मिन्स्थाने सदा ब्रह्मन्निवासो जायतेऽभयः ॥७

महर्षि प्रवर श्री व्यासजी ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपने पहले नागतीर्थ का वर्णन किया था। आप तो बहुत ही यशस्वी हैं। हे श्रेष्ठतम! उस में उत्तम तीर्थ की महिमा को हे ब्रह्मवेत्ताओं में परिश्रेष्ठ! मैं पुनः आपके मुख से श्रवण करना चाहता हूँ। कितना समय होगया तभी आपने इसको कहा था। अब आप इसको विस्तार के साथ कहिए। श्री

सनत्कुमारजी ने कहा— हे महान् ! अब आप सुनिए, मैं आपके समक्ष में इस नागतीर्थ में समुत्पन्न कथा को पाप से कहता हूँ। यह परम पुण्यतम कथा है जो कि इस महोत्सवन में पापों के हरण करने के लिये परम प्रशस्त है। यह ऐसी कथा है जिसके श्रवण मात्र से ही मनुष्य पाप से विमुक्त हो जाया करता है। हे परन्तप ! पुरातन समय में नाग गण माता के शाप से परिभ्रष्ट हो गये थे। जनमेजय ने उनको होम कर दिया था और आस्तिक ने उनको मोक्षित किया था। हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय में उन्होंने जरत्कारु के पुत्र से पूछा था ॥१-५॥ नागों ने कहा— हे महान् ! हम सब लोग आपके ही प्रसाद से इस अग्नि से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं जबकि देवराज की सन्निधि में राजा जनमेजय द्वारा इस यज्ञ में हम सब को होम किया जारहा था। हे परन्तप ! हमारी भूति की इच्छा करते हुए आप हम लोगों के निवास करने के लिए भी स्थान निर्दिष्ट कर दीजिए जिसमें हे महान् ! सदा भय से रहित हमारा निवास हो जावे ॥६-७॥

श्रूयतामनुलयेष्ठा युष्माकं हितमुत्तमम् ।
महाकालवने रम्ये या वै कुशस्थलीस्मृता ॥८
तस्या हि दक्षिणे भागे पूर्वतीर्थं सनातनम् ।
नागालयं पुरा प्रोक्तं यत्र सन्निहितो हरिः । ९
योगनिद्रामसमाद्य शेते ब्रह्म सनातनम् ।
शेषशायीनिविरजातः सर्वतोरेपुणोभते ॥१०
यत्र क्रोधो न तत्र च बाधते भवं देहिनाम् ।
यत्र दान्तव ऋषिस्तत्र तपस्तेपे धृतव्रत ॥११
सोमशर्मव महातेजास्तत्रैव प्रतिनिष्ठति ।
दीर्घायुष्ट्वं समासन्नो मार्कण्डेयो महामुनिः ॥१२
न वर्येत कालपाशं महाकालप्रसादतः ।
कपिलः सिद्धिमासन्नो यत्र तीर्थं वरोत्तमे ॥१३
हरिकेशो विमुक्तोऽभूद्गणत्वं चण्डालयोनितः ।
उर्वशीप्रवरा येन निर्वाणपदवी गता ॥१४

आस्तीक ने कहा—हे मातुल श्रेष्ठो ! आपके उत्तम हित की बात का आप अब श्रवण करो। परम रम्य महाकाल वन में जो एक कुशस्थली बतायी गयी है। उसके दक्षिण दिग्भाग में एक सनातन (सदा से चला आने वाला) पूर्व तीर्थ है। पहिले यह नागालय कहा गया है जहाँ पर श्री हरि सन्निहित रहा करते हैं। वह सनातन ब्रह्म योगनिद्रा को प्राप्त होकर वहाँ पर शयन किया करते हैं और शेषशायी—इस नाम से वह विख्यात हैं उनका इसी नाम से सब लोकों में गायन किया जाता है। वहाँ पर समस्त देहधारियों को कल्प का कोई दोष भी बाधा नहीं दिया करता है वहाँ पर व्रत धारण करने वाले बकदाल्भ्य ऋषि तपश्चर्या किया करते थे। महान् तेज वाले लोमश ऋषि भी वहीं पर प्रतिष्ठित रहा करते हैं। महामुनि मार्कण्डेय दीर्घायुष्य को प्राप्त हो गये हैं। भगवान् महाकाल के प्रताप से वहाँ पर काल चक्र नहीं है। जिस उत्तम तीर्थ वर में कपिल मुनि भी सिद्धि को प्राप्त हो गये थे। हरिश्चन्द्र अतीव गर्ह्य (निन्दा के योग्य अर्थात् नीच) चाण्डाल योनि से विमुक्त हो गया था। जो सप्तर्षि प्रवर हैं वे सब निर्वाण पदवी को प्राप्त हो गये थे ॥८-१४॥

एतस्मात्कारणात्सर्वैस्तत्र विश्रम्यता सदा ।
मातुः शापोद्भवो दोषो युष्माकं नैव बाधते ॥१५
एतद्वचनं श्रुत्वामहर्षेरास्तिकस्यच ।
आगच्छंस्तत्र ते शीघ्रं वासार्थं पन्नगोत्तमाः ॥१६
एलापत्रः कम्बलश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ।
वासुकिःपन्नगश्रेष्ठस्तक्षको नील एव च ॥१७
पद्मकश्चार्बुदश्चैव नागास्ते सर्व एव हि ।
अत्रागत्य स्वस्थानानि चक्रुस्ते सुचिरव्रताः ॥१८
तत्ररम्याणितीर्थानिजातानिपरमाणि च ।
नवानि चक्रुःकुण्डानि तीर्थभूतानिसत्तम ॥१९
महापुण्यप्रदान्याहुर्महापापहराणि च ।
यत्र सिद्धाश्च गन्धर्वा ऋषयः संशितव्रताः ॥२०

अप्सरोगणसङ्घैश्च सेव्यन्ते च सदा वरैः ।
यत्र शेषो महानागः पुरा प्रोक्तो महर्षिणा ॥२१

इस कारण से आप सभी लोग यहाँ पर सदा निवास करें। माता के शाप से होने वाला दोष यहाँ पर आप सबको बाधा नहीं देगा। उन सब नागों ने उन महर्षि आस्तिक के इस वचन का श्रवण करके वे पन्नगोत्तम वहीं पर अपने निवास के लिए शीघ्रता से चले गये थे। उन विशेष नागों के नामों का संक्षिप्त परिगणन बताते हैं—एलापत्र—कम्बल—कर्कोटक—धनञ्जय—पद्मश्चैव वासुकि—तक्षक—नील—पद्मक—अर्बुद आदि ये सभी नाग थे। वहाँ पर जाकर रुचिर वनों वाले उन्होंने अपने २ स्थान नाग के लिये कर लिये थे। वहाँ परमोत्तम एवं पुण्य तीर्थ हो गये थे। हे श्रेष्ठतम ! नवीन वृक्षों की रचना की गयी थी जो कि सभी तीर्थों के स्वरूप वाले हो गये थे। ये सभी महान् पुण्यों के प्रदान करने वाले और महान् से महान् पापों के हरण करने वाले हैं ऐसा कहा जाता है। जहाँ पर सिद्ध—गन्धर्व और संशित व्रतों वाले ऋषिगण तथा श्रेष्ठ अप्सराओं के समूहों से सेवित किये जाया करते हैं। यहाँ पर महर्षि के द्वारा शेष महानाग पहले कहा गया है ॥१५-२१॥

शेषशायी ह्ययं विष्णुर्भगवान्कमलेक्षणः ।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि तिष्ठन्ति मुनिपुङ्गव सदा ॥२२
श्वेतद्वीपेति विख्याता मणिविभ्रान्तभूमिका ।
यत्र पुन्नागा वै वृक्षाः पुष्पिताश्च व सर्वशः ॥२३
हंसकारण्डकाकादिविपक्षिभिरगारवाः ।
पद्मगन्धगणा यत्र नृत्यन्ति च शिखण्डिनः ॥२४
निर्विरेयमहापद्मो नीलसलिलसुपन्विता ।
वाहिनी वायुना शुभ्रा फेनरोद्गारशालिनः ॥२५
यत्र सुगंधश्च नार्यो विहरन्ति सुराङ्गनाः ।
नागकन्याश्च रम्यास्तिस्रं विष्टं परमाद्भुतम् ॥२६
पन्नगालयानरोसानि वैकुण्ठं धामशोभनम् ।
शेषशायी हरिर्यत्र शेते हि च रमापतिः ॥२७

तत्र रमासरोनाम तीर्थं परमशोभनम् ।
यत्रस्नात्वानरोनित्यं श्रीमान्भवति नाऽन्यथा ॥२८

कमल के समान नेत्रों वाले शेष की शय्या पर शयन करने वाले भगवान् विष्णु ही पर्याप्त हैं। इस भूमण्डल पर वहाँ पर सर्वदा समस्त तीर्थ स्थित रहा करते हैं। मणियों से विक्रान्त भूमि श्वेतद्वीप—इस नाम से विख्यात है। जहाँ पर पुण्य वृक्ष हैं जो सब प्रकार से सदा फूलों वाले रहा करते हैं। वह ऐसा स्थल है जिसमें हंस—कारण्ड—काक आदि तथा पिक (कोयल)—सारस और पद्म खण्ड गण एवं शिखण्डी नृत्य किया करते हैं। यह महापद्म निधि है। यह स्थल नील कमलों की सुगन्ध वाली वायु से सुवासित रहता है—परम शुभ्र और किन्नर गणों के उद्गारों से ध्वनित रहा करता है। जहाँ पर सुन्दर सत्कारों से समन्वित नारियाँ और सुरों की अङ्गनाऐं विहार किया करती हैं। यह स्थल परम रम्य नाम कन्याओं से मण्डित रहता है और परम अद्भुत है। जहाँ पर मनुष्य एक बार स्नान करके ही सीधा अति शोभा सम्पन्न वैकुण्ठ धाम को चला जाया करता है। जहाँ पर रमा के पति श्री हरि शेष की शय्या पर शयन करते हुए विराजमान रहा करते हैं। वहीं पर एक 'रमासर' नाम वाला अत्यन्त शोभन तीर्थ है जिसमें नित्य स्नान करके मनुष्य श्रीमान् हो जाया करता है अन्य किसी भी तरह से नहीं होता है। अथवा यह बात मिथ्या है ही नहीं—सर्वथा सत्य है ॥२२-२८॥

एवं व्यासो परं स्थानं सर्वपापहरं परम् ।
अत्रैव च परं तीर्थं वसेराश्रमद्भुतम् ॥२९
अत्रस्नानादिकं कार्यं यत्रसंनिहितोहरिः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा नरोभवति तत्क्षणात् ॥३०
कियत्प्रमाणमात्रा च ये ददति वसुन्धराम् ।
तनूरुहाणि यावन्ति तावत्कालसङ्ख्यया ॥३१
अक्षय्या लभ्यते वृद्धिस्तेषां लोकाः सनातनाः ।
श्रावणे मासि दर्शे च पञ्चम्या सोमवासरे ॥३२

नागाना पूजनं कार्यं श्राद्धं दर्शे विधीयते ।
अक्षयं जायते श्राद्धं वाञ्छितार्थं भवेत्तता ॥३३

हे व्यास देव ! इस प्रकार से यह परमोत्तम स्थान है जो समस्त पापों के हरण करने वाला है । यहीं पर परमोत्तम तीर्थ बलि का अद्भुत आश्रम है । यहाँ पर भी स्नान आदि अवश्य ही करना चाहिए जहाँ कि श्री हरि भगवान् सन्निहित रहा करते । यहाँ स्नानादि की क्रिया करने से मनुष्य उसी क्षण में तुरन्त ही सब पापों से छुटकारा पाकर विशुद्ध आत्मा वाला हो जाया करता है । कितने प्रमाण वाली वसुन्धरा के दान का पुण्य फल यहाँ पर होता है—इस पर बताया जाता है कि शरीर में जितने रोम हैं उतनी ही संख्या वाली पूर्ण वसुन्धरा के दान का पुण्य हुआ करता है । उन पुण्यों की कभी भी क्षीण न होने वाली वृद्धि प्राप्त हो जाती है और उनको सनातन लोकों का लाभ हुआ करता है । श्रावण मास की अमावस्या तिथि में अथवा पञ्चमी तिथि में चन्द्रवार के दिन में नागों का पूजन अवश्य ही करना चाहिए । दर्श में श्राद्ध का भी विधान है । यह श्राद्ध भी अक्षय हुआ करता है तथा जो भी कोई वाञ्छित अर्थ होता है उसकी भी प्राप्ति हो जाया करती है ॥२९-३३॥

७८—अवन्तीमाहात्म्यवर्णन

भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ।
अवन्त्याख्यस्य पुण्य महिमानं श्रुतं मया ॥१
त्वया ब्रह्मविदा प्रोक्तं वाक्यमृतपारणम् ।
तीर्थं त्वास्य सुविस्ताराद्गत्नातकानां द्विजोत्तम! ॥२
अचिरेणनुकालेन तीर्थं त्वफलमश्नुते ।
शिवोभूत्वा नरोयाति सद्वदस्वद्विजोत्तम ॥३
गुह्याद्गुह्यतर यत्त पृष्टर्मास्व मयानघ ।
तत्तेऽहं नप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैतं समाहित. ॥४
महाकालं ततोगच्छेन्नियतोनियतात्मना ।
कोटितीर्थे नरस्स्नात्वा पुनर्जन्मनविद्यते ॥५

नास्तिवत्समहीपृष्ठे क्षिप्रायाःसदृशीनदी ।
यस्यानिरीक्षणान्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेनवै ॥६
माधवेमासियोदेवं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।
मोचनेमुच्यतेनित्यं तर्पणादेकवासरात् ॥७

महर्षि प्रवर श्री व्यासजी ने कहा—हे ब्रह्म के ज्ञान रखने वालों में परम वरिष्ठ ! मैंने अवन्ती की परम पुण्यपूर्ण महिमा का श्रवण कर लिया है किन्तु पुनः मैं कुछ आपसे श्रवण करने की अभिलाषा रखता हूं। हे द्विजोत्तम ! आपने जो कि परम ब्रह्म वेत्ता हैं पूरे एक वर्ष के व्रत का पारण वर्णित किया था सो स्नातकों के उस व्रत का जो कि इस तीर्थ पर किया जाता है पूर्ण विस्तार के साथ वर्णन कीजिए। हे द्विजों मे परम श्रेष्ठ ! अब यह बतलाइये कि कैसे मनुष्य बहुत स्वल्प समय में ही इस तीर्थ का फल प्राप्त कर लिया करता है और परम सिद्ध होकर प्रयाण करता है ? श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे वत्स ! हे निष्पाप ! आप तो इस समय में परम गोपनीय से भी गोपनीय बात मुझसे पूछ रहे हैं। अच्छा मैं आपको तो यह भी बतलाऊँगा। अब आप बहुत ही सावधान चित्त वाले होकर श्रवण कीजिए। इसके उपरान्त पूर्णतम नियत आत्मा से नियत होकर महाकाल तीर्थ में मनुष्य को गमन करना चाहिए। कोटि तीर्थ में मनुष्य स्नान करके फिर दूसरा जन्म ग्रहण नहीं किया करता है। हे वत्स ! इस मही मण्डल में क्षिप्रा के तुल्य अन्य कोई भी नहीं है। जिसके केवल निरीक्षण कर लेने ही से मनुष्य की मुक्ति हो जाया करती है, चिरकाल पर्यन्त सेवन करने की तो बात ही क्या कही जावे। माधव मास में जो कोई पुरुषोत्तम देव का पूजन किया करता है वह नित्य ही मुक्त हो जाया करता है और केवल एक ही दिन के तर्पण करने से भी मुक्त हो जाता है ॥१-७॥

अवन्त्यामङ्कपाताख्यं ये पश्यन्ति जनार्दनम् ।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥८
इतिव्यासवचस्सर्ववदन्तिनियतात्मनः ।
वाराहमत्स्यकन्दाद्या लोमशश्चमहामुनिः ॥९

विधितथापितीर्थस्यश्रृणुपुण्यसमप्पुनः ।
योवैस्वल्पेनपुण्येनतीर्थस्यफलमिच्छति ॥१०
तस्यगर्वस्यवक्ष्यामिश्रृणुत्वेदं तपोधन ।
सर्वतीर्थफलाकाङ्क्षी शुचि प्रयतमानसः ॥११
अवगाह्यतीर्थानि तीर्थानिचाष्टविंशति. ।
ऊर्जेमाघेतथापाढे वैशाखेचविशेषतः ॥१२
यदाकदापुरी प्राप्य कर्तव्यंतीर्थ मज्जनम् ।
सर्वतीर्थ फलं प्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥१३

अवन्ती में जो भगपाल नाम वाले जनार्दन प्रभु का दर्शन किया करते हैं उनको फिर करोड़ो कल्पों में भी इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है अर्थात् वे फिर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं। हे व्यास! सभी विमल आत्मा वाले लोग इस वचन को कहा करते हैं। वाराह-मत्स्य और स्कन्द आदि तथा महामुनि लोमश यही कहते हैं। तो भी पुनः पुण्य गम तीर्थ की विधि का श्रवण कर लो। जो कोई स्वल्प पुण्य हो से तीर्थ के फल की इच्छा किया करता है उसका सभी गुह्य मैं बताऊँगा। हे तपोधन! इसे अब आप सुनिए। समस्त तीर्थों के फल की आकांक्षा रखने वाला—शुचि (पवित्र) प्रयत मन वाला—अवगाहन के द्वारा से युक्त अट्ठाईस तीर्थों को जाया करता है। कार्तिक-माघ—आषाढ़ और विशेष रूप से वैशाख मास में जब कभी पुरी पहुँच कर तीर्थ का मज्जन करना चाहिए। यह सभी तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त करके शिव लोक में महिमान्वित होकर प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥९-१३॥

शिप्रातीर्थेशियमंल्लेपुराण्यानानिमूरिभिः ।
पुण्यानितीर्थ मुख्यानिमानिमेवदल शृणु ॥१४
प्रातरदित शुचिर्भूत्वा विष्णुविष्णुरितिस्मरन् ।
आदाय नियमं सर्वं स्नानपानाऽऽम सत्तमा ॥१५
स्नात्वा न्द्रसरे नित्यं कृत्वा श्राद्धादिकं तथा ।
यथाशक्ति परां यात्रां दत्वा पांय काञ्चनीम् ॥१६

तीर्थराजनमस्तुभ्यं निजतीर्थविगाहने ।
अनुज्ञादेहिमेनित्यं करिष्यामितवार्चनम् ॥१७
ततः प्रयातितत्तीर्थं कर्कराजाभिधं सरः ।
तत्र स्नानादिकं कृत्वा घृतपात्रं प्रदापयेत् ॥१८
नृसिंहाख्यं परं तीर्थं तत्रस्नायाद्‌द्विजोत्तम ।
कृष्णाजिनं ततोदद्यात्मकार्यविशुद्धये ॥१९
सङ्गमो नीलगङ्गायाः क्षिप्रायाश्चं वसत्तम ।
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वाद्दृष्ट्वासङ्गमेश्वरम् ॥२०
वाहनञ्च ततो देयं द्विजातिभ्यःस्वलङ्कृतम् ।
भूषणानि च देयानि यानानि विविधानि च ॥२१

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—क्षिप्रा नदी के तट पर परम पुण्यमय तीर्थ मुख्य हैं जिनको कि पहले विद्वानों ने बतलाया है और परम प्रसिद्ध हैं उनको मैं बतलाता हूँ आप उन्हें सुनिए। पापों से जो वर्जित है वह परम शुद्ध होकर 'विष्णु-विष्णु' इस तरह से भगवान् का स्मरण करते हुए हे वत्सनम ! स्नातकों के समस्त नियमों को ग्रहण करके नित्य ही उत्सर में स्नान करके तथा श्राद्ध आदि की क्रियाओं का सम्पादन करके हे वत्स ! अपनी शक्ति के अनुसार काञ्चनी गौओं का दान करके यह तीर्थ से प्रार्थना करे—हे तीर्थराज ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है। अपने इस तीर्थ में अवगाहन करने के लिए मुझे अनुज्ञा प्रदान कीजिए। मैं नित्य ही आपका समर्चन करूँगा। यही प्रार्थना करने का यहाँ पर मन्त्र है। इस प्रार्थना करने के पश्चात् ही कर्कराज नाम वाले सर पर आवे जो कि महान् तीर्थ है। वहाँ पर स्नान आदि करके घृतपात्र प्रदान करावे। हे द्विजोत्तम ! एक नृसिंह नाम वाला तीर्थ है वहाँ पर स्नान करना चाहिए। इसके अनन्तर अपने कार्य की विशुद्धि के लिए कृष्णाजिनका दान करना चाहिए। हे सत्तम ! वहाँ पर नील गंगा और क्षिप्रा का संगम है। उसमें स्नान करके और शुचि होकर तथा संगमेश्वर प्रभु का दर्शन करके इसके पश्चात् द्विजों के लिए अलंकारों से विभूषित

किया हुआ वाहन का दान करे और भूषण देवे तथा विविध प्रकार के धानो का दान करना चाहिए॥१४ २१॥

तत. प्रायाद् व्रती सम्यक् तीर्थं पैशाच्यमोचनम् ।
तत्र स्नात्वा च विधिवदाह्निकादि च कारयेत् ॥२२
गासयत्सां ततो दद्याद्वेदवेदाङ्गपारिणे ।
सीदत्कुटुम्बिने नित्य द्विजाय मुनिसत्तम ॥२३
महादानानिसर्वाणि तस्मैदेयानिसत्तम ।
पिशाचेश तनो दृष्ट्वा सर्वपापै प्रमुच्यते ॥२४
गन्धर्वतीर्थं गच्छेत्तु नियमी व्रतकारकः।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा श्राद्ध कुर्यात्समाहितः ॥२५
वह्निजस्वेश्वर देव पूजयेद्विधिवद्विज .
ब्राह्मणेभ्यस्ततोदद्याद्गेहदानादिक परम् ॥२६
दासीदासन्ततोदेय सर्वकार्यार्थ सिद्धये ।
धनवान् पुत्रवाल्लोके मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२७
ततो गच्छेद्द्वतीयिप्रकेदार तीर्थ मुत्तमम् ।
तत्रस्नात्वामहादान ब्राह्मणेभ्यस्समर्पयेत् ।२८

इसके अनन्तर व्रत धारण करने वाले को पैशाच्य मोचन तीर्थ मे अच्छी तरह से जाना चाहिए। वहाँ पर विधि-विधान के सहित स्नान करके आह्निक आदि करे। इसके पश्चात् किसी वेदो और वेदांगो के पारगामी द्विज के लिए वत्स से युक्त गौ का दान करना चाहिए। हे मुनिश्रेष्ठ ! दान सर्वदा ऐसे ही ब्राह्मण को देना चाहिए जो धनाभाव मे अवसन्न और कुटुम्बी हो। हे सत्तम ! सभी महादान ऐसे ही द्विज को वहाँ पर देने चाहिए। इसके अनन्तर भगवान् पिशाचेश्वर के दर्शन करे जिससे मनुष्य सभी पापो से प्रमुक्त हो जाया करता है। व्रत के करने वाले और नियमो मे स्थित मानव को इसके उपरान्त गन्धर्व तीर्थ को जाना चाहिए। वहाँ पर स्नान करके शुचि हो जावे और फिर समाहित होकर उसको श्राद्ध करना चाहिए। हे द्विज ! फिर वह्नि वेदेश्वर देव की विधि के सहित अर्चा करे और फिर द्विजो को परम श्रेष्ठ गृह और

दान आदिक देना चाहिए। सब कार्यों की अर्थ सिद्धि के लिए दासी और दास भी देवे। इससे लोक में धन सम्पन्न और पुत्रों वाला होता है और अन्त में मृत्युगत होकर मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। इसके अनन्तर व्रती पुरुष को अत्युत्तम तीर्थ केदार को हे विप्र ! गमन करना चाहिए। वहाँ पर भी स्नान करे और ब्राह्मणों के लिए महादान देवे ॥२२-२८॥

शुभं गोमिथुनं दत्वा विधिवत्तत्प्रकारयेत्।
कम्बलाजिनवासांसि तत्रदेयानिसत्तम ॥२९
सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोके महीयते।
चक्रतीर्थे नरःस्नात्वा चक्रपाणिसमर्चयेत् ॥३०
हा सशस्त्रविमानानि तत्रदेयानि सत्तम।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥३१
सोमतीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा सोमेश्वरं शिवम्।
निर्मलाङ्गो नरो भाति कुष्ठरोगो न बाधते ॥३२
इक्षुधेन्वादिकं दानं तत्रदेयं द्विजातये।
देवप्रयागं गच्छेच्च स्नानार्थं द्विजसत्तम ॥३३
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा देवं माधवमर्चयेत्।
गुडधेनुः प्रदातव्या विधिदृष्टेन कर्मणा ॥३४
सर्वपापविशुद्धात्मा देवलोके महीयते।
प्रयागे परमं ज्ञास वेणीतीर्थमनुत्तमम् ॥३५

हे सत्तम ! अति शुभ दो गायों का जोड़ा दान करे जो कि पूर्ण शास्त्रोक्त विधान के साथ करना चाहिए वहाँ पर कम्बल—अजिन और वस्त्रों का भी दान देवे। ऐसा करने वाला पुरुष सभी पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर शिव लोक में समवस्थिति प्राप्त किया करता है। चक्र तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उसे फिर भगवान् चक्रपाणि का अर्चन करना चाहिए। हे श्रेष्ठतम ! वहाँ पर शंख शस्त्र और विमानों का दान देना चाहिए। वह मनुष्य समस्त प्रकार के घोरतम पापों से भी छुटकारा पाकर विशुद्ध हो जाया करता है और अन्त में विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है। सोम तीर्थ में मनुष्य स्नान करके तथा सोमेश्वर भगवान् शिव

का दर्शन प्राप्त करके परम निर्मल मन वाला मनुष्य हो जाया करता है और अत्यन्त कीर्ति से शोभित हो जाता है कि कुष्ठ रोग उसको फिर बाधा नहीं देता है। तिल, धेनु आदि का दान वहाँ पर द्विजाति को देना चाहिए। हे द्विजों में परम वरिष्ठ! और देव प्रयाग को गमन करे वहाँ पर पहुँचकर स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करके परम शुचि हो जावे और फिर माधव देव का यजन करे। विधि में देखे हुए कर्म के अनुसार वहाँ पर गुड़ और धेनु का दान अवश्य ही करे। वह आदमी सभी पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर देवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे व्यास! प्रयाग में परमोत्तम ये तीर्थ हैं ॥२६-३५॥

तत्र स्नानञ्चकर्त्तव्य तिलामलकसंयुतम् ।
प्रयागेशमथाभ्यर्च्य सकलं फलमश्नुते ॥३६
तिलधेनुः प्रदातव्या विधिवद्द्विजपुङ्गवे ।
सर्वकामवरम्प्राप्य विष्णुलोके समोदते ॥३७
ततो गच्छेद् व्रती भूयो योगतीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेत् ॥३८
जलधेनुं ततो दद्याद्दीर्घायुश्च सुखीभवेत् ।
कपिलाश्रमपरं तीर्थं नरोगच्छेत्ततःपरम् ॥३९
स्नानदानादिकं कृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तपोलोके स गच्छति ॥४०
घृतकुल्यापरं तीर्थं क्षिप्राकूलेच पश्चिमे ।
तत्र स्नात्वानरोनित्यं घृतधारेश्वरं शिवम् ॥४१
पूजयेद्विधिवद्विप्र घृतधेनुं समर्पयेत् ।
प्राप्यपुण्यकृतांल्लोकान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४२

उस वेणी तीर्थ में तिल और आँवलों के साथ स्नान करे। इसके अनन्तर प्रयागेश्वर प्रभु का अभ्यर्चन करे। इसका ऐसा महान प्रभाव होता है कि मनुष्य सभी प्रकार के फलों का लाभ कर लिया करता है। वहाँ पर किसी श्रेष्ठ द्विज को तिलों और धेनु का विधिपूर्वक दान देना चाहिए वह मनुष्य समस्त कामनाओं की सिद्धि का वरदान प्राप्त करके

अन्त में विष्णु लोक में सानन्द प्रतिष्ठित हुआ करता है। इसके पश्चात् उस तीर्थोत्तम के प्रसादी पुरुष को अतीव उत्तम योगतीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ पर अवगाहन करके पहिले परम विशुद्धि प्राप्त कर लेवे और फिर श्रीयोगिनीश्वर प्रभु का समर्चन करना चाहिये ॥३६-३८॥ यहाँ जल धेनु का दान करे। इससे दीर्घ आयु वाला और परम सुख से सम्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् परम श्रेष्ठ कपिलाश्रम नामक तीर्थ के लिए गमन करे वहाँ पहुँचकर भी स्नान आदि समस्त प्रथम कर्त्तव्य सम्पादित करके फिर कपिलेश्वर भगवान की अर्चना करे। वह मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाया करता है और फिर तपोलोक को गमन किया करता है। सिप्रा नदी के पश्चिम दिग्भाग में तट पर एक घृत-कुल्या नाम वाला परम श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ पर मनुष्य को नित्य स्नान करके घृतधारेश्वर शिव का विधान के सहित पूजन करना चाहिए। हे विप्र! वहाँ घृत धेनु का दान ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए। इस का यह पुण्य फल होता है कि पुण्य कृत लोकों को पद प्राप्ति कर लेता है और इसके पूर्व ही सब पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥३६-४२॥

मधुकुल्यांनरःस्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम्।
मधुदानं प्रकुर्वीत इक्षुधेनुं ततः परम् ॥४३
ऊपरं परमं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम्।
तत्र स्नात्वा नरः पश्येन्महेशमूषरेश्वरम् ॥४४
फलमूलादिकं देयं प्राप्यते मोक्ष उत्तमः।
नरादित्यः स्थितो यत्र तत्र तीर्थं परं स्मृतम् ॥४५
तत्र स्नात्वा नरः पश्येत् क्षेत्रादित्येश्वरं परम्।
रथदानं ततोदत्त्वा नरलोकेसगच्छति ॥४६
केशवार्कोपरोदेवस्तस्यतीर्थं परं स्मृतम्।
तत्र स्नानं विधेयञ्च केशवार्कसमर्चनम् ॥४७
अन्नं बहुविधं देयं तत्र तीर्थे द्विजोत्तम।
कालभैरव आख्यातस्तत्रतीर्थं महाव्रती ॥४८

तत्रस्नात्वानरोनित्यं दृष्ट्वा भैरवमन्तकम् ।
दद्यात्पूर्णंमहादानं नगच्छेद्यमशासनम् ॥४९

अब यहाँ पर मधुरस्या नाम वाला भी तीर्थ है । यहाँ पर स्नान करके महेश्वर की पूजा करे—मधु का दान करे और इसके पश्चात् दीप और धेनु का दान दे । एक समस्त तीर्थों के फलों का देने वाला ऊषर नामक परमोत्तम तीर्थ है । यहाँ पर मनुष्य को स्नान करके ऊषरेश्वर महेश का दर्शन करना चाहिए । वहाँ फल और मूल-भूमि का दान देवे । इससे उत्तम मोक्ष की प्राप्ति भी जाया करती है । जहाँ पर नरादित्य स्थित हैं वहाँ पर परमोत्तम तीर्थ कहा गया है । वहाँ पर मनुष्य को स्नान करके परम प्रभु केदारेश्वर का दर्शन करना चाहिये । फिर रथ का दान करे । वह नरलोक में गमन किया करता है । केदारार्क सर्व शिरोमणि परम देव हैं अतएव उनका तीर्थ भी सर्वश्रेष्ठ है ऐसा कहा गया है । यहाँ स्नान और केदारार्क का अभ्यर्चन करना ही चाहिये । हे द्विजोत्तम ! अनेक प्रकार का फल यहाँ पर तीर्थ में दान में देना चाहिए । उस तीर्थ में महाव्रती नाम भैरव कहे गये है । यहाँ पर भी मनुष्य का परम कर्तव्य है कि नित्य स्नान करे अन्त तक भैरव का दर्शन करे । यहाँ पूर्ण महादान भी देना चाहिये । इसका यह प्रभाव होता है कि मनुष्य फिर यमराज के शासन में कभी प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥४१-४९॥

द्वादशार्केति विख्यातं क्षिप्राकूले च दक्षिणे ।
तीर्थं च सर्वपापघ्नं सर्वकामवरप्रदम् ॥५०
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा द्वादशार्कंसमर्चयेत् ।
अजादानञ्चदेयंवासोऽलंकारसंयुतम् ॥५१
आरोग्यं सर्वदादेहे तस्यसम्पद्यतेपदे ।
तत्रापि क्षुपयोदेया सन्ध्योपासनतत्परा ॥५२
उपासाञ्चक्रिरेतस्य प्रातः कालेरवैर्वहि ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वाशुचिर्भूत्वासमाहितः ॥५३
एकानंशेति विख्याता भवानी पापनाशिनी ।
तामर्चयेद्द्विजश्रेष्ठदशाश्वमेधफलंलभेत् ॥५४

तत्र देयं महादानं श्वेताश्वं समलङ्कृतम् ।
विप्रायवेदविदुषे विधिवद्द्विजसत्तम ! ॥५५
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ।
योऽसावङ्गारको देवो विख्यातो वै धरात्मजः ॥५६

सिप्रा नदी के दक्षिण दिग्भाग में तट पर एक द्वादशार्क तीर्थ परम विख्यात तीर्थ है। यह तीर्थ सभी पापों का हनन करने वाला और सभी कामनाओं के वरों का प्रदान करने वाला कहा गया है ॥५०॥ वहाँ पर अवगाहन करके परम पवित्र होकर द्वादशार्क प्रभु का समर्चन करना चाहिये। वहाँ वस्त्र और अलंकारों से समन्वित अजा (बकरी) का दान देना चाहिये। उस वामी तीर्थ व्रती पुरुष के देह में सर्वदा आरोग्य रहता है और उनके कदम कदम पर सम्पत्ति विलास किया करती है। वहाँ पर देवगण और महर्षि वृन्द सन्ध्योपासना में तत्पर रहा करते हैं। प्रातः काल की वेला में वे सभी सर्वदा उनकी उपासना किया करते हैं। वहाँ पर उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके शुचि होकर समाहित हो जाया करता है। वहाँ पर एकानंशा—इस नाम से विख्यात पापों के नाश करने वाली भवानी विराजमान हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! वहाँ उस देवी का अभ्यर्चन करे और दशाश्वमेधय शिव का यजन भी करना चाहिए। वहाँ पर महादान देना चाहिए। एक श्वेत वर्ण का अश्व जो भूषणों से भली भाँति अलंकृत हो इसका दान हे ऋषि श्रेष्ठ! वेदों के विद्वान् विप्र को देना चाहिए और विधान के साथ ही दान करे। यह मनुष्य सभी प्रकार के ऐहिक तथा पूर्व जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर परम विशुद्ध आत्मा वाला हो जाया करता है और अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है। यहाँ पर एक धरात्मज अङ्गारक देव परम विख्यात हैं ॥५१-५६॥

तस्य तीर्थं परं व्यास सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्चयेत् ॥५७
गुडान्नं वृषभं रक्तं सवासः समलङ्कृतम् ।
स्वलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो यो ददाति समाहितः ॥५८

तस्यहस्तगतालक्ष्मीः पुत्र दारादिसम्पदः ।
नागङ्गासङ्गमतीर्थं गङ्गोद्भेदसमन्वितम् । ५९
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वागङ्गेश्वरं शिवम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते ॥६०
तिलपात्रं प्रदातव्यं विधिवत्काञ्चनान्वितम् ।
सर्वं सौख्यकरं दानं सर्वपापहरं परम् ॥६१
ऋणमोचनकं तीर्थं सर्वपापहरं स्मृतम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ऋणतेश्वरमर्चयेत् ॥६२
पुनश्राद्धं प्रकुर्वीत दत्त्वास्वर्णञ्च शक्तितः ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥६३

हे व्यासदेव ! उसका तीर्थ सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है और अन्य सभी तीर्थों का जो कुछ भी पुण्य फल होता है उन सबका यह एक ही तीर्थ प्रदान कर देने वाला है । उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उसे भगसेश्वर का समर्चन करना चाहिये । जो मनुष्य यहाँ पर गुड़ के सहित अन्न-वस्त्रों से समावृत एक वृषभ जो कि भूषणों से भली भाँति विभूषित हो उसका परम समाहित होकर स्वलङ्कृत विप्रों को दान देना चाहिये । इसका यह प्रभाव होता है कि लक्ष्मी तो बिल्कुल उसके हाथ में ही रहा करती है और पुत्र, दारा आदि की सम्पत्तियाँ भी सब प्राप्त हो जाया करती हैं । वहीं पर गङ्गा के उद्भेद से संयुत एक न (नाकारा) गङ्गा का सगम तीर्थ है । उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके गंगेश्वर भगवान् शिव का दर्शन प्राप्त करके समस्त पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है और अन्त में विष्णु लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । वहाँ पर एक तिलों का भरा हुआ पात्र जो कि सुवर्ण से भी युक्त हो दान में देना चाहिये । यह दान सभी प्रकार के सौख्यों का करने वाला है और सम्पूर्ण पापों का भी हरण करने में परम श्रेष्ठ है । एक ऋण मोचनक नाम वाला उत्तम तीर्थ है जो कि समस्त पापों के नाश करने वाला कहा गया है । उस तीर्थ में अवगाहन करके मनुष्य को ऋणतेश्वर देव का यजन अवश्य ही करना चाहिये ।

वहाँ पर घृत श्राद्ध करे और अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण का दान करे। ऐसा करने वाला मनुष्य तीनों ऋणों से विमुक्त हो जाता है तथा स्वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥५७-६३॥

ततो गच्छेन्नरो नित्यं शक्ति भेदमकल्मषम् ।
तीर्थानाञ्चैव सर्वेषामुत्तमं पापनाशनम् ॥६४
तत्र स्नात्वानरोव्यास शुचिः प्रयतमानसः ।
मातृऋणाञ्चचसर्वेषादर्शनं कारयेद्बुधः ॥६५
कौमारीकार्त्तिकीमाता चर्पटावटमातरः ।
तथा भगवती देवी स्कन्दञ्चैवसमर्चयेत् ॥६६
तत्र श्राद्धानि देयानि विधिवद् द्विजसत्तम ! ।
दत्वा शय्यादिकं दानं कास्यधेनुं तथेतरद् ॥६७
मातृऋ णंसमुत्तीर्य सायुज्य लभतेनरः ।
यत्तत्तीर्थं वरं श्रेष्ठं पापमोचनसञ्ज्ञकम् ॥६८
तत्र स्नात्वानरैर्देयं छायादानञ्च सत्तम ।
सर्वपापविशुद्धात्मा जायते भुवि मानवः ॥६९
ततः परं परं व्यास तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतम् ।
प्रेतगिलेनिविख्यातं प्रेतमोक्षकरम्परम् ॥७०

इन सब तीर्थों की यात्रा समाप्त करके फिर मनुष्य का कर्त्तव्य है कि यह नित्य ही कल्मषों से रहित शक्तिभेद नामक तीर्थ को गमन करे। यह भी अन्य समस्त तीर्थों से उत्तम और पापों का विनाश करने वाला तीर्थ है। हे व्यास ! उसमें मनुष्य स्नान करके परम शुचि एवं प्रयत मन वाला होकर बुध को एवं मातृकों का दर्शन करना चाहिये। वहाँ पर कौमारी कार्तिकी माता हैं और चर्पटावट माताऐं हैं। उसी भाँति भगवती देवी और भगवान स्कन्द का अभ्यर्चन करे। हे द्विज सत्तम ! वहाँ पर विधिपूर्वक श्राद्ध भी देने चाहिए। शय्या आदि काँस्यधेनु तथा इतर दान देकर मनुष्य माता के ऋण से उऋण होकर सायुज्य की प्राप्ति किया करता है। एक परम श्रेष्ठ तीर्थों में वरिष्ठ पापमोचन सञ्ज्ञा (नाम) वाला तीर्थ है। हे सत्तम ! वहाँ पर मनुष्यों को स्नान करके छाया दान देना

चाहिये। वह मनुष्य फिर भूमि में सब पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर स्थित रहा करता है। हे व्यास ! इसके पश्चात् सबसे परमोत्तम एवं श्रेष्ठ एक तीर्थ है जो त्रिलोकी में परम प्रसिद्ध है और यह 'प्रेतशिला'—इस नाम से ही विख्यात है। यह तीर्थ प्रेतों की मुक्ति करने के लिये तो परमोत्तम है ॥६४-७०॥

तत्र स्नात्वानरोदद्याच्छ्राद्धं द्विजसमाहितः ।
तिलोदकप्रदानेन पितरोयान्तिसद्गतिम् ॥७१
घटदान ततोदेयं छत्रोपानत्समन्वितम् ।
महिषीञ्चततोदद्याद्वासांसि विविधानिच ॥७२
अन्नदान ततोदेयं रसेनलवणान्वितम् ।
यमेश्वरं समभ्यर्च्य निरयेनाधिगच्छति ॥७३
पितरस्तस्य सन्तुष्टा यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
पितृदोषा न बाधन्ते तेषाञ्च द्विजसत्तम ! ॥७४
तीर्थानामुत्तम तीर्थं सुपवित्रं लोकवन्दितम् ।
नवनदीसङ्गमोयत्र तत्र तिष्टति पार्वती ॥७५
तत्र स्नात्वा नरो नित्यं शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
पूजयेद्भगवतीं भद्रा पार्वतीं विधिवत्ततः ॥७६
महादानानिकुर्वीत हस्तिपान्नधरान्तिलान् ।
सुरभीदुग्धसहिता दद्यान्द्विजवरायच ॥७७

इस प्रेत शिला नामक तीर्थ में स्नान करके हे द्विज ! मनुष्य को परम समाहित होकर श्राद्ध देना चाहिए। यहाँ पर तिलोदक के प्रदान करने से पितृगण सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं, घट का दान—छत्र उपानह—महिषी और विविध भाँति के वस्त्रों का दान करना चाहिए। इसके अनन्तर अन्न का दान रस और लवण से समन्वित करके देना चाहिए। फिर यमेश्वर देव का अभ्यर्चन करके मनुष्य नरक से अधिगमन किया करता है। उस अर्चना करने वाले के पितर भी परम सन्तुष्ट होकर सनातन ब्रह्म की प्राप्ति कर लिया करते हैं। हे द्विज श्रेष्ठ ! उनको पितृ दोष कुछ भी बाधाऐं नहीं किया करते हैं। सम्पूर्ण तीर्थों में उत्तम एक

तीर्थ है जो इस भू मण्डल में विद्यमान है और त्रिलोकी के द्वारा वन्दित है। जहाँ पर नव नदियों का सङ्गम होता है वहाँ पर जगदम्बा पार्वती स्वयं विराजमान रहा करती हैं। उस तीर्थ में मनुष्य नित्य स्नान करके परम शुचि होकर समाहित होते हुए भगवती भद्रा पार्वती का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिए। वहाँ पर महादान करे—हाथी—अन्न—धरा—तिल सुरभी जो दुग्ध सहित हो—इनका दान किसी परम श्रेष्ठ को देना चाहिए ॥७१-७७॥

सर्वपापविशुद्धात्मा साक्षाच्छम्भुर्भवेन्नरः ।
मन्दाकिनीततोगच्छेदात्मकार्य विशुद्धये ॥७८
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यः सदाशिवम् ।
दत्त्वा शकटमन्नाद्य तिलद्रोणं प्रदापयेत् । ७६
सर्वपापविशुद्धात्मा धनाधिपसमोभवेत् ।
ततोगच्छेद्व्रती विप्र तीर्थं नैनामहंपरम् ॥८०
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा विधिवत्स्नानमाचरेत् ।
दत्त्वा दानानि सर्वाणि श्रीणि तत्र विशेषतः ॥८१
यथाशक्तिप्रदेयानि पृथ्वीगाव.सुवर्णकम् ।
विप्रांश्चभोजयेन्नित्यं विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥८२
ततस्तुपुनरागम्य रुद्रसरमनुत्तमम् ।
तस्मिन्स्नात्वातमस्वाच दृष्ट्वा देवमहेश्वरम् ॥८३
पूजयित्वाप्रयान्यायं यात्रेश्वरमनुत्तमम् ।
तुलसीविल्वपत्रैश्च पुष्पैर्विविधवासकैः ॥८४

इस तीर्थ में आने वाला मनुष्य सब पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर वह साक्षात् शम्भु ही हो जाया करता है। इसके उपरान्त मनुष्य को अपने कार्यों की विशुद्धि के लिये मन्दाकिनी पर जाना चाहिए। वहाँ जाकर स्नान करे—पवित्र हो जावे और फिर जो सदा शिव का पूजन किया करता है तथा शकट—अन्न आदि का एवं तिलों का द्रोण दान करता है वह सभी पापों से रहित एवं विशुद्धात्मा होकर धनाधिप (कुबेर)

के तुल्य ही हो जाया करता है । इसके उपरान्त तीर्थ यही पुण्य थी है विप्र ! परमोत्तम पैतामह तीर्थ पर गमन करना चाहिए । वहाँ स्नान कर शुचि होकर यथाविधि विधान के साथ ही स्नान का समाचरण करना चाहिए । वहाँ पर भी सभी प्रकार के दान देवे किन्तु इनमे विशेष रूप से तीन ही दान होते हैं और ये ये हैं—अपनी शक्ति जितनी हो उसी के अनुसार भूमि—गो और सुवर्ण का दान करे । निश्च ही विप्रो को भोजन करावे और उन विप्रो का विपुल दक्षिणा देनी चाहिए । इसके अनन्तर वहाँ से जाकर पुनः सर्वोत्तम रुद्रसर मे स्नान करे—उसको नमस्कार करे तथा महेश्वर देव का दर्शन करे । यथा विधि परमोत्तम यात्रा के ईश्वर देव का पूजन करे । देवेश्वर का पूजन विविध प्रकार के परम सुगन्धित पुष्पो से—तुलसी दलो से और बिल्व पत्रो से अभ्यर्चन करे ॥७८-८४॥

धूपदीपादिनैवेद्यमुखवासोत्तरच्छदैः ।
पूजयित्वा महादेव यात्रेश्वरमुमापतिम् ॥८५
प्रार्थयेद् देवदेवेश व्रतसम्पूर्णहेतवे ।
यात्रेश्वर ! नमस्तुभ्यमुमानाथजगत्पते ! ॥८६
त्वत्प्रसादात्कृता यात्रा सफला कुरु मे प्रभो ! ॥८७
एव य. कुरुतेयात्रामवन्त्याश्चद्विजोत्तम ।
अवन्तीवासज पुण्य प्राप्यतेनात्रसशय ॥८८
भुक्त्वा च विपुलान्भोगात् धनदादिसम्पदम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुर व्रजेत् ॥८९
ये शृण्वन्ति कथां पुण्या पवित्रा पापहारिणीम् ।
न तेपा दुर्लभ किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥९०
माहात्म्यमेतच्छिवभक्तिवर्द्धनं यशस्करं पुण्यविवर्धनञ्च ।
यःश्रावयेद्वा शृणुयात्सुभक्त्या कुलसमुद्धृत्य हरेःपदंव्रजेत् ॥९१

यात्रा के ईश्वर उमादेवी के स्वामी महादेव का यजन धूप—दीप—नैवेद्य-मुखवास और उत्तर छद के द्वारा भली भाँति करना चाहिए । पूजन के पश्चात् अपने व्रत की साङ्ग समाप्ति के लिये देव देवेश की प्रार्थना करनी चाहिए । हे उमा के नाथ ! हे इस सम्पूर्ण जगत् के

स्वामिन् ! आप तो यात्रा के अधिपति हैं आपको पवित्र सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित होवे । हे प्रभो मेरे द्वारा यह आपकी ही कृपा के प्रसाद से तीर्थों की यात्रा की गयी है अब मेरी इस यात्रा को आप सफल कर दी दीजिए ।।८५-८७।। श्रीसनत्कुमारजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इस रीति से जो भी कोई इस अवन्ती की यात्रा करता है वह अवन्ती पुरी में निवास से समुत्पन्न पुण्य को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । वह बहुत—से भोगो को भोग करके तथा धन—दारा आदि की प्राप्ति करके समस्त प्रकार के पापो का नाशकर विशुद्ध आत्मा वाला होकर अन्त में मृत्यु होने पर सीधा शिवपुर को ही गमन किया करता है । जो इस परम पवित्र-पुण्यमयी-पापों के हरण करने वाली कथा का श्रवण किया करते है उनको इस लोक में और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं । यह महा माहात्म्य शिव की भक्ति को बढ़ाने वाला है—यश की वृद्धि करने वाला है तथा पुण्य का भी वर्धन करने वाला है । जो इसका स्वयं भक्ति की भावना से श्रवण किया करता है अथवा दूसरों को श्रवण कराया करता है वह अपने कुल का भली भाँति उद्धार करके स्वयं श्रीहरि के पद की प्राप्ति किया करता है ।।८८-९०।।

७९—गङ्गेश्वरमाहात्म्यवर्णन

द्वाचत्वारिंशतं देवं गङ्गेश्वरमथो शृणु ।
यस्य दर्शनमात्रेणसर्वतीर्थफलं लभेत् ।
ध्रुवाधारं जगद्योनेः पदं नारायणस्य तु ॥१
पदात्प्रवृत्ता या देवी गङ्गा त्रिपथगा नदी ।
सा प्रविश्य सुधायोनिं सोममाधारमम्भसाम् ॥२
ततः सम्वर्द्धमानार्करश्मिसङ्गतिपावनी ।
पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्धा ततो ययौ ॥३
मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती यशस्विनी ।
विकीर्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा ॥४

मन्दरादिषु शैलेषु प्रविभक्तोदकासमम् ।
तत्र सीतेतिविख्याता ययौ चैत्ररथम्वनम् ॥५
तत्प्लावयित्वा च ययावरुणोदं सरिद्वरा ॥६
तथं वालकनन्दाख्या दक्षिणे गन्धमादने ।
मेरुपादवनं गत्वा नन्दने देवनन्दने ॥७

श्रीहर ने कहा—इसके अनन्तर अब आप व्यालीसवें अध्याय में गङ्गेश्वर देव के विषय में श्रवण करिए जिस के दर्शन मात्र से ही सब तीर्थों का फल मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है। इस सम्पूर्ण जगत् की योनि अर्थात् समुत्पत्ति स्थल भगवान् नारायण का पद (चरण) ही इसका ध्रुव (निश्चित) आधार है। जो देवी भगवान् के पद से प्रवृत्त हुई गङ्गा त्रिपथगा (तीन मार्गों में गमन करने वाली) नदी है। उस गङ्गा ने जलों के आधार और सुधा का उत्पत्ति स्थान सोम में प्रवेश किया। इसके पश्चात् सूर्य्य की किरणों की सङ्गति से पावन हो जाने वाली महा सम्वर्द्धमान होती हुई मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग में गिरी थी। वहाँ से वह चार भागों में होकर गयी। यह यशस्विनी मेरु पर्वत के कूट तटान्तों से गिरती हुई फैले हुए जल वाली बिना अवलम्ब वाली गिरी। मन्दर आदि पर्वतों में प्रविभक्त होती हुई अर्थात् विभक्त जलों वाली होकर वहाँ पर 'सीता'—इस नाम से विख्यात हुई और वह चैत्ररथ वन में गयी। उस वन को प्लावित करके यह सरिताओं में परम श्रेष्ठ नदी अरुणोद को गमन कर गयी। दक्षिण गन्ध मादन पर्वत में यह अलकनन्दा नाम वाली हो गई। मेरुपाद के वन में जाकर फिर यह देवों का आनन्द देने वाले नन्दन वन में चली गयी थी ॥१-७॥

मानसञ्च महावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ।
तस्माच्चशैलराजानं रम्यत्रिशिखरं गता ॥८
तस्माच्च पर्वताः सर्वं प्लावितास्तत्क्षणात्प्रिये ! ।
तान्प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् ॥९
मया धृता च तत्रैव जटाजूटेन पार्वति ! ।
न मुक्ता च यदा गंगा तदा क्रुद्धा ममोपरि ॥१०

गात्राणि प्लावयामास मदीयानि वरानने ।
मया च रुद्धा क्रोधेन जटामध्ये यशस्विनि ॥११
तत्रैव सा तपश्चक्रे बहुकल्पशतानि च ।
भगीरथेनोपवासैः स्तुत्या चाराधितोह्यहम् ॥१२
तदामुक्ता मया देवि गङ्गा त्रिपथगामिनी ।
महाकालमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ॥१३
समुद्रमहिषी जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
सरितामुत्तमा गङ्गा समुद्रेण कृता तदा ।
स तया सहितो रेमे समुद्रः सरिताम्पतिः ॥१४

इसके अनन्तर वह अपने महान् वेग से मान सरोवर को एक दम प्लावित करके उस स्थान से परम रम्य तीन शिखरों वाले शैलराज पर पहुँच गयी । हे प्रिये ! वहाँ से इसने क्षण मात्र में ही समस्त पर्वतों को प्लावित कर दिया । उन सब पर्वतों को सम्प्लावित करके महान् पर्वत हिमवान् में यह प्राप्त हो गई । हे पार्वति ! वहीं पर मैंने अपनी जटाजूट के द्वारा इसको धारण किया था । जब मैंने इसको अपनी जटाओं से नहीं छोड़ा था तो यह मेरे ऊपर बहुत ही क्रुद्ध हो गई । हे वरानने ! इसने मेरे समस्त अङ्गों को प्लावित कर दिया । हे यशस्विनि ! मैंने भी क्रोध से अपनी जटाओं के मध्य में इसको अवरुद्ध कर लिया । वहीं पर इसने बहुत से सैकड़ों कल्पों तक तपस्या की थी । इधर राजा भगीरथ ने उप॰ वासों के द्वारा और स्तवन से मेरी परम उत्कृष्ट आराधना की थी । उस समय मैंने हे देवि ! इस त्रिपथ गामिनी गंगा को अपनी जटाओं से मुक्त किया था । वहाँ से मुक्त होकर यह महाकाल में प्राप्त हुई और इसने उत्तर कुरुओं को प्लावित कर दिया । प्राणों से भी अधिक प्रिया यह समुद्र की महिषी हो गई । उसी समय में समुद्र ने सरिताओं में गङ्गा को सर्वोत्तम बना दिया । सरिताओं के स्वामी समुद्र इस गंगा के साथ रमण करता था ॥८-१४॥

ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपासाञ्चक्रिरे सुराः ।
तथापंवोजगमाथ ब्रह्मलोकं सनातनम् ।

मन्दरादिषु शैलेषु प्रविभक्तोदकाशमम् ।
तत्र सीतेतिविख्याता ययौ चैत्ररथम्वनम् ॥५
तत्प्लावयित्वा च ययावरुणोद सरिद्वरा ॥६
स्थ वाल्कनन्दाख्या दक्षिणे गन्धमादने ।
मेरुपादवनं गत्वा नन्दने देवनन्दने ॥७

श्रीहर ने कहा—इसके अनन्तर अब आप व्यालीसवें अध्याय में गणेश्वर देव के विषय मे श्रवण करिए जिस के दर्शन मात्र से ही सब तीर्थों का फल मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है। इस सम्पूर्ण जगत् की योनि अर्थात् समुत्पत्ति स्थल भगवान् नारायण का पद (चरण) ही इसका ध्रुव (निश्चित) आधार है। जो देवी भगवान् के पद से प्रवृत्त हुई गङ्गा त्रिपथगा (तीन मार्गों में गमन करने वाली) नदी है। उस गङ्गा ने जलो के आधार और सुधा का उत्पत्ति स्थान सोम मे प्रवेश किया। इसके पश्चात् सूर्य्य की किरणों की सद्गति से पावन हो जाने वाली वह सम्वर्द्धमान होती हुई मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग मे गिरी थी। वहाँ से वह चार भागो मे होकर गयी। वह यशस्विनी मेरु पर्वत के कूट तटान्तो से गिरती हुई फैले हुए जल वाली बिना अवलम्ब वाली गिरी। मन्दर आदि पर्वतो मे प्रविभक्त होती हुई अर्थात् विभक्त जलो वाली होकर वहाँ पर 'सीता'—इस नाम से विख्यात हुई और वह चैत्ररथ वन मे गयी। उस वन को प्लावित करके यह सरिताओ मे परम श्रेष्ठ नदी अरुणोद को गमन कर गयी। दक्षिण गन्ध मादन पर्वत मे यह अलकनन्दा नाम वाली हो गई। मेरुपाद के वन मे जाकर फिर यह देवो का आनन्द देने वाले नन्दन वन मे चली गयी थी ॥१-७॥

मानसञ्च महावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ।
तस्माच्चशैलराजानं रम्यंत्रिशिखरं गता ॥८
तस्माच्च पर्वताः सर्वं प्लाविताास्तत्क्षणात्प्रिये ! ।
तान्प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् ॥९
मया धृता च तत्रैव जटाजूटेन पार्वति ! ।
न मुक्ता च यदा गंगा तदा क्रुद्धा ममोपरि ॥१०

गात्राणि प्लावयामास मदीयानि वरानने ।
मया च रुद्धा क्रोधेन जटामध्ये यशस्विनि ॥११
तत्रैव सा तपश्चक्रे बहुकल्पशतानि च ।
भगीरथेनोपवासैः स्तुत्याचाराधितो ह्यहम् ॥१२
तदामुक्ता मया देवि गङ्गात्रिपथगामिनी ।
महाकालमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान्कुरुन् ॥१३
समुद्रमहिषी जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
सदीनामुत्तमा गंगा समुद्रेण कृता तदा ।
स तया सहितो रेमे समुद्रः सरितांपतिः ॥१४

इसके अनन्तर यह अपने महान् वेग से मान सरोवर को एक दम प्लावित करके उस स्थान से परम रम्य तीन शिखरों वाले शैलराज पर पहुँच गयी । हे प्रिये ! वहाँ से इसने क्षण मात्र में ही समस्त पर्वतों को प्लावित कर दिया । उन सब पर्वतों को सम्प्लावित करके महान् पर्वत हिमवान् में यह प्राप्त हो गई । हे पार्वति ! वहीं पर मैंने अपनी जटाजूट के द्वारा इसको धारण किया था । जब मैंने इसको अपनी जटाओं से नहीं छोड़ा था तो यह मेरे ऊपर बहुत ही क्रुद्ध हो गई । हे वरानने ! इसने मेरे समस्त अङ्गों को प्लावित कर दिया । हे यशस्विनि ! मैंने भी क्रोध से अपनी जटाओं के मध्य मे इसको अवरुद्ध कर लिया । वहीं पर इसने बहुत से सैकड़ों कल्पों तक तपस्या की थी । इधर राजा भगीरथ ने उपवासों के द्वारा और स्तवन से मेरी परम उत्कृष्ट आराधना की थी । उस समय में हे देवि ! इन त्रिपथ गामिनी गंगा को अपनी जटाओं से मुक्त किया था । वहाँ से मुक्त होकर यह महाकाल में प्राप्त हुई और इसने उत्तर कुरुओं को प्लावित कर दिया । प्राणों से भी अधिक प्रिया यह समुद्र की महिषी हो गई । उसी समय में समुद्र ने नदियों में गङ्गा को सर्वोत्तम बना दिया । सरिताओं के स्वामी समुद्र इस गंगा के साथ रमण करता था ॥८-१४॥

ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपासाञ्चक्रिरे सुराः ।
तथार्णवोऽजगामाथ ब्रह्मलोकं सनातनम् ।

गगया सहितो देवि ! दर्शनार्थं महोत्सवे ॥१५
अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम् ।
तस्यावासः समुद्धूतं मारुतेन शशिप्रभम् ॥१६
ततोऽभवन्सुरगणाः सहसाऽवाङ्मुखास्तदा ।
महाभिषस्तु राजर्षिर्निःशङ्को दृष्टवान्नदीम् ॥१७
तस्य भाव विदित्वाऽथ ब्रह्मणा स तिरस्कृतः ।
उक्तस्तु जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥१८
गंगाप्यायक्रुद्धेन समुद्रेणयशस्विनि ।
मां विहायान्यसक्तासितस्माद्यास्यसिमानुषम् ॥१९
लोकमल्पायुषदीना तत्रदु खमवाप्स्यसि ।
तं शाप दारुण श्रुत्वा गंगावचनमब्रवीत् ॥२०
विनापराधाच्छप्ताहं कस्माद्वै देवसंसदि ।
पतिव्रता पतिप्राणा पतिना परमार्थतः ॥२१

इसके अनन्तर किसी समय में सुरगणों ने ब्रह्माजी की उपासना की थी। उसी अवसर पर समुद्र उस सनातन ब्रह्मलोक में गया। हे देवि ! इस समुद्र के साथ में यह गंगा भी थी और उस महोत्सव में दर्शन के लिये गंगा को साथ में लेकर वहाँ पहुँच गया। इसके अनन्तर यह सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा पितामह के समीप में पहुँच गयी। मारुत ने उसका वास(वस्त्र)शशि प्रभु की ओर समुद्धूत (उड़ाकर फेंक) कर दिया। तब तो सभी सुरगण सहसा नीचे की ओर मुख करने वाले हो गये। राजर्षि महाभिष ने निःशङ्क होकर नदी को देखा। उसके भाव को जानकर ब्रह्माजी ने उनका तिरस्कार कर दिया और उस को कहा गया कि मनुष्यों में समुत्पन्न होकर फिर लोकों को प्राप्त करेगा। हे यशस्विनि ! इधर परम क्रुद्ध होकर समुद्र ने गंगा को शाप दे दिया था कि तू मुझ को छोड़कर अन्य में समासक्त हो गई है इस लिये मनुष्य लोक को प्राप्त हो जायगी जो कि अल्प आयु वाला है। वहाँ पर दीन होकर अत्यन्त दुःख को प्राप्त करेगी। उस परम दारुण शाप को सुनकर गंगा यह वचन बोली। बिना ही अपराध के इस देवों की सभा में क्यों मुझे शाप दिया

गया है। मैं तो पतिव्रता और पति को ही प्राण समझने वाली महिला हूँ और परमार्थ से पति के ही साथ रहने वाली हूँ ॥१५-२१॥

प्रमादाद्वस्त्रमुद्धूतं वायुना व्यापकेतु न।
प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा तां नदीलोकपावनीम् ॥२२
वसूनां कारणाद्देवि शप्ता यस्मान्महानदि!।
भाव्यर्थे तोयनिधिना तस्माच्छीघ्र व्रजाधुना ॥२३
महाकाल वने रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते।
शिप्राया दक्षिणे भागे विद्यते लिंगमुत्तमम् ॥२४
सर्वसिद्धिकरं पुण्य सर्वपातकनाशनम्।
तमाराधय यत्नेन स ते दास्यति वाञ्छितम् ॥२५
पितामहवचः श्रुत्वा तुष्टा त्रिपथगामिनी।
गमनं तत्र मेऽभीष्ट विद्यते यत्सखी मम।
शिप्राऽपि मे प्रिया पुण्या महापातकनाशिनी ॥२६
इति सञ्चिन्त्य मनसा दिव्यादेवनदीतदा।
आजगाममहाकाले ह्यपश्यल्लिंगमुत्तमम् ॥२७
पूजयामास पयसा दिव्येन विधिनातदा।
दृष्ट्वा शिप्रांसखीं तत्र संश्लेषंचाभवत्तयोः ॥२८

इस व्यापक रहने वाले वायु ने प्रमाद से मेरे वस्त्र को उद्धूत कर दिया अर्थात् उड़ाकर उस ओर में कर दिया। इसके पश्चात् उस लोक पावनी नदी से कहा—हे देवि! हे महा नदि! कारण यह है कि वसुगण के कारण से तुझे यह शाप दिया गया है और आगे होने वाले अर्थ में ही तोयनिधि ने ऐसा किया है अतएव अब तुम बहुत ही शीघ्र सिद्ध और गन्धर्वों के द्वारा सेवित परम रम्य महाकाल वन में जाकर पहुँच जाओ। वहाँ पर शिप्रा नदी के दक्षिण भाग में एक उत्तम शिवजी का लिंग विद्यमान है। वह समस्त सिद्धियों के करने वाला और समी पातकों के विनाश करने वाला है। तुम वहाँ जाकर उसी लिंग की समाराधना यत्न पूर्वक करो। वह आपको तुम्हारा वाञ्छित मनोरथ पूरा कर देंगे। पितामह के इस वचन का श्रवण करके त्रिपथ गामिनी गंगा परम

सन्तुष्ट हो गई। वहाँ का गमन करना तो मुझे परम अभीष्ट है क्यों कि वहाँ पर मेरी सखी विद्यमान है। शिप्रा भी मेरी बहुत प्यारी है और परम पुण्यमयी तथा महान् पातकों के नाश करने वाली है। उस समय में उस दिव्य देव नदी ने अपने मन से इस प्रकार से चिन्तन करके वह महाकाल में आगई थी और वहाँ पर उत्तम लिंग का दर्शन किया। उस समय में उसने विधि पूर्वक परम दिव्य पद्य से उनका पूजन किया। वहाँ पर अपनी सखी शिप्रा को देखा और उन दोनों का वहाँ पर संश्लेष हुआ अर्थात् सम्मिलन हो गया था ॥२२-२८॥

ततः प्रभृतिमन्वाता साशिप्रापूर्ववाहिनी ।
त्रिपुलोकेषुविख्यातोदेवो गंगेश्वरः स्वयम् ।
गंगयाऽऽराधितो यस्मात्समभीहितफलप्रद. ॥२९
सन्तुता देवगन्धर्वैर्गङ्गा देवनदी तदा ।
ऋषिभिर्वालखिल्याद्यैस्तयान्यंमुनिभिर्मुदा ॥३०
समुद्रस्तत्र सम्प्राप्तो मानिता सा महानदी ।
लिंगेनोक्ता तदा गंगा कलया स्थीयतामिति ॥३१
तत्समीपे महापुण्ये यावत्तिष्ठति मेदिनी ।
अंगीकृत समुद्रेण यथोक्तञ्चतथास्त्विति ॥३२
एवमुक्त्वा गता गंगा कलया तत्र संस्थिता ।
गंगेश्वर तु यः पश्येत्स्नात्वा शिप्राम्भसि प्रिये ! ॥३३
गो सहस्रफलं तस्य जायते नात्र संशयः ।
सर्व तीर्थ फलं तस्य सर्वधर्मफलं तथा ॥३४
सर्व यज्ञफलं सम्यक्सर्व दानफलं तथा ।
सर्व योगफलं देवि ! प्राप्नोत्येव निरन्तरम् ॥३५

तभी से लेकर यह शिप्रा नदी पूर्व की ओर वहन करने वाली हो गई। तीनों लोकों में स्वयं देव भी तभी से गंगेश्वर नाम से विख्यात हो गये। क्यों कि यह देव गंगा के द्वारा समाराधित हुए अतएव सभी हित फलों के देने वाले हो गये। उस समय में देवों और गन्धर्वों के द्वारा वह देव नदी गंगा से संस्तुत हुई और बालखिल्य आदि ऋषियों ने

समय मुनियों ने भी परम हर्ष के साथ गंगा का स्तवन किया। वहाँ पर समुद्र भी सम्प्राप्त हो गया और उसके द्वारा भी उस महा नदी का सम्मान किया गया। इस अवसर पर शिव लिंग ने कहा कि एक कला से संस्थित रहो। महा पुण्यमय उसके समीप में जब तक मेदनी स्थित रहा —समुद्र ने जैसा भी कहा गया उसे 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कहकर स्वीकार कर लिया। इस प्रकार से कहकर सागर चली गयी और एक कला से वहाँ पर संस्थित हो गई। हे प्रिये! शिप्रा नदी के जल में स्नान करके जो भी कोई भगवान् भगेश्वर का दर्शन करता है उसको एक सहस्र गौओं के दान करने का फल प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस पुरुष को समस्त तीर्थों का पुण्य फल होता है तथा सब तरह के धर्मों का फल मिला करता है। सम्पूर्ण यज्ञों के करने का फल और भली भाँति किये गये सब प्रकार के दानों का फल प्राप्त होता है। हे देवि! वह मनुष्य सब योगों का फल निरन्तर ही अवश्य प्राप्त कर लेता है ॥२९-३५॥

तत्र तीर्थानि सुभगे! पृथिव्यां यानि कानिचित्।
धर्मारण्यं फल्गुतीर्थं पुष्करं नैमिषं गया ॥३६
प्रयागञ्च कुरुक्षेत्रं केदारममरेश्वरम्।
चन्द्रभागा विपाशा च सरयूर्देविका कुहूः ॥३७
गोदावरी शतद्रुश्च बाहुदा वेत्रवत्यपि।
सर्वा एवाम सरितः सगताः सन्ति न गया ॥३८
गुप्तानिपुण्यतीर्थानि सिद्धक्षेत्राणिचैवहि।
तत्रसर्वाण्यपितिष्ठन्ति कलामात्रेणपार्वति ॥३९
एतेषांफलमाप्नोतियः पश्यतिसमाहितः।
स्नात्वाभगेश्वरं देवं सत्यमेतन्मयोदितम्।
अतः पुण्यतमं स्थानं गीयते गणविन्दते! ॥४०
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः।
भगेश्वरस्य देवस्य शृणु नागेश्वरस्य च ॥४१

हे सुभगे ! इस पृथिवी में जो कोई भी तीर्थ हैं जैसे धर्मारण्य—फल्गुतीर्थ—केदार—अमरेश्वर—चन्द्रभागा—विपाशा—सरयू—देविका कुहू—गोदावरी—शतद्रु—बाहुदा—वेत्रवती ये सभी सरिताऐं यहाँ पर गङ्गा के साथ सङ्गत हुई हैं। जो गुप्त एवं पुण्य तीर्थ हैं तथा सिद्धक्षेत्र हैं वहाँ पर वे सभी स्थित रहा करते हैं। हे पार्वति ! कला मात्र से वहाँ पर सभी की सस्थिति है जो समाहित होकर दर्शन किया करता है वह इन सबका फल प्राप्त किया करता है। वहाँ पे उसे गङ्गेश्वर देव का स्नान करके दर्शन करना चाहिए—सर्वथा सत्य ही मैंने कहा है। हे गण वन्दिते ! इसी लिए यह परम पुण्यतम स्थान गाया जाता है। हे देवि ! यह पापों के नाश करने वाला श्री गङ्गेश्वर देव का प्रभाव मैंने वर्णन कर दिया है। अब परम प्रङ्कारेश्वर का श्रवण करो ॥३६-४१॥

८०—प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णन

प्रयागेश्वरसञ्ज्ञं तु सर्वकामकरं परम् ।
अष्टाधिकं विजानीहि पञ्चाशत्तमोश्वरम् ॥१
आसत्प्रथमकल्पे तु मनुः स्वायम्भुवः पुरा ।
तस्यप्रियव्रतः पुत्रोयज्वापरमधार्मिकः ॥२
स चेष्ट्वाबहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
सप्तद्वीपेषु सम्प्राप्य भरतादीन्सुतान्प्रिये ॥३
स्वयं विशाला बदरी गत्वा तेपे महत्तपः ।
कालेन बहुना तत्रनारदः समुपस्थितः ॥४
पूजितो विश्वरार्पण राज्ञा प्रियव्रतेन च ।
स पृष्टः पूजयित्वा तु किमाश्चर्यंवदस्वमे ॥५
इत्युक्तः कथयामास नारदो मुनिसत्तमः ।
श्वेतद्वीपे मया राजन्कन्याहृष्टा सरोवरे ॥६
सा च पृष्टा विशालाक्षी कस्माद्वसति निर्जने ।
कासि भद्रे ! कथं वासि किं वा कार्यमिह त्वया ॥७

श्री ईश्वर ने कहा—यह प्रयागेश्वर नाम वाले प्रभु समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले सर्वोपरि देव हैं। इन ईश्वर को आराधन करना चाहिए। पहिले प्रथम कल्प में स्वायम्भुव मनु थे। उनके प्रियव्रत नाम वाला पुत्र था जो यजन करने वाला तथा परम धार्मिक हुआ था। उसने बहुत से यज्ञों का यजन किया था और परम श्रेष्ठ दक्षिणाऐं देकर उन्हें सांग समाप्त किया था। हे प्रिये! सात द्वीपों में भरत आदि पुत्रों की प्राप्ति उसने की थी। फिर वहाँ स्वयं परम विशाल बदरी में जाकर तपश्चर्या करने लग गया था। अधिक समय जब व्यतीत होगया तो वहाँ पर देवर्षि नारद जी समागत हो गये थे। राजा प्रियव्रत के द्वारा विष्टर एवं अर्घ्य से उनका पूजन किया गया था। पूजा करके राजा ने उनसे पूछा था कि आश्चर्य क्या है—यह मुझे आप बतलाइये। जब इस तरह से कहा गया था तो मुनियों में परम श्रेष्ठ नारद जी ने कहा था—हे राजन्! मैंने श्वेतद्वीप में सरोवर में एक कन्या को देखा था और मैंने उससे पूछा था कि इस निर्जन वन में आप किस कारण से निवास कर रही हैं। मैंने उस विशाल नेत्रों वाली से यह भी पूछा था—हे भद्रे! आप कौन हैं और यहाँ पर कैसे हैं। मुझे आपके लिए क्या सहायता करनी चाहिए ॥१-७॥

कर्त्तव्यं चारुसर्वाङ्गि तन्ममाचक्ष्व शोभने ।
एवमुक्तामयासाहिमाहृष्टामीलितेक्षणम् ॥८
स्मृत्वा तूष्णीं स्थिता यावत्तावन्मे ज्ञानमुत्तमम् ।
विस्मृताः सर्ववेदाश्च सर्वशास्त्राणि चैव हि ॥९
ततोऽहं विस्मयाविष्टश्चिन्तामोहसमन्वितः ।
तामेवशरणं गत्वायावस्यपश्यामिपार्थिव ॥१०
तावद्दिव्यःपुमांस्तस्याः शरीरे समदृश्यत ।
तस्यापि सोऽहृदयेद्वितीयस्तस्यचोरसि ॥
तस्यापि हृदये चान्यस्तृतीयस्तु व्यवस्थितः ॥११
ततः पृष्टा मया देवी सा कुमारी यशस्विनी ।
वेदा नष्टाममाशेषा भद्रे किन्नु हि कारणम् ॥१२

हे मुमने ! इस पृथिवी में जो कोई भी तीर्थ हैं जैसे धर्म्मारण्य—फल्गुतीर्थ—केदार—अमरेश्वर—चन्द्रभागा—विपाशा—सरयू—देविका कुहू—गोदावरी—शतद्रु—वाहुदा—वेत्रवती ये सभी सरिताऐं यहाँ पर गङ्गा के साथ सङ्गत हुई हैं। जो गुप्त एवं पुण्य तीर्थ हैं तथा सिद्धक्षेत्र हैं वहाँ पर वे सभी स्थित रहा करते हैं। हे पार्वति ! कला मात्र से वहाँ पर सभी की सस्थिति है जो समाहित होकर दर्शन किया करता है वह इन सबका फल प्राप्त किया करता है। पहिले उसे गङ्गेश्वर देव का स्नान करके दर्शन करना चाहिए—सर्वथा सत्य ही मैंने कहा है। हे गण वन्दिते ! इसी लिए यह परम पुण्यतम स्थान गाया जाता है। हे देवि ! यह पापों के नाश करने वाला श्री गङ्गेश्वर देव का प्रभाव मैंने वर्णन कर दिया है। अब परम अङ्गारेश्वर का श्रवण करो ॥३६-४१॥

८०—प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णन

प्रयागेश्वरसञ्ज्ञं तु सर्वकामकरं परम् ।
अष्टाधिक विजानीहि पञ्चाशत्तमभोश्वरम् ॥१
आसत्प्रथमकल्पे तु मनुः स्वायम्भुव पुरा ।
तस्यप्रियव्रतः पुत्रोऽयञ्वापरमधार्मिकः ॥२
स चेष्ट्वाबहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
सप्तद्वीपेषु सम्प्राप्य भरतादीन्सुतान्प्रिये ॥३
स्वयं विशाला वदरी गत्वा तेपे महत्तपः ।
कालेन बहुना तत्रनारदः समुपस्थितः ॥४
पूजितो विष्टरार्घेण राज्ञा प्रियव्रतेन च ।
स पृष्टः पूजयित्वा तु किमाश्चर्यंवदस्वमे ॥५
इत्युक्तः कथयामास नारदो मुनिसत्तमः ।
श्वेतद्वीपे मया राजन्कन्यादृष्टा सरोवरे ॥६
सा च पृष्टा विशालाक्षी कस्माद्वससि निर्जने ।
काऽसि भद्रे ! वथं वासि किं वा कार्यमिह त्वया ॥७

श्री ईश्वर ने कहा—यह प्रयागेश्वर नाम वाले प्रभु समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले सर्वोपरि देव हैं। इन ईश्वर को अद्भुत जानना चाहिए। पहिले प्रथम कल्प में स्वायम्भुव मनु थे। उनके प्रियव्रत नाम वाला पुत्र था जो यजन करने वाला तथा परम धार्मिक हुआ था। उसने बहुत से यज्ञों का यजन किया था और परम श्रेष्ठ दक्षिणाएं देकर उन्हें सांग समाप्त किया था। हे प्रिये! सात द्वीपों में भरत आदि सुतों की प्राप्ति उसने की थी। फिर वहाँ स्वयं परम विशाल बदरी में जाकर तपश्चर्या करने लग गया था। अधिक समय जब व्यतीत होगया तो वहाँ पर देवर्षि नारद जी समागत हो गये थे। राजा प्रियव्रत के द्वारा विष्टर एवं अर्घ्य से उनका पूजन किया गया था। पूजा करके राजा ने उनसे पूछा था कि आश्चर्य क्या है—यह मुझे आप बतलाइये। जब इस तरह से कहा गया था तो मुनियों में परम श्रेष्ठ नारद जी ने कहा था—हे राजन्! मैंने श्वेतद्वीप में सरोवर में एक कन्या को देखा था और मैंने उससे पूछा था कि इस निर्जन वन में आप किस कारण से निवास कर रही हैं। मैंने उस विशाल नेत्रों वाली से यह भी पूछा था—हे भद्रे! आप कौन हैं और यहाँ पर कैसे हैं। मुझे आपके लिए क्या सहायता करनी चाहिए ॥१-७॥

कर्त्तव्यं चारुसर्वाङ्गि तन्ममाचक्ष्व शोभने! ।
एवमुक्तामयासाहिमादृष्ट्वामीलितेक्षणम् ॥८
स्मृत्वा तूष्णीस्थिता यावत्तावन्मे ज्ञानमुत्तमम् ।
विस्मृता सर्ववेदाश्च सर्वशास्त्राणि चैव हि ॥९
ततोऽहं विस्मयाविष्टश्चिन्तामोहसमन्वितः ।
तामेवशरण गत्वायावत्पश्यामिपार्थिव ॥१०
तावद्दिव्य:पुमास्तस्या:शरीरेसमदृश्यत ।
तस्यापिपुंसोहृदयेद्वितीयस्तस्यचोरसि ॥
तस्यापि हृदये चान्यस्तृतीयस्तु व्यवस्थितः ॥११
ततः पृष्टा मया देवी सा कुमारी कथञ्चन ।
वेदा नष्टाममाशेषा मद्रे किम् हिकारणम् ॥१२

मताहं सर्ववेदानां सावित्रीनाम नामतः ।
मां न जानासियेन त्वमतोवेदा हृतास्तव ॥१३
एवमुक्ते मया पृष्टा विस्मयेन महीपते! ।
वेदानां त्वं तु माता चेत्कथयस्वममानघे ॥१४
त्वदीयहृदये देवि! क एते पुरुषास्त्रयः ॥१५

मैंने उससे कहा था—हे शोभने ! आपके तो सभी अंग प्रत्यंग परम रम्य हैं। आप स्पष्ट बतलाइये। इस तरह से मेरे द्वारा कही गयी उसने मीलित नेत्रों वाले मुझको देखकर यह स्मरण करके तब तक चुप चाप स्थित रह गयी थी जब तक मेरा उत्तम ज्ञान—समस्त वेद और सब शास्त्र विस्मृत हुए थे। इसके अनन्तर मैं परम विस्मय से समाविष्ट होकर चिन्ता और मोह से समन्वित हो गया था। हे पार्थिव ! जब तक मैं उसी की शरणागति में जाकर देखता हूँ कि तब तक उसके शरीर में एक परम दिव्य पुमान् मुझे दिखाई दिया था। उस पुरुष के भी हृदय में दूसरा और उस दूसरे के भी उरःस्थल में एक अन्य ही पुमान् था ऐसे यह तीसरा वहाँ पर व्यवस्थित था। इसके पश्चात मैंने फिर उस कुमारी देवी से किसी तरह पूछा था—हे भद्रे ! मेरे समस्त वेद नष्ट हो गये हैं—इसका क्या कारण है ? आप मुझे कृपा करके बतलाइये। उस कन्या ने कहा—मैं समस्त वेदों की माता हूँ। मेरा नाम सावित्री है। तुम मुझको नहीं जानते हो, इसीलिए आपके समस्त वेद हृत कर लिए गये हैं। हे महीपते ! इस प्रकार से कहने पर मैंने अत्यन्त विस्मय से उससे पूछा था—हे अनघे जब आप समस्त वेदों की माता हैं तो मुझे यही बतलाओ कि हे देवि ! आपके हृदय में ये तीन पुरुष कौन हैं ?॥८-१५॥

य एष मच्छरीरस्थः शुभाङ्गश्चारुशोभनः ।
एष ऋग्वेदनामा तु यजुर्वेदो द्वितीयकः ॥१६
सामवेदस्तृतीयस्तु त्रयो वेदा मयि स्थिताः ।
त्रयोऽप्यत्रयो देवा मच्छरीरे स्थिता द्विज! ॥१७
इत्युक्त्वा सा तदा कन्या पश्यतो मम भूपते! ।
अन्तर्द्धानं गता सद्यस्ततोऽहं विस्मितोऽभवम् ॥१८

किं करोमि क्व गच्छामि शरणं यामि कं प्रभुम् ।
कथमाविर्भविष्यन्ति वेदाः शास्त्राणि साम्प्रतम् ॥१९
कामिकस्तीर्थराजस्तु प्रयागः श्रूयते श्रुतौ ।
अहं तत्र गमिष्यामि ज्ञानं सम्यग्भविष्यति ॥२०
नष्टवेदेन रैभ्येण प्राप्ता सिद्धिरनुत्तमा ।
सावित्री श्रूयते तत्र अक्षयवटसन्निधौ ॥२१

इस कन्या ने कहा—जो यह मेरे शरीर में स्थित है जिसके परम शुभ अंग हैं और परम चारु एवं शोभा वाला है यही ऋग्वेद नाम वाला है। दूसरा यजुर्वेद है और तीसरा सामवेद है। ऐसे ये तीनों वेद मुझमें स्थित हैं। हे द्विज! तीनों अग्नियाँ—तीनों देव मेरे शरीर में स्थित रहा करते हैं। उसी समय में यह कह कर वह कन्या हे सूते! मेरे देखते-देखते तुरन्त ही अन्तर्धान हो गई थी। तब से मैं परम विस्मित हो गया हूँ। क्या करूँ—कहाँ पर जाऊँ और किस प्रभु की शरण ग्रहण करूँ। मेरे ये सब वेद तथा शास्त्र अब कैसे आविर्भूत होंगे। श्रुति में ऐसा सुना गया है कि तीर्थों का राजा प्रयाग कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। मैं तो वहीं पर जाऊँगा जिससे भली भाँति मुझे पुनः ज्ञान हो जायगा। वेदों के नष्ट होने पर रैभ्य के द्वारा प्राप्त हुई सिद्धि भी उत्तमा नहीं होती है। वहीं पर अक्षय वट की सन्निधि में सावित्री को सुना जाता है अर्थात् वह वहाँ पर विद्यमान रहती है ऐसा सुनते हैं ॥१९-२१॥

एवं मनसि सन्ध्यायगतोऽहं नृपसत्तम ।
प्रयागं कामिकं तीर्थं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥२२
तपस्तीव्रं मया तत्र तप्तं परमदुष्करम् ।
समाजगाम राजेन्द्र प्रयागोमूर्तिमान्स्वयम् ॥२३
उक्तोऽहं प्रणयात्तेन न मातापय नारद ।
ब्रह्मपुत्र! प्रयागोऽहं भीषितस्तपसा तव ॥२४
भवतः पार्श्वमायातः प्रणयेन तपोधन ।
धन्योऽसित्वया ब्रह्मंस्तपसाचविशेषतः ॥२५

इत्युक्तोहं तदा देव्या सावित्र्या नृपसत्तम! ।
लिंगस्यास्य प्रभावेण प्रयागाभ्यर्थितस्य व ॥३८
प्रतिभास्यन्ति ते वेदा धर्मशास्त्राणिनारद!।
इत्युक्ते वचने भूयःप्राप्ता वेदा मया नृप ॥३९
ज्ञान षडंगसहितं शास्त्राणिविविधानिच ।
लब्धज्ञानेन राजेन्द्र मयाप्रोक्तवचस्तदा ॥४०
प्रयागेनार्चितो देवो मम ज्ञानस्य कारणात् ।
प्रयागेश्वरसञ्ज्ञस्तु ख्याति लोकेषु यास्यति ॥ ४१
तदाप्रभृति तल्लिंग तीर्थकोटिशतैर्वृतम्।
स्वर्गापवर्ग फलदं तत्र त्वं गन्तुमर्हसि ॥४२

हे प्रभो ! सावित्री के दर्शन से इनके वेद और शास्त्र सब नष्ट हो गये हैं । तब तो उस लिंग से उसी समय में वेदों से युक्त ब्रह्माजी समुत्थित हुए थे । वे अ गों के प्रथा रहस्य के सहित वेदों से युक्त थे और पुराणों से भी समन्वित थे । हे नृप सत्तम ! उस समय में सावित्री देवी ने मुझसे कहा था कि—हे नारद ! इस लिंग के प्रभाव से जिसकी प्रार्थना प्रयाग के द्वारा की गई है आपको अब समस्त वेद और धर्म शास्त्र प्रतिभासित हो जायेंगे । हे नृप ! इस वचन के कहने पर मुझे सब वेद पुनः प्राप्त हो गये थे, षडङ्गों के सहित ज्ञान तथा विविध शास्त्र मैंने प्राप्त कर लिये थे । हे राजेन्द्र ! ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले मैंने उस समय में यह वचन कहा था—मुझे ज्ञान प्राप्त कराने के कारण से प्रयाग के द्वारा देव की अर्चना की गई थी । इसलिए लोकों में यह प्रयागेश्वर नाम वाले होकर ख्याति को प्राप्त होंगे । तभी से लेकर यह लिंग सैंकड़ों करोड़ तीर्थों से समावृत हो गये हैं और यह स्वर्ग तथा अप वर्ग के फल को प्रदान करने वाले हैं । वहाँ पर आप गमन करने के योग्य होते हैं ।।३९-४२।।

किमनेनाश्वमेधेन इष्टेन नृपसत्तम ।
अश्वमेधशतफलं जायते तस्य दर्शनात् ।।४३
तपसा किं सुतप्तेन कायक्लेशकरेण तु ।
वाञ्छितं लभते सद्य. प्रयागेश्वरदर्शनात् ।।४४

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्वायंभुवसुतोनृपः ।
प्रियव्रतोमहादेवि! महाकालवनं गतः ॥४५
ददर्श तत्र तल्लिगं नवनद्यास्तु दक्षिणे ।
दर्शनात्तस्य लिंगस्य मत्समीपं समागत. ॥४६
मया सम्मानितो देवि! गणनामधिपः कृतः ।
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या प्रयागेश्वरमीश्वरम् ॥
ते धन्या मानुषे लोके क्लिश्यन्त्यन्ये निरर्थका: ॥४७
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः ।
सा गतिर्जायते सम्यक्प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥४८
माघमासे समेष्यन्ति प्रयागेश्वरदर्शनम् ।
कर्तुं ये मानुषास्तेषामश्वमेधः पदे पदे ॥४९
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशन' ।
प्रयागेश्वरदेवस्य शृणु सिद्धेश्वरं परम् ॥५०

हस नृप श्रेष्ठ ! इस यजन किए हुए अश्वमेध से क्या प्रयोजन है। उसके दर्शन मात्र से ही सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है। अपनी काया को क्लेश देने वाले इस सुतप्त तप से क्या लाभ होगा प्रयागेश्वर प्रभु के केवल दर्शन ही से सभी प्रकार के अभीष्टों की सिद्धि तुरन्त ही हो जाया करती है। श्री ईश्वर ने कहा—हे महादेवि ! स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रिय व्रत ने देवर्षि श्री नारद जो के इस वचन को सुन कर वह महाकाल वन में चला गया था। वहाँ पर नव नदी के दक्षिण भाग में उस लिंग का दर्शन किया था। उस लिंग के दर्शन से वह मेरे समीप में आ गया था। हे देवि ! मैंने उसका सम्मान किया था और उसे गणों का अधिप बना दिया था। जो मनुष्य भक्ति भाव से प्रयागेश्वर ईश्वर का दर्शन किया करते है वे मनुष्य इस लोक में परम धन्य हैं अन्य लोग तो निरर्थक ही क्लेश उठाया करते हैं। जो सत्व में स्थित योग से युक्त मनीषी की गति हुआ करती है वही गति भली भाँति प्रयागेश्वर के दर्शन कर लेने से मनुष्यों की हो जाया करतो है। माघ मास में जो

की प्रतिष्ठा की गई है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१-२॥ वेद जो अल्पश्रुत पुरुष होता है उससे भय भीत होता है कि यह मुझको प्रतारित करेगा। पहिले ही इतिहास पुराणों के द्वारा यह निश्चय किया गया है ॥३॥ वेदों की आत्मा पुराण है और ये छैं अङ्ग शास्त्र पृथक् हैं। और जो वेदों मे देखा गया है वही स्मृतियों के द्वारा भी देखा गया है। इन दोनों वेदों और स्मृतियों के द्वारा जो देखा गया है वह सब पुराणों मे गाया जाता है। पुराण समस्त शास्त्रों का ब्रह्मा का प्रथम कहा गया है ॥४-५॥

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
पुराणमेकमेवासीदस्मिन्कल्पान्तरे मुने !॥६
त्रिवर्गसाधन पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।
स्मृत्वाजगादच मुनीन्प्रतिदेवश्चतुर्मुखः ॥७
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः।
कालेनाग्रहण दृष्ट्वा पुराणस्यततोमुनिः ॥८
व्यासरूपं विभुः कृत्वा संहरेत्स युगेयुगे।
अष्टलक्षप्रमाणे तु द्वापरेद्वापरे सदा ॥९
तदष्टादशधाकृत्वाभूर्लोकेऽस्मिन्प्रभाष्यते।
अद्यापिदेवलोकेतच्छतकोटिप्रविस्तरम् ॥१०

इसके उपरान्त उनके मुखों से वेद विनिर्गत हुए। इस कल्पान्तर मे एक ही पुराण था ॥६॥ चतुर्मुख ब्रह्माजी ने त्रिवर्ग का साधन स्वरूप —परम पुण्यमय और सौ करोड़ के प्रकृष्ट विस्तार वाला स्मरण करके देव ने मुनियों के प्रति कहा था ॥७॥ इसके अनन्तर समस्त शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण की हो गई। इसके उपरान्त कुछ काल में मुनि ने पुराण का ग्रहण न करना देखकर विभु ने व्यास का स्वरूप धारण किया और वह युग–युग मे संहार करते थे। सदा द्वापर–द्वापर में आठ लाख प्रमाण होने पर इस भू लोक मे अठारह प्रकार से करके प्रभाषित किया जाता है। आज भी देवों के लोक मे वह सौ करोड़ के विस्तार वाला है ॥८-१०॥

तदथात्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम् ।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ।
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणु त्वमृषिसत्तम ।।११
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।१२
ब्राह्मं पुराणं तत्राद्यं संहितायां विभूषितम् ।
श्लोकानां दशसाहस्रं नानापुण्यकथायुतम् ।।१३
पाद्मं च पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि निगद्यते ।
तृतीयं वैष्णवं नामत्रयोविंशतिसंख्यया ।।१४
चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम् ।
शिवभक्तिसमायोगाच्छैवं तच्चापराख्यया ।।१५
चतुर्विंशतिसंख्यातं सहस्राणि तु शौनक ! ।
चतुर्भिः पर्वभिः प्रोक्तं भविष्यं पञ्चमं तथा ।।१६
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
मार्कण्डं नव साहस्रं षष्ठं तत्परिकीर्तितम् ।।१७

यह यहाँ पर चार लाख संक्षेप से निवेशित किया है । पुराण अठारह हैं । इस समय वह यहाँ पर कहा जाता है । हे ऋषिवर ! मैं नामोल्लेख करके उनको बतलाता हूँ । आप उनका श्रवण करिए ।।११।। पुराण के पाँच लक्षण हुआ करते हैं—सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश—मन्वन्तर और वंशों का अनुचरित पुराण में वर्णित हुआ करते हैं ।।१२।। इन पुराणों में सब से पृथक् आदि में होने वाला ब्राह्म पुराण है जो कि संहिता में विभूषित है । इसमें दश सहस्र श्लोक हैं और यह अनेक परम पुण्यमयी कथाओं से युक्त है ।।१३।। फिर पाद्म अर्थात् पद्म पुराण है जिसके श्लोकों की (यहाँ सर्वत्र अनुष्टुप छन्द से तात्पर्य है) पचपन सहस्र कही जाती है । तीसरा विष्णु पुराण है जिसके श्लोकों की संख्या तेईस सहस्र है ।।१४।। चौथा वायुदेव के द्वारा वर्णित वायवीय अर्थात् वायु पुराण कहा गया है । शिव की भक्ति के समायोग से इसका दूसरा नाम शिवपुराण भी होता है ।।१५।। हे शौनक ! यह चौबीस सहस्र की संख्या वाला है ।

पांचवाँ पुराण भविष्य है जो चार पर्वों के द्वारा कहा गया है ॥१६॥ इसके श्लोकों की सख्या साढ़े चार सहस्र है । छटवाँ मार्कण्डेय पुराण है जिसके श्लोकों की सख्या नो सहस्र है ॥१७॥

आग्नेय सप्तमं प्रोक्तं सहस्राणि तुषोडश ।
अष्टमं नारदीयं तु प्रोक्तं वै पञ्चविंशति ॥१८
नवमं भगवन्नाम भागद्वयविभूषितम् ।
तदष्टादशसाहस्रं प्रोच्यते ग्रन्थसख्यया ॥१९
दशमं ब्रह्मवैवर्तं तावत्सख्यमिहोच्यते ।
लैङ्गमेकादश ज्ञेयं तथैकादशसख्यया ॥२०
भागद्वय विरचितं तल्लिगमृषिपुंगव ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं द्वादश विदुः ॥२१
विभक्त सप्तभि. खण्डैः स्कान्दं भाग्यवताम्वर ! ।
तदेकाशीतिसाहस्रं संख्यया वै निरूपितम् ॥२२
ततस्तु वामनं नाम चतुर्दशतम स्मृतम् ।
सख्यया दशसाहस्रं प्रोक्त कुलपते ! पुरा ॥२३
कौर्मं पञ्चदश प्राहुर्भागद्वयविभूषितम् ।
दशसप्तसहस्राणिपुरा ह्याख्यपते कलौ ॥२४

आग्नेय अर्थात् अग्निपुराण सातवाँ पुराण बताया गया है जिसके श्लोको की सख्या सोलह हजार है । आठवाँ नारदीय अर्थात् नारद पुराण है जिसके श्लोको की सख्या पच्चीस सहस्र होती है ॥१८॥ नवम भागवत महापुराण है जो भगवान् के नाम से प्रसिद्ध है और दो भागो से विभूषित है, इस ग्रन्थ के श्लोको की संख्या अठारह सहस्र है ऐसा कहा जाता है ॥१९॥ दसवाँ ब्रह्मवैवर्त्त पुराण है । इसके श्लोको की सख्या भी उतनी ही अर्थात् अठारह हजार कही गई है । ग्यारहवाँ लिंग पुराण है । इनकी ग्यारह सहस्र सख्या है ॥२०॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! यह लिंग दो भागों मे विरचित है । बारहवाँ पुराण वाराह है जिसके श्लोको की संख्या चौबीस सहस्र होती है ॥२१॥ हे भाग्यवानो मे परम श्रेष्ठ ! स्कन्द पुराण सात खण्डों में विभक्त है और इसके श्लोको की संख्या इक्यासी हजार है । यह

संख्या में सबसे बड़ा है ॥२२॥ इसके पश्चात् चौदहवाँ पुराण वामन है । इसके श्लोकों की संख्या हे कुलपते ! पहिले दश सहस्र कही गयी है ॥२३॥ पन्द्रहवाँ कूर्म पुराण है । यह भी दो भागों में भूषित है । पहिले काल में यह सत्रह सहस्र संख्या वाला होता है ॥२४॥

मात्स्य मत्स्येनसम्प्रोक्तं मनवेषोडशक्रमात् ।
तच्चतुर्दशसाहस्रं सत्तमावदताम्वर ॥२५
गारुड सप्तदशमं स्मृतं चैकोनविंशतिः ।
अष्टादशं तु ब्रह्माण्ड भागद्वयविभूषितम् ॥२६
सच्च द्वादशसाहस्रं शतमष्टसमन्वितम् ।
तथैवोपपुराणानि यानि चोक्तानिवेधसा ॥२७
इद ब्रह्मपुराणस्य सुलभ सौरमुत्तमम् ।
संहिताद्वयसंयुक्तं पुण्य शिवकथाश्रयम् ॥२८
आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्यभाषिता ।
सनत्कुमारनाम्ना हि तद्विख्यात महामुने ! ॥२९
द्वितीयं नारसिंह च पुराणे पापनाशिते ।
शौकेयं हि तृतीय तु पुराणे वैष्णवंमतम् ॥३०
बार्हस्पत्यं चतुर्थ च पापघ्न सम्मतं सदा ।
दौर्वासस पञ्चमं च स्मृत भागवतेसदा ॥३१

सोलहवाँ पुराण मत्स्य है जिसको भगवान् मत्स्य ने मनु से कहा है । हे बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ! इसके श्लोकों की संख्या चौदह सहस्र है ॥२५॥ सत्रहवाँ गरुड पुराण है जिसकी संख्या उन्नीस हजार है । अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है जो दो भागों से विभूषित है ॥२६॥ इसके श्लोकों की संख्या बारह हजार आठ सौ है । इसी प्रकार से उपपुराण जो हैं वे वेधा के द्वारा उक्त हैं ॥२७॥ यह ब्रह्म पुराण की सुलभ उत्तर और दो संहिताओं से संयुक्त है । यह परम पुण्यमय तथा शिव की कथा का आश्रय वाला है ॥२८॥ इन में पहली सनत्कुमार के द्वारा कथित है और दूसरी सूर्य देव के द्वारा वर्णित है । हे महामुने ! वह सनत्कुमार के नाम से ही विख्यात है ॥२९॥ द्वितीय पाप नाश करने वाले पुराण में नारसिंह

है और तीसरा गौरेय है जो वैष्णव पुराण में माना गया है ॥३०॥ चौथा बार्हस्पत्य है जो सदा वायव्य सम्मत है । पञ्चम दौर्वासस है जो सदा भागवत में कहा गया है ॥३१॥

भविष्ये नारदोक्तं च सूरिभिः कथितं पुरा ।
कापिलं मानवं चैवतथैवोशनसेरितम् ॥३२
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथकालिकाद्वयमेव च ।
माहेश्वरं तथानाम्बंसौरं सर्वार्थसञ्चयम् ॥३३
पाराशरं भागवतं कौर्मंचाष्टादशंक्रमात् ।
एतान्युपपुराणानिमयोक्तानियथाक्रमम् ॥३४
पुराणसंहितामेनायः पठेद्वाश्रृणोति च ।
सोऽनन्तपुण्यभागीस्यान्मृतोब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥३५

भविष्य में नारद के द्वारा उक्त है और पहिले सूरियों के द्वारा कथित है । ये कपिल के द्वारा—मनु के द्वारा और उशना के द्वारा कथित है ॥३२॥ ब्रह्माण्ड वारुण है । इसके अनन्तर कालिकाद्वय है । माहेश्वर—साम्ब—सौर सब अर्थों का सञ्चय है ॥३३॥ पाराशर भागवत है और क्रम से कौर्म है ऐसे ये अष्टादश हैं मैंने ये यथा क्रम उपपुराणों को बता दिया है ॥३४॥ इस पुराण संहिता को जो कोई पढ़ता है अथवा श्रवण करता है वह अनन्त पुण्य का भागी होता है और मृत होकर वह ब्रह्मपुर को गमन किया करता है ॥३५॥

८२—रेवा माहात्म्य वर्णन

नर्मदायास्तु माहात्म्यं कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
ततोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥१
विस्तरं नर्मदायास्तु तीर्थानां मुनिसत्तमाः ।
कोऽन्यः शक्तोऽस्ति वै वक्तुमृते ब्रह्माणमीश्वरम् ॥२
एतमेव पुरा प्रश्नं पृष्टवाञ्जनमेजयः ।
वैशम्पायनसञ्ज्ञन्तु शिष्यं द्वैपायनस्य ह ॥३

रेवातीर्थाश्रितं पुण्यं तत्ते वक्ष्यामि शौनक!।
पुरा परीक्षितो राजा यज्ञदीक्षासु दीक्षितः ॥४
सम्भृते तु हविर्द्रव्ये वर्त्तमानेषु कर्मसु ।
आसीनेषु द्विजाग्र्येषु हूयमाने हुताशने ॥५
वर्त्तमानासु सर्वासु तथा धर्मकथासु च ।
श्रूयमाणे तथा शब्दे जनैस्तत्र त्वहर्निशम् ॥६
यज्ञभूमौ कुलपते दीयतां भुज्यतामिति ।
विविधांश्च विनोदांश्च कुर्वाणेषु विनोदिषु ॥७
एवंविधे वर्त्तमाने यज्ञे स्वर्गसदः समे ।
वैशम्पायनमासीनं पप्रच्छ जनमेजयः ॥८

महामुनि श्रीकृष्ण द्वैपायन ने नर्मदा के माहात्म्य को कहा । जो तुमने पूछा है उसको मैं तुमको बतलाता हूँ ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्मा-जी के अतिरिक्त अन्य किस में ऐसी शक्ति है जो नर्मदा के तीर्थों के माहा-त्म्य का विस्तार वर्णन कर सके ॥२॥ इसी प्रश्न को पहिले जनमेजय ने पूछा और यह प्रश्न द्वैपायन के शिष्य वैशम्पायनजी से पूछा गया था ॥३॥ हे शौनक ! रेवा तीर्थ का आश्रित जो पुण्य होता है उसे तुमको बतलाता हूँ । पुराने समय में परीक्षित राजा यज्ञ की दीक्षाओं में दीक्षित हुआ था ॥४॥ वर्त्तमान कर्मों में हविद्रव्य के सम्भृत होने पर श्रेष्ठ द्विजों के समासीन होने पर—हुताशन के हूयमान होने पर—वर्त्तमान धर्म कथाओं के सर्वत्र श्रूयमाण होने पर तथा अहर्निश जनों के द्वारा शब्द के रहने पर, यज्ञ भूमि में हे कुलपते ! दो—भोग करो—इन अनेक विनोदों को विनोदी लोगों के द्वारा किये जाने पर इस प्रकार से यज्ञ के वर्त्तमान होने पर स्वर्ग वासियों के समान होने पर—जनमेजय ने समासीन वैश-म्पायनजी से पूछा था ॥५, ८॥

द्वैपायनप्रसादेन ज्ञानवानसि मे मतः ।
वैशम्पायन तस्मात्त्वां पृच्छामि ऋषिसन्निधौ ॥९
ब्रूहि मे त्वं पुराभूतं पितृणां तीर्थसेवनम् ।
चिरं नानाविधान्क्लेशान्प्राप्तास्ते इति मे श्रुतम् ॥१०

कथं द्यूतजिता पार्थामम पूर्वपितामहाः ।
आसमुद्रां महीविप्रभ्रमन्तस्तीर्थ लोभतः ॥११
केन ते सहितास्तात भूमिभागाननेकशः ।
चेरुः कथयतत्सर्वसर्वज्ञोऽसि मतोमम ॥१२
कथयिष्यामिभूनाथ! यत्पृष्टं तुत्वयाऽनघ ।
नमस्कृत्यविरूपाक्षं वेदव्यासं महाकविम् ॥१३
पितामहास्तु तेपञ्चपाण्डवाः सहकृष्णया ।
उषित्वाब्राह्मणैः सार्द्धं काम्यकेवनउत्तमे ॥१४

जनमेजय ने कहा—मेरा ऐसा मत है कि आप भगवान् द्वैपायनजी की कृपा से ही ज्ञानवान् हैं। हे वैशम्पायनजी ! ऋषियों की सन्निधि में मैं आप से पूछता हूं ॥९॥ आप कृपया मुझे पहिले पितृयज्ञ के तीर्थों का सेवन का वृत्त बतलाइए। मैंने ऐसा श्रवण किया है कि बहुत समय तक उन्होंने अनेक प्रकार के क्लेशों को भोगा था ॥१०॥ मेरे पूर्व पितामह किस प्रकार से द्यूत में जीत लिये गये और वे तीर्थों के लोभ से समुद्र पर्यन्त भूमि में भ्रमण कर रहे थे ॥११॥ हे तात ! वे किस के सहित थे जिस समय में अनेक भूमि के भागों में उनने विचरण किया। यह सभी आप मुझको बतलाइए क्योंकि मेरे मत से आप सभी कुछ के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥१२॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे भूनाथ ! आप तो निष्पाप हैं। जो भी कुछ आपने पूछा है वह मैं सभी कुछ आपको बतलाऊंगा। उन्होंने फिर महा कवि विरूपाक्ष वेदव्यास को नमस्कार किया था ॥१३॥ वैशम्पायन जी ने कहा—तुम्हारे पितामह पाँच पाण्डव थे जो कृष्णा के साथ में थे। उन्होंने परमोत्तम काम्यक वन में ब्राह्मणों के साथ निवास किया था ॥१४॥

प्रधानोद्दालके तत्र कश्यपोऽथमहामतिः ।
विभाण्डकश्चराजेन्द्र गुरुश्चैवमहामुनिः ॥१५
पुलस्त्यो लोमशश्चैव तथाऽन्ये पुत्रपौत्रिणः ।
स्नात्वा निःशेषतीर्थेषु गतास्ते विन्ध्यपर्वतम् ॥१६

ते च तत्राश्रमं पुण्यं सर्ववृक्षैः समाकुलम् ।
चम्पकैः कर्णिकारैश्च पुन्नागैर्नागकेसरैः ॥१७
वकुलैः कोविदारैश्च दाडिमैरुपशोभितम् ।
पुष्पितैरर्जुनैश्चैव विल्वपाटलकेतकैः ॥१८
कदम्बाम्रमधूकैश्च निम्बजम्बीरतिन्दुकैः ।
नालिकेरैः कपित्थैश्च खर्जूरपनसैस्तथा ॥१९
नानाद्रुमलताकीर्णं नानावल्लीभिरावृतम् ।
सपुष्पं फलितं कान्तं वनं चैत्ररथं यथा ॥२०
जलाशयैस्तु विपुलैः पद्मिनीखण्डमण्डितम् ।
सितोत्पलैश्च सञ्छन्नं नीलपीतैः सितारुणैः ॥२१

वहाँ पर प्रधानोद्दालक में महामतिमान् कश्यप थे । हे राजेन्द्र ! महा मुनि गुरु विभाण्डक थे ॥१५॥ पुलस्त्य और लोमश तथा अन्य पुत्र एवं पौत्रों वाले वे सब समस्त तीर्थों में स्नान करके विन्ध्य पर्वत में गये थे ॥१६॥ उन्होंने वहाँ पर परम पुण्यमय आश्रम देखा जो सब प्रकार के वृक्षों से घिरा हुआ था । वहाँ पर चम्पक—कर्णिकार—पुन्नाग—नागकेशर—वकुल—कोविदार—दाडिम के वृक्षों से उस आश्रम की अत्यन्त शोभा हो रही थी । वहाँ फूलों से युक्त अर्जुन के वृक्ष—विल्व—पाटल—केतक—कदम्ब—आम्र—मधूक—निम्ब—जम्बीर—तिंदुक—नालिकेर—कपित्थ—खर्जूर—पनस आदि अनेक प्रकार के द्रुमों का समुदाय और लताएँ थीं । वह आश्रम नाना वल्लियों से समावृत था । पुष्पों से समन्वित—फलों वाला—सुन्दर चैत्ररथ वन के समान वहाँ का वन था ॥१७-२०॥ बहुत से वहाँ समाश्रय ग्रहण करने वालों से वह संयुत था तथा पद्मिनी के खण्ड से भी वह आश्रम विभूषित था । वहाँ पर श्वेत कमल—नीलोत्पल—पीतमित अरुण सभी वर्णों वाले कमल खिले हुए थे ॥२१॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
आडीकाकबलाकाभिः सेवितं कोकिलादिभिः ॥२२
सिंहैर्व्याघ्रैर्वराहैश्च गजैश्चैव महोत्कटैः ।
महीपैश्च महाकायैः कुरङ्गैश्चित्रकैः शशैः ॥२३

गण्डकैश्चैव खड्गैश्च गोमायुमुरलीयुतम् ।
सारङ्गैर्मल्लकैश्चैव द्विपदैश्च चतुष्पदैः ॥२४
तथा च कोकिलाकीर्णं मनःकान्तं सुशोभितम् ।
जीवजीवकसङ्घैश्च नानापक्षिसमायुतम् ॥२५
दुःखशोकविनिर्मुक्तं सर्वोत्कटमनोरमम् ।
क्षुत्तृषारहितं कान्तं सर्वव्याधिविवर्जितम् ॥२६
सिंहीस्तनं पिबन्त्यत्र कुरङ्गाः स्नेहसंयुताः ।
मार्जारमूषकौ चोभाववलेहतन्मुखौ ॥२७
पञ्चास्याः पोतकैश्चाथ भोगिनस्तु कलापिनः ।
दृष्ट्वाद्भुतमिदं रम्यं प्रविष्टाः पाण्डुनन्दनाः ॥२८

वह परम रम्य आश्रम अनेक तरह के पक्षियों से सुशोभित था । हंस और सारसकों से वह आश्रम एवं वन समाकीर्ण था तथा चक्रवाकों की शोभा वाला था । आटी—काक—बलाकाओं तथा कोयल आदि के द्वारा वह आश्रम सेवित था ॥२३॥ वहाँ बहुत प्रकार के पशु भी सञ्चरण किया करते थे—सिंह—व्याघ्र—वराह—मृग—महोत्कट महिष—महान् काया वाले कुरङ्ग—चित्रक—रुरु—गण्डक—खड्ग—गोमायु—और मुरली से वह वन युक्त था । सारङ्ग—मल्लक—द्विपद और चतुष्पदों से भी वह समाकीर्ण हो रहा था ॥२३-२४॥ चारों ओर कोयलों से समन्वित मन को सुन्दर लगने वाला और शोभा से सम्पन्न था । जीवकों के सङ्घों से तथा नाना पक्षियों से समायुत था वहाँ पर किसी भी प्रकार का दुःख तथा शोक नहीं था । इस तरह की बाधाओं से वह छुटकारा पाया हुआ और अतीव उत्कट मनो गुण के कारण परम सुन्दर प्रतीत होता था । भूख—प्यास—जैसी बाधाएँ वहाँ नहीं सताया करती थीं । वह परम सुन्दर एवं सभी तरह की व्याधियों से रहित था ॥२५-२६॥ उस आश्रम के वन में स्वाभाविक वैर भी नाम मात्र को नहीं था और कुरंग के बच्चे बड़े ही स्नेह से सिंहनी के स्तन को पीया करते थे । मार्जार और मूषक दोनों परस्पर में उन्मुख होकर अवलेहन किया करते थे ॥२७॥ सिंहनी के पुत्रों के साथ स्नेह करते और मयूर एवं सर्प भी

एक दूसरे के साथ बड़े ही स्नेह से रहते। उस परमोत्तम एवं अतीव सुन्दर उस विपिन को देखकर पाण्डु के पुत्रों ने उसमें प्रवेश किया था ॥२८॥

मार्कण्डं दृष्ट्वास्तत्रतरुणादित्यसन्निभम् ।
ऋषिभिःसेव्यमानं तुनानाशास्त्रविशारदैः ॥२९
कुलीनैः सत्वसम्पन्नैः शौचाचारसमन्वितैः ।
धीसङ्गैः क्षमायुक्तैस्त्रिसंध्यजपतत्परैः ॥३०
ऋग्यजुःसामविहितैर्मन्त्रैर्होमपरायणैः ।
केचित्पञ्चाग्निमध्यस्था केचिदेकान्तसंस्थिता ॥३१
ऊर्ध्वबाहुनिरालम्बा आदित्यभ्रमणाः परे ।
सायंप्रातर्भुजश्चान्येएकहारास्तथापरे ॥३२
द्वादशाहारास्तथाचान्येअन्येमासार्द्धभोजनाः ।
दर्शेदर्शेतथाचान्येअन्येकेवालभोजनाः ॥३३
पिण्याकमपरेऽभुञ्जन्केचित्पालाशभोजनाः ।
अपरेनियताहारावायुभक्षाम्बुभोजनाः ॥३४
एवम्भूतैस्तथा वृद्धैः सेव्यते मुनिपुङ्गवैः ।
तत्रो धर्मसुतः श्रीमानाश्रमं तं प्रविश्य सः ॥३५

वहां पर पाण्डवों ने अनेक शास्त्रों के महान् पण्डित ऋषियों के द्वारा सेव्यमान तथा तरुण सूर्य के समान तेज से समन्वित मार्कण्ड मुनि का दर्शन किया था। २६॥ वे ऋषि गण परम कुलीन—सत्त्वगुण से युक्त एवं शौच और आचार से संयुत थे। वेधी से सङ्गत—क्षमागुण से युक्त और तीनों कालों में सन्ध्योपासना एवं मन्त्रों के जाप करने में परायण रहा करते। उनमें कुछ तो पाँच अग्नियों के मध्य में स्थित होकर तप करने वाले और कुछ ऐसे थे जो बिल्कुल एकान्त में स्थित रहकर साधना किया करते थे ॥३०-३१॥ कुछ लोग ऊर्ध्व होकर निरालम्ब तपश्चर्या करने वाले थे। दूसरे आदित्य की परिक्रमा किया करते। कुछ सायं प्रातः भोजन किया करते और अन्य एक ही बार आहार करने वाले थे। कुछ बारह दिन में भोजन करते और अन्य मास में आधा भोजन करते

वाले थे। दर्श—दर्श में कुछ भोजन किया करते और कुछ केवल शैवाल का ही आहार करते। कुछ पिण्याक का आहार करते थे अन्य पालाश भोजी थे। दूसरे लोग नियत आहार वाले थे। कुछ केवल वायु तथा जल का ही आहार किया करते। इस प्रकार के परम वृद्ध श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा उस आश्रम एवं वन का सेवन किया जाता था। इसके पश्चात् धर्म के पुत्र धीमान् युधिष्ठिर ने उस आश्रम में प्रवेश किया था ॥३२-३५॥

दृष्ट्वा मुनिवरं शान्तं ध्यायमानं परं पदम् ।
प्रादक्षिण्येनसहसादण्डवत्पतितोऽग्रतः ॥३६
भक्त्यानुपतितं दृष्ट्वा चिरादादायलोचनम् ।
कोभवानित्युवाचेदं धर्मं धीमानपृच्छत ॥३७
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दारकस्तत्समीपगः ।
आहायं धर्मराजस्तेदर्शनार्थं समागतः ॥३८
तच्छ्रुत्वा दारकेणोक्तं वचनं प्राह सादरः ।
एह्येहि वत्सवत्सेति किञ्चित्त्यानाद्वलन्मुनिः ।
तं तु स्नेहादुपाघ्राय आसने उपवेशयत् ॥३९
उपविष्टे सभायातु पूजांकृत्वायथाविधि ।
वन्यैर्धान्यैः फलैर्मूलैः रसैश्च पृथग्विधैः ॥४०
पाण्डवाब्राह्मणैः सार्द्धं यथायोग्यम्प्रपूजिता ।
मुहूर्त्तादथविश्रम्यधर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥४१
पृच्छति स्म मुनिश्रेष्ठं कौतूहलसमन्वितम् ।
भगवन्सर्वलोकानां दीर्घायुस्त्वं मतो मम ॥४२

वहाँ पर परम पद का ध्यान करने वाले परम शान्तमय मुनि का दर्शन करके युधिष्ठिर सहसा प्रादक्षिण्य से उनके आगे चरणों में दण्ड के समान गिर गये थे ॥३६॥ भक्ति भाव से अपने चरणों में पड़े हुए राजा को देखकर चिरकाल में उन पर अपनी दृष्टि डालकर परम धीमान् मुनि ने धर्म पुत्र से पूछा—आप कौन हैं ॥३७॥ उन मुनिवर के इस वचन का श्रवण करके उनके समीप में स्थित दारक ने कहा—यह धर्मराज हैं,

इस समय में यहाँ आपके दर्शन के लिये समागत हुए हैं ॥३८॥ दारक के द्वारा कथित वचन को सुनकर मुनि ने बहुत ही आदर के साथ कहा—हे वत्स ! हे वत्स ! यहाँ पर आओ—आगे चले आओ, मुनि अपने स्थान से कुछ चलित हो गये । उसको बड़े स्नेह से सूंघकर उनको आसन पर बिठा दिया था ॥३९॥ उस सभा में भली भाँति बैठ जाने पर यथा विधि पूजा करके अन्य धान्य—फल—मूल और विभिन्न प्रकार के रसों के द्वारा सत्कार किया था ॥४०॥ ब्राह्मणों के साथ पाण्डव यथा योग्य पूजित हुए ? मुहूर्त मात्र विश्राम करके धर्म पुत्र युधिष्ठिर ने कौतूहल से समन्वित उन श्रेष्ठ मुनि से पूछा—हे भगवन् ! आप मेरे मत से समस्त लोकों में दीर्घ आयु वाले हैं । हे अनघ ! आप मेरे सामने अब सात कल्पों का पूर्ण रूप से वर्णन कीजिए और कल्प क क्षय में भी स्थावर तथा जङ्गम लोक का वर्णन कीजिए ॥४१-४२॥

सप्तकल्पानशेषेण कथयस्वममानघ ।
कल्पक्षयेऽपि लोकस्यस्थावरस्येतरस्य च ॥४३
न विनष्टोऽसि विप्रेन्द्र। कथं वाकेनहेतुना ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाःसमुद्रांताश्चमामुने ॥४४
तासा मध्ये स्थिताः काः स्विल्काश्चैव प्रलय गताः ।
का नु पुण्यजला नित्यं का नु न क्षयमागता ॥४५
एतत्कथयमेतातप्रसन्नेनान्तरात्मना ।
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेणमहर्षिभिःसहभ्रातृभिः ॥४६
साधु साधु महाप्राज्ञ! धर्मपुत्रयुधिष्ठिर! ।
कथयामियथान्यायं यत्पृच्छसिममानघ ॥४७
सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं रुद्रभाषितम् ।
यःशृणोतिनरोभक्त्या तस्यपुण्यफलं शृणु ॥४८
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च ।
तत्फलं समवाप्नोति राजन्नास्त्यत्र संशयः ॥४९

हे विप्रेन्द्र ! किस प्रकार से और किस हेतु से विनष्ट नहीं हुए हो ? हे मुने ! गङ्गा आदि समस्त सरिताऐं जो समुद्र के अन्त तक हैं उनके

कल्प में कौन स्थित हैं और कौन प्रलय को प्राप्त हो गयी हैं ? कौनसी पुण्य जल वाली हैं और कौनसी क्षय को नहीं प्राप्त हुई हैं ॥४१-४२॥ हे तात ! यह सब आप अपने परम प्रसन्न अन्तःकरण से मेरे आगे कहिए । मैं पूर्णतया सुनने का इच्छुक हूँ । मेरे साथ मेरे बान्धव और ऋषि गण भी इच्छुक हैं ॥४६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ! आप तो महाप्राज्ञ हैं । बहुत अच्छी बात है आपका प्रश्न अच्छा है । मैं न्याय पूर्वक सब कहता हूँ । हे अनघ ! आप जो भी पूछ रहे हैं वह सभी बताता हूँ ॥४७॥ समस्त प्रकार के पापों का हरण करने वाला परम पुण्यमय पुराण यही है जिस को भगवान् रुद्र ने कहा है । इस पुराण को जो मनुष्य भक्तिभाव से युक्त होकर श्रवण किया करता है । उसका जो पुण्य—फल होता है उसका श्रवण करो ॥४८॥ हे राजन् ! एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सौ वाजपेय यज्ञ के समान ही उसका पुण्य फल होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥४९॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापी च स्तेयी गोघ्नश्च यो नरः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रस्यश्रवणं यथा ॥५०
गंगा तु सरिता श्रेष्ठा तथा चैव सरस्वती ।
कावेरी देविका चैव सिन्धुः सालकुटी तथा ॥५१
सरयूः शतरुद्रा च मही चर्मिणवती सह ।
गोदावरी तथा पुण्या तथैव यमुना नदी ॥५२
पयोष्णीचा शतद्रुश्च तथाधर्मनदीशुभा ।
एतास्चान्याश्चसरितःसर्वपापहराः स्मृताः ॥५३
किं तु ते कारणं तात! वक्ष्यामि नृपसत्तम! ।
समुद्राः सरितः सर्वाः कल्पे कल्पे क्षयं गताः ॥५४
सप्तकल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा ।
नर्मदैकैव राजेन्द्र! परं तिष्ठेत्सरिद्वरा ॥५५
तोयपूर्णा महाभाग! मुनिसङ्घैरभिष्टुता ।
गंगाद्याः सरितश्चान्याः कल्पेकल्पे क्षयं गताः ॥५६
एषा देवी पुरा दृष्टा तेन वक्ष्यामि तेऽनघ ॥५७

आश्चर्यभूता राजेन्द्र! त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥५८

ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुरा का पान करने वाला—चोरी का कर्म करने वाला—गाय का वध करने वाला जो मनुष्य होता है भगवान् रुद्र के ऐसे ही वचन हैं कि वह इस पुराण के श्रवण से सब पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥ गङ्गा सब सरिताओं मे श्रेष्ठ है उसी प्रकार से सरस्वती—कावेरी—देविका—सिन्धु—सालकुटी—सरयू—शतद्रा—धर्मिला के साथ मही—गोदावरी ये भी सब नदियाँ परम पुण्यमयी हैं यमुना नदी—पयोष्णी—शतद्रु—पुण्या धर्म नदी—ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी सरिताऐं हैं जो सब पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं ॥५१-५३॥ हे नृप श्रेष्ठ! क्या कारण है कि ये सब समुद्र और सरिताऐं कल्प—कल्प में क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसे भी बतलाऊंगा ॥५४॥ सात कल्पों के क्षय के क्षीण होने पर यह नर्मदा कभी मृत अर्थात् विनष्ट नहीं होती है। यही एक नर्मदा ऐसी श्रेष्ठ सरिता है जो स्थित रहा करती है ॥५५॥ हे महाभाग! यह जल से भरी हुई और मुनियों के सङ्घ के द्वारा अभिप्लुत होती हुई स्थित रहती है तथा अन्य गङ्गा आदि सब कल्प के क्षय होने पर क्षय को प्राप्त हो जाया करती हैं ॥५६॥ हे निष्पाप! यह देवी पहिले उसके द्वारा दृष्ट है उसको बतलाऊँगा। हे राजेन्द्र! यह आश्चर्य स्वरूप वाली है और तीनों लोकों मे प्रसिद्ध है ॥५७-५८॥

८३—नर्मदापञ्चदशनामवर्णन

ततोऽर्णवात्समुत्तीर्य्य त्रिकूटशिखरे स्थितम्।
महाकनकवर्णाभे नानावर्णशिलाचिते ॥१
महाश्रृङ्गे समासीनं रुद्रकोटिसमन्वितम्।
महादेवं महात्मानमीशानमजमव्ययम् ॥२
सर्वभूतमयं तात! मनुना सह सुव्रत!।
भूयो ववन्दे चरणौ सर्वदेवनमस्कृतौ ॥३

तत्काले युगसाहस्रं सह रुद्रेणमानद ! ।
तस्मिन्नेकार्णवे घोरेस्थितोऽहं कुरुनन्दन ॥४
एतच्छ्रुत्वा तु मे तात परं कौतूहलंहृदि ।
जायं तत्कथयस्वेतिशृण्वतः सहबान्धवैः ॥५
कासापद्मपलाशाक्षी तमो भूतेमहार्णवे ।
योगिवद्भ्रमतेनित्यं रुद्रजास्वाचयाग्रवीत् ॥६
एतमेव मया प्रश्नं पुरापृष्टो मनुः स्वयम् ।
तदेव तेऽद्यवक्ष्यामि अबलायाः समुद्भवम् ॥७

महा महर्षि श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—इसके उपरान्त समुद्र से समुत्तीर्ण होकर त्रिकूट पर्वत के शिखर पर स्थित हुए थे। वह महाशृंग सुवर्ण के वर्ण के समान आभा वाला, अनेक वर्णों वाली शिलाओं से युक्त था हे सुव्रत ! हे तात ! रुद्रों की कोटि से संयुत उस शृंग पर विराजमान अज—ईशान—अव्यय—महात्मा सर्व भूतमय महादेवजी के मन के साथ समस्त देवगण के द्वारा नमस्कृत चरणों की पुनः वन्दना की थी। हे मानद ! उस समय में रुद्र के साथ युग पर्यन्त, हे कुरुनन्दन ! उस घोर एकार्णव में मैं स्थित रहा था ॥१-४॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे तात ! इस बात को सुनकर तो मेरे हृदय में बड़ा भारी कुतूहल उत्पन्न हो गया है सो अपने बान्धवों के सहित श्रवण करने वाले मुझे बतलाइये ॥५॥ यह पद्मपलाश के सदृश नेत्रों वाली कौन है जो अन्धकार से परिपूर्ण अर्णव में जो नित्य ही योगी के समान भ्रमण किया करती है और जो स्वा रुद्रजा की बोनी थी ॥६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यही प्रश्न मैंने पहिले मनु से पूछा था। वह ही आज अबला की स्वयं उत्पत्ति तुमको बतलाता हूँ। ७॥

व्यतीतायां निशायां तु ब्रह्मणः परमेष्टिनः ।
ततः प्रभाते विमलेसृज्यमानेषु जन्तुषु ॥७
मनुं प्रणम्य शिरसा पृच्छाम्येतद्युधिष्ठिर ! ।
केयं पद्मपलाशाक्षी श्यामा चन्द्रनिभानना ॥९

एकार्णवे भ्रमत्येका रुद्रजाऽस्मीतिवादिनी ।
सावित्री वेदमाता च ह्यथवा सा सरस्वती ॥१०
मन्दाकिनी सरिच्छ्रेष्ठा लक्ष्मीर्वा किमथो उमा ।
कालरात्रिर्भवेत्साक्षात्प्रकृतिर्वा सुखोचिता ॥११
एतदाचक्ष्व भगवन्का सा ह्यमृतसम्भवा ।
चरत्येकार्णवे घोरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥१२
शृणु वत्स यथान्यायमस्यावर्णयामि सम्भवम् ।
यथा रुद्रसमुद्भूता याचेयंवरवर्णिनी ॥१३
पुरा शिवः शान्ततनुश्चचार विपुलं तपः ।
हितार्थं सर्वलोकानामुमया सह शङ्कर. ॥१४

परमेष्ठी ब्रह्माजी की रात्रि के व्यतीत होने पर विमल प्रभात काल में जन्तुओं के सृजन होने पर हे युधिष्ठिर ! मनुजी को शिर झुकाकर प्रणाम करने के पश्चात् मैंने उनसे पूछा था ॥८॥ चन्द्रमा के समान मुख वाली श्याम पद्मपलाशाक्षी यह कौन है जो अपने आपको रुद्रजा कहती हुई अकेली इस एकार्णव में भ्रमण कर रही है । यह वेदमाता सावित्री है—अथवा सरस्वती है या सरिताओं में श्रेष्ठ मन्दाकिनी है अथवा महालक्ष्मी है या उमादेवी है । यह साक्षात् काल रात्रि हो सकती है या सुखोचित प्रकृति है ॥९-१०॥ हे भगवन् ! आप यह बतलाइये कि अमृत से सम्भूत होने वाली यह कौन है जो उरग और राक्षस भी जिसमें नष्ट हो गये हैं ऐसे इस परम घोर एकार्णव में चरण करती है ॥१२॥ सूतजी ने कहा—हे वत्स ! तुम सुनो, मैं ठीक २ इसकी उत्पत्ति बतलाता हूँ । जिस प्रकार से यह रुद्र से समुत्पन्न हुई और जो यह वरवर्णिनी है ॥१३॥ प्राचीन काल में परम शान्त शरीर वाले शिवजी ने परम दुश्चर तपश्चर्या की थी । यह तप भगवान् शङ्कर ने उमादेवी के साथ लोकों के हित के ही लिये किया था ॥१४॥

ऋक्षशैलं समारुह्य तपस्तेपे सुदारुणम् ।
अदृश्यः सर्वभूतानां सर्वभूतात्मको वशी ॥१५

तपतस्तस्य देवस्य स्वेदः समभवत्किल ।
तंगिरिंप्लावयामास सस्वेदोरुद्रसंभवः ॥१६
तस्मादासीत्समुद्‌भूता महापुण्या सरिद्वरा ।
या सा त्वयार्णवे दृष्ट्वा पद्मपत्रायतेक्षणा ॥१७
स्त्रीरूपं समवस्थाय रुद्रमाराधयत्पुरा ।
आद्ये कृतयुगे तस्मिन्समानामयुतं नृप ॥१८
ततस्तुष्टो महादेव उमया सह शङ्करः ।
ब्रूहि त्वं तु महाभागे यत्ते मनसि वर्तते ॥१६
प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
प्रसादात्तव देवेश अक्षयाहं भवे प्रभो ! ॥२०
सरित्सु सागरेष्वेव पर्वतेषु क्षयिष्वपि ।
तव प्रसादाद्‌देवेश ! पुण्याक्षय्याभवे प्रभो ! ॥२१

ऋक्ष शैलपर समारोहण करके सर्वभूतात्म वहाँ शिवजी ने समस्त भूतों से अदृश होकर परम दारुण तप किया । तपस्या करते हुए उन देव के स्वेद हो गया । उस रुद्र से उत्पन्न होने वाले स्वेद ने उस गिरि को प्लावित कर दिया था ॥१५-१६॥ उससे यह महान् पुण्य वाली श्रेष्ठ सरिता समुत्पन्न हुई थी यह वही है जिसको तुमने पद्मदल के समान सुन्दर नेत्रों वाली अर्णव में देखा था ॥१७॥ पहले समय में स्त्री के स्वरूप में समास्थित होकर इसने भगवान् रुद्र की आराधना की थी । प्राद्य सत्युग में हे नृप ! उसने दश हजार वर्ष तक यह आराधना की इसके पश्चात् भगवान् शङ्कर उमादेवी के सहित परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गये । भगवान् शङ्कर ने उससे कहा—हे महाभागे ! तू बतला दे जो कुछ भी कामना तेरे मन में हो ॥१८-१६॥ सरिता ने कहा—हे प्रभो ! हे देवेश ! प्रलय के प्राप्त होने पर जब कि स्थावर और जंगम सभी नष्ट हो जाया करते हैं आपके प्रसाद से उस समय में भी मैं इस जगत् में अक्षय होकर रहूँ । अब सब नदियाँ—सागर और पर्वतों के भी क्षयी हो जाने पर हे देवेश्वर ! मैं आपके ही प्रसाद से भव में पुण्या और अक्षय रहूँ ॥२०-२१॥

पापोपपापकर्युक्ता महापातकिनोऽपि ये ।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो भक्त्या स्नात्वा तु शङ्कर ! ॥२२
उत्तरे जाह्नवी देवे महापातकनाशिनी ।
भवामि दक्षिणेमार्गेयथैव सुरपूजिता ॥२३
स्वर्गादागम्यगङ्गेतियथाख्याताक्षितौविभो ।
तथादक्षिणगङ्गेतिभवेय त्रिदशेश्वर ॥२४
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा यल्लभते फलम् ।
तत्फल लभते मर्त्यो भक्त्या स्नात्वा महेश्वर ! ॥२५
ब्रह्महत्यादिकं पापं यदान्तेसञ्चितं क्वचित् ।
मास मात्रेण तद्देवक्षययात्ववगाहनात् ॥२६
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु शङ्कर ।
अवगाहेन तत्सर्वं भवत्विति मतिर्मम ॥२७
सर्वदानोपवासेषु सर्वतीर्थावगाहने ।
तत्फल मम तोयेन जायतामिति शङ्कर ! ॥२८

हे शङ्कर ! पापों, उपपातकों से युक्त तथा जो महापातकी भी हों वे सब भक्ति से मुझ में स्नान करके अपने पापों से मुक्त हो जावें । उत्तर देश में जाह्नवी महान् पातकों के विनाश करने वाली है । उसी प्रकार मैं सुरों के द्वारा पूजित मैं दक्षिण मार्ग में हो जाऊ । हे विभो ! स्वर्ग से आकर गंगा जिस तरह से भूमि में विख्यात हो गयी है । हे त्रिदशेश्वर ! उसी भाँति मैं भी दक्षिण गंगा की प्रसिद्धि वाली हो जाऊ । पृथिवी में समस्त तीर्थों में स्नान करके जो फल प्राप्त किया जाता है उसी पुण्य—फल को मनुष्य हे महेश्वर ! भक्ति भाव से मुझ में स्नान करके प्राप्त कर लेवें ॥२२-२५॥ ब्रह्म हत्या आदि पाप जो भी कुछ कहीं पर सञ्चित हों वे हे देव ! एक मास पर्यन्त मुझ में अवगाहन करने से वह सब क्षय को प्राप्त हो जावे ॥२६॥ हे शङ्कर ! जो फल सब वेदों में और सब यज्ञों में होता है । वह सभी फल मुझ में अवगाहन करने से हो जावे—यही मेरी मति है ॥२६॥ सब प्रकार के दान तथा उपवासों में तथा सब तीर्थों

के प्रवगाहन मे जो फल होता है वही पूर्ण फल मेरे जल से हो जावे—यही मेरी कामना है ॥२७-२८॥

मम तीरे नरा ये तु अर्च्चयन्तिमहेश्वरम् ।
ते गतास्तव लोक स्युरेतदेवभवेच्छिव ॥२९
मम कूले महेशान उमया सह दैवतैः ।
वस नित्यं जगन्नाथ एष एव वरो मम ॥३०
सुकर्मा वा विकर्मा वा शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ।
मृतो जन्तुर्मम जले गच्छतादमरावतीम् ॥३१
त्रिषु लोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी ।
भवामि देवदेवेश प्रसन्नो यदिमन्यसे ॥३२
एतांश्चान्यान्वरान्दिव्यान्प्रार्थितो नृप सत्तम ।
नर्मदया ततः प्राह प्रसन्नोवृषवाहनः ॥३३
एवं भवतुकल्याणि यत्त्वयोक्तमनिन्दिते ।
नान्यावराह्लोकेपुमुक्त्वात्वां कमलेक्षणे ॥३४
यदैव मम देहात्व समुद्भूता वरानने ! ।
तदैव सर्वपापना मोचिनी त्वं न संशय. ॥३५

मेरे तट पर जो मनुष्य भगवान् महेश्वर का अर्चन किया करते हैं। हे शिव ! मैं यही चाहती हूँ कि वे सब आपके लोक मे चले आया करें ॥२९॥ हे महेशान ! उमादेवी और देववृन्द के साथ आप मेरे ही तट पर नित्य निवास करें—यही मेरे लिये अभीष्ट वरदान है ॥३०॥ चाहे कोई सुन्दर कर्मों के करने वाला हो अथवा कोई कर्म रहित हो—शान्त—दान्त—जितेन्द्रिय—कैसा ही हो जो जन्तु मृत होकर मेरे जल मे आवे वह सीधा अमरावती को चला जाया करे ॥३१॥ हे देव देवेश ! यदि आप अपने को मुझ पर प्रसन्न हुए मानते हैं तो यह वरदान प्रदान करिये कि मैं तीनों लोकों मे महा पातकों के विनाश करने वाली विख्यात हो जाऊ ॥३२॥ हे नृप श्रेष्ठ ! नर्मदा के द्वारा भगवान् शंकर से ये तथा अन्य दिव्य वरदानों की प्राप्ति की प्रार्थना की थी। इसके पश्चात् भगवान् वृषभ के वाहन वाले शिव प्रसन्न हो गये थे ॥३३॥ श्रीमहेश ने

कहा—हे अनिन्दित कल्याणि ! जो भी तूने याचित किया है वह ऐसा ही सब हो जायेगा । हे कमल के समान लोचनों वाली ! तुमको छोड़कर लोकों में अन्य कोई वरों के योग्य भी नहीं है ॥३४॥ हे वरानने ! जिस समय से तू मेरे शरीर से समुत्पन्न हुई उसी समय में तू समस्त पापों के मोचन कर देने वाली हो गयी थी—इस में तो कुछ भी संशय है ही नहीं ॥३५॥

कल्पक्षयकरे काले काले घोरे विशेषतः ।
उत्तरं कूलमाश्रित्य निवसन्ति च येनराः ॥३६
ऋषिकीटपतगाश्च वृक्षगुल्मलतादय ।
आदेहपतनाद्देवि ! तेऽपियास्यन्तिसद्गतिम् ॥३७
दक्षिण कूलमाश्रित्य ये द्विजा धर्मवत्सला ।
अपमृत्योर्निवर्तिष्यन्ति से गता. पितृमन्दिरे ॥३८
अह हि तव वाक्येन कस्मिश्चित्कारणान्तरे ।
स्वतीरे निवसिष्यामि सर्वदेव ह्य मया समम् ॥३९
एव देवि ! महादेवि ! एवमेव न संशयः ।
ब्रह्मेन्द्रचन्द्रवरुणैः साध्यैश्च सह विष्णुना ॥४०
उत्तरे देवि ! ते कूले वसिष्यन्तिममाज्ञया ।
दक्षिणे पितृभि सार्द्धं तथान्येसुरसुन्दरि ॥४१
वसिष्यन्ति मया सार्द्धं मेष ते वर उत्तम ।
गच्छ गच्छ महाभागे ! मर्त्यान्पापाद्विमोचय ॥४२
सहिता ऋषिसंघैश्च तथासिद्धसुरासुरैः ।
एवमुक्त्वा महादेवउमयासहितोविभु ॥४३
वस्यमानोऽस्य मनुना मया पादर्शनं गतः ।
तेन पंथा महापुण्यामहापातकनाशिनी ॥४४

कल्पों के क्षय करने वाले काल में घोर विशेष रूप से महान् घोर काल में तेरे उत्तर तट का आश्रय ग्रहण करके जो नर निवास करते हैं तथा मनुष्य ही नहीं—कीट-पतंग-वृक्ष—गुल्म और लता आदि भी अपने देह के पतन होने पर हे देवि ! वे सब भी सद्गति को प्राप्त हो जायेंगे

॥३६-३७॥ जो धर्म प्रिय मनुष्य (द्विज) दक्षिण तट का आश्रय ग्रहण कर मृत्यु पर्यन्त निवास करते है वे पितृ मन्दिर मे गये हैं ॥३८॥ मैं तो तेरे वचन से किसी अन्य कारण मे तेरे तीर पर सदा ही उमादेवी के सहित निवास करूंगा ॥३६॥ हे देवि। हे महादेवि ! ऐसा ही है–इसमें संशय नही है। ब्रह्मा—इन्द्र—चन्द्र-वरुण और साध्यगण देव वृन्द भगवान् विष्णु के साथ हे देवि ! उत्तर तट पर तेरे समीप में ही मेरी आज्ञा से निवास करेंगे। हे सुर सुन्दरि ! तेरे दक्षिण तट पर उसी प्रकार से पितृगण के साथ अन्य देव गण वास करेंगे। तथा सिद्ध सुर और असुरो के सहित एवं ऋषिगण के समुदायो के साथ वहाँ पर सभी निवास करेंगे। इस प्रकार से कहकर विप्र श्री महादेव उमा के सहित मेरे द्वारा और मनु के द्वारा सम्यमान होते हुये अन्तर्धान हो गए थे। इसी से यह महान् पुण्यवाली महान पातकों के विनाश करने वाली है ॥४०-४४॥

कथिता पृच्छ्यते या ते मा ते भवतु विस्मयः।
एषा गंगा महापुण्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥४५
दशभिः पञ्चभिः स्रोतैः प्लावयन्ती दिशो दश।
शोणोमहानदश्चैवनर्मदा सुरसाकृता ॥४६
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च।
तमसाविदशा चैवकरभायमुनातथा ॥४७
चित्रोत्पलाविपाशाच रञ्जनावालुवाहिनी।
ऋक्षपादप्रसूतास्ताः सर्वावैरुद्रसंभवाः ॥४८
सर्वपापहरा पुण्याः सर्वमंगलदा शिवाः।
इत्येतैर्नमिर्भिर्दिव्यैः स्तूयतेवेदपारगैः ॥४९
पुराणशैर्महागंराज्यपैः सोमपैस्तथा।
इत्येतत्सर्वमाख्यातं महाभाग्यं नरोत्तम ॥५०
मनुनोक्तं पुरामह्यममृतायाः समुद्भवम्।
पुण्यं पवित्रमतुलं रुद्रोद्गीतमिदं शुभम् ॥५१
ये नराः कीर्त्तयिष्यन्ति भक्त्या शृण्वन्ति येऽपि च।
प्रातरुत्थाय नामानि दश पञ्च च भारत ! ॥५२

ते नराः सकलपुण्यंलभिष्यन्त्यवगाहजम् ।
विमानेनार्कवर्णेनघण्टाघातनिनादिना ।।५३
त्यक्त्वा मानुष्यकं भावं यास्यन्ति परमां गतिम् ।।५४

जो आपके द्वारा पूछा जाता है वह सब ही कह दी गई है। इसमें आपको विस्मय नहीं करना चाहिये। यह महान् पुण्यदायिनी गंगा है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।४२।। पन्द्रह स्रोतों के द्वारा दसों दिशाओं का प्लावन करती हुई यह नर्मदा है। महानद शोण—नर्मदा विशिका—करभा—यमुना—चित्रोत्पला—विपाशा—रञ्जना—वालु वाहिनी और महापाद प्रसूता ये सभी भी रुद्रदेव से सम्भूत होने वाली हैं।।४३-४८।। ये समस्त पापों के हरण करने वाली सरितायें हैं—परम पुण्यमयी—सभी श्रेयसों के प्रदान करने वाली—शिवा है। इन दिव्य नामों के द्वारा वेदों के पारगामी विद्वानों के द्वारा सदा स्तुति की जाया करती है। इसका स्तवन पुराणों के ज्ञाता—महाभाग यज्ञों के स्वामी तथा सोम पान करने वालों के द्वारा किया जाता है। हे नरोत्तम! यह सब महाभाग कह दिया गया है। इस नर्मदा का उद्भव पहिले मनु देव ने मुझसे कहा था। यह परम पुण्यमय—अतुल—पवित्र—शुभ और रुद्र के द्वारा समुद्गीत है। जो मनुष्य इसका कीर्तन करेंगे और जो भक्ति भाव से श्रवण करेंगे और हे भारत! प्रातः उठकर इन दस और पाँच नामों का स्मरण करेंगे। वे मनुष्य अवगाहन से उत्पन्न सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त करेंगे। सौ घण्टाओं की ध्वनि वाले सूर्य के समान विमान के द्वारा इस मनुष्यत्व के भाव का परित्याग कर के वे परम गति को प्राप्त करेंगे।।४९-५४।।

८४—नर्मदा स्तोत्र वर्णन

एतच्छ्रुत्वा वचो राजन्संहृष्टा ऋषयोऽभवन् ।
नर्मदां स्तोतुमारब्धाः कृताञ्जलिपुटा द्विजाः ।।१
नमोऽस्तु ते पुण्यजले नमो मकरगामिनी ।
नमस्ते पापमोचिन्यै नमो देवि ! वरानने ! ।।२

नमोऽस्तु ते पुण्यजलाश्रये ! शुभे !
विशुद्धसत्त्वे ! सुरसिद्धसेविते ।
नमोस्तु ते तीर्थ गण निषेविते
नमोऽस्तु रुद्रागसमुद्भवे ! वरे ॥३
नमोऽस्तु ते देवि ! समुद्रगामिनि !
नमोनतु ते देवि वरप्रदेऽस्शिवे ।
नमोऽस्तु लोकद्वयसौख्यदायिनि !
ह्यनेकभूतौघसमाश्रितेऽनघे ॥४
सरिद्वरे ! पापहरे ! विचित्रिते !
गन्धर्वयक्षोरगसेविताङ्गे !
सनातनि ! प्राणिगणानुकम्पिनि !
मोक्षप्रदे ! देवि ! विधेहि शं नः ॥५
महागजौघैर्महिषैर्वराहै ससेविते देवि महोर्मिमाले ! ।
नता स्म सर्वे वरदे ! सुखप्रदे !
विमोचयास्मान्पशुपाशबन्धात् ॥६
पापैरनेकैरशुभैर्विबद्धा भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्याः ।
महानिलोद्भूततरंगभूत
यावत्तवाम्भो हि न संस्पृशन्ति ॥७

महामुनि श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजन् ! इस वचन का श्रवण कर ऋषिगण परम हर्षित हुए थे । द्विजगण हाथ जोड़कर नर्मदा की स्तुति करने लगे थे । १॥ हे परम पुण्य जल वाली ! आपको सेवा मे हमारा नमस्कार है । मकर गामिनी आपके लिए हमारा नमस्कार है । हे देवि ! पापो के मोचन करने वाली आपको नमस्कार है । हे वरानने ! आपको हमारा प्रणाम है ॥२॥ हे पुण्य जल के आश्रय वाली ! हे परम शुभे ! आपको नमस्कार है । आप विशुद्ध सत्त्व वाली और सुरो के द्वारा सेवित हैं । समस्त तीर्थों के समुदाय के द्वारा सेवित और विशुद्ध सत्त्व सम्पन्न आपको नमस्कार है । आप सुरों और सिद्धो के द्वारा सदा सेवित हैं । आप भगवान् रुद्र के अंग से परम वरिष्ठ हैं आपको हमारा नमस्कार

है ॥३॥ हे वरों के प्रदान करने वाली देवि ! हे शिवे ! आपको प्रणाम है। तीनों लोकों मे सौख्य के प्रदान करने वाली देवि ! आप तो अनेकों भूतों के समुदायों का समाश्रय देने वाली और अनघ हैं आपको हमारा नमस्कार है ॥४॥ आप समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ हैं। हे पाप हरे ! हे विधिश्रिते ! आप गन्धर्व—राक्षस—उरगों के द्वारा सेवित अङ्ग वाली हैं। हे सनातनि ! समस्त प्राणियों के गणों पर कृपा करने वाली हैं और मोक्ष के प्रदान करने वाली हैं। हे देवि ! आप हमारा कल्याण करें ॥५॥ हे महान् ऊर्मियों की माला वाली ! हे देवि ! आप महान् मत्स्यों के समुदाय—महिष और वराहों के द्वारा भली भाँति सेवित हैं। हे वरदे ! हे सुखप्रदे ! हम सब नत हैं हमको पशुपाश के बन्ध से वियुक्त कराइये ॥६॥ अनेक अशुभ पापों से विशेष रूप से बद्ध मनुष्य अभी तक नरकों में भ्रमण किया करते हैं जब तक महा निलोद्भूत आपके जल का वे स्पर्श नहीं करते हैं ॥७॥

अनेकदुःखौघभयार्दितानां पापैरनेकैरभिवेष्टितानाम् ।
गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रे द्वन्द्वैरनेकैरपि सम्वृतानाम् ॥८
नद्यश्च पूता विमला भवन्ति
त्वां देवि सम्प्राप्य न संशयोऽत्र ।
दुःखातुराणामभयं ददासि
शिष्टैरनेकैरभिपूजितासि ॥९
स्पृष्टं करैश्चन्द्रमसो रवेश्च
तदेव दद्यात्परमं पदं तु ।
यत्रोपलाः पुण्यजलाप्लुतास्ते ।
शिवत्वमायान्ति किमत्र चित्रम् ॥१०
भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्या दुःखातुरा पापपरीतदेहाः ।
महानिलोद्भूततरङ्गभङ्गं यावत्तवाम्भो न हि संश्रयन्ति ॥११

अनेक दुःखों और भयों से पीड़ित और अनेक पापों से परिवेष्टित मानवों की आप ही गति हैं। हे अम्भोज के समान मुख वाली ! मनुष्य

संसार में अनेक द्वन्द्वों से सम्भृत हैं उन सबका उद्धार आप ही करने वाली हैं ॥८॥ हे देवि ! आपको सम्प्राप्त करके नदियाँ विमल और पूत हो जाती हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो दुःख से आतुर हैं उनको आप अभय दिया करती हैं और आप अनेक सिद्धों के द्वारा अभिपूजित हैं ॥६॥ चन्द्रमा के करों से तथा सूर्य के करों से स्पृष्ट आपका जल उसी समय में परम पद प्रदान किया करता है जहाँ पर पुण्य जल में प्लुत हुए शिवत्व को प्रदान किया करते हैं—इसमें क्या विचित्र बात है ॥१०॥ तभी तक मनुष्य पापों से परीत देहों वाले नरकों में दुःखों से आतुर होते हुए भ्रमण किया करते हैं जब तक महा निलोर्मूल तरङ्गों के भङ्ग वाले आपके जल का समाश्रय ग्रहण नहीं किया करते हैं ॥११॥

म्लेच्छाः पुलिन्दास्त्वथ यातुधानाः
पिबन्ति येऽम्भस्तव देवि पुण्यम् ।
मुक्ता भवन्तीह भयात् घोरात्
निःसंशयं तेऽपि किमत्र चित्रम् ॥१२
सरांसि नद्यः क्षयमभ्युपेता
घोरे युगेऽस्मिन्हि कलौ प्रदूषिते ।
त्वं भ्राजसे देवि जलौघपूर्णा
दिवीव नक्षत्रपथे च गङ्गा । १३
तव प्रसादाद्वरदे वरिष्ठे
कालं मयेमं परिपालयित्वा ।
यामोऽस्म रुद्रं तव सुप्रसादा
द्वय तथा त्वं कुरु वै प्रसादम् ।।१४

आपके परम पुण्यमय जल को म्लेच्छपुलिन्द-यातुधान सब पान करते हैं वे भी घोरभय से मुक्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है और इसमें विचित्रता ही क्या है ॥१२॥ इस प्रदूषित कलियुग में जो परम घोर है सभी सर और नदियाँ क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं । हे देवि ! आप तो जल के ओघ से परिपूर्ण हुई भ्राजमान रहती हैं जैसे दिवलोक में और नक्षत्र पथ में गङ्गा रहा करती हैं ॥१३॥ हे

करिए ! हे वरदे ! इस काल का परिपालन कर के आपके सुप्रसाद से हम रुद्र के समीप में प्राप्त हो जावें उसी प्रकार का आप हमारे ऊपर प्रसाद करिए ॥१४॥

गतिस्त्वमम्बेव पितेव पुत्रो
त्वं पाहि नो यावदिमं युगान्तम् ।
काले रजनावृष्टिहतं सुघोरं
यावत्तरामस्तव सुप्रसादात् ॥१५
पठन्ति ये स्तोत्रमिदं द्विजेन्द्रा
शृण्वन्ति ये चापि नराः प्रशान्ताः ।
ते यान्ति रुद्रं वृषसंयुतेन
यानेन दिव्याम्बरभूषिताश्च ॥१६
ये स्तोत्रमेतत्सततं पठन्ति
स्नात्वा तु तोये खलु नर्मदायाः ।
अन्ते हि तेषां सरिदुत्तमेयं
गतिं विशुद्धामचिराद्ददाति ॥१७
प्रातः समुत्थाय तथा शयानो
यः कीर्तयेतानुदिनं स्तवं च ।
स मुक्तपापः सुविशुद्धदेहः
समाश्रयं याति महेश्वरस्य ॥१८

अम्बा की भाँति आप ही गति हैं और आप पिता के समान जब तक इस युग का अन्त हो हमारी रक्षा करिए । काल में रजावृष्टि से हत सुघोर को हम तरण करें यह आपका ही सुप्रसाद है ॥१५॥ जो द्विजेन्द्र इस स्तोत्र को पढ़ते हैं और जो परम प्रशान्त होकर मनुष्य इसका श्रवण किया करते हैं वे वृष से समन्वित यान के द्वारा दिव्य वस्त्रादि से विभूषित होते हुए यान के द्वारा रुद्र के समीप गमन किया करते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य नर्मदा के जल में स्नान करके इस स्तोत्र को निरन्तर पढ़ा करते हैं अन्त में शीघ्र ही यह उत्तमा सरित उनको विशुद्ध गति प्रदान किया करती है ॥१७॥ प्रातः शय्या से उठकर या शयन करता हुआ ही प्रति

दिन इस सब का कीर्त्तन किया करता है। वह पापों से छुटकारा पाकर विशुद्ध देह वाला होते हुए भगवान महेश्वर का समाश्रय ग्रहण किया करता है ॥१८॥

८४—कावेरीसङ्गममाहात्म्यवर्णन

कावेरीति च विख्याता त्रिषु लोकेषु सत्तम ।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तस्या मार्कण्ड तत्त्वतः ॥१
कीदृशं दर्शनं तस्याः फलं स्पर्शोऽथवाविभो ।
स्नानेजाप्येऽथवादानउपवासेतथामुने ॥२
कथयस्व महाभागकावेरीसङ्गमेफलम् ।
धर्मः श्रुतोऽथदृष्टोवाकथितोवाकृतोऽपिवा ॥३
अनुमोदितो वा विप्रेन्द्र पुनातीति श्रुतं मया ।
यथा धर्मप्रसङ्गे तु मुनि धर्मोऽपिजायते ॥४
स्वर्गश्च नरकश्चैव इत्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥५
साधुसाधुमहाभागयत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ।
शृणुष्वैकमनाभूत्वाकावेरीफलमुत्तमम् ॥६
अस्ति यक्षो महासत्त्वः कुबेरोनाम विश्रुतः ।
सोऽपि तीर्थप्रभावेण राजन्यक्षाधिपोऽभवत् ॥७

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! तीनों लोकों में कावेरी विख्यात है। हे मार्कण्ड ! तात्त्विक रूप से उसके माहात्म्य का श्रवण करना चाहता हूँ। हे विभो ! उसका दर्शन कैसा है अथवा स्पर्श करने में क्या फल होता है ? हे मुने ! स्नान—जाप्य—अथवा दान तथा उपवास में क्या फल होता है ॥१-२॥ हे मुनिवर ! आप तो महान् भाग्य वाले हैं। इस कावेरी के सङ्गम में जो भी फल होता है उसे कहिए। धर्म चाहे श्रुत हो—दृष्ट हो—कथित हो—कृत हो—अनुमोदित हो, हे विप्रेन्द्र ! वह पवित्र कर दिया करता है—ऐसा मैंने सुना है। हे मुने ! धर्म के प्रसंग में जैसे धर्म भी होता है वैसे ही स्वर्ग और नरक भी है—इस

प्रकार की वैदिकी श्रुति है ॥३-५॥ श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छा है जो कि आपने इस समय में मुझसे पूछा है। अब आप एक मन होकर कावेरी के उत्तम फल का श्रवण करिये। एक महान सत्य वाला यक्ष जो कि कुबेर—इस नाम से प्रसिद्ध था, हुआ था। वह भी तीर्थ के प्रभाव से हे राजन् ! यक्षों का राजा हो गया था ॥६-७॥

तच्छृणुष्व विधानेन भक्त्यापरमयानृप ।
सिद्धि प्राप्तोमहाभागकावेरीसङ्गमेन तु ॥८
कावेर्या नर्मदायास्तुसङ्गमेलोकविश्रुते ।
तमस्नात्वाशुचिर्भूत्वाकुबेरःसत्यविक्रम ॥९
विधिवन्नियमं कृत्वा शास्त्रयुक्त्या नरोत्तम ।
आराधयन्महादेवमेकचित्तः सनातनम् ॥१०
एकाहारोवसन्मासं तथापष्ठाह्नकालिकः ।
पक्षोपवासोन्यवसत्कञ्चित्कालं नृपोत्तम ॥११
मूलशाकफलैश्चान्यं कालं नयति बुद्धिमान् ।
किञ्चित्कालं वसंस्तत्र तीर्थे शैवालभोजनः ॥१२
पराकेणानयत्कालं कृच्छ्रे णापिचमानद ।
चान्द्रायणेनचाप्यन्यमन्यदाप्यम्बुभोजनः ॥१३
एवं तत्र नर श्रेष्ठ कामरागविवर्जितः ।
स्थितोवर्षशतं साग्रं कर्षयन्स्वं तथा वपुः ॥१४

हे नृप ! परम भक्ति के भाव से विधान से उसका आप श्रवण करिए। हे महाभाग ! कावेरी के संगम से वो सिद्धि को प्राप्त हो गया था ॥८॥ लोक में परम प्रसिद्ध कावेरी और नर्मदा का संगम है। उसमें स्नान करके और पवित्र होकर कुबेर सत्य विक्रम वाला हो गया था ॥९॥ कुबेर ने विधिपूर्वक नियम धारण करके हे नरोत्तम ! शास्त्रोक्त रीति से एक चित्त होकर सनातन महादेव की आराधना की थी। वह कुछ समय तक एक ही बार आहार करने वाला रहा था। फिर एक मास के पीछे छठवें दिन आहार लेने वाला और इसके पश्चात् पक्ष में एक बार

भोजन करने वाला होकर कुछ समय तक वहाँ उसने वास किया था ॥१०-११॥ उस बुद्धिमान ने अन्य मास को मूल-फल और शाक के आहार से व्यतीत किया था। कुछ समय तक केवल शैवाल का ही आहार करके वह वहाँ पर निवास करने वाला हुआ था ॥१२॥ हे मानद ! उस कुबेर ने कुछ समय पराक—कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रतों के द्वारा व्यतीत किया था और कुछ समय तक केवल जलपान को ही भोजन रखकर तपस्या की थी ॥१३॥ हे नर श्रेष्ठ ! इस रीति से वहाँ पर काम और राग से विवर्जित होकर अपने शरीर को कर्षित करता हुआ वहाँ डेढ़ सौ वर्ष तक स्थित रहा था ॥१४॥

ततो वर्षशतस्यान्ते देवदेवो महेश्वरः ।
तुष्टस्तु परया भक्त्या समुवाच हसन्निव ॥१५
भो भो यक्ष महासत्त्व वरं वरय सुव्रत ।
परितुष्टोऽस्मि ते भक्त्या तव दास्ये तयेप्सितम् ॥१६
यदि तुष्टोऽसि देवेश उमया सह शङ्कर ।
अद्यप्रभृति सर्वेषां यक्षाणामधिपो भवे ॥१७
अक्षयश्चाव्ययश्चैव तव भक्तिपुरस्सरः ।
धर्मे मतिं च मे नित्यं ददस्व परमेश्वर ॥१८
यत्त्वया प्रार्थितं सर्वं फलं धर्मस्य तत्तथा ।
इत्येवमुक्त्वा तं तत्र जगामादर्शनं हरः ॥१९
सोऽपि स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
आमन्त्रयित्वा तत्तीर्थं कृतार्थश्च गृहं ययौ ॥२०
पूजितस्तत्र यक्षैस्तु सोऽभिषिक्तो विधानतः ।
चकार विपुलं तत्र राज्यमीप्सितमुत्तमम् ॥२१

इसके उपरान्त जब कि सौ वर्ष समाप्त हो गये थे तो उसके अन्त में देवों के भी देव भगवान महेश्वर प्रसन्न हुए थे और उसकी परा भक्ति से तुष्ट होकर हँसते हुए उससे बोले थे ॥१५॥ हे यक्ष ! हे महान् सत्त्व वाले ! हे सुव्रत ! वरदान की याचना करो मैं तेरी भक्ति से परितुष्ट हो गया हूँ और तुमको जो भी तेरा अभीष्ट वर होगा उसे दे दूँगा ॥१६॥

यक्ष ने कहा—हे देवेश ! यदि आप मुझ पर परम तुष्ट हैं तो हे उमादेवी के सहित भगवान शङ्कर ! मैं आज ही से लेकर समस्त यक्षों का स्वामी हो जाऊं और अक्षय्य तथा अव्यय हो जाऊं जिसमें आपकी भक्ति भरी हुई हो। हे परमेश्वर ! धर्म में नित्य ही मेरी मति आप प्रदान कीजिए ॥१७-१८॥ ईश्वर ने कहा—तूने जो भी प्रार्थना की है वह उसी भाँति धर्म का फल होगा—बस इतना ही कहकर भगवान् हर वहीं पर अन्तर्धान हो गए थे ॥१९॥ वह भी स्नान करके विधिपूर्वक पितृगण और देवों का भली भाँति तर्पण करके उस तीर्थ को आमन्त्रित करके कृतार्थ होता हुआ अपने घर को चला गया था ॥२०॥ वहाँ पर वह समस्त यक्षों के द्वारा पूजित हुआ और उसका विधान के साथ अभिषेक किया गया था। वहाँ पर उसने उत्तम और बहुत अपना इच्छित राज्य किया था ॥२१॥

तत्र चान्ये सुराः सिद्धायक्षगन्धर्वकिन्नराः।
गणाश्चाप्सरसाञ्चैव ऋषयश्च तथानघ ॥२२
कावेरीसङ्गमं तेन सर्वपापहरं विदु।
स्वर्गिणामपि सर्वेषां द्वारमेतद्युधिष्ठिर ॥२३
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम्।
कावेरीसङ्गमे स्नात्वा यैर्दत्तं हि तिलोदकम् ॥२४
वश पूर्वे परे तात मातृतः पितृतस्तथा।
पितरः पितामहास्तेन उद्धृता नरकार्णवात् ॥२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीत मानवः।
अर्चयेदीश्वरं देवं यदीच्छेच्छाश्वतीं गतिम् ॥२६
कावेरीसङ्गमे राजन्स्नानदानार्चनं नरैः।
कृतं भक्त्या नरश्रेष्ठ अश्वमेधाधिकं फलम् ॥२७
होमेन चाक्षयः स्वर्गो अपादायुर्विवर्धते।
ध्यानतो नित्यमायाति पदं शिवकल्मात्मकम् ॥२८

हे मगध ! वहाँ पर अन्य सुर—सिद्ध—यक्ष—गन्धर्व—किन्नर—अप्सराओं के गण तथा ऋषिवृन्द भी थे। इससे यह कावेरी का सङ्गम

समस्त पापों का हरण करने वाला जाना गया है। हे युधिष्ठिर! यह स्वर्गों का और अन्य समस्त लोकों का द्वार है ॥२२-२३॥ वे महान् आत्मा वाले पुरुष परम धन्य हैं और उनका जीवन अति सुन्दर जीवन है जिन्होंने कावेरी के संगम में स्नान करके तिलोदक समर्पित किया है ॥२४॥ हे तात! उसने माता और पिता दोनों के दश पूर्व के और दश पर के पितरों पितामहों को नरक के घोर दर्शन से उद्धार कर दिया है ॥२५॥ इसलिये सब प्रकार के प्रयत्न से मनुष्य को वहाँ पर अवश्य ही स्नान करना चाहिए। यदि शाश्वत गति की इच्छा रखता है तो वहाँ पर देव ईश्वर की अर्चना करनी चाहिए ॥२६॥ हे राजन्! कावेरी के संगम में जिन मनुष्यों ने भक्ति की भावना से स्नान दान और अर्चन किया है हे नर श्रेष्ठ! उनको अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक फल प्राप्त होता है ॥२७॥ होम से अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जाप करने से आयु की वृद्धि हुआ करती है तथा ध्यान करने से नित्य ही शिव के कलात्मक पद की प्राप्ति किया करता है ॥२८॥

अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नरेश्वर।
अग्निलोके वसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥२९
अनाशकं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
तस्य पुण्यफलं यद्वै तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥३०
गन्धर्वाप्सरसङ्कीर्णे विमाने सूर्यसन्निभे।
वीज्यमानो वरस्त्रीभिर्दैवतैः सह मोदते ॥३१
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
क्रीडते रुद्रलोकस्थस्तदन्ते भुवि चागतः ॥३२
भोगवान्दानशीलश्च जायते पृथिवीपतिः।
आधिशोकविनिर्मुक्तो जीवेच्च शरदां शतम् ॥३३
एवंगुणगणाकीर्णा कावेरी सा सरिन्नृप।
त्रिषु लोकेषु विख्याता स्नानमदा सगमेसदा ॥३४
जितवाक्कामचित्ताश्च ध्येयध्यानरतास्तथा।
कावेरीसंगमे तात तेऽपि मोक्षमवाप्नुयुः ॥३५

हे नरेश्वर ! उस तीर्थ में जो कोई अग्नि में प्रवेश किया करता है वह जब तक भूत संप्लव अर्थात् महा प्रलय होता है अग्नि लोक में निवास प्राप्त किया करता है ॥२६॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई अनाशक करे उसको जो भी पुण्य-फल होता है उसको सुनिये ॥३०॥ वह व्यक्ति गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा सङ्कीर्ण विमान में जो कि सूर्य के समान होता है परम श्रेष्ठ स्त्रियों के द्वारा वीज्यमान होता हुआ देवों के साथ आनन्द प्राप्त किया करता है ॥३१॥ वह साठ हजार साठ सौ वर्ष पर्यन्त रुद्र लोक में स्थित होकर क्रीड़ा किया करता है । इतने समय के पश्चात् ही वह इस भूलोक मे आता है ॥३२॥ यहाँ पर भी अत्यन्त अधिक भोगों से समन्वित होकर तथा परम दान देने वाला होता हुआ राजा हो जाता है । वह मानसिक व्यथा और शोक आदि से रहित होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है ॥३३॥ हे नृप ! इस प्रकार से अनेक गुणगण से वह कावेरी सरित युक्त है और तीनों लोकों मे सदा नर्मदा के संगम मे विख्यात है ॥३४॥ हे तात ! उस कावेरी के संगम मे अपने वचन-काया और चित के ऊपर विजय प्राप्त करके ध्येय के ध्यान में रत होते हुए निवास किया करते हैं वे सभी मोक्ष को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥३५॥

शृणु तेऽन्यत्प्रवक्ष्यामिआश्चर्यंनृपसत्तम ।
त्रिपुलोकेपुकात्वन्याहश्यमेसरितातमा ॥३६
लब्ध येनेमं दातीयं ये चाकुर्युः प्रदक्षिणम् ।
ये पिबन्ति जलं तत्र ते पुण्यानात्रसंशय ॥३७
न तेषा सन्ततिच्छेदो दश जन्मानि पञ्च च ।
तेषां पापं विलीयेत हिमं सूर्योदये यथा ॥३८
गंगायमुनसगे वै यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं लभते मर्त्यः कावेरीस्नानमाचरन् ॥३९
भौमे तु भूतजायोगे व्यतीपाते वसंक्रमे ।
राहुसोमसमायोगेतदेवाष्टगुणं स्मृतम् ॥४०

अशीतिश्च यवाः प्रोक्ता गंगायामुनसंगमे ।
कावेरीनर्मदायोगेऽवदेवाष्टगुणं स्मृतम् ॥४१
गंगा षष्टिसहस्रैस्तु क्षेत्रपालैः प्रपूज्यते ।
तदर्द्धैरन्यतीर्थानि रक्षन्ते नाऽत्र संशयः ॥४२

हे नृप सत्तम ! आप श्रवण करिए मैं आपको एक अन्य भी दर्शय बतलाता हूँ, तीनों लोकों में इस सरिता के समान अन्य कौन सी है अर्थात् कोई भी नहीं है। जिन्होंने नर्मदा का जल प्राप्त कर लिया है और जो इसकी परिक्रमा करते हैं। जो यहाँ पर इसके जल का पान किया करते हैं वे परम पुण्यशाली हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३६-३७॥ पन्द्रह जन्मों तक उनकी सन्तति का छेद नहीं होता है सूर्योदय के होने पर हिम के समान ही उनके सब पाप विलीन हो जाया करते हैं ॥३८॥ गंगा और यमुना के संगम में जो फल मनुष्य प्राप्त करता है उसी पुण्य-फल को मनुष्य कावेरी के स्नान से प्राप्त करता है ॥३६॥ भौम में भृतजा योग के होने पर—व्यतीपात में—सूर्य के संक्रमण में तथा राहु और सोम के योग होने पर वही पुण्य-फल अठगुना बताया गया है ॥४०॥ गंगा और यमुना के संगम में अशीति यव कहे गये हैं वही कावेरी और नर्मदा के संगम में आठ गुना बताया गया है ॥४१॥ गंगा साठ हजार क्षेत्रपालों के द्वारा प्रकर्ष रूप से पूजी जाया करती है उनके आधों के द्वारा अन्य तीर्थ रक्षित किये जाया करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥४२॥

अमरेश्वरे तु सरितो ये योगाः परिकीर्तिताः ।
ते त्वशीतिसहस्रैस्तु क्षेत्रपालैस्तु रक्षिताः ॥४३
तथामरेश्वरे याम्ये लिंगं वैषपलेश्वरम् ।
द्वितीयं षण्डहस्ताख्यं द्वैलिंगेतीर्थं रक्षके ॥४४
शिवेन स्थापिते पूर्वं कावेर्यादिभिरक्षके ।
लक्षेण रक्षिता देवी नर्मदा बहुकल्पगा ॥४५
धनुर्धा षष्ट्यभियुते पुरुषैरोधयोजितः ।
ॐकारशतसाहस्रे पर्वताश्चाभिरक्षितः ॥४६

अन्यदेशकृतं पापमस्मिन्क्षेत्रे विनश्यति ।
अस्मिंस्तीर्थे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥४७
एषा ते कथिता तात कावेरी सरितां वरा ।
रुद्रदेहसमुत्पन्ना तेन पुण्यासरिद्वरा ॥४८

सरिताओं के अमरेश्वर योग में जो योग कीर्तित किये गये हैं वे अस्सी हजार क्षेत्रपालों के द्वारा रक्षित होते हैं ॥४३॥ उसी प्रकार से अमरेश्वर के मध्य में चण्डेश्वर लिंग है और दूसरा चण्डहस्त नामक लिंग है। ये दोनों लिंग तीर्थ संज्ञा वाले हैं ॥४४॥ पहिले ही भगवान् शिव के द्वारा कावेरी—आदि के अभिरक्षक ये स्थापित किये गये। यह देवी नर्मदालक्ष के द्वारा रक्षित हुई है जो कि बहुत कल्पों में गमन करने वाली हैं ॥४५॥ साठ धनुषों से अभियुत पुरुषों के द्वारा जो कि भगवान् ईश के द्वारा योजित हैं और सौ सहस्र ओङ्कारों से पर्वत अभिरक्षित होता है। अन्य स्थल में किया हुआ पाप इस क्षेत्र में विनष्ट हो जाया करता है ॥४६॥ इस तीर्थ में समागत होकर जो भी पाप किया जाता है वह वज्र लेप हो जाया करता है ॥४७॥ हे तात ! तुम्हारे आगे यह समस्त सरिताओं में परम श्रेष्ठ नदी कावेरी का वर्णन किया गया है। यह कावेरी साक्षात् भगवान् रुद्र के देह से समुत्पन्न हुई है उसी से यह परम पुण्यमयी सरिता परम श्रेष्ठ है ॥४८॥

८६—शूलभेदप्रशंसावर्णन

तीर्थानां परमं तीर्थं तच्छृणुष्वनराधिप ।
रेवाया दक्षिणेकूले निर्मितं शूलपाणिना ॥१
मोक्षार्थं मानवेन्द्राणां निर्मितं नृपसत्तम ।
श्रुत्वा मे विविधा धर्मास्तीर्थानि विविधानि च ।
दानधर्माः समस्ताश्च त्वत्प्रसादाद् द्विजोत्तम ॥२
अन्यच्च श्रोतुमिच्छामिसंसारच्छिद्यतेयथा ।
पुनरागमनंनास्तिमोक्षप्राप्तिर्भवेद्यथा ॥३

एतदाख्याहि मे सर्वं प्रसादाद् द्विजसत्तम ।।४
शृणुष्वैकमना भूत्वा तीर्थात्तीर्थान्तरं महत् ।
श्रुते यस्य प्रभावे तु मुच्यते चाब्दिकादघात् ।।५
वाचिकं मानसं वापि शारीरं च विशेषतः ।
कीर्तनात्तस्य तीर्थस्य मुच्यते सर्वपातकैः । ६
पञ्चक्रोशप्रमाणं तु तच्च तीर्थं महीपते ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं प्राणिनां पापकर्मिणाम् ।।७

महर्षि प्रवर श्रीमार्कण्डेय जी ने कहा हे नराधिप समस्त तीर्थों में जो परम शिरोमणि तीर्थ है उसके विषय में अब सावधान होकर श्रवण करिए। इस तीर्थ को साक्षात् भगवान् शूलपाणि ने रेवा नदी के दाहिने तट पर निर्मित किया है ।।१।। हे नृपो में परम श्रेष्ठ ! इस तीर्थ का निर्माण मानवों के मोक्ष का सम्पादन करने के लिये ही किया गया है। युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजो में परमोत्तम ! आपकी कृपा से मैंने अनेक धर्म और नाना प्रकार के तीर्थों का श्रवण किया है–तथा समस्त दानो के धर्म भी सुन लिये हैं ।।२।। हे भगवन् ! अब मैं और भी कुछ श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ जिससे इस संसार के जन्म—मरण और बराबर लगे रहने वाले आवागमन का छेदन हो जावे और मरकर पुन. यहाँ पर जन्म ग्रहण कर आगमन न होवे तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करे ।।३।। हे द्विजो में परम श्रेष्ठ ! आप अपने प्रसाद के रूप मे यह सब कुछ मेरे समक्ष मे वर्णन कीजिए ।।४।। श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—अब आप एकमन होकर तीर्थ से अन्य तीर्थ का श्रवण करिए जो कि परम महान् तीर्थ है जिसके प्रभाव के श्रुत मात्र से ही वर्ष के अघ से मुक्ति प्राप्त करली जाया करती है ।।५।। वाचिक—मानसिक और शारीरिक समस्त पातकों से विशेष रूप से तीर्थ के कीर्त्तन करने से छुटकारा पा लिया जाता है ।।६।। हे महीपते यह तीर्थ पाँच कोश के प्रमाण वाला है । यह तीर्थ पाप कर्मों के करने वाले प्राणियों को समस्त सांसारिक सुखों के उपभोग और मोक्ष दोनो का ही प्रदान करने वाला दिव्य तीर्थ है ।।७।।

रेवाया दक्षिणेकूलेपर्वतोभृगुसञ्ज्ञितः ।
तस्यमूर्ध्नि च तत्तीर्थं स्थापितं चैवशम्भुना ॥८
शूलभेदेतिविख्यातं त्रिपुलोकेपुभूपते ।
तत्रस्थिताश्रये वृक्षास्तीर्थाच्च वचतुर्दिशम् ॥९
पतितानीलयं यान्ति रुद्रस्यनात्रसंशयः ।
मृतास्तत्रैवयेकेचिज्जन्तवो भुवि पक्षिणः ॥१०
ते यान्तिपरमं लोकं तत्रतीर्थे नसंशयः ।
पातालान्निःसृता गंगाभोगवतीतिसञ्ज्ञिता ॥११
निष्क्रान्ता शुलभेदाच्च सर्वपापक्षयङ्करी ।
या सा गीर्वाणनाम्न्यन्या वहेत्पुण्या महानदी ॥१२
पतिता कुण्डमध्ये तु यत्र भिन्नं त्रिशूलिना ।
शम्भुना च पुरा तात उत्पाद्य च सरस्वती ॥१३
सा तत्र पतिता राजन्प्राचीनाघविमोचिनी ।
भास्वरया त्रितय यत्र शिला गीर्वाणसञ्ज्ञिता ॥१४

रेवा के दक्षिण तट पर एक भृगु सज्ञा वाला पर्वत है । उसके शिखर पर भगवान् शम्भु ने उस तीर्थ की स्थापना की है ॥८॥ हे भूपते ! वह शूलभेद इस नाम से विख्यात है और तीनों लोकों में वेद प्रसिद्ध है । उसमें जो वृक्ष हैं जो कि उस तीर्थ के चारों दिशाओं में है । वे जब गिरते हैं तो सीधे रुद्र के निलय में जाकर प्राप्त हुआ करते हैं—इसमें संशय नहीं है यहाँ पर भूमि में जो भी कोई जन्तु एवं पक्षी मृत होते हैं वे सब परम लोक को गमन किया करते हैं उस तीर्थ का यह प्रभाव है—इस में कुछ भी संशय नहीं है । पाताल से निकली हुई गंगा भोगवती—इस संज्ञा वाली है ॥९-११॥ यह शूलभेद से निष्क्रान्त हुई है जो कि समस्त पापों के क्षय करने वाली है । जो अन्य गीर्वाण नाम वाली है वह परम पुण्यमयी महानदी है ॥१२॥ वह कुण्ड के मध्य में पतित हुई है जहाँ पर शूलपाणि के द्वारा भिन्न की गई है । हे तात ! भगवान् शम्भु ने पहिले सरस्वती सरिता का उत्पादन किया था ॥१३॥ हे राजन् ! वह वहाँ पर पतित हुई थी जो पुराने-से भी पुराने अघों से

मुक्त कर देने वाली है। जहाँ पर गीर्वाण संज्ञा वाली शिला है वहाँ सरस्वती के तीन रूप हैं ॥१४॥

तत्र तीर्थं च तत्तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
केदारञ्च प्रयागञ्च कुरुक्षेत्रं गया तथा । १५
अन्यानि च सुतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
पञ्च स्थानानि तीर्थानि पृथग्भूतानि यानि च ॥१६
वक्ष्यामि च समासेन एकैकं च पृथक्पृथक् ।
गया नाभ्यां यथा पुण्यां चक्रतीर्थं च तत्समम् ॥१७
धर्मारण्ये यथा कूप शूलभेदं च तत्समम् ।
ब्रह्मयूपं यथा पुण्यं देवनद्यास्तथैव च ॥१८
यथा गयाशिरः पुण्यं सुराणां च यथा शिला ।
यथा च पुष्करं स्थानं मार्कण्डह्रद एव च ॥१९
दत्त्वा पिण्डोदकं तत्रपितृणां च तथाक्षयम् ।
यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं तोयं पिबतिनित्यशः ॥२०
मुच्यते सर्वपापैस्तु उरगःकञ्चुकैरिव ।
अनिन्द्यान्पूजयेद्विप्रान्दम्भक्रोधविवर्जितान् ॥२१

उस तीर्थ में वह तीर्थ ऐसा है जो कभी न हुआ और न भविष्य में होगा। केदार—प्रयाग—कुरुक्षेत्र और गया हैं। अन्य जो सुतीर्थ हैं वे सोलहवीं कला के भी योग्य नहीं हैं। जो पञ्च स्थान तीर्थ हैं और जो पृथग्भूत हैं उनको एक-एक को पृथक्-पृथक् संक्षेप में बतलाऊँगा। नाभि में गया जिस प्रकार का पुण्यमय तीर्थ है उसी के समान चक्रतीर्थ तीर्थ है ॥१५-१७॥ धर्मारण्य में जैसा कूप है उसी के समान शूलभेद है। ब्रह्म-यूप जैसा पुण्यमय है उसी प्रकार का देवनदी का भी है। जिस प्रकार का गया का शिर पुण्यमय है और सुरों का शिला है। जैसा पुष्कर स्थल है और मार्कण्ड ह्रद भी वैसा ही है ॥१८-१९॥ वहाँ पर पितृगण को पिण्डोदक देकर जो वहाँ पर अक्षय श्राद्ध करता है वह नित्य ही जल का पान किया करता है ॥२०॥ जैसे सर्प अपनी केंचुली से मुक्त हो जाया करता है वैसे ही वह मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता

है। जो विप्र निन्दा करने के योग्य न होवें और दम्भ तथा क्रोध से रहित होवें उनको पूजा करनी चाहिए ॥२१॥

त्रयोदश्यां दिने दानं त्रयोदशगुणम्भवेत् ।
अभ्यर्चितं सुरं दृष्ट्वा गणनाथं गजाननम् ॥२२
सर्वे विघ्ना विनश्यन्ति दृष्ट्वा कम्बलकेशपम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या शूलपाणिमहेश्वरम् ॥२३
देवस्य पूर्वभागे तु उमा पूज्या प्रयत्नतः ।
मार्कण्डेशं ततो भक्त्या पूजयेद् गुहवासिनम् ॥२४
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैरज्ञानज्ञानसञ्चितैः ।
गुहामध्ये प्रविष्टस्तु जपेत्सूक्तं त्र्यक्षरम् ॥२५
नीलपर्वतजं पुण्यं पक्षांशेन लभेत स ।
त्रिनरास्तत्र तिष्ठन्ति सादित्यमरुतैः सह ॥२६
सर्वं देवमयं स्थानं कोटिलिङ्गमनुत्तमम् ।
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति सङ्क्षयम् ॥२७
तथा पापानि नश्यन्ति शूलभेदस्य दर्शनात् ।
प्रत्यक्षो दृश्यतेऽद्यापि प्रत्ययो ह्यवनीपते ॥२८

त्रयोदश दिन का दिया हुआ दान तेरह गुना हो जाया करता है। अभ्यर्चना किये हुए गण नाथ गज के समान मुख वाले सुर का दर्शन करके तथा कम्बलेश्वर प्रभु को देखकर सभी विघ्न विशेष रूप से नष्ट हो जाया करते हैं। परमाधिक भक्ति की भावना से महेश्वर शूलपाणि भगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥२२-२३॥ देवेश्वर के पूर्व भाग में प्रयत्न पूर्वक जगदम्बा उमादेवी की पूजा करनी चाहिए। इसके अनन्तर भक्ति भाव से गुहवासी मार्कण्डेश की अर्चना करे ॥२४॥ इस पूजन के करने से ज्ञान तथा अज्ञान के द्वारा सञ्चित समस्त पातकों से मानव मुक्त हो जाया करते हैं। गुहा के मध्य में प्रविष्ट होकर त्र्यक्षर सूक्त का जाप करना चाहिए ॥२५॥ वह व्यक्ति नील पर्वत से समुत्पन्न पुण्य को पक्षांश से प्राप्त किया करता है। यहाँ पर आदित्य मरुतों के साथ तीन नर स्थित रहा करते हैं ॥२६॥ यह स्थान सम्पूर्ण देवमय है और अति उत्तम कोटि लिङ्गों

से युक्त है। जिस प्रकार से सभी नदी और नद सागर में लय को प्राप्त हो जाया करते हैं उसी भाँति भगवान् शूलभेद के दर्शन करने से सब पाप नष्ट हो जाया करते हैं। हे भूमीपते! आज भी यह प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं और प्रत्यय होता है ॥२७-२८॥

विस्फुलिंगालिंगमध्येस्पन्दन्तेस्नानयोगतः।
द्वितीयःप्रत्ययस्तत्रतैलबिन्दुर्न सर्पति ।।२९
एवं हि प्रत्ययस्तत्र शूलभेदप्रभावजः।
यः स्मरेच्छूलभेदं तु त्रिकालं नित्यमेव च ।।३०
सपूतश्चभवेत्साक्षात्सबाह्याभ्यन्तरोनृप।
नकस्यचिन्मयाख्यात पृष्टोऽहंत्रिदशैरपि ।।३१
गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं सदा गोप्यं कृतं मया।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदोषघ्नमुत्तमम् ।।३२
सर्वतीर्थमयं तीर्थं शूलभेदं जनेश्वर।
श्रुते यस्य प्रभावेनमुच्यतेसर्वपातकैः ।।३३
शूलभेद मयातातसंक्षेपात्कथितं तव।
यः शृणोतिनरोभक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ।।३४

स्नान के योग से लिंग के मध्य में विस्फुलिंग स्पन्द किया करते हैं। दूसरा प्रत्यय है कि वहाँ पर तैल का बिन्दु सर्पण नहीं किया करता है ॥२९॥ इस प्रकार से वहाँ पर शूलभेद के प्रभाव से समुत्पन्न प्रत्यय होता है। जो पुरुष तीनों कालों में नित्य ही भगवान् शूलभेद का स्मरण किया करता है हे नृप! वह बाहिर और भीतर से साक्षात् पूत हो जाया करता है। यह बात मैंने किसी से भी कही थी यद्यपि देवों के द्वारा भी मुझ से पूछा गया था ॥३०-३१॥ यह गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है अतः मैंने इस तीर्थ को गुप्त ही रक्खा था। यह सभी प्रकार के पापों का हरण करने वाला—पुण्यमय—उत्तम और सभी दोषों का हनन करने वाला है ॥३२॥ हे जनेश्वर! शूलभेद तीर्थ समस्त तीर्थों से परिपूर्ण तीर्थ है। इसके प्रभाव का श्रवण करने पर ही समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है। हे तात! यह शूलभेद तीर्थ का वर्णन मैंने तुम्हारे

सामने संक्षप से कर दिया है। जो भी कोई मनुष्य भक्ति भाव से इसे श्रवण करता है वह सभी पातकों से मुक्त हो जाया करता है ॥३४॥

८७—कालरात्रिकृतजगत्संहारवर्णन

ततस्त ऋषयः सर्वेमहाभागास्तपोधनाः ।
गतास्तुपरम लोक ततः किञ्जातमद्भुतम् ॥१
ततस्तेषु प्रयातेषु नर्मदातीरवासिषु ।
बभूव रौद्रसहार सर्वभूतक्षयकरः ॥२
कैलासशिखरस्थ तु महादेवं सनातनम् ।
ब्रह्माद्याः प्रास्तुवन्देवमृग्यजुः सामभिः शिवम् ॥३
संहरस्व जगद्देव ! सदेवासुरमानुषम् ।
प्राप्तोयुगसहस्रान्तः कालः संहरणक्षमः ॥४
मद्रूपं तु समास्थाय त्वया चैतद्विनिर्मितम् ।
वैष्णवी मूर्तिमास्थाय त्वयैतत्परिपालितम् ॥५
एका मूर्तिस्त्रिधा जाता ब्राह्मी शैवी च वैष्णवी ।
सृष्टिसहारकार्यं भवेदेव महेश्वर ! ॥६
एवमुक्तस्त्वावचस्तथ्यंविष्णोश्चपरमेष्ठिनः ।
सगणः सपरीवारः सहताभ्यांसहोमया ॥७
सप्तलोकान्विभिद्येमान्भगवान्नीललोहितः ।
भूराद्यब्रह्मलोकान्त भित्वाण्ड परतः परम् ॥८

युधिष्ठिर ने कहा—इसके अनन्तर महान् भाग्य वाले तप ही जिनका धन था वे समस्त ऋषिगण परम लोक को चले गये थे। इसके पश्चात् क्या अद्भुत घटना हुई थी ? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—इसके अनन्तर उन नर्मदा के तट पर निवास करने वाले लोगों के प्रयाण कर जाने पर फिर समस्त प्राणियों का भयंकर क्षय करने वाला रौद्र संहार हुआ था। ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने कैलास पर्वत की शिखर पर समवस्थित सनातन शिव महादेव का ऋक्, यजु और सामवेदों के द्वारा स्तवन किया

था। हे देव ! आप इस सम्पूर्ण जगत् का जिसमें देव–असुर और मनुष्य सभी हैं संहार कीजिए क्योंकि अब एक सहस्र युगों का अन्तकाल प्राप्त हो गया है जो कि संहार करने में समर्थ है। आपने ही मेरे स्वरूप को धारण करके इस जगत् का सृजन किया था फिर वैष्णवी मूर्ति को धारण करके अर्थात् विष्णु के स्वरूप से इस जगत का आपने ही परिपालन किया था। आपकी ही एक मूर्ति ब्राह्मी वैष्णवी और शैवी तीन प्रकार की हो गई थी। हे महेश्वर ! आपने जगत की सृष्टि, रक्षा और संहार करने के ही लिए ऐसा किया है। इस परमेष्ठी और भगवान् विष्णु के तथ्य वचन का श्रवण करके अपने गणों के साथ तथा उन दोनों के सहित और उमा देवी के साथ नील लोहित भगवान् ने इन सातों लोकों का विभेद किया था। भू से आदि लेकर ब्रह्म लोक के अन्त तक पर से पर अण्ड का विभेदन कर दिया था ॥१-८॥

शैवं पदमजं दिव्यमाविशत्सह तैर्विभुः।
न तत्र वायुर्नाकाशं नाग्निस्तत्र न भूतलम् ॥६
यत्र संतिष्ठते देव उमया सह शंकरः।
न सूर्यो न ग्रहास्तत्र न ऋक्षाणि दिशस्तथा ॥१०
न लोकपाला न सुखं न च दुःख नृपोत्तम ! ॥११
ब्राह्मं पदं यत्कवयो वदन्ति शैवं पदं यत्कवयो वदन्ति।
क्षेत्रज्ञमीशं प्रवदन्ति चान्ये सांख्याश्च गायन्ति किलादिमोक्षम्॥१२
यद्ब्रह्म आद्यं प्रवदन्ति केचिद्यं सर्वमीशःनमजं पुराणम्।
तमेकरूपं तमनेकरूपमरूपमाद्यं परमव्ययाख्यम् ॥१३
अवर्णमप्यर्थमनामगोत्रं तुर्यं पदं यत्कवयो वदन्ति।
ध्यानार्थं विज्ञानमयं सुसूक्ष्ममात्मस्थमीशानवरं वरेण्यम् ॥१४

वह विभु परम दिव्य—अज शैव पद में उनके साथ प्रवेश कर गये। वहाँ पर न वायु है—न आकाश है और न अग्नि तथा भूतल ही है जहाँ पर कि देव शंकर उमादेवी के साथ स्थित रहा करते हैं। वहाँ सूर्य ग्रह ऋक्ष और दिशाएँ कुछ भी नहीं है। हे नृपोत्तम ! यहाँ पर न तो कोई लोकपाल ही है और न कोई सुख एवं दुःख ही है। जिसको कवि-

परम ब्राह्म पद कहा करते हैं और कवि उसे शैव पद भी कहते हैं। अन्य लोग इसी को केवल ईश कहते हैं तथा दूसरे साथ इसी को आदि मोक्ष कहकर पुकारा करते हैं। कुछ लोग इसको आद्य ब्रह्म कहते हैं जिसको सर्व—ईशान-अज और पुराण भी कहते हैं। इसको एक ही रूप वाला—अनेक रूपों से युक्त—बिना रूप वाला-आद्य—परम और अव्यय नाम वाला-अक्षरों भी अर्थ—अनाम—अनादि-तुर्य पद कवि लोग कहते हैं। ध्यान के लिए विज्ञानमय—मुमुक्षमय-ईशान वर और वरेण्य भी कहते हैं ॥६-१४॥

ततस्त्रयस्ते भगवन्तोऽथ सम्प्राप्य संक्षिप्य भवन्त्यथैकम् ।
पृथक्स्वरूपैस्तु पुनस्त एव जगत्समस्तं परिपालयन्ति ॥१५
संहारं सर्वभूतानां रुद्रत्वे कुरुते प्रभुः ।
विष्णुत्वे पालयेल्लोकान्ब्रह्मत्वे सृष्टिकारकः ॥१६
प्रकृत्या सह संयुक्तः कालो भूत्वा महेश्वरः ।
विश्वरूपा महामाया तस्य पार्श्वे व्यवस्थिता ॥१७
यामाहुः प्रकृतिं तज्ज्ञाः पदार्थानां विचक्षणाः ।
पुरुषत्वेऽप्रकृतित्वे च कारणं परमेश्वरः ॥ १८
तस्मादेतज्जगत्सर्वं समुद्भूतं चराचरम् ।
तस्मिन्नेव लयं याति युगान्ते समुपस्थिते ॥१९
भगलिङ्गाङ्कितं सर्वं व्याप्तं च परमेष्ठिना ।
भगरूपो महाविष्णुर्लिङ्गरूपो महेश्वरः ॥२०
भाति सर्वेषु लोकेषु गीयते भूर्भुवादिषु ।
प्रविष्टः सर्वभूतेषु तेन विष्णुभगः स्मृतः ॥२१

इसके उपरान्त वे तीनों देव एक ही ईश भगवान् को प्राप्त करके और मिलकर संक्षिप्त हो जाते हैं। वे ही फिर पृथक् स्वरूपों से युक्त होकर इस सम्पूर्ण जगत का परिपालन किया करते हैं। प्रभु सर्वभूतों के संहार को रुद्रत्व में करते हैं। विष्णुत्व के रूप में लोकों का पालन करते हैं और ब्रह्मत्व रूप में सृजन का कार्य किया करते हैं। प्रकृति के साथ संयुक्त महेश्वर काल होकर स्थित रहते हैं। विश्वरूपा महामाया उसी के पार्श्व

में व्यवस्थित रहा करती है। उसके ज्ञाता विचक्षण लोग पदार्थों के जानने वाले जिसको प्रकृति कहते हैं। पुरुषत्व के स्वरूप में तथा प्रकृतित्व के रूप में परमेश्वर ही एक कारण है। उससे ही यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् उत्पन्न हुआ है और युग के अन्त के उपस्थित होने उसी में पर लय होजाता है। परमेष्ठी के द्वारा यह समस्त भगलिंग से अंकित व्याप्त हो रहा है। भगरूप भगवान् विष्णु हैं और लिंग रूप महेश्वर हैं सब लोकों में ही दीप्तिमान् होते हैं और भूनुं आदि में मान किये जाते हैं। समस्त भूतों में प्रविष्ट हैं इसी कारण से विष्णु भग कहे गये हैं ॥१५-२१॥

विशनाद्विष्णुरित्युक्तः सर्वदेवमयो महान् ।
भासनाद्गमनाच्चैव भगसञ्ज्ञाप्रकीर्तिता ॥२२
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यस्मिन्नेतिलयं जगत् ।
एकभावं समापन्नं लिंगं तस्माद्विदुर्बुधाः ॥२३
महादेवस्ततो देवीमाह पार्श्वे स्थिता तदा ।
संहरस्व जगत्सर्वं मा विलम्बस्व शोभने ! ॥२४
त्यज सौम्यमिदं रूपं सितचन्द्रांशुनिर्मलम् ।
रौद्ररूपं समास्थायसंहरस्व चराचरम् । २५
रौद्रमूर्तगणैर्घोरैर्देवि त्वं परिवारिता ।
जीवलोकमिमं सर्वं भक्षयस्वाम्बुजेक्षणे ॥२६
ततोऽहं मर्दयिष्यामि प्लावयिष्ये तथा जगत् ।
कृत्वा चैकार्णवं भूयः सुप्तं स्वप्स्ये त्वया सह ॥२७

सर्व देवों से परिपूर्ण विष्णु विशन होने से ही विष्णु इस तरह नाम से कहे गये हैं। भासन होने और गमन होने से ही "भग" यह संज्ञा कीर्तित हुई है। ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त यह जगत् जिसमें लय को प्राप्त होता है। एक भाव को समापन्न हो गया है इसीलिये बुध लोग इसे लिंग कहा करते हैं। इसके अनन्तर उस समय में महादेव ने पार्श्व भाग में स्थित देवी से कहा था—हे शोभने ! इस सम्पूर्ण जगत का संहार करो और अब विलम्ब मत करो। अब सित चन्द्र की किरणों से निर्मल इस सौम्य स्वरूप का त्याग कर दो और महान् रौद्र स्वरूप से समास्थित

होकर इस स्थावर-जङ्गम चराचर जगत् का संहार कर डालो। हे देवि! परम घोर रौद्र रूप वाले भूतों के गणों से आप परिवारित होती हुई हे अम्बुजेक्षणे! इस समस्त जगत् का भक्षण कर डालो। इसके पश्चात् मैं मर्दन कर डालूँगा और इस सम्पूर्ण जगत् को प्लावित कर डालूँगा सबको एकार्णव से युक्त करके फिर तुम्हारे साथ में सुखपूर्वक शयन करूँगा ॥२२-२७॥

नाहं देवजगच्चैतत्संहरामि महाद्युते।
अम्बा भूत्वा विचेष्ट न भक्षयामिभृशातुरम् ॥२८
स्त्रीस्वभावेन कारुण्यं करोति हृदयं मम।
कथं वै निर्दहिष्यामिअपदेतज्जगत्पते ॥२९
तस्मात्त्वं स्वयमेवेदं जगत्संहर शंकर!।
[illegible] ॥३०

१

ॐ हुं फट् त्वं स इत्याह कोपाविष्टं रथेक्षणे ॥३१
हुंकारितविशालाक्षीपीनोरुघनस्तना।
सत्क्षणाद्धाभवद्रौद्राकालरात्रीश्भारत ॥३२
हुं कुर्वती महानादैर्नदयन्ती दिशोदश।
व्यवर्धतमहारौद्रा विद्युत्सौदामिनीयथा ॥३३
विद्युन्नम्पातदुष्प्रेक्ष्या विद्युत्सङ्घातचञ्चला।
विद्युज्ज्वालाकुला रौद्रा विद्युदग्निनिभेक्षणा ॥३४
मुक्तकेशी विशालाक्षीकृशग्रीवा कृशोदरी।
व्याघ्रचर्माम्बरधराव्यालयज्ञोपवीतिनी ॥३५

श्री देवी ने कहा—हे महाद्युते! हे देव! मैं इस सम्पूर्ण जगत् का संहार नहीं करती हूँ। मैं अम्बा होकर विकृत चेष्टा वाले और अत्यन्त आतुर का भक्षण कभी नहीं कर सकती हूँ। मैं स्त्री स्वभाव वाली हूँ मेरे हृदय में कारुण्य होता है। हे जगत्पते! मैं कैसे जगत् की अम्बा होती हुई इस जगत् का निर्दहन करूँगी। इसलिए आप ही स्वयं हे शङ्कर! इस समस्त जगत् के संहार का कार्य कीजिये। इसके अनन्तर इस प्रकार से

देवी के द्वारा कहे हुए धूर्जटि नीललोहित प्रभु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस देवी को निर्भर्त्सित किया था और महेश्वरी को हुंकार के द्वारा फटकार दी थी। उन्होंने 'शुम हुं फट्'—यह कहा था। कोप से समाविष्ट नेत्रों के दृष्टि वालों के द्वारा वह पीन स्तन और जघन स्थल वाली विशालाक्षी देवी हुङ्कारित हुई थी। हे भारत ! उसी क्षण में वह परम रौद्रा काल रात्रि के समान हो गई थी। वह देवी महान् नादों से हुम् हुम् करती हुई और दशों दिशाओं को ध्वनित करने वाली विद्युत सौदामिनी की भाँति महारौद्र रूप वाली होकर बढ़ गई थी। विद्युत के सम्पात के ही समान वह दुष्प्रेक्षणीय थी तथा विद्युत के संघात के समान चंचला थी। विद्युत के समान ही ज्वालाओं से समाकुल और विद्युत की अग्नि के तुल्य नेत्रों वाली रौद्र रूप वाली हो गई थी। मुक्त केशों वाला उसका स्वरूप था। उस देवी के नेत्र परम विशाल थे—ग्रीवा कृश थी और वह कृश उदर वाली थी। वह उस समय में व्याघ्र के चर्म की अम्बर वाली थी तथा व्यालों के यज्ञोपवीत को धारण करने वाली थी ॥२८-३५॥

वृश्चिकैरग्निपुञ्जाभैर्गोनसैश्च विभूषिता।
त्रैलोक्यंपूरयामासविस्तरेणोच्छ्रयेण च ॥३६
भासुराङ्गा तु सम्वृत्ता कृष्णसर्पैककुण्डला।
चित्रदण्डोद्यतकरा व्याघ्रचर्मोपसेविता ॥३७
व्यवर्धतमहारौद्राजगत्संहारकारिणी।
सृक्किणीलेलिहानाचक्रूत्कारकारिणी ॥३८
व्यात्तास्या घुर्घुरारावा जगत्सङ्क्षोभकारिणी।
खेलद्भूतानुगा क्रूरा निःश्वासोच्छ्वासकारिणी ॥३९
जाताट्टहासादुर्नामावह्निवुण्डसमेक्षणा।
प्रोद्यत्किलकिलारावाददाहसकलंजगत् ॥४०
दह्यमानाः सुरास्तत्र पतन्ति धरणीतले।
पतन्ति यक्षगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥४१

पतन्ति भूतसङ्घाश्च हाहाहेहेविराविणः ।
सुम्यापातैः सनिर्घातैरुदितार्तस्वरैरपि ॥४२

अग्नि के पुञ्ज के समान आभा वाले भृकुटियों (विद्युतों) से और शोलसों से विभूषित थी। उस देवी ने अपने विस्तार से और उच्छ्रय से सम्पूर्ण नभोमण्डल को पूरित कर दिया था। कृष्ण सर्पों के कुण्डलों को धारण करने वाली वह भासुर अङ्गों वाली हो गई थी। कर में चित्र दण्ड धारण कर उद्यत हुई व्याघ्र के चर्म से समुपसेवित थी। वह देवी महारौद्र स्वरूप वाली समस्त जगत के संहार करने वाली बन गई थी। उस समय में वह देवी क्षोभ से सृक्विकाओं (मुख के दोनों किनारों को) चाटती हुई और बहुत क्रूरता से फुत्कार करने वाली थी। देवी ने अपने मुख को फैला लिया था—घुघुर शब्द करने वाली—सम्पूर्ण जगत् के संक्षोभ को करने वाली थी और उसके अनुग भूत उसके पीछे खेल कर रहे थे—बहुत ही क्रूर स्वभाव वाली तथा निःश्वासों और उच्छ्वासों को करने वाली थी। वह अट्टहास करने वाली—बहुत बुरी नासिका से युक्त और अग्नि के कुण्ड के तुल्य जाज्वल्यमान नेत्रों वाली थी। किल-किला शब्द करती हुई वह बड़ी ही अधिक ध्वनि के साथ सम्पूर्ण जगत को दग्ध कर रही थी। समस्त सुरगण दह्यमान होकर धरणी तल पर गिर गये थे। यक्ष-गन्धर्व-किन्नर और महोरग सभी दग्ध होते हुए भूमि तल पर गिर रहे थे। हा हा-हे हे—ध्वनि करते हुए भूतों के संघ भी पतित हो रहे थे जो कि सुम्यापात—निर्घात-रुदित और आर्त स्वरों से युक्त थे ॥३६-४२॥

व्याप्तमासीत्तदा विश्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
सम्पतद्भिः पतद्भिश्च ज्वलद्भूतगणैर्मही ॥४३
जातैश्चटचटाशब्दैः पतद्भिर्गिरिसानुभिः ।
तत्र रौद्रोत्सवे जाताह्लादानन्दविवर्धिनी ॥४४
विहिंसमानाम्भूतानिचर्वमाणाऽपरानपि ।
तत्तद्गन्धमुपादाय शिवारावविराविणी ॥४५

गलच्छोणितधाराभिमुखादिग्धकलेवरा ।
चण्डशीलाऽभवच्चण्डीजगत्संहारकर्मणि ॥४६
येऽपि प्राप्ता महर्लोकं भृग्वाद्याश्च महर्षयः ।
तेऽपि नश्यन्ति शतशो ब्रह्मक्षत्रविशादयः ॥४७

देवासुराभयग्रस्ताः सयक्षोरगराक्षसाः ।
विशन्तिकेऽपिपातालं लीयन्ते चगुहादिषु ॥४८
सा च देवी दिशः सर्वा व्याप्य मृत्युरिव स्थिता ।
युगक्षयकरे काले देवेन विनियोजिता ॥४९

उस समय मे सम्पूर्ण विश्व और चर अचर से युक्त समस्त त्रैलोक्य व्याप्त था । यह महीतल जलते हुए गिरते हुए और सम्पतन शील भूतगणों से व्याप्त हो गया था । 'चर चर' ध्वनि के साथ गिरकर टूटने वाली पर्वतों की शिखरों से पूर्ण यह मही उस रौद्रोत्सव मे भगवान् रुद्र के आनन्द को बढ़ाने वाली हो गई थी । समस्त भूतों की विशेष रूप से हिंसा करती हुई और चर जीवों का चर्वण करने वाली उस मन्त्र को प्राप्त कर रावा विराविणी अर्थात् भयंकर ध्वनि करने वाली—फैले हुए रुधिर की धाराओं से युक्त मुख वाली तथा समस्त दिग्ध कलेवर वाली वह शिवा चण्डत्व' भाव से युक्त इस जगत के संहार कर्म मे साक्षात् चण्डी हो गई थी । जो भृगु आदि महर्षि गण महालोक को प्राप्त हो गए थे वे भी सैंकड़ों ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आदि सब नष्ट-भ्रष्ट हो रहे थे । महान् भय से डरे हुए देव और असुर यक्ष—उरग और राक्षसों के सहित कुछ तो पाताल लोक मे प्रवेश करने लगते हैं और कुछ गुफा आदि स्थलों मे जाकर छिप रहे थे । वह देवी समस्त दिशाओं मे व्याप्त होकर साक्षात् मृत्यु की ही भाँति स्थित हो गई थी । उस युग के क्षय करने वाले काल मे वह देवी महादेवजी के द्वारा विशेष रूप से नियोजित की गई थी ॥४३-४९॥

एकापि नवधा जाता दशधा दशधा तथा ।
चतु.षष्टिस्वरूपा च शतरूपाट्टहासिनी ॥५०

जज्ञे सहस्ररूपा च लक्षकोटितनुः शिवा ।
नानारूपायुधाकारा नानावादनकारिणी ॥५१
एवं रूपाऽभवद्देवी शिवस्यानुज्ञया नृप ।
दिक्षु सर्वासु गगने विकटायुधशोभिनः ॥५२
रुन्धन्तो गच्छमानास्तान्गणा माहेश्वराः स्थिताः ।
विचरन्ति तया सार्द्धं शूलपट्टिशपाणयः ॥५३
ततो मातृगणाः केचिद्विनायकगणैः सह ।
व्यवर्धन्त महारौद्रा जगत्संहारकारिणः ॥५४
ततस्तस्या व्यवर्धन्त दंष्ट्राः कुन्देन्दुसन्निभाः ।
योजनानां सहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च ॥५५
दंष्ट्रावलिं करकरां क्रूरास्तीक्ष्णाग्रकर्कशाः ।
विमर्दयन्तो छिन्दन्त्येव सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥५६

वह एक ही देवी नौ प्रकार की बन गई थी और वह एक-एक दस-दस दस रूपों में हो गई थी। चौंसठ स्वरूपों वाली वह सप्तरूपा और अट्टहास करने वाली थी। फिर वह सहस्र स्वरूपों वाली हो गई और वह शिवा लक्ष कोटि शरीरों के धारण करने वाली बन गई थी। उस महादेवी के अनेक रूपों वाले आयुध थे जिनके विविध आकार थे तथा वह नाना भाँति के वादनों के करने वाली हो रही थी। हे नृप! उस समय में भगवान् शिव की आज्ञा से इस प्रकार के विभिन्न रूपों वाली बन गई थी। आकाश में सभी दिशाओं में विकट आयुधों के धारण करने वाले महेश्वर के गण गच्छमान उन सबको रोकते हुए स्थित थे। शूल पट्टिश हथियारों को ग्रहण करके उसी देवी के साथ वे सब गण विचरण कर रहे थे। इसके अनन्तर कुछ मातृगण विनायक के गणों के सहित महान् रौद्र रूप वाले इस जगत् के संहार करने वाले बढ़ गये थे। इसके पश्चात् उस देवी की दाढ़ें बढ़ गई थीं जो कुन्द के पुष्प और चन्द्र के तुल्य श्वेत थीं। वे इतनी अधिक बढ़कर हो गई थीं जो सहस्रों— अयुतों और अर्बुदों योजन लम्बी थीं। उस देवी की दाढ़ों की पंक्ति और

नाखून महान् क्रूर—रोदण तथा कर्कश थे जो आकाश—दिशाएं तथा सात द्वीपों वाली पृथ्वी पर मानो लेखन-सा कर रहे हों ॥५०-५६॥

तस्याद् ष्ट्राभिसम्पातैश्चूर्णितावनपर्वताः ।
शिलासञ्चयसङ्घाताविशीर्यन्तेसहस्रशः ॥५७
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो गन्धमादनः ।
माल्यवाश्चंवनीलश्च श्वेतश्चैव महागिरि ॥५८
मेरुमध्यमिलापीठं सप्तद्वीपं च सार्णवम् ।
लोकालोकेन सहितं प्राकम्पत नृपोत्तम ! ॥५९
द ष्ट्राशनिविस्पृष्टाश्च विशीर्यन्ते महाद्रुमाः ।
उत्पातैश्च दिशो व्याप्ताघोररूपं समन्ततः ॥६०
तारा ग्रहगणाः सर्वे ये च वैमानिका गणाः ।
शिवासहस्रैराकीर्णा महामातृगणैस्तथा ॥६१
सा चचार जगत्कृत्स्नं युगान्ते समुपस्थिते ।
भ्रमद्भिश्च प्लुवद्भिश्च क्रोशद्भिश्च समन्ततः ॥६२
प्रमथद्गिर्ज्वलद्भिश्च रौद्रैर्व्याप्तादिशोदश ।
विस्तीर्णं शैलसंघातं विघूर्णितगिरिद्रुमम् ॥६३
प्रभिन्नगोपुरद्वारं केशशुष्कास्थिसंकुलम् ।
प्रदग्धग्रामनगरं भस्मपुञ्जाभिसम्वृतम् ॥६४
चिताधूमाकुलं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
हाहाकाराकुलं सर्वं महद्ध्वननिस्वनम् ॥६५
जगदेतदभूत्सर्वं महारण्यं निराश्रयम् ॥६६

उस चण्डी देवी की दाढ़ों के अभि सम्पातों से समस्त वन—पर्वत एक दम चूर्णित हो गये थे । सहस्रों शिलाओं के संघात जो कि सचित स्वरूप में एकत्रित थे विशीर्ण हो गये थे । हे नृपोत्तम ! यह ऐसा भीषण संहार का काल होता है कि उसमें हिमवान्—हेमकूट—निषध—गन्ध मादन—माल्यवान—नीलगिरि—श्वेत गिरि—महागिरि—मेरु पर्वत मध्य-रत्नापीठ और अर्णवों सहित सात द्वीप तथा लोकालोक के सहित सबके सब प्रकम्पित हो गये थे । दाढ़ रूपी अशनि (वज्र) के स्पर्श होने

हो महान् द्रुम भी विशीर्ण हो जाते थे। चारों ओर में घोर रूपों वाले उत्पातों से सभी दिशाऐं व्याप्त हो गई थीं। तारा मण्डल-ग्रहगण और जो समस्त वैमानिक गण थे अर्थात् विमानों पर स्थित रहने वाले थे वे सब सहस्रों शिवाओं और मातृगणों से समाकीर्ण हो गये थे। उस युग के अन्त काल के समुपस्थित होने पर सम्पूर्ण जगत में वह विचरण करती थी। दश दिशायें भ्रमणशील—बोलने वाले—चीखने वाले—भ्रमण करने वाले और बजते हुए रौद्रों से व्याप्त हो गई थी। शैलों का सघात जहाँ पर विस्तीर्ण हो रहा था–गिरि—और द्रुम जिसमे विचूर्णित हो गए थे—गो पुर द्वार जिसमे विदीर्ण हो गये थे—जो केश एवं शुष्क अस्थियों से संकुल हो गया था—जिसमे ग्राम और नगर जल भुनकर नष्ट हो गये थे—जो राख के ढेरों से अभिसवृत था, जहाँ पर चिताओं की धूमों भरी हुई थी ऐसा सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य हो गया था। सर्वत्र हा हाकार से आकुलता थी और सभी जगह 'अहह' इस ध्वनि की परिपूर्णता थी। इस प्रकार से सम्पूर्ण जगत निराश्रय अरण्य के ही तुल्य बन गया था ॥९७-९९॥

८८—सृष्टिसंहरणसरम्भवर्णन

ततो मातृसहस्रैश्च रौद्रैश्च परिवारिता।
कालरात्रिर्जगत्सर्वं हरते दीप्तलोचना ॥१
ततस्ता मातरो घोरा ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः।
वाज्रिन्द्रानलकौबेरा यमतोयेशशक्तयः ॥२
स्कन्दकोडनृसिंहाना विचरन्त्यो भयानकाः।
चक्रशूलगदाखड्गवज्रशक्त्यष्टिपट्टिशैः ॥३
खट्वाङ्गैरुल्मुकैर्दीप्तैर्व्यचरन्मातरःक्षये।
उमासंनोदिताःसर्वाप्रधावन्त्योदिशोदश ॥४
तासांचरणविक्षेपैर्हुङ्कारोद्गारनिस्वनैः।
त्रैलोक्यमेतत्सकल विप्रराशं तपन्ददः ॥५

हाहारवाक्रन्दितनिस्वनैश्च प्रभिन्नरथ्यागृहगोपुरैश्च ।
बभूव घोरा धरणी समन्तात्कपालकेशाकुलकर्बुराङ्गी ॥६
यदेतच्छतसाहस्रं जम्बूद्वीपं निगद्यते ।
सर्वमेव तदुच्छन्नं समाधृष्य नृपोत्तम ॥७

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् सहस्रों मातृगणों से तथा रौद्रों से परिवारित उस काल रात्रि ने जिसके बहुत ही प्रसेवन थे सम्पूर्ण जगत का संहरण किया। इसके पश्चात् उन परम घोर रूपो वाली मातृकाओं ने जो ब्रह्मा—विष्णु और शिव के स्वरूप वाली थीं तथा वायु—इन्द्र-अनल और कुबेर के रूप वाली थी तथा यम और वरुण की शक्ति से सम्पन्न थी एवं स्कन्द क्रोड और नृसिंहो के रूप में स्थित थी बहुत ही भयानक विचरण करती हुई चक्र—शूल-गदा-खड्ग—वज्र—शक्ति—ऋष्टि और पट्टिशों से तथा खट्वाङ्ग और दीप्त उल्मुकों युक्त होकर मातृगण क्षय करने मे विचरण कर रहे थे। ये सब माताऐं उमा देवी के द्वारा भली भाँति प्रेरणा प्राप्त की हुई थी और दशों दिशाओं के प्रधावन (दौड़) करने वाली थी। उनके चरणों के विक्षेपों से तथा हुङ्कारो के उद्गार की ध्वनियो से यह सम्पूर्ण भूसौधय सभी ओर से विप्रदग्ध हो गया था। हा हाकार और आक्रन्दन के परम घोर शब्दो मे—प्रकृष्ट रूप से छिन्न-भिन्न रथ्या, गृह और गोपुरो से यह सम्पूर्ण पृथ्वी सभी ओर में कपाल, केशो से समाकुल होती हुई चित्रित ही अङ्गों वाली हो गई थी। हे नृपोत्तम ! जो यह जम्बू द्वीप एक सौ सहस्र परिमाण वाला कहा जाता है वह सब समाधर्षित होकर उत्पन्न हो गया था ॥१-७॥

जम्बु शाकं कुशं क्रौञ्चं गोमेद शाल्मलिस्तथा ।
पुष्करद्वीपसहिता ये च पर्वतवासिनः ॥८
ते ग्रस्ता मृत्युना सर्वं भूतैर्मातृगणैस्तथा ।
महासुरकपालैश्च मांसमेदोवसोत्कटैः ॥९
महानादपरं घोरं वारुणीगन्धमोहितैः ।
ज्वाला सहस्रसम्वीताविद्युज्ज्वलितकुण्डला ॥१०

रुधिरोद्गाररक्ताक्षीमहामायासुभीषणा ।
पिबन्ती रुधिरं तत्रमहामांसवसाप्रिया ॥११
कपालहस्ता विकटा भक्षयन्ती सुरासुरान् ।
नृत्यन्ती च हसन्ती च विपरीता महारवा ॥१२
त्रैलोक्यसन्त्रासकरी विद्युत्स्फोटहासिनी ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तां ग्रासयित्वा च मेदिनीम् ॥१३
ततः स्वस्थानमगमद्यत्र देवो महेश्वरः ।
नर्मदातीरमाश्रित्यास्तन्मातृगणैः सह ॥१४

जम्बू—शाक—कुश—क्रौञ्च—गोमेद—शाल्मलि और पुष्कर द्वीपों के सहित जो भी पर्वत वासी थे वे सभी मृत्यु के द्वारा ग्रस्त हो गये थे। तथा भूतगण—मातृगण—जो कि महासुरों के कपाल—समूह—मांस, मेद, वसा से उत्कट, महान् पान में तत्पर, परम घोर और वारुणी की गन्ध से मोहित थे, इनके सहित सहस्रों ज्वालाओं से समन्वित विद्युत् के समान ज्वलित कुण्डलों वाली—रुधिर के उद्गारों से लाल नेत्रों वाली अत्यन्त भीषण स्वरूप वाली महा माया महा मांस और वसा से प्यार करने वाली रुधिर का पान कर रही थी। उस महामाया के हाथों में कपाल था और वह अत्यन्त विकट स्वरूप वाली थी। समस्त सुरों और असुरों का भक्षण करती हुई—नृत्य करने वाली, अट्टहास करती हुई, परम विपरीत और महान् घोष करने वाली थी। सम्पूर्ण त्रैलोक्य को त्रास देती हुई—विद्युत् के स्फोट के समान भीषण हास्य करने वाली उसने सातों द्वीप और समुद्र के अन्त तक सम्पूर्ण मेदिनी का भक्षण कर लिया था। इसके उपरान्त वह अपने स्थान पर आ गई थी जहाँ पर साक्षात् देव महेश्वर विराजमान थे। नर्मदा के तट का समाश्रय ग्रहण करके वह समस्त मातृगणों के सहित निवास करने लगी थी ॥८-१४॥

अमराणां कटे तुङ्गे नृत्यन्ती हसितानना ।
अमरा देवताः प्रोक्ता शरीरं कटमुच्यते ॥१५
तं कटं चावृतो यस्मात्पर्वतोऽयं नृपोत्तम ।
छिन्नभिन्नास्थिनिकरं वसामेदोघविप्लुतं ॥१६

अमरकंट इत्येवं तेन प्रोक्तो मनीषिभिः ।
महापवित्रो लोके पुराम्भुना सविनिर्मितः ॥१७
नित्य सन्निहितस्तत्र शङ्करोह्य मयासह ।
ततोऽहं नियतस्तत्र तस्य पादाग्रसस्थितः ॥१८
प्रह्वः प्रणतभावेन स्तौमि तं नीललोहितम् ।
ततस्तालकसंपातं गं णं मातृगणैः सह ॥१९
सम्प्रनृत्यति संहृष्टो मृत्युना सह शङ्करः ।
खट्वाङ्गं रुल्मुकं चं व पट्टिशं परिघं स्तथा ॥२०
मांसमेदोवसाहस्ताहृष्टानृत्यन्तिसंघशः ।
वामनाजटिलामुण्डालम्बग्रीवोष्ठमूर्द्धजा ॥२१
महाशिश्नोदरभुजा नृत्यन्ति च हसन्ति च ।
विकृतं राननं घोरं मुं जोल्वणमुखादिभिः ॥ २

अमरों के तुङ्ग (उन्नत) कट मे नृत्य करती हुई और हसित मुख वाली देवी थी। अमर देवों को कहा गया है और शरीर का कहा जाता है। हे नृपोत्तम ! यह पर्वत उन्हीं गणों से समावृत है जो कि वसा-मेद और रक्त से विप्लुत छिन्न-भिन्न अस्थियों के समूहों वाले थे। इसी कारण से महर्षियों ने इसका नाम अमरकट, यह कहा है। समस्त लोक के कल्याण चाहने वाले शम्भु देव ने यह महान् पवित्र निर्मित किया है। वहाँ पर भगवान् शम्भु जगज्जननी उमा देवी के साथ नित्य ही सन्निहित रहा करते है। तभी से मैं भी वहाँ पर ही उनके चरणों के अग्रभाग मे संस्थित रहा करता हूँ। मैं परम विनीत होकर अत्यन्त विनम्र भाव से उन भगवान नील लोहित प्रभु का स्तवन किया करता हूँ। फिर ताल के श्रृंगों के सम्पात के समान सब मातृगणों के साथ भगवान् शङ्कर मृत्यु के साथ परम प्रसन्न होते हुए भली भाँति नृत्य किया करते हैं। खट्वाङ्ग, उल्मुक, पट्टिश, परिघों से युक्त, माँस, मेदा और वसा हाथों मे लिए हुए, परम हर्षित संघ मे मातृगण नृत्य किया करते हैं। अन्य गण भी जिनमे वामन (बौना), जटाधारी, मुण्डित, लम्बी गरदन वाले, लम्बे होठ और केशों वाले थे वे भी महान् शिश्न, उदर और भुजाओं

वाले नृत्य करते हैं तथा हँसते हैं जिनके बहुत ही विकृत घोर मुख थे और उल्वण भुजाऐं तथा मुखों से वे युक्त थे। विपरीत काल के प्राप्त होने पर अमर को कण्टक उन्होंने कर दिया था ॥१५-२२॥

अमर कण्टकं चक्रुःप्राप्तेकालविपर्यये।
तेषां मध्ये महाघोरं जगत्सन्त्रासकारणम् ॥२३
मृत्युं पश्यामि नृत्यन्तं तडित्पिङ्गलमूर्द्धजम्।
तस्य पार्श्वे स्थितां देवीं विमलाम्बरभूषिताम् ॥२४
कुण्डलोद्घृष्टगण्डा ता नागयज्ञोपवीतिनीम्।
विचित्रैरुपहारैश्च पूजयन्ती महेश्वरम् ॥२५
अपश्य नर्मदां तत्र मातरं विश्ववन्दिताम्।
नानातरङ्गां आवर्तां सुवेलार्णवसन्निभाम् ॥२६
महासरः सरित्पातं रहस्या हस्यरूपिणीम्।
वन्द्यमानांसुरैःसिद्धैं मुंनिसङ्घैश्चभारत ॥२७
एतस्मिन्नन्तरे घोरा सप्तमप्तकसञ्ज्ञिताम्।
महावीच्योघफेनाढ्या कुर्वन्ती सजलं जगत् ॥२८

इन्हीं सबके मध्य महान घोर और जगत के सन्त्रास का कारण रूप, विद्युत के तुल्य पिंगल वर्ण वाले केशों से युक्त नृत्य करते हुए मृत्यु को देखता हूँ। उसी के पार्श्व भाग में स्थित परम स्वच्छ वस्त्रों से विभूषित, कुण्डलों से उद्घृष्ट गण्ड स्थलों वाली–नागों के यज्ञोपवीत धारण करती हुई—विविध उपहारों के द्वारा महेश्वर भगवान को पूजती हुई विश्व के द्वारा वन्दित नर्मदा माता को भी वहाँ पर मैंने देखा था जिसमें नाना भाँति की तरंगें समुत्थित हो रही थीं, आवर्तों से युक्त थी तथा सुवेला में अर्णव (समुद्र) के तुल्य थी। महान् सर और सरिताओं के पातों से महस्या, हस्य रूप वाली सुरगणों से वन्द्यमान तथा सिद्ध और मुनियों के संघों द्वारा हे भारत! वन्दनीय थी। इसी अन्तर में सप्तक सप्तक संज्ञा (नाम) वाला, परम घोर महान् वीचो (लहर) के ओघ (समुदाय) और फेनों से समन्वित नर्मदा देवी को देखा था। जो सम्पूर्ण जगत को जल से युक्त कर रही थी ॥२३-२८॥

दृष्टवान्नर्मदां देवीं मृगकृष्णाम्बरां पुनः ।
सधूमाशनिनिर्ह्रादैर्वितन्वी सप्तदा तदा ॥२९
इति संहारमतुलं दृष्टवान्राजसत्तम ।
नष्टचन्द्रार्ककिरणमभूदेतच्चराचरम् ॥३०
महोत्पातसमुद्भूतं नष्टनक्षत्रमण्डलम् ।
अलातचक्रवत्तूर्णमशेषं भ्रामयंस्ततः ॥३१
विमानकोटिसंकीर्णं सकिन्नरमहोरगः ।
महावातः सनिर्घातोयेनाकम्पच्चराचरम् ॥३२
रुद्रवक्त्रात्समुद्भूतः संवर्तोनामविश्रुतः ।
वायुः सशोषयामासविततान्सप्तसागरान् ॥३३
उद्धूलिताङ्गः कपिलाक्षमूर्द्धजो जटाकलापैरवबद्धमूर्द्धजः ।
महारवोदीप्तविशालशूलधृग्गसपाणियुग्माश्रदिनेर्दिनेहरः ॥३४
शूली धनुष्मान्कवची किरीटी श्मशानभस्मोक्षितसर्वगात्रः ।
कपालमालाकुलकण्ठनालो महाहिसूत्रैरवबद्धमौलिः ॥३५

वह देवी नर्मदा मृग का कृष्ण वर्ण वाला अम्बर धारण कर रही थी। उस समय में धूम और अशनि (वज्र) के निर्ह्लादों के सहित सात भेदों से वहन कर रही थी। हे राजसत्तम! इस तरह से मैंने अतुलित संहार देखा था जिसमें चन्द्र और सूर्य की किरणें भी नष्ट हो गईं थी ऐसा यह चराचर जगत् हो गया था। महान् उत्पात से समुत्पन्न विनाश से सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल विनष्ट हो गया था। इसके उपरान्त इस सम्पूर्ण विश्व को अलात (जलती हुई लकड़ी का अङ्गारा) के चक्र के समान शीघ्रता से भ्रामित करते हुए किन्नर और महान् उरगों के सहित करोड़ों विमानों से सङ्कीर्ण और निर्घातों से युक्त महावात चलने लगा था जिसने इस चराचर जगत् को प्रकम्पित कर दिया था। यह रुद्र देव के मुख से समुत्पन्न हुआ था और सम्वर्त इस का नाम प्रसिद्ध था। इस वायु ने फैले हुए विशाल सातों सागरों को अच्छी तरह से शोषित कर दिया था। जिसके अङ्ग भस्म से उद्धूलित हो रहे हैं—कपिलवर्ण के नेत्र और जिन के केश हैं, जिन्होंने जटाओं के कलापों से केशों को बाँध रक्खा है—

महान् घोष से युक्त और परम दीप्त एवं विशाल त्रिशूल को धारण करने वाले वह भगवान् हर दिन प्रतिदिन आपकी रक्षा करें । भगवान् शूल के धारण करने वाले हैं—धनुष भी धारण किये हुए हैं—कवच धारी मस्तक पर किरीट पहिनने वाले हैं । श्मशान की भस्म से जिनके समस्त अङ्ग चर्चित हैं । जिन्होंने कपालों (नर मुण्डों) की माला से अपने कण्ठ नाल को समाकीर्ण कर रखा है और वे भगवान् शिव महान् सर्पों के गुच्छ से अपने मस्तक को बद्ध करने वाले हैं ॥२६-३५॥

स गोनसौघैः परिवेष्टिताङ्गो विषाग्निचन्द्रामरसिन्धुमौलिः ।
पिनाकखट्वाङ्गकरालपाणिः स कृत्तिवासा डमरुप्रणादः ॥३६
स सप्तलोकान्तरनिःसृतात्मा महाभुजावेष्टितसर्वगात्रः ।
नेत्रेण सूर्योदयसन्निभेन प्रवालकाकूरनिभोदरेण ॥३७
सन्ध्याभ्ररक्तोत्पलपद्मरागसिन्दूरविद्युत्कमलारुणेन ।
वह्न्येन लिङ्गेन च लोचनेन विलोकमानः प्रयुगान्तकाले ॥३८
हिरण्मयेनैव समुत्सृजन्स दण्डेन यद्वद्भगवान्समेरुः ।
पादाग्रविक्षेपविशीर्णदीप्तः कुर्वञ्जगत्सोऽपि जगाम तत्र ॥३९
संहर्तुकामस्त्रिदिवं त्वशेषं प्रमुञ्चमानो विकटाट्टहासम् ।
जहार सर्वं त्रिदिवं महात्मा सक्षोभयन्वै जगदीश एकः ॥४०
तं देवमीशानमजं वरेण्यं दृष्ट्वा जगत्संहरणं महेशम् ।
सा कालरात्रिः सहमातृभिश्चगणाश्च सर्वेऽधिवमर्चयन्ति ॥४१
नन्दी च भृङ्गी च गणादयश्च तं सर्वभूतं प्रणमन्ति देवम् ।
जगद्धरं सर्वजनस्य कारणं हरं स्मरारातिमहर्निशं ते ॥४२

सृष्टि के संहरण काल में भगवान् शम्भु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है कि वे गौ सर्पों के समूह से परिवेष्टित अङ्गों वाले हैं । मस्तक में जिनके विष की अग्नि—चन्द्रदेव और अमर सिन्धु (गङ्गा) विराजमान हैं । हाथों में भगवान् शम्भु पिनाक धनुष और खट्वाङ्ग धारण करने वाले हैं । गज चर्म के वसन धारण करने वाले तथा डमरु के प्रणाद युक्त हैं । वह प्रभु सात लोकों के अन्तर निःसृत आत्मा वाले हैं तथा वह भुजाओं से वेष्टित गात्र वाले हैं । प्रवालाङ्कुर सदृश मध्य भाग वाले सूर्योदय के

तुल्य नेत्र से उपलक्षित हैं। युगान्त काल में वह प्रभु सन्ध्या कालीन मेघ—रक्त कमल—पद्मराग—सिन्दूर और विद्युत के प्रकर समान भस्वरा तथा लिंग से और लोचन के द्वारा क्रीड़ा करने वाले थे। भगवान् को ही नीति मेरु हिरण्मय दण्ड से ही समुल्लूषन करता हुआ वह भी पाशों के समस्त शैलों को विशीर्ण करता हुआ वहीं पर थमा गया था। महान् आत्मा वाले वह एक ही जगदीश सम्पूर्ण त्रिदिव के संहार करने की कामना वाले अत्यन्त विकार युक्त अट्टहास को हंसते हुए समस्त त्रिदिव को युक्त करते हुए उन्होंने सबका हरण किया था। उन ईशान—अज—वरेण्य देव का जो महेश इस जगत् के संहार करने वाले हैं, दर्शन करके वह कालरात्रि मातृगणों के साथ तथा समस्त अन्य गण सभी भगवान् शिव का समर्थन किया करते हैं। नन्दी—भृंगी और वे सब अन्य गण अहर्निश उन सर्व भूत देव को प्रणाम किया करते हैं जो इस जगत् में परम श्रेष्ठ हैं—सभी धनों के कारण हैं—कामदेव के मथन करने वाले हर हैं ॥३६-४२॥

८६—ब्रह्मकृतशिवस्तुतिवर्णन

समातृभिर्भूतगणैश्च घोरैर्वृतः समन्तात्स ननर्त शूली ।
गजेन्द्रचर्मावरणे वसानः संहर्तु कामश्च जगत्समस्तम् ॥१
महेश्वरःसर्वसुरेश्वराणा मन्यैरनेकैरवबद्धमाली ।
मेदोवसारक्तविचर्चिताङ्गस्त्रलोक्यदाहे प्रणनर्त शम्भुः ॥२
न कालरात्र्या सहितोमहात्माकाले त्रिलोकी सकलां जहार ।
सम्वर्तकाग्नि. समहानुभाव शम्भुर्महात्मा जगतो वरिष्ठः ॥३
स विस्फुलिंगोल्करधूमामिश्रं महोल्कवज्राशनिवज्रतुल्यम् ।
ततोऽट्टहासं प्रमुमोच घोरं विवृत्य वक्त्रं वडवामुखाभम् ॥४
सहस्रवज्राशनिसन्निभेन तेनाऽट्टहासेन हरोद्गतेन ।
आपूरितास्तत्र दिशोदशैवसंक्षोभिताः सर्वमहार्णवाश्च ॥५
स ब्रह्मलोकं प्रजगाम शब्दो ब्रह्माण्डभाण्डं प्रचचाल सर्वम् ।
किमेतदित्याकुलचेतनास्ते वित्रस्तदृष्टा ऋषयो बभूवुः ॥६

प्रणम्य सर्वे सहसैव भीता ब्रह्माणमूचुः परमेश्वरेशम् ।
भीताश्च सर्वे ऋषयस्ततस्ते सुरासुराश्चैव महोरगैश्च ॥७

महामहर्षिवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—वह भगवान् शूलधारी परम घोर भूतगणों तथा मातृगणों से चारों ओर समावृत होकर उस समय में ताण्डव नृत्य बहुत ही प्रसन्न होकर किया करते हैं, उस नृत्य के समय में वे गजेन्द्र के चर्म का आवरण किये हुए इस सम्पूर्ण सृष्टि जगत् का संहार करने की इच्छा रखते हुए अपने नियत कर्तव्य के परिपालन समय को पाकर आनन्द मग्न हो नृत्य किया करते हैं ॥१॥ सब सुरों के भी ईश्वरों के अनेक मन्त्रों से अब बड़भागी भगवान् महेश्वर शम्भु इस त्रिलोकी के नाश करने में मेदा—मज्जा—रक्त से चर्चित अंगों वाले नृत्य किया करते थे ॥२॥ उन प्रभु महात्मा ने उस कालरात्रि की सहायता से युक्त होकर उस समय में इस समस्त त्रिलोकी का संहार कर दिया था । सर्व नामधारी—इस जगत् के सर्व श्रेष्ठ महानुभाव—महान् आत्मा वाले शम्भु ने विस्फुलिंगों के समुदाय और धूम से मिश्रित—महोल्का वज्र ध्वनि और वात के तुल्य अत्यन्त घोर सर्व प्रथम अपने बड़वा के मुख की आभा वाले समान आभा वाले मुख को फैलाकर अट्टहास किया था । वह उनका समुत्पन्न परम भीषण अट्टहास सहस्रों वज्रपात और अशनि सम्पात के सदृश था । उससे दशों दिशाएँ भर गई थीं और समस्त सागर संक्षुब्ध हो गये थे । उनका एक दम अट्टहास से हलचल मचाई थी । वह उनके अट्टहास का शब्द ब्रह्मलोक तो पहुँच गया था और उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भाण्ड को विचलित कर दिया था । यह क्या परम घोर ध्वनि है जिसका इतना प्रबल प्रभाव छा गया है—इस स्वयं सम्मिलित विचार में बुद्धि और चेतना को खो बैठने वाले समस्त ऋषिगण भयभीत हो गये थे । भय से अतिशय डरे हुए सबने सहसा ही परमेश्वरेश श्रीब्रह्माजी से प्रणाम करके कहा क्योंकि उस समय में सुर असुर और महोरगों के सहित सभी ऋषिगण भय से परम विपन्न हो रहे थे ॥१-७॥

विद्युत्प्रभाभासुर भीषणाग: क एष चिक्रीडसि भूतलस्थ ।
कालानल ग्रासमिव दधानो यस्याट्टहासेन जगद्विमूढम् ॥८

विश्वस्तरूपं प्रभो क्षणेन संहर्तुमिच्छेत्किमय त्रिलोकीम् ।
सार्धंत्वया सप्तभिरर्णवं श्च जनस्तपः सत्यमभिप्रयाति ।।९
संहर्तुकामो हि क एष देव एतत्समस्तं कथयाऽप्रमेय ।
न दृष्टमेतद्विषमं कदापि जानासि तत्वं परमो मतो नः ।।१०
निशम्य तद्वाक्यमथावभाषे ।
ब्रह्मा समाश्वास्य सुरादिसंघान् ।।११
स एष कालाग्निरिवं त्वशेषं
संहर्तुकामोजगदक्षयात्मा ।
पूर्णे च शते परिवत्सराणां
भविष्यतीशानविभुर्न चिरम् ।।१२
सम्वत्सरोऽय परिवत्सरश्च
इद्वत्सरो वत्सरएष देवः ।
दृष्टोऽप्यदृष्टः प्रकृतः प्रकाशी
स्थूलश्च सूक्ष्मः परमाणुरेषः ।।१३
नातः परं किञ्चिदिहाऽस्ति लोके
परापरोऽय प्रभुरात्मवादी ।
तुष्येत मे कालसमानरूप
इत्येवमुक्त्वा भगवान्सुरेशः ।।१४
सनत्कुमारप्रमुखैः समेतः ।
सन्तोषयामास ततो यतात्मा ।।१५

हे ब्रह्मन् ! विद्युत की प्रभा के सदृश भासुर एवं महान् भीषण अंग वाला भूतल में समवस्थित यह कौन है जो ऐसी क्रीडा कर रहा है ? यह तो कालानल शरीर को धारण करने वाला है जिसके केवल इस महान् अट्टहास से ही यह सम्पूर्ण जगत विमूढ हो गया है ।।८।। यह अपन परम विश्वस्त रूप से युक्त शोभित हो रहा है । क्या यह इस समय में समस्त त्रिलोकी के संहार करने की इच्छा कर रहा है । आपके ही साथ और सातों अर्णवों के सहित जनलोक और तपलोक सत्यलोक को जा रहे हैं । यह इस प्रकार से इस त्रैलोक्य के संहार करने की इच्छा वाला है

देव ! कौन है ! हे अप्रमेय ! आप कृपा करके यह सम्पूर्ण वृत्तान्त हमको बतलाइये हम लोगों ने ऐसी विषमता अभी तक पहिले कभी भी नहीं देखी थी—आप तो इसका पूर्णतत्व जानते ही हैं । हमतो आपको ही सर्वोपरि समझते हैं । देवर्षियों के इस पृच्छावाक्य को सुनकर ब्रह्माजी ने सुर आदि के पूरे समुदाय को समाश्वासन देते हुए कहा था—श्रीब्रह्माजी ने कहा—यह वह ही काल है जिसमें प्रलय नाम्या वाले प्रभु इस सम्पूर्ण जगत् को और त्रिदिव को संहार करने की इच्छा वाले हुआ करते हैं । परिवत्सरों के अर्थात् दिव्य वर्षों के पूरे सौ हो जाने पर यह ईशान विभु इसी प्रकार के स्वरूप वाले हो जाएंगे—इसमें कोई भी विचित्र बात नहीं है । ऐसा तो हुआ ही करता है । यह सम्वत्सर है—परिवत्सर है—उद्वत्सर है और यह देव वत्सर है । यह इस भी महत् है—प्रभुत—प्रकाशी—स्थूल—सूक्ष्म और यह परम है । यहाँ पर इससे पर कुछ भी नहीं है । लोक में यह परात्पर आत्मवादी प्रभु हैं । काल के समान रूप मुझे सन्तुष्ट करता है । इतना इस प्रकार से कहकर भगवान् सुरों के ईश सनत्कुमार जिनमें प्रमुख हैं उनके समेत सब यह यशस्वी सम्भावित हुआ था ।।८-१५।।

नमोऽस्तु सर्वाय सुधान्तमूर्तये
ह्यघोररूपाय नमोनमस्ते ।
सर्वात्मने सत्व नमोनमस्ते
महात्मने भूतपते नमस्ते ।।१६

ओंकारहुंकारपरिष्कृताय
स्वधावषट्कार नमोनमस्ते ।
गुणत्रयेशाय महेश्वराय ते
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ।।१७

त्वं शंकरस्त्वहं हि महेश्वरोऽसि
प्रधानमग्र्यं त्वमसि प्रविष्टः ।
त्वं विष्णुरीशः प्रपितामहश्च
त्वं सप्तजिह्वस्त्वमनन्तजिह्वः ।।१८

स्रष्टाऽसि सृष्टिश्च विभो त्वमेव
विश्वस्य वेद्य च परं निधानम् ।
आहुर्द्विजा वेदविदो वरेण्यं
परात्परस्त्वं परतः परोऽसि ॥१९

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं प्रवदन्ति यच्च ।
वाचो निवर्तन्तिमनो यतश्च ॥२०

श्रीब्रह्माजी ने कहा—परम शान्ति मूर्त्ति वाले सर्व के लिये नमस्कार है। अघोर स्वरूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है। हे सर्व ! सबकी आत्मा आपके लिये बारम्बार नमस्कार है। हे समस्त भूतों के स्वामिन् महान् आत्मा वाले आपके लिये नमस्कार है। हे स्वाहा–स्वधा और वषट्कार स्वरूप वाले ! आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है। तीनों गुणों के स्वामी–त्रयीमय–त्रिगुणात्मा महेश्वर आपके लिये नमस्कार है। आप शङ्कर हैं अर्थात् कल्याण करने वाले हैं। आप महेश्वर हैं–सर्वोत्तम प्रधान भी आप ही हैं और प्रविष्ट हैं। आप ही विष्णु हैं—ईश हैं और आप ही प्रपितामह हैं। आप सप्तजिह्व और अनन्त जिह्व हैं। हे विभो ! आप ही इस विश्व के जानने के योग्य परम निधान हैं। वेदों के ज्ञाता द्विज आप को वरेण्य कहते हैं। आप पर से भी पर हैं जिसको सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म कहते हैं और जिससे मन और वाणी भी निवृत्त हो जाया करते हैं ॥१६-२०॥

त्वया स्तुतोऽहं विविधैश्च मन्त्रैः
पुष्णामि शान्ति तव पद्मयोने ।
ईक्षस्व मा लोकमिमं ज्वलन्तं
वन्ध्रैरनेकैः प्रसभं हरन्तम् ॥२१

एवमुक्त्वा स देवेशो देव्या सह जगत्पतिः ।
पितामहं समाश्वास्य तत्रैवान्तरधीयत ॥२२

इदं महत्पुण्यतमं वरिष्ठं स्तोत्रं निशम्येह गतिं लभन्ते ।
पापैरनेकैःपरिवेष्टिता ये प्रयान्ति रुद्र विमलैर्विमानैः ॥२३

भयं च तेषां न भवेत्कदाचित्
पठन्ति ये तात इदं द्विजाग्रयाः ।
सङ्ग्रामचौराग्निवने तथाब्धौ
तेषां शिवस्त्राति न संशयोऽत्र ॥२८

श्रीमहादेवजी ने कहा—हे पद्मयोने ! आपने अनेक मन्त्रों के द्वारा संस्तवन किया है । मैं आपकी शान्ति का पोषण करता हूँ । अनेक युगों के द्वारा प्रलय संहरण करने वाले मुझको और जलते हुए लोक को देखो । इस प्रकार से वह समस्त जगत् पति देवेश्वर देवी के साथ कहकर पितामह को समाश्वासन देकर वहीं पर अन्तर्हित होगये थे । यह महान् धन और पवित्र स्तोत्र है । इस लोक में इसका श्रवण करके मनुष्य सद्गति को प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य अनेक पापों से परिवेष्टित रहा करते हैं वे भी परम विमानों पर समारूढ़ होकर उनके द्वारा इस लोक में गमन किया करते हैं । हे तात ! जो श्रेष्ठ द्विजगण इसका पाठ किया करते हैं । किसी भी समय में कोई भी भय नहीं हुआ करता है । संग्राम स्थल में—चौरों के द्वारा उपस्थित भय में—अग्नि काण्ड में—वन में तथा समुद्र में इस स्तोत्र के पाठ करने वालों को भगवान् शिव स्वयं परित्राण करते हैं—इसमें बिल्कुल भी संशय करने का कोई अवसर ही नहीं है ॥२१-२८॥

९०—द्वादशादित्यरूपेणजगत्संहरणवर्णन

एवं संस्तूयमानस्तु ब्रह्माद्यैर्मुनिपुङ्गवैः ।
ब्रह्मलोकगतैस्तत्र सञ्जहार जगत्प्रभुः ॥१
स तस्मिन्महारौद्रं दक्षिणं वक्त्रमव्ययम् ।
महादंष्ट्रोत्कटारावं पातालतलसन्निभम् ॥२
विद्युज्ज्वलनपिङ्गाक्षं भैरवं लोमहर्षणम् ।
महाजिह्वं महादंष्ट्रं महासर्वशिरोधरम् ॥३
महासुरशिरोमालं महाप्रलयकारणम् ।
ग्रस्तसमुद्रनिहितवातवारिमयं हृदि ॥४

वडवामुखसङ्काशं महादेवस्य तन्मुखम् ।
जिह्वाग्रेण जगत्सर्वं लेलिह्यानमपश्यत ॥५
योजनानांसहस्राणिसहस्राणांशतानिच ।
दिशोदशमहाघोरामांसमेदोवसोत्कटाः । ६
तस्य दंष्ट्रान्तरगतान्सशतशोऽथ सहस्रशः
सासुरान्सुरगन्धर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ।
यस्य दंष्ट्राग्रसंलग्नान्स ददर्श पितामहः
दन्तयन्त्रान्तसम्विष्टं विचूर्णितशिरोधरम् ॥७

महर्षि प्रवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार से संस्तवन किये गये प्रभु ने जो कि ब्रह्मा आदि मुनि श्रेष्ठों ने ब्रह्मलोक में समुपस्थित होकर शिव की बहुत स्तुति की थी सब सम्पूर्ण जगत् का संहार कर दिया था ॥१॥ उस संहरण करने के अवसर पर सबने भगवान् शिव का महान् रौद्र स्वरूप का दर्शन किया था वह रुद्र का स्वरूप अत्यन्त भयानक, दक्षिण वक्त्र, अव्यय, बड़ी दाढ़ी वाला, उत्कट घोष से समुद्र और पाताल तल के तुल्य था ॥२॥ विद्युत् और अग्नि के सदृश तीन नेत्रों वाला महान् भैरव एवं रोमाञ्च खड़े कर देने वाला वह स्वरूप था। महान् जिह्वा से युक्त—महा विकराल दाढ़ों वाला और बड़े २ विशाल सर्पों को सिर पर धारण करने वाला शिव का स्वरूप था ॥३॥ बड़े २ असुरों के मुण्डों की माला को धारण किये हुए, महा प्रलय का कारण स्वरूप, भ्रमते हुए समुद्र में निहित वायु और जल से परिपूर्ण देदि, वडवाग्नि के मुख के तुल्य मुख वाला श्रीमहादेव का मुख था। उस मुख को जिह्वा के अग्रभाग से इस समस्त जगत् को चाटते हुए देखा था। भगवान् पितामह ने देखा था कि सैकड़ों और सहस्रों योजन दशों दिशाऐं जो महान् घोर थी और मांस, मेदा और वसा से उत्कट थी तथा सुर, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग और राक्षस सहस्रों की संख्या में महादेव की दाढ़ों के अग्रभाग में संलग्न हो रहे थे। सम्पूर्ण यह जगत् उनके दाँतों के यन्त्र में अन्दर प्रविष्ट होता हुआ शिरोधरों से युक्त चूर्णित हो रहा था ॥४-७॥

जगत्सर्वमपि राजेन्द्रविशन्तं व्यादिते मुखे ।
नानातरंगसंगागामहाफेनौघसंकुलाः ॥८
यथा नद्यो नयं यान्ति समुद्रं प्राप्य सस्वनाः ॥९
तथा ततं विश्वमिदं समस्तमनेकजीवार्णवदुर्विगाह्यम् ।
विवेश रुद्रस्य मुखं विशालं ज्वलद्भुवं घननादघोरम् ॥१०
ज्वालास्ततस्तस्य मुखात्सुघोराः
सविस्फुलिंगा बहुलाः सधूमाः ।
अनेकरूपा ज्वलनप्रकाशाः
प्रदीपयन्तीव दिशोऽखिलाश्च ॥११
ततो रविज्वालसहस्रमालि
बभूववक्त्रं चलजिह्वदंष्ट्रम् ।
महेश्वरस्याद्भुतरूपिणस्तदा
स द्वादशात्मा प्रबभूव एकः ॥१२
ततस्ते द्वादशादित्या रुद्रवक्त्राद्विनिर्गताः ।
आश्रित्य दक्षिणामाशां निर्दहन्तो वसुन्धराम् ॥१३

हे राजेन्द्र ! इस सम्पूर्ण जगत् को भगवान् शिव के फैलाये हुए मुख में प्रवेश करते हुए देखता हूँ। अनेक लहरों के महाझागों वाली और महान् फेनों के समुदाय से संकुल ध्वनियुक्त नदियाँ जिस प्रकार से समुद्र में प्राप्त होकर लय को प्राप्त हुआ करती हैं उसी भाँति अनेक जीवों के सागर से दुर्विगाह्य (न पार होने के योग्य) यह परम विशाल समस्त विश्व मेघ के समान परम घोर गर्जनाद वाले जलते हुए अत्यन्त उस रुद्र के विशाल मुख में प्रवेश कर गया था। उन भगवान् रुद्र के मुख की ज्वालायें अत्यन्त घोर रूप वाली—धूम से और अग्नि कणों से युक्त विशाल रूप में निकल रही थी। उन ज्वालाओं के नाना भाँति के स्वरूप थे और वे अग्नि के ही तुल्य प्रकाश वाली थी जो कि सभी दिशाओं को प्रदीप्त-सी कर रही थी। इसके अनन्तर उन अद्भुत रूप वाले महेश्वर प्रभु का मुख सूर्य की सहस्रों ज्वालाओं की माला वाला हो गया था जिसमें जिह्वा और दाढ़ें चल रही थीं उस समय मे बारह स्वरूपों वाले भी शिव एक ही रूप वाले हो गये

थे। इसके पश्चात् रुद्र के मुख से द्वादश आदित्य विनिर्गत हुए थे जो दक्षिण दिशा का समाश्रय ग्रहण करके इस सम्पूर्ण भूमि का निर्दहन करने वाले थे ॥८-१३॥

भोम यज्जीवनकिञ्चिन्नानावृक्षतृणालयम् ।
शुष्कं पूर्वमनावृष्ट्यासकलाकुलभूतलम् ॥१४
तद्दीप्यमानं सहसा सूर्यैस्तै रुद्रसम्भवैः ।
धूमाकुलमभूत्सर्वं प्रणष्टग्रहतारकम् ॥१५
जज्वाल सहसा दीप्तं भूमण्डलमशेषतः ।
ज्वालामालाकुलं सर्वमभूदेतच्चराचरम् ॥१६
सप्तद्वीपसमुद्रेषु सरित्सु च सरस्सु च ।
अग्निरत्तिजगत्सर्वमाज्याहुतिमिवाध्वरे ॥१७
विशालतेजसा दीप्ता महाज्वालासमाकुलाः ।
ददहुर्वं जगत्सर्वमादित्याः रुद्रसम्भवाः ॥१८
आदित्यानां रश्मयश्चसस्पृष्टा वै परस्परम् ।
एवं ददाह भगवांस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१९
सप्तद्वीपप्रमाणस्तुसोऽग्निर्भूत्वामहेश्वरः ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तानिर्ददाह वसुन्धराम् ॥२०
सुमेरुमन्दरान्तां च निर्ददाहुर्वसुधातदा ।
भित्वा तु सप्तपातालनागलोकततोऽदहत् ॥२१

इस भूमि पर रहने वालों का जो भी जीवन था जिनका कि अनेक वृक्ष, तृण आदि निवास स्थान थे वह पहिले तो अनावृष्टि होने से शुष्क हो गया था और समस्त भूतल सूखा से समाकुल हो उठा था फिर वह सम्पूर्ण पृथ्वी तल रुद्र दैव से समुत्पन्न उन सूर्यों से सहसा दीप्यमान हो गया था समस्त भूमि भाग धूँआ से समाकुल हो गया था और सम्पूर्ण ग्रह तथा तारागण नष्ट हो गये थे। सहसा पूरा मण्डल दीप्त होकर जल गया था और यह समस्त चराचर ज्वालाओं की मालाओं से आकुल हो गया था। सातों द्वीपों वाले समुद्रों में—सब सरिताओं में और सरोवरों में है सम्पूर्ण

जगत् को अग्नि यज्ञ में घृत की आहुति के समान भक्षण कर रहा था। परम विशाल तेज से प्रदीप्त—महान् ज्वालाओं से समाकुल—रुद्रदेव से समुत्पन्न आदित्यों ने इस सम्पूर्ण जगत् को दग्ध कर दिया था। भगवान् ने इस चर—अचर त्रैलोक्य को इस प्रकार से जला दिया था कि आदित्यों की किरणें परस्पर में भली भाँति स्पष्ट हो गई थीं अर्थात् एक दूसरे से मिल गयी थीं। वह महेश्वर भगवान् सात द्वीपों के प्रमाण वाला अग्नि स्वरूप हो ही गया था। या सात द्वीप और समुद्रों के मध्य पर्यन्त इस सब वसुन्धरा को जलाकर राख कर दिया था। उस समय में सुमेरु पर्वत से लेकर मन्दराचल पर्यन्त इस भूमि को दग्ध कर दिया था फिर सात पातालों का भेदन करके नागलोक को भी दग्ध कर दिया था ॥१४-२१॥

भूम्यधःसप्तपातालान्निर्दह्य स्तारकः सह
मचाराग्निः समन्तात्तुनिर्दहन्वैयुधिष्ठिर ॥२२
धम्यमानइवागारेलोहराशिरिवज्वलन् ।
तयातत्प्राज्ज्वलत्सर्वसम्वर्त्ताग्निप्रदीपितम् ॥२३
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्निर्भ्र रसरःसरित् ।
निशीर्णशैलभू गौणा कूर्मपृष्ठोपमाऽभवत् ॥२४
ज्वालामालाकुलं कृत्वा जगत्सर्वं चिदात्मकम् ।
महारूपधरो रुद्रो व्यतिष्ठत महेश्वरः ॥२५
समातृगणभूयिष्ठा सपक्षोरगराक्षसा ।
ततो देवी महादेवं विवेश हरिलोचना ॥२६
निर्वाणं परमापन्ना शान्तेव चिंसितनःशिखा ।
जगत्सर्वं हि निर्दग्धं त्रिभिर्लोकैः सहानघ ॥२७
रुद्रप्रसादान्मुक्त्वा मा नर्मदां चाप्ययोनिजाम् ।
युगानामयुतं देवो मया चाद्य वुमुक्षणात् ॥२८

हे युधिष्ठिर ! तारागणों के सहित भूमि और अधोभाग में सातों पातालों को निर्दग्ध करते हुए चारों ओर दाह करते हुए यह अग्नि संचरण करने लगा था। अगारों से धायमान को भाँति लोहराशि की

तरह जलते हुए उसने सम्वर्त्तागिन से प्रदीपित सबको प्रज्वलित कर दिया था। उस समय में इस भूमि की ऐसी दशा हो गई थी जैसे किसी कूर्म (कछुआ) की पीठ हो। भूमि पर एक भी कहीं वृक्ष नहीं रहा था—तृण नाम मात्र को नहीं था। न कोई झरना—सर और सरिता ही थी। सब पर्वतों की चोटियाँ टूट-फूटकर गिर गई थीं। इस सम्पूर्ण जगत को जो कि विदात्मक या ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल करके महान् रूप के धारण करने वाले महेश्वर समास्थित हो गये थे। बहुत-सी मातृगणों की पंक्तियों से युक्त और यक्ष उरग तथा राक्षसों के सहित हरिलोचना देवी ने महादेव में ही प्रवेश कर लिया था। हे अनघ! तीनों लोकों के सहित सम्पूर्ण जगत को निर्दग्ध कर दिया था और फिर शिखी की शिखा की तरह शान्त होती हुई परम निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। अयोनिजा नर्मदा मुझको रुद्र के प्रसाद से मुक्त करके आज युगक्षय में मेरे द्वारा दश सहस्र युगों तक देव शूली की पहिले आराधना की गई थी ॥२२-२८॥

पुरा ह्याराधितः शूली तेनाहमजरामरः ।
अघमर्षणघोरं च वामदेवं च त्र्यम्बकम् ॥२९
ऋषभं त्रिसुपर्णं च दुर्गां सावित्रमेव च ।
वृहदारण्यकं चैव वृहत्साम तथोत्तरम् ॥३०
रौद्री परमगायत्री शिवोपनिषदं तथा ।
यथा प्रतिरथ सूक्तं जप्त्वा मृत्युञ्जयं तथा ॥३१
सरित्सागरपर्यन्ता वसुधा भस्मसात्कृता ।
वर्जयित्वा महाभागा नर्मदाममृतोपमाम् ॥३२
महेन्द्रो मलयः सह्योहेमकूटोऽथमाल्यवान् ।
विन्ध्यश्चपारियात्रश्चसप्तैतेकुलपर्वताः ॥३३
द्वादशादित्यनिर्दग्धाः शैलाः शीर्णं शिलाः पृथक् ।
भस्मीभतास्तु दृश्यन्ते न नष्टा नर्मदा तदा ॥३४
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो गन्धमादनः ।
माल्यवांश्च गिरिश्रेष्ठो नीलः श्वेतोऽथ शृंगवान् ॥३५

एते पर्वतराजानोदेवगन्धर्वसेविताः ।
युगान्ताग्निविनिर्दग्धाःसर्वशीर्णमहाशिलाः ॥३६
एवं मया पुरा दृष्टो युगान्ते सर्वसङ्क्षयः ।
वर्जयित्वा महापुण्यां नर्मदा नृपसत्तम ॥३७

भगवान् शूली की आराधना से मैं अजर-अमर हो गया। अघमर्षण घोर, वामदेव, त्र्यम्बक, त्रपम, त्रिसुपर्ण, दुर्गा, माविन, बृहदारण्यक बृहत्साम, उत्तर, रौद्री, परम गायत्री, शिवोपनिषद—अतिरय सूक्त और इसी भाँति मृत्युञ्जय का जाप करके मैं अजर अमर हो गया था। सरिता और सागर पर्यन्त सम्पूर्ण वसुधा भस्म कर दी गई थी केवल परम महा भाग वाली अमृतोपमा नर्मदा का वर्णन कर दिया था। महेन्द्र, मलय, सह्य, हेमकूट, माल्यवान्, विन्ध्य, पारियात्र, ये सात कुल पर्वत कहे गये हैं। द्वादश आदित्यों के द्वारा निर्दग्ध हुए शैलों की सब शिलाऐं शीर्ण होकर पृथक हो गई थी। ये सब भस्मी भूत होकर दिखलाई दे रहे थे किन्तु उस समय मे भी नर्मदा का नाश नहीं हुआ था। हिमवान् (हिमालय), हेम कूट, निषध, गन्धमादन, माल्यवान्, गिरियों मे परम श्रेष्ठ नील गिरि, श्वेत और शृङ्गवान्, ये सब पर्वत राज हैं जो कि देवों और गन्धर्वो के द्वारा सेवित हैं। जब युगान्त की अग्नि प्रज्वलित हुई तो ये सब निर्दग्ध हो गये थे और इनकी समस्त महा शिलाऐं टूट-फूट गई थी। इस प्रकार से मैंने युग के अन्त मे पहिले सबका संक्षय आँखों से देखा था। हे नृपसत्तम! सबका तो संक्षय हुआ था किन्तु महान् पुण्य वाली नर्मदा का उस समय में भी विनाश अर्थात् क्षय नहीं हुआ था ॥३६-३७॥

६१—नर्मदामाहात्म्यवर्णन

निर्दग्धेऽस्मिस्ततो लोकेसूर्यैरीश्वरसम्भवैः ।
सप्तभिश्चार्णवं. पुष्करद्वीपं. सप्तभिरेव च ॥१
ततो मुखात्तस्य घना महोल्बणा निश्चेरुरिन्द्रायुधतुल्यरूपाः ।
घोराः पयोदा जगदन्धकारं कुर्वन्त ईशानवरप्रयुक्ताः ॥२

नीलोत्पलाभा क्वचिदञ्जनाभागोक्षीरकुन्देन्दुनिभाश्चकेचित्।
मयूरचन्द्राकृतयस्तथाऽन्ये केचिद्विधूमानलसप्रभाश्च ।।३
केचिन्महापर्वतकल्परूपा. ।
केचिन्महामीनकुलोपमाश्च ।
केचिद्गजेन्द्राकृतयः सुरूपाः
केचिन्महाकूटनिभाः पयोदाः ।।४
चलत्तरङ्गोर्मिममानरूपा
महापुरोघाननिभाश्च केचित् ।
सगोपुराट्टालकसन्निकाशाः
सविद्युदुल्काशनिमण्डितान्ताः ।।५
समावृतांग स बभूव देवः सम्वर्तकोनाम गणः सरौद्रः ।
प्रवर्षमाणो जगदप्रमाणमेकार्णवं सर्वमिदं चकार ।।६
ततो महामेघविवर्द्धमानमीशानमिन्द्राशनिभिन्नताङ्गम् ।
ददर्श नाह भयविह्वलाङ्गो गङ्गाजलौघैश्च समावृतांगः ।।७

महर्षि वर श्री मार्कण्डेयजी ने कहा--ईश्वर से समुत्पन्न हुए सूर्यो के द्वारा इस सम्पूर्ण लोक के निर्दग्ध हो जाने पर और सातों समुद्रों के उत्तप्त होकर सूख जाने पर तथा सातों द्वीपों के शुष्क होकर नष्ट हो जाने पर फिर उनके मुख से इन्द्रदेव के आयुधों के तुल्य रूप वाले महान् उल्वण घन निकलकर संचरण करने लगे थे। परम श्रेष्ठ ईशान देव के द्वारा प्रयुक्त उन परम घोर पयोदों ने इस जगत में अन्धकार फैला दिया था ।।१-२।। ये मेघ विभिन्न रूप और आकार वाले थे। कहीं तो वे मेघ नील कमल की आभा वाले थे। कहीं पर अञ्जन की आभा के तुल्य आभा वाले थे—और कुछ गौ के दूध, कुन्द पुष्प और चन्द्र के समान थे। अन्य मोर और चन्द्रमा की आकृति वाले थे और कुछ विधूम अर्थात् धुंआ से रहित अग्नि की प्रभा के तुल्य थे। कुछ मेघ तो विशाल पर्वतों के ही बिल्कुल सदृश रूप वाले थे और कुछ महामीन (विशाल मछली) के कुल के समान थे। कुछ गजेन्द्र के समान आकृति वाले थे तथा कुछ मेघ महान्

चोटी के तुल्य सुन्दर रूप वाले थे ॥३-४॥ कुछ मेघ चमकती हुई तरंगों के समान रूप वाले थे और कुछ महा पुरोयान के तुल्य थे। कुछ मधुर, अट्टालक के तुल्य थे जिनमें विद्युत्, उल्का, अशनि से मण्डित अन्य वाले थे ॥५॥ यह देव सम्पूर्ण मघों वाला हो गया था, सम्वर्तक नाम वाला यह रौद्र रूप प्रवर्षण करता हुआ इस समस्त जगत को अकस्मात् एक अर्णव वाला कर दिया था। इसके अनन्तर भय से विह्वल अङ्ग वाले मैंने महान् के जल के ओघो से समाकुल अंगों वाला महान् मेघों से निबद्ध-मान और इन्द्र के अस्त्र से युत अंगों वाले ईशान की दशा ॥६-७॥

गजाःपुनश्चैव पुनः पिबन्तो
जगत्समन्तात्परिदह्यमानम् ।
आपूरित चैव जगत्समन्तात्
सर्व इव तेजोमुरदर्शन च ते ।८
महार्णवाः सप्त सरांसि तोया
नद्योऽपि सर्वा अथ भूमं नश्च ।
आपूर्यमाणा. सलिलौघमालै
रेकार्णव सर्वमिद बभूव ॥९
न दृश्यते किञ्चिदहो चराचरे
निरग्निचन्द्रार्कमयेऽपि लोके ।
प्रणष्टमनानतमोऽन्धकारे
प्रशान्तवातास्तमितंकनौहे ॥१०
महाजलौघेऽस्य विमूढमस्त्वा
स्तुतिर्मया भूप ! कृता सदानीम् ।
ततोऽर्हमिरथेव विचिन्तयान.
शरण्यमेकं भव नु यामि शान्तम् ॥११
स्मरामि देव हृदि चित्तमित्था प्रभु शरण्यं जलसन्निविष्टः ।
नमामि देव शरण प्रपद्ये ध्यान च तस्येतिकृत्त मया च ॥१२
ध्यात्वा ततोऽहं सलिल ततार तस्य प्रसादाद्विमूढचेताः ।
स्नानिः श्रमश्चैव मम प्रणष्टो देव्या. प्रसादेन नरेन्द्रमुन ॥१३

चारों ओर से परिदह्यमान इस जगत् को पुनः पुन. गज पी रहे थे। सभी ओर से यह जगत् उनके द्वारा आपूरित होता हुआ था और फिर वे अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥८॥ सातों महार्णव—सब सर—सात द्वीप—समस्त नदियाँ और भूर्भुवः स्वः जलों के ओघों के जालों से आपूर्यमाण होते हुए यह सब एकार्णव (समस्त समुद्रमय) हो गया था ॥९॥ अहो! अर्क—चन्द्र और अग्नि से रहित इस चराचर लोक में जो कि नक्षत्रों के नष्ट होने से अन्धकार पूर्ण और तमोमय था और वायु के भी प्रशान्त होने एक अस्तमित भोड हो रहा था कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था ॥१०॥ हे भूप! उस महान् जलौघ मे उस समय मैंने इनकी विशुद्ध सत्व वाली स्तुति की थी। इसके पश्चात् मैं ही हूँ, ऐसी चिन्ता करता हुआ कि एक परम शान्त शरण्य को शरणागति मे कहाँ जाऊँ? ॥११॥ जल में सन्निविष्ट मैं अपने हृदय मे परम शरण्य, देव प्रभु का चिन्तन करके स्मरण करता था। मैं देव को नमस्कार करता हूँ, शरण मे जाता हूँ—इस तरह से मैंने उनका ध्यान किया था। इसके अनन्तर ध्यान करके उनके प्रसाद से अविमूढ चित वाला होकर सलिल मे तरण किया था। ग्लानि और श्रम हे नरेन्द्र पुत्र! देवी के प्रसाद से मेरा सब नष्ट हो गया था ॥१२-१३॥

६२—वाराहकल्पवृत्तान्तवर्णन

ततस्त्वेकार्णवे तस्मिन्भूमपरहमातुरः।
काश्रूच्छ्वासस्तरंस्तोय वाहुभ्यां नृपसत्तम! ॥१
शृणोम्यर्णवमध्यस्थो निशाब्दस्तिमिते तदा।
अम्भोरवमनौपम्यं दिशोदशविनादिनम् ॥२

हंसकुन्देन्दुसङ्काशां हारगोक्षीरपाण्डुराम्।
नानारत्नविचित्राङ्गी स्वर्णशृङ्गां मनोरमाम् ॥३
खुरंप्रवालकमयैर्लाङ्गूलध्वजशोभिताम्।
प्रलम्बघोणांनर्दन्तीखुरैर्रणं वगाहिनीम् ॥४

गां ददर्शाहमुद्विग्नो मामेवाऽभिमुखीं स्थिताम् ।
किङ्किणीजालमुक्ताभिः स्वर्णघण्टासमावृताम् ॥५
तस्याश्चरणविक्षेपैः सर्वमेकार्णवं जलम् ।
विक्षिप्तफेनपुञ्जौघैर्नृत्यतीव समन्ततः ॥६
रराम सलिलोत्क्षेपैः क्षोभयन्ती महार्णवम् ।
सा मामाह महाभाग ! श्लक्ष्णगम्भीरया गिरा ॥७

महर्षि प्रवर श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके उपरान्त उस एक मात्र सागर में हे नृप सत्तम ! मैं अत्यन्त आतुर और आकुलतायुक्त होता हुआ अपनी बाहुओं से जल को तैर रहा था। अर्णव के मध्य में स्थित मैं शब्द रहित शोभित सागर में उस समय में अनुपम और सभी दिशाओं में विशेष ध्वनि करने वाले जल के शब्द को सुनता हूँ ॥१-२॥ हंस, कुन्द, (एक श्वेत रंग का पुष्प) इन्दु (चन्द्रमा) के सदृश अर्थात् एक दम सफेद, हार, गाय का दूध के समान पाण्डुर, अनेक रत्नों से चित्रित पंखों वाली, सुनहले सींगों से युक्त अतीव सुन्दर, प्रवालों से परिपूर्ण खुरों से युक्त, लांगल (पूंछ) और ध्वज से शोभा वाली, लम्बी चामियन वाली खुरों से अत्यंत का दोहन करती हुई तथा नर्तन करने वाली गाय को मैंने अतीव उद्विग्न होते हुए देखा था जो कि मेरे ही सामने स्थित थी और जिसकी ग्रीवा मुक्ताओं से स्वर्ण के घण्टा से वह समावृत थी ॥३-५॥ उसके चरणों के विक्षेपों से वह समस्त एकार्णव [illegible] जल विक्षिप्त फेनों के पुञ्जों के समूह से सभी ओर नाच सा रहा था। जल को ऊपर की ओर उत्क्षेपों से उस महार्णव में क्षोभ करती हुई वह रास करती थी। वह मुझसे बोली—हे महाभाग ! उसकी वाणी उस समय में बहुत ही श्लक्ष्ण और गम्भीर थी ॥६-७॥

मा भैषीर्वत्स वत्सेति मृत्युस्तव न विद्यते ।
महादेवप्रसादेन न मृत्युस्ते भयानघ ॥८
ममाश्रयस्व लाङ्गूलं त्वामहं तारयाम्यहम् ।
घोरादस्मान्मयाद्विप्र यावत्सम्प्लवते जगत् ॥९

क्षुत्पाप्रतिघाताथं स्तनौ मे त्वं पिबस्व ह ।
पयोऽमृताश्रयं दिव्यं तत्पीत्वा निर्वृ तो भव ॥१०
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हर्षात्पीतो मया स्तनः ।
न क्षुत्तृपा पीतमात्रे स्तने मह्यं तदाऽभवत् ॥११
दिव्यं प्राणबलं जज्ञे समुद्रप्लवनक्षमम् ।
ततस्ता प्रत्युवाचेदं का त्वमेकार्णवीकृते ॥१२
भ्रमसे ब्रूहि तत्त्वेन विस्मयो मे महान्हृदि ।
भ्रमतोऽत्रमभार्तस्य मुमूर्षो: प्रहतस्यह ॥१३
त्वं हि मे शरणं जाता भाग्यशेषेण सुव्रते ! ॥१४

हे वत्स ! हे वत्स ! डरो मत, तुम्हारी मृत्यु नही होगी । महादेव का प्रसाद ऐसा ही है कि उससे न तो तुम्हारी मृत्यु है और न मेरी ही । तुम मेरी पूंछ को पकड़ लो, मैं तुमको तार दूंगी । हे विप्र ! जब तक यह जगत मे सम्प्लव होता है मैं तब तक इस अति घोर भय से मैं उद्धार करती हूँ । अपनी क्षुधा और पिपासा के प्रतिघात करने के लिए तुम मेरे स्तनो का पान करो । यह मेरा अमृताश्रय परम दिव्य पय है उसको पीकर निर्वृत हो जाओ । उसके इस वचन का श्रवण करके मैंने बहुत ही हर्ष से उसका स्तन पिया था । उस समय मे उस स्तन के पीते ही भर से मुझे क्षुधा और तृषा नही रही थी । मुझमे उस समय मे परम दिव्य प्राण बल समुत्पन्न हो गया था जो कि समुद्र के प्लवन की सामर्थ्य रखने वाला था । इसके पश्चात् मैंने उससे कहा था—आप कौन हैं ? जो इस एकार्णवी भूत हुए जल मे इस तरह से भ्रमण कर रही हैं । आप इसको तात्त्विक रूप से मुझे बतलाइये । मेरे हृदय मे इस बात का बड़ा भारी विस्मय हो रहा है । यहाँ पर परम आर्त भ्रमण करते हुए मेरी, जो कि प्रहत और मरने वाला हो रहा हूं हे सुव्रते ! मेरे भाग्य की शेषता होने से हा आप सरक्षण करने वाली हो गई हैं ॥८-१४॥

किमहं विस्मृता तुभ्यं विश्वरूपामहेश्वरी ।
नर्मदाधर्मदानृणास्वर्गशर्मबलप्रदा ॥१५

दृष्ट्वा त्वां सीदमानं तु रुद्रेणाऽहं विसर्जिता ।
तं द्विजं तारयस्वार्ये मा प्राणांस्त्यजतां जले ॥१६
गोरूपेण विभोर्वाक्यात्त्वत्सकाशमिहागता ।
मा मृषा वचनः शम्भुर्भवेदिति च सत्वरा ॥१७
एवमुक्तस्तयाऽहं तु इन्द्रायुधनिभं शुभम् ।
लाङ्गूलमव्ययं ज्ञात्वा भुजाभ्यामवलम्बितः ॥१८
ततोऽन्तरं तु जलधिलाङ्गूलध्वजमाश्रितः ।
असौ देवो महादेव इति मां प्रत्यभाषत ॥१९
ततो युग सहस्रान्तमहं कालं तया सह ।
ध्यवरं मे तमीभूते सर्वतः सलिलाप्लुते ॥२०
महार्णवे ततस्तस्मिन्भ्रमन्गो पुच्छमाश्रितः ।
निर्वाते चान्धकारे च निरालोके निरामये ॥२१

गौ ने कहा—क्या आपने मुझको भुला दिया है ? मैं विश्वरूप वाली माहेश्वरी हूँ । मेरा नाम नर्मदा है और मैं मनुष्यों का धर्म के देने वाली तथा स्वर्ग कल्याण और धन प्रदान करने वाली हूँ । तुमको अत्यन्त पीड़ित होते हुए देखकर भगवान् रुद्र ने मुझे छोड़ दिया है और उन्होंने मुझे यहाँ भेजते हुए आज्ञा दी थी कि हे आर्ये ! उस द्विज का तारण करो । यह इस जल में अपने प्राणों का परित्याग न कर देवे । विभु के ही इस वचन से मैं गौ के रूप में तुम्हारे समीप में यहाँ पर समागत हुई हूँ कि भगवान् शम्भु का वचन मिथ्या न होने पावे । इसीलिए मैंने बड़ी शीघ्रता से आगमन किया है । इस प्रकार से उसके द्वारा कहे हुए मैंने इन्द्र के आयुध के तुल्य परम शुभ एवं अव्यय समझकर उसकी पूँछ को दोनों बाहुओं से पकड़ लिया था । इसके अनन्तर लांगूल ध्वज उस जलधि के आश्रित यह देव महादेव हैं यह मुझसे कहा था । इसके पश्चात् मैं उसके साथ एक सहस्र युग के अन्त तक समय से सब ओर से जल से समावृत उस अन्धकार पूर्ण में विचरण करता रहा था । इसके उपरान्त उस महार्णव में गौ की पूँछ का आश्रय ग्रहण करने वाला मैं बिना वायु वाले आलोक रहित निरामय अन्धकार में भ्रमण कर रहा था ॥१६-२१॥

अकस्मात्सलिले तस्मिन्नतसीपुष्पसन्निभम् ।
विभिन्नांञ्जनसंकाशमाकाशमिव निर्मलम् ॥२२
नीलोत्पलदलश्यामं पीतवाससमव्ययम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन विद्युद्विद्योतकारिणा ॥२३
भ्राजमानेन शिरसाखमिवात्यन्तरूपिणम् ।
कुण्डलोद्घृष्टगल्लं तुहारोद्द्योतितवक्षसम् ॥२४
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्भूषणै रुपशोभितम् ।
नागोपधानशयनं सहस्रादित्य वर्चसम् ॥२५
अनेकबाहूरुधरं नेकवक्त्रं मनोरमम् ।
सुप्तमेकार्णवे घोरं सहस्राक्षशिरोधरम् ॥२६
जटाजूटेन महतास्फुरद्विद्युत्समार्चिषा ।
एकार्णवं जगत्सर्वं व्याप्यदेवं व्यवस्थितम् ॥२७
प्रसित्वा शंकरं सर्वं सदेवासुरमानवम् ।
प्रपश्याम्यहमीशान सुप्तमेकार्णवे प्रभुम् ॥२८

अचानक उस जल मल में अलसी के पुष्प के सदृश, विभिन्न अंजन के तुल्य, आकाश के समान निर्मल, नीलकमल के सदृश श्याम, पीत वस्त्र धारी अव्यय, विद्युत के तुल्य विद्योतकारी, सूर्य के समान किरीट से शोभित भ्राजमान, शिर से आकाश की भाँति अत्यन्त रूप वाले उस एकार्णव में शयन करने वाले ईशान प्रभु को मैंने देखा था। जो कुण्डलों से उद्घृष्ट गालों वाले थे। सुवर्ण मय दिव्य आभूषणों से वह शोभित थे। जिनकी शय्या पर नागों का ही उपधान (तकिया) था और जो सहस्रों आदित्यों के तुल्य वर्चस वाले थे। उनके अनेक बाहु और ऊरू थे तथा अनेक मुखों से युक्त थे अत्यन्त ही मनोरम थे। सहस्रों नेत्र एवं मस्तकों के धारण करने वाले वह घोर उस एकार्णव में सुप्त थे। विद्युत् के समान अर्चियों वाले अर्थात् ज्योति की ज्वालाओं से युक्त महान् जटाजूटों से समुपलक्षित थे। उस एकार्णव सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके वे देव अवस्थित थे। सबका ग्रास करके जिस उदर में देव असुर और मानव सभी थे ऐसे शंकर प्रभु का मैंने दर्शन किया था ॥२२-२८॥

सर्वव्यापिनमव्यक्तमनन्तं विश्वतोमुखम् ।
तस्य पादतलाभ्याशे स्वर्णकेयूरमण्डिताम् ॥२९
विश्वरूपां महाभागां विश्वमायावधारिणीम् ।
श्रीमयीं ह्रीमयीं देवीं धीमयीं चारु मयीं शिवाम् ॥३०
सिद्धिं कीर्तिं रतिं ब्राह्मीं कालरात्रिमयोनिजाम् ।
तामेवाहं तदात्यन्तमीश्वरान्तिकमास्थिताम् ॥३१
अद्राक्षं चन्द्रवदनां पुष्टिं सर्वेश्वरीमुमाम् ॥३२
शान्तं प्रसुप्तं नवहेमवर्णमुमासहायं भगवन्तमीशम् ।
तमोवृतं पुण्यतमं वरिष्ठं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्करोमि ॥३३
ततः प्रसुप्तः सहसा विबुद्धो
रात्रिक्षये देववरः स्वभावात् ।
विक्षोभयन्बाहुभिरर्णवाम्भो
जगत्प्रणष्टं सलिले विमृश्य ॥३४
किं कार्यमित्येव विचिन्तयित्वा
वाराहरूपोऽभवदम्बुजाक्षः ।
महाघनाम्भोधरतुल्यवर्चाः
प्रलम्बमालाम्बरनिष्कधारी ॥३५

यह भगवान् सर्वव्यापी—अव्यक्त और अनन्त तथा विश्वतो मुख थे उनके चरण तलों के समीप में ही सुवर्ण के रचित केयूरों से मण्डित—विश्वरूप वाली—महाभागा विश्वमाया की अवधारिणी—श्रीमयी—ह्रीमयी—धीमयी—चारु मयाशिवा—देवी—सिद्धि—कीर्ति—रति—ब्राह्मी—अयोनिजा—कालरात्रि उसी को मैंने ईश्वर के अत्यन्त समीप में समवस्थित उस समय में देखा था जो कि चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली—पुष्टि और सर्वेश्वरी उमा थी। परम शान्त—सोये हुए—नूतन हेम के सदृश वर्ण वाले—उमा की सहायता वाले—तम से आवृत—पुण्यतम—वरिष्ठ—भगवान् ईश की प्रदक्षिणा करके मैंने नमस्कार किया था। इसके अनन्तर सोये हुए वे देववर सहसा रात्रि के क्षय होने पर विबुद्ध हो गये थे अर्थात् जाग गये थे। स्वभाव से बाहुओं से उस अर्णव के जल को विक्षुब्ध

कर रहे थे। उस जल में सम्पूर्ण जगत् को नष्ट हुआ सोचकर अब क्या करना चाहिए—यही विशेष रूप से चिन्तन करके अद्भुत अङ्ग एवं रूप वाले वे वाराह रूप वाले हो गये थे। जो महान् घन अम्भोधर के समान वर्चस वाले और प्रलम्ब माला और अम्बर तथा निष्क (गले का भूषण) की माला के धारण करने वाले थे ॥२६-३५॥

सशङ्खचक्रासिधरः किरीटी सवेदवेदाङ्गमयो महात्मा ।
त्रैलोक्यनिर्माणकरः पुराणो देवत्रयीरूपधरश्च कार्ये ॥३६
स एव रुद्रः स जगज्जहार
सृष्ट्यर्थमीशः प्रपितामहोऽभूत् ।
संरक्षणार्थं जगतः स एव
हरिः सुचक्रासिगदाब्जपाणिः ॥३७
तेषां विभागो न हि कर्तुमर्हो
महात्मनामेकशरीरभाजाम् ।
मीमांसहेत्वर्थविशेषतर्कै
र्यस्तेषु कुर्यात्प्रविभेदमज्ञः ॥३८
स याति घोरं नरकं क्रमेण
विभागकृद्द्वेषमतिर्दुरात्मा ।
या यस्य भक्तिः स तथैव नूनं
देहं त्यजंस्त्वं ह्यमृतत्वमेति ॥३९
सम्मोहयन्मूर्तिभिरत्र लोकं
स्रष्टा च गोप्ता क्षयकृत्स देवः ।
तस्मान्न मोहात्मकमाविशेत
द्वेषं न कुर्यात्प्रविभिन्नमूर्तिः ॥४०
वाराहमीशानधरोऽप्यतोऽसौ
रूपं समास्थाय जगद्विधाता ।
नष्टे त्रिलोकेऽर्णवतोयमग्ने
विमार्गितोयौघमयेऽन्तरात्मा ॥४१

यह देव शङ्ख—चक्र और असि (खड्ग) के धारण किये हुए थे—किरीटधारी—वेदों और वेदाङ्गों से परिपूर्ण—महान् आत्मा वाले—त्रिलोकी के निर्माण को करने वाले—पुराण और कार्य में तीन देवों के रूप धारण करने वाले हैं। वही रुद्रदेव इस जगत् का हरण करने वाले हुए थे। वह ही सृष्टि की रचना करने के लिये ईश प्रपितामह हुए थे। इस जगत् की रक्षा करने के लिये वह ही चक्र,गदा,खड्ग और पंकज को धारण करने वाले श्रीहरि हुए हैं। एक ही शरीर को धारण करने वाले उन महात्माओं का विभाग नहीं करने योग्य है। मीमांसा—हेतु—अर्थ विशेष और तर्कों के द्वारा जो कोई उन में विभाग करता है या अभेद मानता है वह बहुत ही अज्ञानी एवं मूढ़ है ॥३६-३८॥ इस प्रकार से विभाग करने वाला द्वैष बुद्धि से युक्त दुरात्मा जन्म से घोर नरक में गमन किया करता है। जिस पुरुष की उस देवी की भक्ति होती है वह उसी के प्रभाव से निश्चय ही अपने देह का त्याग करता हुआ अमृतत्व को प्राप्त होता है ॥३९॥ यहाँ पर इन मूर्तियों के द्वारा लोक को सम्मोहित करते हुए यही सृजन करने वाले—धारण करने वाले और क्षय करने वाले हैं। इसीलिए यह भिन्न २ मूर्तिधारी है—ऐसा माहात्मक द्वैष नहीं करना चाहिए। यह ईशान पर वाराह के स्वरूप में समास्थित होकर इस जगत् के विधाता हैं। इस मंनोभव के नष्ट हो जाने पर और अर्णव के जल में निमग्न होने पर विभावरी ग्रह के समूह में पृथ्वी में पद्मरात्मा अर्णव के जल का भेदन करके अम्बर में स्थित पाताल में क्षणभर में प्रवेश कर गये थे। जल में डूबी हुई कमल के वन के तुल्य नेत्रों वाली इस सम्पूर्ण धरणी का स्पर्श किया था ॥४०-४१॥

भित्त्वार्णवं तोयमध्यान्तरस्थ
विवेश पातालतलं क्षणेन ।
जले निमग्ना धरणी समस्ता
समस्पृशत्पङ्कजपत्रनेत्राम् ॥४२
विशीर्णशैलोत्तमशृङ्गकूटा
वसुन्धरा तां प्रलये प्रनीनाम् ।

दंष्ट्रैकया विष्णुरतुल्यसाहसा
समुद्दधार स्वयमेव देवः ॥४३
सा तस्य दंष्ट्राग्रविलम्बिताङ्गी
कैलासशृङ्गाग्रगतेव ज्योत्स्ना ।
विभ्राजते साप्यसमानमूर्तिः
शशाङ्कशृङ्गे च तडिद्विलग्ना ॥४४
तामुज्जहारार्णवतोयमग्नां
करी निमग्नामिव हस्तिनी हठात् ।
नावं विशीर्णामिव तोयमध्या
दुदीर्णसत्त्वोनुपमप्रभावः ॥४५
स तां समुत्तार्य महाजलौघात्
समुद्रमार्यो व्यभजत्समस्तम् ।
महार्णवेष्वेव महार्णवाम्भो
निक्षेपयामास पुनर्नदीषु ॥४६
शीर्णाश्च शैलान्स चकार भूयो
द्वीपान्समस्तांश्च तथार्णवांश्च ।
यं लोपलैर्ये विचिताः समस्ता
स्त्रिलोक्ययास्तान्स चकार कल्पे ॥४७
अनेकरूपं प्रविभज्य देहं चकार देवेन्द्रगणान्समस्तान् ।
मुखाच्च वह्निर्मनसश्च चन्द्रश्चक्षोश्च सूर्यः सहसा बभूव ॥४८
अङ्गेऽस्य तस्येश्वरयोगमूर्तेः प्रध्यायमानस्य सुरेन्द्रसंघः ।
वेदाश्चयज्ञाश्चतथै व वर्गास्तथा हि सर्वोषधयोरसाश्च ॥४९

विशीर्ण हुए शैलों के उत्पन्न शृंगकूटों वाली—प्रलय में प्रलीन उस वसुन्धरा को अतुल्य साहस वाले देव विष्णु ने स्वयं ही एक दंष्ट्रा से उठा लिया था ॥४३॥ वह धरणी उनकी दाढ़ के अग्र भाग में लटके हुए अंगों वाली कैलास पर्वत की चोटी के अग्रभाग में फँसी हुई ज्योत्स्ना के समान शोभित हो रही थी। असमान मूर्ति वाली वह भी शशाङ्क के शृंग में विलग्न तड़ित् जैसी थी ॥४४॥ उस धरणी को जो कि अर्णव के जल

वे निमग्न थी जल में डूबी हुई हथिनी का हठ पूर्वक उद्धार करने वाले हाथी की भाँति भगवान् ऊपर उठा लिया था। उदीर्ण सत्त्व वाले तथा अनुपम प्रभाव से समन्वित उस वेग से जल के मध्य से विशीर्ण हुई नौका की भाँति उस भूमि को महान् जल के समूह से ऊपर उठाकर उन्होंने सम्पूर्ण समुद्र का विभाग कर दिया था। महार्णव के जल को महान् पर्वतों से और फिर नदियों से विभिन्न कर दिया था। शीर्ण हुए पर्वतों को उन्होंने पुनः कर दिया था। इसी तरह से समस्त द्वीपों का और महीधरों को भी यथास्थित कर दिया था। उन्होंने वा शैलों के उपलों से चारों ओर में विचित्र थे उन सप्तद्वीपों का कल्प में कर दिया था। अपने देह को अनेक स्वरूपों से विभक्त करके फिर समस्त देवेन्द्र गणों का कर दिया था। उनके मुख से अग्नि समुत्पन्न हुई—मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई—चक्षु से सहसा सूर्य देव समुत्पन्न हुए थे॥४८ ४९॥ प्रकट रूप से ध्यान करने वाले योगमूर्ति उन ईश्वर के मुखों का सत्य समुत्पन्न हुआ था। समस्त वेद-वन-वायु-सर्वौषधियाँ और समस्त रस उत्पन्न हुए थे॥४९॥

जगत्समस्तं मनसा बभूव
यत्स्थावरं किञ्चिदिहाण्डजं वा।
जरायुजं स्वेदजमुद्भिजं वा
यत्किञ्चिदेवाकीटपिपीलकाद्यम्॥५०

ततो विभक्ते मनसा क्षणेन
अनेकरूपः महसा महेशः।
चकार यन्मूर्तिभिरव्ययात्मा
मरीचिराविश्य पुनः स तत्र॥५१

लोका चकाराद्य समुद्रलेखा कल्पेऽत्र ये पच्यत एव नित्याः।
तेषां यथा दर्शं नमेव सर्वं यावन्मुहूर्तादिसमकारि भूप॥५२
इत्येवं स्वशेष विश्वं लोकमेव स देवदेवो जगतां विधाता।
सर्वज्ञसर्वेश एक देवो जगाम चाप्यदर्शनमादिकर्ता॥५३

यत्तन्मुहूर्तादिह नामरूपं तावत्प्रपश्यामि जगत्तथैव ।
द्वीपं समुद्रैरभिसम्वृतं हि नक्षत्रताराधिविमानकीर्णम् ॥५४

वियत्पयोदग्रहचक्रचित्रं
नानाविधं प्राणिगणैर्वृतं च ।
तां वै न पश्यामि महानुभावां
गोरूपिणीं सर्वसुरेश्वरीं च ॥५५

क्व साम्प्रतं सेति विचिन्त्य राजन्
विभ्रान्तचित्तस्त्वभवं तदैव ।
दिशो विभागानवलोकयान
ऋते पुनस्तां कथमीश्वरांगीम् ॥५६

यह सम्पूर्ण जगत् मन से ही हुआ था जो भी स्थावर कुछ है अथवा यहाँ अण्डज है। कीट—पिपीलिका आदि से लेकर जो कुछ भी जरायुज—स्वेदज और उद्भिज्ज मृष्ट है। इसके उपरान्त भगवान् महेश ने क्षणभर में सहसा अनेक रूपों वाली सृष्टि का सृजन मन से ही किया था। वह अव्यय आत्मा वाले ने वहाँ पर पुनः आठ मूर्त्तियों में आविष्ट होकर यह सब किया था। हे विप्रो! मेरे देखते हुए ही समृद्ध तेज वाले प्रभु ने इस के पश्चात् लीला की थी। हे भूप! मुहूर्त मात्र तक मैंने उनके समस्त दर्शन जब तक किये थे। जगतों के विधाता देवों के देव ने यह सब लीला ही से करके सर्वत्र दिखलाई देने वाले और सभी जगह गमन करने वाले वह देव आविकर्ता अदर्शन को प्राप्त हो गये थे। यहाँ पर मुहूर्त मात्र में ही यह नाम और रूप वाला जगत् उसी प्रकार का समुत्पन्न हुआ मैं देखता हूँ जो कि समस्त द्वीपों और समुद्रों से अभि संवृततया तथा नक्षत्र और तारादि विमानों से भी सकीर्ण हो रहा था। यह अन्तरित पयोद (मेघ)—ग्रहों के चक्र से चित्रित था और नाना प्रकार के प्राणियों के समुदाय से भी समाकीर्ण था। फिर मैं उस महानुभावा गाय स्वरूप वाली सर्वेश्वरी को नहीं देखता था। हे राजन्! उस समय में वह कौन थी—यह विचिन्तन करके मैं विभ्रान्त चित्त वाला हो गया

था। फिर ईश्वरीगो उसके अभाव में कैसे दिशाओं के विभागों को देखने वाला होता ॥५०-५६॥

पश्यामि तामेव पुनश्च गुहां
महाभ्रनीलां शुचिशुभ्रतोयाम्।
वृक्षैरनेकैरुपशोभिताङ्गीं
गजैस्तुरङ्गैर्विहगैर्वृतां च ॥५७
यथा पुरा वीरमुपेत्य देव्या
समास्थितस्त्वप्यमरकण्टके तु।
तथैव पश्यामि सुखोपविष्ट
आत्मानमव्यग्रमवाप्तसौख्यम् ॥५८
तथैव पुण्याममलतोयवाहां
दृष्ट्वा पुनः कल्पपरिक्षयेऽपि।
ह्यम्बानिवार्यामनुकम्पमाना
मक्षीणतोयां विरजां विशोकः ॥५९
एवं महत्पुण्यतमं च कल्पं
पठन्ति शृण्वन्ति च ये द्विजेन्द्राः।
महावराहस्य महेश्वरस्य
दिने दिने ते विमला भवन्ति ॥६०
अशुभघातसहस्र ते विधूय प्रपन्ना
स्त्रिदिवममरजुष्टं सिद्धगन्धर्वयुक्तम्।
विमलशशिनिभाभिः सर्वएवाप्सरोभिः
सह विविधविलासैः स्वर्गसौख्यं लभन्ते ॥६१

मैं फिर यहीं पर उसको महान् अभ्र के (मेघ के) समान नील वर्ण वाली—शुचि एवं शुभ्र जल वाली और परम शुभ्र उसका दर्शन करता हूँ। वह अनेक वृक्षों से उपशोभित अंगों वाली तथा गज, अश्व और विहगों से समावृत थी। जिस प्रकार से पहिले वीर को प्राप्त होकर देवी के समीप में अमर कण्टक में समास्थित हो गया और उसी भाँति सम्यक् प्राप्त हुए सौख्य वाले आत्मा को सुख पूर्वक उपविष्ट होकर देखता

हूँ। उसी प्रकार से परम पुण्यमय एवं अमल जल के वहन करने वाली को देखकर फिर कल्प के परिक्षय में भी अम्बा की भाँति अनुकम्पा करती हुए लोलता रहित जल वाली विरजा भार्या को शोक रहित होकर देखता हूँ। जो द्विजेन्द्र इस प्रकार से इस महान् पुण्यतम महा वराह महेश्वर के कल्प को पढ़ते हैं और श्रवण करते हैं वे दिन—दिन में विमल हो जाया करते हैं। वे सैंकड़ों और सहस्रों अशुभों का विनाश करके प्रपन्न हुए देवों से सेवित और सिद्ध तथा गन्धर्वों से समन्वित स्वर्ग के परम सुख का उपभोग किया करते हैं जो स्वच्छ चन्द्र के तुल्य प्रभा-राशि के साथ विविध प्रकार के विलासों से युक्त होता है ॥५७-६१॥

६३—मेघनादतीर्थमाहात्म्यवर्णन

जलमध्ये महादेवः केनतिष्ठति हेतुना ।
उत्तरं दक्षिणं कूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तम ॥१
एतदाख्यानमतुलं पुण्यं श्रुतिसुखावहम् ।
पुराणे यच्छ्रुतं तात तत्तं वक्ष्याम्यशेषतः ॥२
त्रेतायुगे महाभाग रावणो देवकण्टकः ।
त्रैलोक्यविजयी रौद्रः सुरासुरभयङ्करः ॥३
देवदानवगन्धर्वैश्च पिभिश्च तपोधनैः ।
अवध्योऽस्य विमानेन यावत्पर्यटतेमहीम् ॥४
तावद्विन्ध्यगिरेर्मध्येदानवोबलदर्पितः ।
मयोनामेतिविख्यातोगुहावासी तपश्चरन् ॥५
तस्य पार्श्वंगतो रक्षो विनयादवनिगतः ।
पूजितो दानसन्मानैरिदं वचनमब्रवीत् ॥६
कस्येयं पद्मपत्राक्षी पूर्णचन्द्रनिभानना ।
किंनामधेया तपति तप उग्रं कथं विभो ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! महादेव जल के मध्य में उत्तर और दक्षिण कूल को वर्जित करके किस हेतु से स्थित रहा करते हैं ? श्रीमार्क-

पुलस्त्यजी ने कहा—यह आख्यान तो बहुत ही अनुपम है और परम पुण्य पूर्ण है तथा श्रवणों को सुख प्रदान करने वाला है। हे वत्स! पुराण में मैंने जो कुछ भी सुना है उन सबको मैं आपको बतलाता हूँ। हे महाभाग! त्रेतायुग में देवों के लिये कण्टक रावण हुआ था जो त्रिलोकी को पराजित कर विजय प्राप्त करने वाला, महान् रौद्र और सुर, असुर सबके लिये बहुत ही भयङ्कर था। वह देवों, दानवों, गन्धर्वों, ऋषियों और तपोधनों के द्वारा वध करने के योग्य नहीं था। वह विमान के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी पर पर्यटन किया करता था। जैसे ही वह पर्यटन कर रहा था वैसे ही विन्ध्य गिरि के मध्य में एक बल के दर्प वाला मय नाम वाला दानव था जो परम प्रसिद्ध था और गुफाओं में निवास करते हुए तपश्चर्या कर रहा था। उसके समीप में जाकर राक्षस ने विनय से अवनत होकर भूमि में प्रणिपात की थी। दान और सम्मानों के द्वारा उसकी पूजा की थी और अन्त में उसने मय से यह वचन कहा था—यह उत्पल दल के समान नेत्रों वाली तथा पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली यह क्या नाम वाली है, हे विभो! यह क्या ऐसी उग्र तपश्चर्या कर रही है? ॥१-७॥

दानवानां पतिः श्रेष्ठो मयोऽहं नाम नामतः।
भार्या तेजोवती नाम तस्यास्तु तनया शुभा ॥८
मन्दोदरीति विख्याता तपस्तप्तं भर्तृकारणात्।
आराधयन्ती भर्तारमुमयाऽऽदयितं शुभम् ॥९।१०
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य रावणो मदमोहितः।
प्रहृष्टः प्रणतो भूत्वा मयं वचनमब्रवीत्।
पौलस्त्यान्वयसञ्जातो देवदानवदर्पहा।
प्रार्थयामि महाभाग सुतां त्वं दातुमर्हसि ॥११
तस्यार्पिता महद्वृत्तं मयेनाऽपि महात्मना।
रावणाय सुता दत्ता शुभमित्याविधानतः ॥१२
गृहीत्वा तां तदा रक्षोऽभ्यर्च्यमानो निशाचरैः।
देवोद्याने विमानस्थः क्रीडते स तया सह ॥१३

केनचित्त्वथ कालेन रावणो लोकरावणः।
पुत्रवतां श्रेष्ठो जनयामास भारत ॥१४

मय ने कहा—दानवों का परम श्रेष्ठ पति नाम से मय नाम वाला हूँ। मेरी भार्या तेजोवती नाम वाली है और उसकी यह शुभा पुत्री है। इसका नाम मन्दोदरी प्रसिद्ध है और यह अपने स्वामी की प्राप्ति के लिये ही तपस्या कर रही है। उमा देवी के परम शुभ स्वामी की आराधना करती हुई अपने भर्ता की कामना करती है। मद से मोहित रावण उसके इस वचन का श्रवण करके परम प्रसृत एवं प्रणत होकर मय से यह वचन बोला था—मैं पौलस्त्य वंश में समुत्पन्न हुआ हूँ और मैंने देवों तथा दानवों के दर्प का भली भाँति हनन किया है। हे महाभाग ! मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि इस अपनी सुता को आप मुझे देने के योग्य हैं। महात्मा मय ने भी पितामह (पुलस्त्य) के वृत्त को समझकर उस मन्दोदरी अपनी पुत्री को विधि पूर्वक पूजकर रावण के लिये दे दिया था। उस समय में निशाचरों के द्वारा अभ्यर्च्य मान होता हुआ वह राक्षस रावण उस समय में उस मन्दोदरी को ग्रहण करके फिर देवोद्यान में विमानों के द्वारा उस मन्दोदरी के साथ क्रीडा किया करता था। हे भारत ! कुछ समय व्यतीत होते हुए उस लोकों को भयभीत करने वाले उस रावण ने भी पुत्रवालों में परम श्रेष्ठ था, पुत्र समुत्पन्न किया था ॥८-१४॥

तेनैवजातमात्रेणरावो मुक्तोमहात्मना।
सम्वर्त्तकस्यमेघस्य तेन लोकाजडीकृताः ॥१५
श्रुत्वातन्नदितं घोरं ब्रह्मालोकपितामहः।
नाम चक्रे तदा तस्य मेघनादोभविष्यति ॥१६
एवं नामा कृतसोऽपि परमं व्रतमास्थितः।
तोषयामास देवेशमुमया सह शङ्करम् ॥१७
व्रतैर्न्नियमदानैश्च होमजाप्यविधानतः।
कृच्छ्रचान्द्रायणैर्नित्यं कृशं कुर्वन्कलेवरम् ॥१८

एवमन्यद्दिने तात ! कैलासं धरणीधरम् ।
गत्वा लिङ्गद्वयं गृह्य प्रस्थितो दक्षिणामुखः ॥१९

नर्मदातटमाश्रित्य स्नातुकामो महाबल. ।
निक्षिप्य पूजयन्देव कृतजाप्यो नरेश्वर ! ॥२०

तत्रायतनपाशेन स्नातो हुतहुताशन ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मानयित्वा निशाचरः ॥२१

महात्मा उस पुत्र ने समुत्पन्न होते ही एक परम भयानक राव अर्थात् ध्वनि की थी। वह राव सम्पूर्ण भय करने वाला था और उसने समस्त लोकों को भयभीत बना दिया था। उस परम घोर ध्वनि को सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस समय में यह मेघनाद होगा—ऐसा नाम कर दिया था। इस प्रकार का नाम प्राप्त करने वाला वह भी परम तप में समास्थित हो गया था। उसने भी उमादेवी के सहित देवेश्वर शङ्कर को अपनी तपश्चर्या से तोषित कर दिया था। व्रत—नियम—दान—होम—जाप्य—और कृच्छ्र चान्द्रायणों के विधि विधान से करते हुए उसने अपने कलेवर को बहुत ही कृश कर दिया था। हे तात ! इस प्रकार से अन्य दिन में धरणीधर कैलास पर जाकर लिङ्ग द्वय को ग्रहण करके वह दक्षिण दिशा की ओर अभिमुख होकर प्रस्थान कर गया था। नर्मदा नदी के तट पर हे नरेश्वर ! वह पहुँच कर महान् बलवान् स्नान करने की इच्छा वाला हो गया था। वहीं पर देव का स्थापित कर उनकी पूजा करता हुआ जाप करने लगा था। वहाँ पर आयतन पाश के द्वारा स्नान करने वाला तथा अग्नि में हवन करता हुआ वह निशाचर अपने आपको कृत कृत्य मानकर हे नृप श्रेष्ठ ! वह नक्षत्र परम मार्ग से गमन करने की इच्छा वाला हो गया था ॥१९-२१॥

गन्तुकामं परं मार्गं ऽकाशा नृपसत्तम ! ।
एकमुद्धरतो लिङ्गं प्रणतं सव्यपाणिना ॥२२

द्वितीयं तु द्वितीयेन भक्त्या पौलस्त्यनन्दनः ।
तावदेव महालिङ्गं पतितं नर्मदाम्भसि ॥२३

याहियाहीति चेत्युक्त्वा जलमध्ये प्रतिष्ठितः ।
नमित्वा रावणिस्तस्य देवस्य परमेष्ठिनः ॥२४
जगामाकाशमाविश्य पूज्यमानोनिशाचरैः ।
तदाप्रभृतितत्तीर्थंमेघनादेतिविश्रुतम् ॥२५
पूर्वं तु गर्जनं नाम सर्वपापक्षयंकरम् ।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र ! यस्तु स्नानं समाचरेत् ॥२६
अहोरात्रोपितोभूत्वाश्वमेधफलंलभेत् ।
पिण्डदानं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥२७
यत्फलं सत्रयज्ञे न तद्भवेन्नाऽत्र संशयः ।
तेन द्वादशवर्षाणि पितरः सम्प्रतर्पिता ॥२८

यह पौलस्त्य नन्दन एक लिङ्ग को प्रणत होते हुए सव्यपाणि से उद्धृत कर रहा था और दूसरे को भक्ति पूर्वक दूसरे हाथ से उतार रहा था। उतने ही मे वह महालिङ्ग नर्मदा के जल मे गिर गया था। "आओ—आओ"—यह कहकर जल के मध्य में उसकी प्रतिष्ठा करदी था। रावण के पुत्र मेघनाद ने उस परमेष्ठी देव को प्रणाम करके फिर वह निशाचरों के द्वारा पूज्यमान होता हुआ आकाश मे प्रविष्ट होकर चला गया था तभी से लेकर यह तीर्थ 'मेघनाद तीर्थ'—इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था। पहिले तो गर्जन नाम था जो सब पापो के क्षय करने वाला था। हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ मे जो कोई स्नान करता है और अहोरात्र उपोषित होता है वह अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। हे नराधिप ! जो कोई उस तीर्थ मे पिण्ड दान किया करता है उसका फल सत्र यज्ञ के तुल्य होता है—इसमे लेशमात्र भी संशय नही है। इस के करने से पितृगण बारह वर्ष तक सतर्पित हो जाया करते हैं ॥२२-२८॥

यस्तु भोजयते विप्रं षड्साऽन्नेनभारत ! ।
अक्षयं पुण्यमाप्नोति तत्र तीर्थे नरोत्तम ॥२९
प्राणत्यागं तु यः कुर्याद्भावितो भावितात्मना ।
स वसेच्छांकरे लोके यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३०

एषा ते नरशार्दूल ! गर्जनोत्पत्तिरुत्तमा ।
कथिता स्नेहबन्धेन सर्वपापक्षयकरी ॥३१

हे भारत जो कोई वहाँ पर षट्रसों वाले अन्न से विप्र को भोजन कराता है हे नरोत्तम ! उस तीर्थ में वह अक्षय पुण्य प्राप्त किया करता है। भावित आत्मा के द्वारा भावित होते हुए जो वहाँ पर प्राणों का त्याग किया करता है वह मनुष्य जब तक समस्त भूतों का सम्प्लव होता है तब तक भगवान् शङ्कर के लोक में निवास किया करता है। हे नरशार्दूल ! यह इस गर्जनोत्पत्ति नामक तीर्थ की उत्तम उत्पत्ति आपको बतलादी है। मैंने स्नेह के बन्धन के कारण ही यह बतलायी है। यह सम्पूर्ण प्रकार के पापों का क्षय कर देने वाली है ॥२९-३१॥

६४—भीमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयकरम् ।
सेवितं ऋषिसङ्घैश्च भीमव्रतधरैः शुभैः ॥१
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा शौचवासो जितेन्द्रियः ।
जपेदेकाक्षरं मन्त्रमूर्ध्वबाहुर्दिवाकरे ॥२
सप्तजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
सप्तजन्मार्जितं पापं गायत्र्या नश्यते ध्रुवम् ॥३
दशभिर्जन्मभिर्जातं शतेन तु पुराकृतम् ।
सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति किल्बिषम् ॥४
वैदिकं लौकिकं वापि जाप्यं जप्तं नरेश्वर ।
तत्क्षणाद्भस्मतां सर्वं तृणं तु ज्वलनाद्यथा ॥५
न वै बलमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् ।
अज्ञानात्क्रियते क्षिप्रं ज्ञात्वा तु कदाचन ॥६
तत्र तीर्थे तु यो दानं शक्तिमाश्रित्य चाचरेत् ।
तदक्षय्यफलं सर्वं जायते पाण्डुनन्दन ! ॥७

श्रीमार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर भीम व्रतों के धारण करने वाले परम शुभ ऋषियों के संघों के द्वारा सेवित भीमेश्वर नाम

वाले तीर्थ पर गमन करना चाहिए जो समस्त पापों के क्षय करने वाला है। उस तीर्थ पर जो भी कोई स्नान करके अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखते हुए उपवास करता है और सूर्य की ओर बाहुओं को ऊँचा उठाकर एकाक्षर मन्त्र का जाप किया करता है उस मनुष्य के पूर्व जन्मों में अर्जित किये हुए समस्त पाप उसी क्षण में नष्ट हो जाते हैं। गायत्री के जाप से तो सात जन्मों के पापों का निश्चय ही विनाश हो जाया करता है। दस बार गायत्री का जाप करने से इसी जन्म में जो पाप किये हैं उनका नाश होता है—सौ बार जप करने से पूर्व में किये हुए पापों का क्षय हुआ करता है और एक सहस्र बार जप करने से तीन जन्मों के किये हुए पापों का विनाश गायत्री कर दिया करती है। हे नरेश्वर! वैदिक अथवा लौकिक जाप्य का किया हुआ जप उसी क्षण में तिनकों के ढेर को अग्नि के समान समस्त पापों को नष्ट कर देता है। देव का बल प्राप्त करके कभी भी पाप का समाचरण नहीं करना चाहिए। जो पाप अज्ञान वश बन गया है वह तो तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है और ज्ञान पूर्वक जान बूझकर किया जाता है वह कभी नष्ट नहीं करता है। उस तीर्थ में जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार दान करता है हे पाण्डु नन्दन! उस दान का भी अक्षय्य फल हुआ करता है जो कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥१-७॥

६५—नरादेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनारदेश्वरमुत्तमम्।
तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥१
नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्मात्तीर्थं विनिर्मितम्।
एतदाख्याहि मे सर्वंप्रसन्नोयदिसत्तम! ॥२
परमेष्ठिसुतः पार्थ! नारदो मुनिसत्तमः।
रेवायाश्चोत्तरे कुले तपस्तेन पुरा कृतम् ॥३
नवनाडीनिरोधेन काष्ठावस्थां गतेन च।
तोषितः पशुभर्त्ता वै नारदेन युधिष्ठिर! ॥४

तुष्टोऽहं तव विप्रेन्द्र ! योगिनाथ अयोनिज ।
वरं प्रार्थय मे वत्स यत्ते मनसि वर्तते ॥५
त्वत्प्रसादेन मे शम्भो योगश्चैव प्रसिध्यतु ।
अचलात्वेभवेद्भक्ति सर्वकालं ममैव तु ॥६
स्वेच्छाचारी भवे देव वेदवेदाङ्गपारग ।
त्रिकालज्ञो जगन्नाथगीतस्तोऽहं सदा भवे ॥७

श्री महर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त परमोत्तम नारदेश्वर नामक तीर्थ पर गमन करना चाहिए । यह सभी अन्य तीर्थों में अति श्रेष्ठ तीर्थ है और इसको स्वयं देवर्षि श्री नारदजी ने ही बनाया था । युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो हे सत्तम ! मुझे यह सभी बतलाइये कि नारदजी ने इस तीर्थ का निर्माण किस कारण से किया था । श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—उन परमेष्ठी ब्रह्माजी के पुत्र मुनियों में परम श्रेष्ठ नारदजी ने हे पार्थ ! रेवा नदी के उत्तर तीर पर पहिले तपस्या की थी । हे युधिष्ठिर ! नव नाड़ियों के निरोध करने से काष्ठावस्था में प्राप्त हुए श्री नारद ने पशुपति प्रभु को परम तोषित कर दिया था । श्री ईश्वर ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप तो योगियों के भी स्वामी हैं । हे अयोनिज ! मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । हे वत्स ! अब जो भी कुछ आपके मन को सुहाता हो वही वरदान मुझसे प्राप्त कर लो । देवर्षि श्री नारद ने कहा—हे शम्भो ! आपके प्रसाद से मेरा योग प्रसिद्ध हो जावे और सर्वदा मेरे हृदय में आपके चरणों में अविचल भक्ति हो जावे । समस्त वेदों और वेदों के सम्पूर्ण अंग शास्त्रों का पारगामी होकर मैं स्वेच्छया जहाँ भी चाहूँ वहीं भ्रमण करने वाला हो जाऊँ । त्रिकाल की बातों का ज्ञाता और सदा जगत के स्वामी का गुण गान करने वाला हो जाऊँ ॥१-७॥

दिने दिने यथा पुष्टं देवदानवमानुषे ।
पाताले मर्त्यलोके वा स्वर्गे वापि महेश्वर ॥८
पश्येयं त्वत्प्रसादेन भवन्तं पार्वतीं तथा ।
तीर्थं लोके प्रविख्यातं सर्वपापक्षयंकरम् ॥९

एवं नारद ! सर्वं तु भविष्यति न संशयः ।
चिन्तितं मत्प्रसादेनसिद्धियस्येनात्रसंशयः ॥१०
स्वेच्छाचारो भवेवंत्स स्वर्गं पातालगोचरे ।
मर्त्ये वा भ्रम वै योगिन्न केनाऽपि निवार्यसे ॥११
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशत्प्रसादान्मे तव ध्रुवम् ॥१२
मम प्रिय करं दिव्यं नृत्यगीतं भविष्यति ।
कलिं च पश्यसेनित्यं देवदानवकिन्नरैः ॥१३
त्वत्तीर्थं भूतले पुण्यं मत्प्रसादाद्भविष्यति ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ह्यशेषज्ञानकोविद. ।
एकस्त्वमसि निः सङ्गो मत्प्रसादेन नारद ॥१४

हे महेश्वर ! पाताल में—स्वर्ग मे और मनुष्य लोक में जो आये दिन देवो के, दानवो के और मनुष्यों के युद्ध हो वे सब मैं आपके प्रसाद से देख लिया करूं तथा सदा आपको और जगदम्बा पार्वती का भी दर्शन प्राप्त किया करूँ । यह लोको मे अति विख्यात तीर्थ हो जावे जो सभी पापो का क्षय करने वाला बन जावे । श्री ईश्वर ने कहा—हे नारद ! इसी प्रकार से मेरे प्रसाद से यह आपके द्वारा सोचा हुआ सभी कुछ हो जायगा—इसमे कुछ भी संशय नही है । यह सभी सिद्ध होगा—इसमें संशय का कोई भी अवसर नही आवेगा । हे वत्स ! आप स्वेच्छा से समाचरण करने वाले हो जाओगे चाहे जहां भी स्वर्ग-पाताल और गोचर स्थल एवं मनुष्य लोक मे भ्रमण करो । हे योगिन् ! आपका निवारण किसी के भी द्वारा नहीं किया जायगा । षड्ज आदि सातों स्वर—तीनों ग्राम—इक्कीस मूर्च्छनाएं और उनचास तान ये सभी मेरे प्रसाद से आपको ज्ञात हो जायेंगे—यह परम निश्चित है ॥८-१२॥ आपका नृत्य और गीत मेरी दिव्य प्रीति के करने वाला होगा । देव दानवों तथा किन्नरो के द्वारा होने वाले कलह को आप नित्य ही देखा करेंगे । यह आपके नाम से प्रसिद्ध तीर्थ भी मेरी कृपा से परम विख्यात बन जायगा । हे नारद ! आप वेदो और वेदांगों के तत्वों के ज्ञाता तथा अशेष ज्ञान के

महा मनीषी ज्ञाता हो जायेंगे । आप एक ही शत्रु रहित होकर मेरे प्रसाद से विचरण करने वाले होंगे ॥१३-१४॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो नारदस्तत्र शूलिनम् ।
स्थापयामास राजेन्द्र सर्वलोकोपकारकम् ॥१५
पृथिव्यामुत्तमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ।
तत्र तीर्थं नृपश्रेष्ठ यो गच्छेद्विजितेन्द्रियः ॥१६
मासि भाद्रपदे पार्थ । कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
उपोष्य परया भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥१७
अन्नं तत्र प्रदातव्यं ब्राह्मणे शुभलक्षणे ।
यस्केचत्तु हता येवै तेषां श्राद्धं प्रदापयेत् ।
ते यान्ति परमं लोकं पिण्डदानप्रभावतः ॥१८
कपिलातत्रदातव्यापितॄनुद्दिश्यभारत ।
इत्युच्चार्य द्विजेन्द्रेभ्यायान्तु ते परमांगतिम् ॥१९
तस्य श्राद्धस्य भावेन ब्राह्मणस्यप्रसादतः ।
तथा दानोपभावेनन्यायार्जितधनस्यच ।
तेषां चैव प्रभावेण प्रेता यान्तु परां गतिम् ॥२०
इत्युच्चार्य द्विजे देया दक्षिणा च स्वशक्तितः ।
हविष्यान्नं विशालाक्ष ! द्विजानां चैव दापयेत् ॥२१

देवेश्वर भगवान् शम्भु इतना कहकर वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे और वहाँ पर फिर देवर्षि श्री नारदजी ने इस धरातल में यह परम उत्तम तीर्थ निर्मित किया था । हे नृप श्रेष्ठ ! इस तीर्थ में जो भी कोई गमन किया करता है और इन्द्रियों को जीत लिये वाला होता है । हे पार्थ ! इस उत्तम तीर्थ में गमन करने का श्रेष्ठ समय भाद्रपद मास होता है । भाद्रपद में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि में यहाँ पहुँचकर उपवास कर और परम उत्कृष्ट भक्ति की भावना से रात्रि में जागरण करना चाहिए । किसी शुभ लक्षणों से युक्त ब्राह्मण को अन्न का दान करे । जो कोई भी शस्त्रों के द्वारा निहित हुए हों उनके लिए यहाँ पर श्राद्ध देना चाहिये । यहाँ पर पिण्डदान करने का ऐसा प्रभाव होता है कि वे सब परमोत्तम लोक

को चले जाया करते हैं। हे भारत! वहाँ पर अपने पितरों का उद्देश्य लेकर कपिला गौ का दान करना चाहिये। उस समय मेरा सा उच्चारण भी करे कि मेरे पितृगण इस कपिला के दान के प्रभाव से परम गति को प्राप्त होवें। इस श्राद्ध के प्रभाव से—ब्राह्मण की कृपा से—नर्मदा के जल के भाव से न्याय से उपार्जित धन से किया हुआ दान-पुण्य और उनके प्रभाव से सभी प्रेत परम गति को प्राप्त करें—ऐसा उच्चारण करके अपनी शक्ति अनुसार द्विज को दक्षिणा देनी चाहिये। हे विशालाक्ष! द्विजों को हविष्यान्न देना चाहिए ॥१९-२१॥

दीपं भक्त्या प्रदातव्यं नृत्यं गीतं च कारयेत् ।
अवाप्तं तेन वै सर्वं यः करोतीश्वरालये ॥२२
स याति रुद्रसान्निध्यमिति रुद्रः स्वयं जगौ ।
विद्यादानेन चैकेन अक्षया गतिमाप्नुयात् ॥२३
पूर्वंहात्तत्रदातव्याभूमि सस्यवती नृप ।
चित्रभानुं शुभैर्मन्त्रैःप्रीणयेत्तत्रभक्तितः ॥२४
आज्येन सुप्रभूतेन होमद्रव्येणभारत ।
ये यजन्ति सदा भक्त्या त्रिकालं नृत्यमेव च ॥२५
तीर्थं नारदनामाख्ये रेवायाश्चोत्तरे तटे ।
चित्रभानुमुखादेवाः सर्वदेवमयो ऋषिः ॥२६
ऋषिणा प्रीणिताः सर्वे तस्मात्त्रैलोक्योहुताशनः ।
पूजितो हव्यवाहे तु दारिद्र्यं नैव जायते ॥२७
धनेन विपुला प्रीतिर्जायते प्रतिजन्मनि ।
कुलीनाश्च सुवेषाश्च सर्वकालं धनेन तु ॥२८

परम भक्ति की भावना से दीप दान करे, नृत्य और गान भी करना चाहिए। उस ईश्वर के आलय में जो भी कोई ऐसा करता है उसने सभी कुछ प्राप्त कर लिया है। वह अन्त समय में भगवान् रुद्र की सन्निधि प्राप्त किया करता है, ऐसा भगवान् रुद्र ने स्वयं कहा था। एक विद्या के दान से मनुष्य अक्षय गति को प्राप्त किया करता है। हे नृप! वहाँ पर सस्यवती पूर्वाह्ण भूमि का दान करना चाहिये। वहाँ पर भक्ति के भाव से

शुभ मन्त्रों के द्वारा चित्रभानु को प्रणाम करना चाहिए। घृत से, प्रभूत होम के द्रव्य के द्वारा हे भारत! जो लोग सदा भजन किया करते हैं और त्रिकाल में नृत्य करते हैं। रेवा नदी के उत्तर तट पर नारद नाम वाले तीर्थ में चित्रभानु जिनमें प्रणाम है ऐसे सब देवता हैं और सब देवों से परिपूर्ण भूमि है। ऋषि के द्वारा समस्त देवों को प्रणाम किया गया था। इससे हुताशन को अर्थात् अग्नि देव को प्रसन्न करना चाहिए। इस प्रभु के (अग्नि के) पूजित करने पर मनुष्य को दरिद्रता कभी नहीं हुआ करती है। धन के प्रति जन्म में बहुत अधिक प्रीति हुआ करती है। धन से कुलीन और सभी कामों में सुन्दर रूपों वाले होते हैं ॥२७-२८॥

प्लवो नदीनां पतिरङ्गनानां राजा च सद्वृत्तरतः प्रजानाम्।
धनं नराणामृतवस्तरूणां गतं गतं यौवनमानयन्ति ॥२९
धनदत्वं धनेशेन तस्मिंस्तीर्थे ह्युपार्जितम्।
यमेन च यमत्वं हि इन्द्रत्वं चैव वज्रिणा ॥३०
अन्यैरपि महीपालैः पार्थिवत्वमुपार्जितम्।
नारदेश्वरमाहात्म्याद् ध्रुवो निश्चलतां गतः ॥३१
सर्वतीर्थेश्वरं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु।
पृथिव्यां सागरान्तायां रेवायाश्चोत्तरे तटे।
तदिदं सर्वतीर्थानां महापातकनाशनम् ॥३२

नदियों का प्लव—अङ्गनाओं का पति, प्रजाओं का सद्वृत्त में रमण करने वाला राजा—मनुष्यों का धन तरुओं को ऋतुएं गत-गत यौवन को प्राप्त किया करते हैं। धनेश कुबेर ने धनद का पद उसी तीर्थ में उपार्जित किया था—यमराज ने यमत्व होने का पद तथा वज्री ने इन्द्रत्व का पद तथा अन्य महीपालों ने भी पार्थिव होने का पद उपार्जित किया था। नारदेश्वर प्रभु के माहात्म्य ही से ध्रुव निश्चल पद को प्राप्त हुआ था इस प्रकार से देवर्षि श्री नारदजी ने यह तीर्थ समस्त अन्य तीर्थों से परम श्रेष्ठ निर्मित किया है। इस सागरों का समाप्ति वाली पृथिवी में रेवा नदी के उत्तर दिशा वाले तट पर इस तीर्थ की प्रतिष्ठा हुई है जो

सब तीर्थों मे श्रेष्ठतम है और सभी महापातकों के भी विनाश करने वाला है ॥२९-३२॥

९६—दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तीर्थद्वयमनुत्तमम् ।
दधिस्कन्दं मधुस्कन्दं सर्वपापक्षयकरम् ॥१
दधिस्कन्दे नरः स्नात्वा यस्तु दद्याद् द्विजे दधि ।
उपतिष्ठे ततस्तस्य सप्तजन्मनि भारत ! ॥२
न व्याधिनं जरा तस्य च शोको नैव मत्सरः ॥३
मधु स्कन्देऽपि मधुना मिश्रितान्यस्तिलान्ददेत् ॥४
मधुनासह सम्मिश्रं पिण्डं यस्तुप्रदापयेत् ।
तस्यपौत्रप्रपौत्रेष्योदारिद्रंयनंवजायते ॥५
दधिभिः सहस मिश्रं पिण्ड यस्तु प्रदापयेत् ।
तस्मिस्तीर्थे नर. स्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुखः ॥६
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
द्वादशाब्दानि तृप्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥७

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर दधिस्कन्द और मधुस्कन्द नामक तीर्थद्वय को गमन करे। यह दोनो तीर्थ सभी पापों का क्षय करने वाले हैं। प्रथम मनुष्य दधि स्कन्द मे स्नान करे, ब्राह्मणों को दही का दान दे। उस जगह उपनिष्ठ रहने पर हे भारत ! सात जन्मों तक कोई व्याधि, वृद्धावस्था, शोक एवं मत्सर के व्याप्ति नहीं होती ॥१-३॥ फिर मधुस्कन्द मे मधु मे तिल मिलाकर दान दान दे। तथा मधु से मिश्रित पिंड प्रदान करे तो उसके पौत्र-प्रपौत्र भी दरिद्री नहीं होते। यदि दही मिलाकर पिण्ड दे और स्नान कर विधिवत् दक्षिणा दे तो उसके पिता, पितामह और प्रपितामह आदि बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं इसमे विचार करने की कोई बात नहीं है ॥४-७॥

८७—सुवर्णशिलातीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेन्महीपाल सौवर्णशिलमुत्तमम् ।
प्रख्यातमुत्तरे कूले सर्वपापक्षयंकरम् ॥१
समन्ताच्छत्रपातेन मुनिसंघैः पुराकृतम् ।
रेवायां दुर्लभं स्थानं सङ्गमस्य समीपतः ॥२
विभक्तं हस्तमात्रं च पुण्यक्षेत्रं नराधिप ।
सुवर्णशिलके स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ॥३
नत्वा तु भास्करं देवं होतव्यं च हुताशने ।
बिल्वेनाऽऽज्यविमिश्रेण बिल्वपत्रैरथाऽपि वा ॥४
प्रीयतां मे जगन्नाथो व्याधिर्नश्यतु मे ध्रुवम् ।
द्विजाय काञ्चनं दत्तं यत्फलं तच्छृणुष्व मे ॥५
बहुसुवर्णस्य यत्प्रोक्तं यागस्य फलमुत्तमम् ।
तथाऽऽप्नोति भक्तः सर्वं काञ्चनं यः प्रयच्छति ॥६
तेन दानेन पूतात्मा मृतः स्वर्गमवाप्नुयात् ।
रुद्रस्यानुचरस्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥७
ततः स्वर्गावतीर्णस्तु जायते विपुले कुले ।
धनधान्यसमोपेतः पुनः स्मरति तज्जलम् ॥८

श्री मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे महीपाल ! इसके उपरान्त अति उत्तम सौवर्णशिल नाम वाले तीर्थ में गमन करना चाहिये जो उत्तर कूल में प्रख्यात है और सब पापों के क्षय करने वाला है। मुनियों के संघ ने पहिले चारों ओर छत्र पात के द्वारा किया था। रेवा नदी में यह परम दुर्लभ स्थान है जो कि संगम के समीप में है। हे नराधिप ! एक हाथ परिमाण वाला पुण्य क्षेत्र विभक्त है। इस सुवर्ण शिल नामक तीर्थ में स्नान करके और महेश्वर प्रभु का अभ्यर्चन करके, भास्कर देव का नमन करके हुताशन में हवन करना चाहिए। होम घृत से मिश्रित बिल्व पत्रों से अथवा केवल बिल्व पत्रों से ही करे ॥१-४॥ यह कहना चाहिए—जगन्नाथ प्रभु मुझ पर प्रसन्न होवें और मेरी व्याधि निश्चित

रूप से नष्ट हो जावे। द्विज के लिये सुवर्ण के दान करने पर जो फल होता है उस फल का मुझसे श्रवण करो ॥४॥ बहुत स्वर्ण वाले याग को जो उत्तम फल कहा गया है उसी भाँति यह प्राप्त किया करता है जो सम्पूर्ण काञ्चन दिया करता है। उस दान से पवित्र आत्मा वाला मृत होकर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है। वह उस समय तक भगवान रुद्र का अनुचर रहा करता है जब तक चौदह इन्द्र अपना कार्य सम्पादन किया करते हैं अर्थात् चौदह इन्द्र परिवर्तित हुआ करते हैं। फिर वह अपने पुण्य फल की समाप्त हो जाने पर स्वर्ग से अवतीर्ण होकर यहाँ लोक में किसी परम उत्तम कुल में वह समुत्पन्न हुआ करता है। धन और धान्य से समन्वित हुआ वह पुनः उस जन्म का स्मरण किया करता है ॥६-८॥

९८—करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णन

करञ्जाख्ये ततो गच्छेदुपोषवासो जितेन्द्रियः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१
अर्चयित्वामहादेवं दत्वादानं तु भक्तितः।
सुवर्णं रजतं वापि मणिमौक्तिकविद्रुमान् ॥२
पादुकोपानहौ छत्रं शय्या प्रावरणानि च।
कोटि कोटिगुणं सर्वं जायतेनात्र संशयः ॥३

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! फिर करञ्ज नामक तीर्थ में उपवासपूर्वक जाकर स्नान करे तो सभी पापों से मुक्त हो जाता है। वहाँ भगवान महादेवजी का पूजन करके भक्ति सहित स्वर्ण, चाँदी, मणि, मुक्ता आदि का दान दे और पादुका, जूते, छत्री, शय्या आदि वस्तुएं श्रेष्ठ पुरुषों को दे तो यह सभी वस्तुयें करोड़ों गुनी होकर प्राप्त होती हैं, इसमें संशय नहीं है ॥१-३॥

९९—कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम्।
सौभाग्यकरणं दिव्यं नरनारीमनोरमम् ॥१

तस्माद्दुर्भगा नारी नरो वा नृपसत्तम ।
स्नात्वाऽत्र येदुमारुद्रौ सौभाग्यं तस्य जायते ॥२
तृतीयायामहोरात्रं सोपवासो जितेन्द्रियः ।
निमन्त्रयेद् द्विजं भक्त्या सपत्नीकं सुरूपिणम् ॥३
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य वस्त्रधूपाधिवासितम् ।
भोजयेत्पायसान्नेन कृसरेणाथ भक्तितः ॥४
भोजयित्वा यथान्यायं प्रदक्षिणमुदाहरेत् ।
प्रीयतां मे महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ॥५
यथा ते देवदेवेश ! न वियोगः कदाचन ।
ममाऽपि करुणां कृत्वा तथाऽस्त्विति विचिन्तयेत् ॥६
एवं कृते ततस्तस्य यत्पुण्यं समुदाहृतम् ।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि यथा देवेन भाषितम् ॥७

हे महीपाल ! इसके अनन्तर परम शोभा सम्पन्न कामद तीर्थ पर गमन करना चाहिये जो अति दिव्य सौभाग्य का करने वाला और नरों तथा नारियों के लिए बहुत ही मनोरम है। हे नृप सत्तम ! यहाँ पर इस तीर्थ में चाहे नर हो या दुर्भगा नारी हो स्नान करके उमा देवी और रुद्रदेव का अभ्यर्चन किया करता है उसका परमोत्तम सौभाग्य समुत्पन्न हो जाया करता है। तृतीया तिथि में एक पूरे अहोरात्र उपवास करके इन्द्रिय जीत रहे और भक्ति के भाव से सुन्दर रूप सम्पन्न पत्नी के सहित एक द्विज को निमन्त्रित करे। उस दम्पती को गन्ध माला आदि से सम-लंकृत करके वस्त्र धूपादि से सुवासित करे और पायसान्न से अथवा कृसर से भक्ति के साथ भोजन करावे। भोजन कराकर न्यायानुसार उस दम्पती की प्रदक्षिणा करनी चाहिये और प्रार्थना करे—पत्नी के सहित वृषध्वज भगवान् महादेव मुझ पर प्रसन्न होवें। हे देव देवेश ! मेरे ऊपर परम करुणा करते हुए ऐसा ही कीजिये कि जिससे हम दोनों का कभी भी वियोग न होवे। ऐसा ही होवे—ऐसा चिन्तन करना चाहिये। ऐसा करने पर जो उसको पुण्य फल होता है वह मैं सभी आपको बतलाता हूँ जो कि देवेश्वर ने स्वयं अपने मुख से कहा था ॥२-७॥

दौर्भाग्यं दुर्गतिश्चैव दारिद्र्यं शोकबन्धनम् ।
वन्ध्यत्वं सप्तजन्मानि जायते न युधिष्ठिर ! ॥८
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे तृतीयायां विशेषतः ।
तत्र गत्वा यो भक्त्या पञ्चाग्निं साधयेत्ततः ॥९
सोऽपि पापैरशेषैस्तु मुच्यतेनाऽत्रसंशयः ।
गुग्गुलं दहते यस्तु द्विधाचित्तविवर्जितः ॥१०
शरीरं भेदयेद्यस्तु गौर्याश्चैव समीपतः ।
तस्मिन्कर्म प्रविष्टस्यउत्क्रान्तिर्जायतेयदि ॥११
देहपाते व्रजेत्स्वर्गमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।
सितरक्तैस्तथा पीतैर्वस्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥१२
ब्राह्मणीं ब्राह्मणं चैव पूजयित्वा यथाविधि ।
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव गन्धपुष्पैः सुशोभनैः ॥१३
कण्ठसूत्रकसिन्दूरैः कुंकुमेन विलेपयेत् ।
कल्पयेत् स्त्रियं गौरीं ब्राह्मणं शिवरूपिणम् ॥१४

हे युधिष्ठिर ! उस मनुष्य को सात जन्मों तक दौर्भाग्य—दुर्गति—दरिद्रता—शोक बन्धन—बन्ध्यात्व दोष आदि नहीं हुआ करते हैं । ज्येष्ठ मास में-शुक्ल पक्ष में विशेष करके तृतीया तिथि में वहाँ पर जाकर जो भी कोई भक्ति की भावना से पञ्चाग्नियों का साधन किया करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । जो दुविधा युक्त चित्त से रहित होकर गूगल का होम किया करता है और जो गौरी के समीप में शरीर का भेदन किया करता है उसमें कर्म में प्रविष्ट हुए की यदि उत्क्रान्ति होती है तो वह उस देह के पात हो जाने पर स्वर्ग में गमन किया करता है—इस प्रकार से यह भगवान् शङ्कर ने कहा था । सफेद—लाल और पीले अनेक प्रकार के परम शुभ वस्त्रों से ब्राह्मण और ब्राह्मणी का विधि के अनुसार पूजन करके उनको अनेक प्रकार के सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से समलंकृत कर कण्ठ सूत्र धारण करावे और सिन्दूर एवं कुंकुम से विलेपन करे । उस ब्राह्मणी को साक्षात् गौरी

तथा ब्राह्मण को साक्षात् शिव स्वरूप मानने करपना करके ही सम्पर्क करना चाहिए ॥८-१४॥

तेषां तद्रूपकं कृत्वा दानमुत्सृज्यते सतः ।
कङ्कणं कर्णवेष्टं च कण्ठिकामुद्रिकास्तथा ॥१५
सप्तधान्यं तथा चैव भोजनं नृपसत्तम ।
अन्यान्यपि च दानानि तस्मिंस्तीर्थे ददाति यः ॥१६
सर्वदानेश्च यत्पुण्यं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।
सहस्रगुणितं सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥१७
शङ्करेण समं तस्माद्भोगं भुङ्क्ते ह्यनुत्तमम् ।
सौभाग्यं तस्य विपुलं जायते नात्र संशयः ॥१८
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ।
राजेन्द्र ! कामदं तीर्थं नर्मदायां व्यवस्थितम् ॥१९

उन दोनों (ब्राह्मण-ब्राह्मणी) का ऐसा रूपक करके फिर दान का उत्सृजन करना चाहिए। कङ्कण,कर्णवेष्ट, कण्ठिका,मुद्रिका, सात प्रकार के धान्य और हे नृप सत्तम ! भोजन-इनका दान करे। इनके अतिरिक्त अन्य भी जो दान उस महातीर्थ मे देता है वह समस्त प्रकार के दानों से जो पुण्य—फल होता है उसे प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१२-१६॥ यहाँ पर दिया हुआ दान सहस्र गुना हो जाया करता है-इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥१७॥ इसमें वह भगवान् शङ्कर के ही साथ मे पूर्वोत्तम भोगों का उपभोग किया करता है। उसका महान् सौभाग्य होता है-इसमें भी कुछ संशय नहीं है। जिस मनुष्य के पुत्र नहीं है वह पुत्र होने की प्राप्ति कर लिया करता है। धन निर्धन पुरुष हो वह विपुल धन का लाभ लिया करता है। हे राजेन्द्र ! इस तीर्थ का नाम 'कामद' है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है और यह तीर्थ नर्मदा मे व्यवस्थित है ॥१८-१९॥

---

१०० —भण्डारीतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! भण्डारीतीर्थ मुत्तमम् ।
दरिद्रच्छेदकरणं युगान्येकोनविंशतिः ॥१
धनदेनतपस्तप्त्वा प्रसन्ने पद्मसम्भवे ।
तत्रैव स्वल्पदानेन प्राप्तं वित्तस्यरक्षणम् ॥२
तत्र गत्वा तु यो भक्त्या स्नात्वा वित्तं प्रयच्छति ।
तस्य वित्तपरिच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति ॥३

श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त श्रेष्ठ भण्डारी तीर्थ में गमन करे । यह तीर्थ इक्कीस युगों तक की दरिद्रता का उच्छेद करने वाला है । वहाँ कुबेर का तप करता हुआ पद्मसंभव ब्रह्माजी को प्रसन्न करे तो थोड़ा-सा दिया हुआ दान ही धन की रक्षा प्राप्त कराने वाला होता है । वहाँ जाकर भक्ति पूर्वक स्नान और धन दान करे तो भविष्य में कभी भी उसका धन से विच्छेद नहीं होता अर्थात् वह कभी रंक नहीं हो पाता ॥१-३॥

१०१—स्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन

नर्मदादक्षिणेकूले तीर्थं परमशोभनम् ।
स्कन्देन निर्मितं पूर्वं तपः कृत्वासुदारुणम् ॥१
स्कन्दस्यचरितं सर्वं भाजन्मद्विजसत्तम ।
तीर्थस्यचविधिपुण्यं कथयस्वममपार्थिव ॥२
देवदेवेन वै तप्तं तपः पुत्रं युधिष्ठिर ।
विज्ञप्तेनसुरैः सर्वैरुमादेवी विवाहिता ॥३
नास्ति सेनापतिः कश्चिद्देवाना सुरसत्तम ! ।
नीयन्ते दानवैर्घोरैः सर्वे देवाः सवासवा ॥४
यथा निशा विना चन्द्रं दिवसो भास्करं विना ।
न शोभते मुहूर्तं वै तथा सेना निनायका ॥५

एवं ज्ञात्वा महादेव परया दयया विभो ।
सेनानीर्दीयतामस्माकं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥६
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं देवानां परमेश्वरः ।
कामयान उमां देवीं सस्मार मनसा स्मरम् ॥७

महामहर्षि श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—नर्मदा महानदी के दक्षिण तट पर एक अत्यन्त शोभा से सम्पन्न तीर्थ है जिसको पहिले परम दारुण तपस्या करके भगवान् स्कन्द ने निर्मित किया था । युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! भगवान् स्कन्द का जन्म से लेकर पूरा चरित और उस तीर्थ की विधि तथा पुण्य-फल यह सभी कुछ यथार्थ रूप से कहिए । श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे युधिष्ठिर ! पहिले देवों के भी देव ने अतिघोर तप का यहाँ पर तपन किया था और समस्त सुरगणों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उन्होंने उमादेवी के साथ विवाह कर लिया था । देवों ने उन देवेश्वर की प्रार्थना की थी कि हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! इस समय में देवगणों में कोई भी सेना का स्वामी नहीं है । परम घोर दानवों के द्वारा इन्द्र के सहित सब देवगण पकड़कर ले जाये जाते हैं । जिस प्रकार से रात्रि चन्द्रमा के बिना शोभित नहीं होती है और दिन भगवान् भास्कर के बिना शोभा हीन रहता है और थोड़ी देर तक भी शोभा नहीं दिया करते हैं उसी तरह से बिना किसी नायक के सेना होती है । इस तरह से समझकर हे महादेव ! हे विभो ! परम दया करके आप कोई लोकों में परम प्रसिद्ध सेनानी हमको प्रदान कीजिए । देवों के इस वचन का श्रवण करके परमेश्वर ने उमादेवी की कामना करते हुए मन से कामदेव का स्मरण किया था ॥६-७॥

तेन मूर्च्छितसर्वाङ्गः कामरूपी जगद्गुरुः ।
कामयामास रुद्राणीं दिव्यं वर्षशतं किल ॥८
देवराजस्ततो ज्ञात्वा महामैथुनगं हरम् ।
सम्मन्त्र्य दैवतैः सार्द्धं प्रेषयज्जातवेदसम् ॥९
तेन गत्वा महादेव ! परमानन्दसंस्थितः ।
सहसा तेन दृष्टोऽसौ हाहेत्युक्त्वा समुत्थितः ॥१०

ततः क्रुद्धा महादेवी शापवाचमुवाच ह।
वेपमाना महाराज श्रृणुयत्तोवदाम्यहम् ॥११
अह यस्मात्सुरैः सर्वैर्याचितापुत्रजन्मनि।
कृतारतिश्चविफलासम्प्रेष्यजातवेदसम् ॥१२
तस्मात्सर्वे पुत्रहीनाभविष्यन्तिन संशयः।
हरेणोक्तस्ततोवह्निरस्माकं बीजमावह ॥१३
यथा भवति लोकेषु तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
मम तेजस्त्वया शक्यं गृहीतुं सुरसत्तम।
देवकार्यार्थं सिद्धयर्थं नाऽन्यः शक्तो जगत्त्रये ॥१४

उसने सर्वांगों में मूर्च्छित होने वाले कामरूप जगद्गुरु ने दिव्य सौ वर्ष तक रुद्राणी की कामना की थी इसके अनन्तर देवराज ने यह जान कर कि इस समय में भगवान् हर महा मैथुन में प्रवृत्त हो रहे हैं। देवराज ने देवगणों के साथ मन्त्रणा करके जातवेदा (अग्नि) को वहाँ पर भेज दिया था। उसने वहाँ जाकर कहा—हे महादेव! इस समय में आप तो आनन्द में सस्थित हो रहे हैं। सहसा महादेवजी ने उस अग्नि को देखा तो "हा-हा"—यह कहकर वे रतिक्रिया छोड़कर उठ खड़े हुए थे। इसके पश्चात् महादेवी अत्यन्त क्रुद्ध हो गई थी और उन्होंने शाप दे दिया था। काँपते हुए महादेवी ने कहा—हे महाराज! आप श्रवण कीजिए मैं आप से कहती हूँ क्यों कि मुझसे समस्त सुरों ने याचना की थी कि मैं पुत्र को जन्म दूँ। अब इस जातवेदा को प्रेषित करके मेरी रति विफल करदी है। इसलिये ये सब देवगण पुत्र हीन हो जायगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसके पश्चात् भगवान् हर ने अग्नि से कहा—हमारे बीज को धारण करो। जैसा लोकों में होता है वैसा ही तुम करने के योग्य होते हो। यह मेरा तेज है सुरसत्तम! तुम ही ग्रहण कर सकते हो और देवों के कार्य की सिद्धि भी हो सकेगी। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य इन तीनों लोकों में कोई भी समर्थ नहीं है ॥८-१४॥

तेजसस्तव मे देवकाशक्तिर्धारणेविभो।
करोतिभस्मसात्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१५

उदरस्थेन बीजेन यदि ते जायते रुजा ।
तदा क्षिपस्व तत्तेजो गङ्गातोये हुताशन ॥१६
एवमुक्त्वा महादेवो अमोघं बीजमुत्तमम् ।
हव्यवाहमुखे सर्वं प्रक्षिप्यान्तरधीयत ॥१७
गते चादर्शनं देवे दह्यमानो हुताशनः ।
गङ्गातोये विनिक्षिप्य जगामस्व निवेशनम् ॥१८
असहन्ती तु तत्तेजो गङ्गाऽपि सरितांवरा ।
शरस्तम्बे विनिक्षिप्य जगामाऽऽशु यथागतम् ॥१९
तत्र जातं तु तद् दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः ।
कृत्तिकाः प्रेषयामासुः स्तन्यं पाययितुं तदा ॥२०
दृष्ट्वा ता आगताः सर्वा गङ्गागर्भं महामतेः ।
षण्मुखं षण्मुखो भूत्वा पिपासुरपिबत्स्तनम् ॥२१

अग्नि ने कहा—हे विभो ! हे देव ! आपके तेज को धारण करने की मुझमें क्या शक्ति है । आपका तेज तो इस सम्पूर्ण जगत् और त्रैलोक्य तथा चराचर सबको भस्मसात् कर दिया करता है । ईश्वर ने कहा—हे हुताशन ! यदि मेरे इस बीज के तुम्हारे उदर में स्थित होने पर कोई पीड़ा होतो उसी समय में उस तेज को गंगा के जल में प्रक्षिप्त कर देना । इस प्रकार से कहकर महादेवजी ने यह अपना सर्वोत्तम एवं अमोघ बीज सम्पूर्ण उस अग्नि के मुख में डाल कर वे वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे । देवेश्वर के अन्तर्हित होने पर हुताशन दह्यमान ही गया था और उसने उस महादेव के बीज को गंगा के जल में फेंककर वह अपने निजीय स्थान पर चला गया था । सरिताओं में परम श्रेष्ठ यह गंगा भी उस तेज को सहन नहीं करती हुई उसको उसने भी शरस्तम्ब में निक्षिप्त कर दिया था और जहाँ से वह आई थी वहीं पर शीघ्र चली गई थी । वहाँ पर समुत्पन्न हुए उसको देखकर इन्द्र के सहित समस्त देवों ने उस समय में स्तन पिलाने के लिये वहाँ पर कृत्तिका को प्रेषित किया था । उन सबको आई हुई इन्होंने महामति के गंगा गर्भ को देखा था कि वह स्तन पान करने की इच्छा वाला था और फिर वह षण्मुख होकर

अर्थात् छै मुखो वाला होकर उसने छै मुखो से स्तन का पान किया था ॥१९-२१॥

जातकर्मादिसंस्कारान्वेदोक्तान्पद्मसम्भवः ।
चकारसर्वान्राजेन्द्रविधिदृष्टेनकर्मणा ॥२२
षण्मुखात्षण्मुखो नाम कार्त्तिकेयस्तु कृत्तिकात् ।
कुमारश्च कुमारत्वाद्‌ग गागर्भोऽग्निजोऽपरः ॥२३
एव कुमार सम्भूतो ह्यनधीत्य स वेदवित् ।
शास्त्राण्यनेकानि वेद चचार विपुलं तप. ॥२४
देवारण्येषु सर्वेषु नदीषु च नदेषु च ।
पृथिव्या यानितीर्थानि समुद्राद्यानिभारत ॥२५
तत. पर्यययोगेन नर्मदातटमाश्रित ।
नर्मदादक्षिणे कूले चचार विपुलं तपः । २६
ऋग्यजु सामविहितं जपञ्जाप्यमहर्निशम् ।
ध्यायमानोमहादेवं शुचिर्धमनिसन्ततः ॥२७
ततो वर्षसहस्रान्ते पूर्णे देवो महेश्वर ।
उमया सहितः काले तदा वचनमब्रवीत् ॥२८

हे राजेन्द्र ! पद्म सम्भव (ब्रह्माजी) ने विधि दृष्ट कर्म के द्वारा वेदोक्त जात कर्मादि सम्पूर्ण सस्कार किये थे । छै मुख होने से इनका षण्मुख— यह नाम पड गया था और कृत्तिका से पोषण प्राप्त करने के कारण इनका नाम कार्त्तिकेय हो गया था । कुमारत्व होने से इनका नाम कुमार हुआ और गङ्गा गर्भ अग्निज ये भी दूसरे नाम थे । इस प्रकार से कुमार समुत्पन्न हुए थे । वे कुछ भी अध्ययन न करके वेदो के ज्ञाता थे वे अनेक शास्त्रो को जानते थे और उन्होने विपुल तपस्या की थी । हे भारत ! समस्त देवरण्यो मे—नदियो में, नदो मे और इस पृथिवी मे समुद्रादि जो भी तीर्थ हैं उन सबमे होकर फिर पर्य्याय (पारी) के योग से नर्मदा के तट के समाश्रित हुए थे । नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर विपुल तपश्चर्या की थी । ऋग्-यजु और सामवेदो में विहित जाप्य का जप करते हुए अहर्निश श्री महादेवजी का ध्यान करने वाले परम शुचि एव धमनि

सम्पन्न हो गये थे। इनके अनेक सहस्र वर्षों के पूर्ण होने पर अन्त में महेश्वर देव उमादेवी के साथ वहाँ पर समागत हुए और उस समय में यह वचन बोले—॥२२-२८॥

अहं ते वरदस्तात गौरी माता पिता ह्यहम् ।
वरं वृणीष्व यच्चेष्टं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२९
यदि तुष्टो महादेव उमया सह शङ्कर।
वृणोमि मातापितरौ नान्यागतिर्मम ॥ ३०
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पुत्रस्य वदनाच्च्युतम् ।
तथेत्युक्त्वा तु स्नेहेन प्रेम्णा तं परिषस्वजे ॥३१
ततस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय ह्युमयोवाच शङ्करः ॥३२
अक्षयश्चाव्ययश्चैव सेनानीस्त्वं भविष्यसि ॥३३
शिखी च ते वाहनं दिव्यरूपो
दत्तो मया शक्तिधरस्य सङ्ख्ये ।
सुरासुरादीश्च जयेति चोक्त्वा
जगाम कैलासवरं महात्मा ॥३४
गते त्वदर्शनं देवे तदा स शिखिवाहनः ।
स्थापयित्वा महादेवं जगाम सुरसन्निधौ ॥३५

ईश्वर ने कहा—हे तात! मैं आपको वरदान देने वाला आ गया हूँ। आपकी यह गौरी माता है और मैं आपका पिता हूँ। जो भी आप चाहते हैं वरदान का वरण कर लो जो तीनों लोकों में भी दुर्लभ हो षण्मुख ने कहा—हे महादेव! यदि आप मुझ पर परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हैं तो हे शङ्कर! उमादेवी के साथ मैं आपको माता पिता वरण करता हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य मेरी गति और गति नहीं है। इस अतीव शुभ वाक्य को जो कि अपने पुत्र के मुख से निकला था 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होवे—यह कहकर बड़े ही प्रेम से उनका समालिंगन किया था। इसके उपरान्त उमा के साथ उसके मस्तक का उपघ्राण करके भगवान शंकर उससे बोले—ईश्वर ने कहा—आप अक्षय-अव्यय और सेनानी होंगे। शिखी (मोर) आपका वाहन होगा। युद्ध में शक्ति के धारण करने वाले

आपको दिव्य रूप प्रदान किया है। समस्त सुरों और असुरों पर विजय प्राप्त करो—यह महात्मा श्रेष्ठ पर्वत कैलास पर चले गये थे। देवेश्वर के चले जाने पर दर्शन न होने पर उससे भय में यह शिखि वाहन महादेवजी को स्नान कराकर सुरों के समीप चले गये थे ॥२६-३५॥

तदाप्रभृति तत्तीर्थं स्कन्दतीर्थमिति श्रुतम्।
सर्वपापहरं पुण्यं मर्त्यानां भुवि दुर्लभम् ॥३६
तत्र तीर्थे तु यो राजन्भक्त्या स्नात्वाऽर्च्चयेच्छिवम्।
गन्धमाल्याभिषेकैश्च याज्ञिकं स लभेत्फलम् ॥३७
स्कन्दतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः।
तिलमिश्रेण तोयेन तस्य पुण्यफलं श्रृणु ॥३८
पिण्डदानेनचैकेन विधियुक्तेन भारत।
द्वादशाब्दानितृप्यन्तिपितरोनाऽत्रसंशयः ॥३९
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र शुभं वा यदि वा शुभम्।
इहलोकेपरेचैवतत्सर्वं जायतेऽक्षयम् ॥४०
तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्प्राणत्यागं करिष्यति।
शास्त्रयुक्तेन विधिना स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ॥४१
कल्पमेकं वसित्वा तु देवगन्धर्वपूजितः।
अत्र भारतवर्षे तु जायते विमले कुले ॥४२
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वव्याधिविवर्जितः।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥४३
इदं ते कथितं राजन्स्कन्दतीर्थस्य सम्भवम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वं दुःखघ्नमुत्तमम्।
सर्वपापहरं पुण्यं देवदेवेन भाषितम् ॥४४

तभी से यह तीर्थ 'स्कन्द तीर्थ'—इस नाम से सिद्ध हुआ है। यह तीर्थ समस्त पापों के हरण करने वाला है और परम पुण्य स्वरूप तथा इस भूमण्डल में अत्यन्त ही दुर्लभ है। हे राजन्! उस तीर्थ में जो भी कोई भक्ति भाव से स्नान करके भगवान् शिव का अभ्यर्चन किया

करता है तथा गन्ध माल्य आदि उपचारों के द्वारा अभिषेक करता है वह मनुष्य यश से समुत्पन्न फल को प्राप्त करता है। उस स्कन्द तीर्थ में जो स्नान करके पितृगण और देवों का यजन करता है तथा तिलों से मिश्रित जल से सन्तर्पण करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसे सुनो। हे भारत ! विधि से युक्त एक ही पिण्ड के दान से पितृगण बारह वर्ष तक के लिए तृप्त एवं तुष्ट हो जाया करते हैं—इस कथन में बिल्कुल भी संशय नहीं है। हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में शुभ कर्म हो या अशुभ हो वह इस लोक में और परलोक में सभी अक्षय हो जाया करता है। उस तीर्थ में जो भी कोई अपने प्राणों का परित्याग करता है और शास्त्रोक्त विधि से किया करता है वह सीधा भगवान शिव के मन्दिर में चला जाया करता है। वहाँ पर एक कल्प पर्यन्त निवास करके देवों और गन्धर्वों के द्वारा पूजित होता है। अवधि के समाप्त होने पर वह फिर भारत में किसी परम विमल कुल में समुत्पन्न होता है। वहाँ जन्म ग्रहण करके वह वेदों और वेदांग शास्त्रों के तत्वों का ज्ञाता होता है तथा सभी व्याधियों से रहित होता है। वह यहाँ पर साठ सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है तथा पुत्र-पौत्रादि से युक्त रहता है। हे राजन् ! यह आपको हमने स्कन्द तीर्थ की उत्पत्ति बतला दी है। यह परम धन्य—यश देने वाला—आयु वर्धक समस्त दुःखों का नाशक—अत्युत्तम—पुण्यमय और सभी पापों के हरण करने वाला है—ऐसा देवों के भी देव ने स्वयं अपने मुख से बतलाया है ॥२६-४४॥

१०२—अङ्गिरसतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं मांगिरसस्य तु।
उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापविनाशनम् ॥१
पुराऽऽसीदगिरानाम ब्राह्मणोवेदपारगः।
पुत्रहेतोर्गुगस्याऽऽचचारविपुलं तपः ॥२
नित्यं त्रिषवणस्नायीजपन्देवं सनातनम्।
पूजयंश्चमहादेवं कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥३

द्वादशाब्दे ततः पूर्णे तुतोष परमेश्वरः ।
वरेण च्छन्दयामास द्विजमांगिरसं वरम् ॥४
वव्रे स तु महादेवं पुत्रं पुत्रवतां वरम् ।
वेदविद्याव्रतस्नातं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥५
देवानां मन्त्रिणं राजन्सर्वलोकेषु पूजितम् ।
महालक्ष्म्याः सदावासमक्षयं चाव्ययं सुतम् ॥६

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् फिर आंगिरस तीर्थ को गमन करना चाहिए जो नर्मदा नदी के उत्तर तट पर स्थित है और समस्त पापों के विनाश करने वाला है । पुरातन समय मे अंगिरा नाम वाला एक वेदों का पारगामी ब्राह्मण था । युग के आदि काल मे उसने पुत्र की प्राप्ति के लिए बहुत भारी उग्र तप किया था । वह नित्य ही तीनों कालों मे स्नान करने वाला होकर सनातन देव [redacted] जाप किया करता था । जब बारह वर्ष पूर्ण हो गये थे तब परमेश्वर प्रभु प्रसन्न हुए थे । तब उस आंगिरस द्विज को वरदान प्रदान करने के लिये कहा था ॥१-४॥ उसने महादेवजी से पुत्रवानों मे भी परम श्रेष्ठ पुत्र होने का वरदान माँगा था जो कि वेद विद्या के व्रत मे स्नात हो और समस्त शास्त्रों का विद्वान् हो । ऐसा पुत्र होना चाहिये जो देवों का मन्त्री हो और हे राजन् ! उस अंगिरा ने समस्त लोकों मे पूजित—महालक्ष्मी का सदा आवास स्थान—अक्षय—अव्यय सुत की याचना की थी ॥१-६॥

तथाभिलषितःपुत्रः सर्वविद्याविशारदः ।
भविष्यति न सन्देहश्चं वमुक्त्वाययौहरः ॥७
वर्गरङ्गिरसश्चापि बृहस्पतिरजायत ।
यथाऽभिलषितः पुत्रो वेदवेदांगपारगः ॥८
जाते पुत्रेऽङ्गिरास्तत्र स्थापयामास शंकरम् ।
हृष्टतुष्टमना भूत्वा जगामोत्तरपर्वतम् ॥९
तत्र चांगिरसे तीर्थे यः स्नात्वा पूजयेच्छिवम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति ॥१०

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ।
इच्छते यश्च यं कामं स तं लभतिमानवः ॥११

उसी प्रकार तेरा चाहा हुआ पुत्र जो समस्त विद्याओं का विशारद होगा तुझे मिलेगा-इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है—ऐसा कहकर भगवान् शम्भु वहाँ से चले गये थे। उन शम्भु के दिये हुये वरदानों से अंगिरा के बृहस्पति पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था जो कि जैसा उनका अभिमत था वैसा ही वेद-वेदांगों का पारगामी विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ था। उस पुत्र के उत्पन्न होने पर अंगिरा मुनि ने वहाँ पर भगवान् शंकर की स्थापना की थी। फिर वह परम हृष्ट और सन्तुष्ट मन वाला होकर उत्तर पर्वत पर चला गया था। वहाँ पर उस आंगिरस तीर्थ में जो भी कोई स्नान करके भगवान् शिव का पूजन किया करता है वह सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होकर रुद्रलोक को गमन किया करता है और निर्धन मनुष्य इस तीर्थ के पुण्य-प्रभाव से अतुल धन की प्राप्ति कर लेता है। मनुष्य वहाँ पर जाकर जो भी कामना करता है उसी को पा लेता है ॥७ ११॥

१०३—कोटितीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कोटितीर्थमनुत्तमम् ।
ऋषिकोटिस्तात्र परां सिद्धिमुपागता ॥१
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणाञ्छुचिः ।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥२
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेदिह दैवतम् ।
पूजिते तु महादेवे वाजपेयफलं लभेत् ॥३

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके बाद अति उत्तम कोटि तीर्थ को गमन करे। वहाँ ऋषि कोटि में जाने पर परम सिद्धि की उपलब्धि होती है। उस तीर्थ में स्नान करके पवित्र ब्राह्मणों को भोजन करावे। यहाँ विप्रगण जितना एक बार भोजन करते हैं वह करोड़ गुना हो जाता है। उस तीर्थ में स्नान करके पितृ देवता का पूजन करे और

महादेवजी का भी पूजन करे तो वाजपेय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ॥१-२॥

---

१०४ केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णन

सप्तषष्टिकसङ्ख्याकं केदारेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
देवं शृणु वरारोहे दर्शनात्पापनाशनम् ॥१
सृष्टिकाले पुरादेवि देवा व्याप्ताहिमेनहि ।
शीतार्ताविह्वलाः सर्वे ब्रह्माणं शरणं गताः ॥२
हिमाद्रिणार्दिताः सर्वे वय देवजगत्पते ।
त्राहिभीतांश्चतुर्वक्त्रपितामहनमोऽस्तुते ॥३
देवानां वचनं श्रुत्वा प्रोक्तं वै ब्रह्मणा प्रिये ।
पीडिता हिमशैलेन शङ्करस्यानुरेग च ॥४
नाहं पातुं समर्थोऽस्मि सत्यमेतन्मयोदितम् ।
महादेवमृतेदेवागतिरन्या न विद्यते ॥५
स एव शरणं देवः सर्वेषां नो भविष्यति ।
तस्याज्ञया मया सर्वे पर्वतारचिताः पुरा ॥६
कृतासृष्टिर्विचित्रा च हिमाद्रिश्चमयाकृतः ।
अभेद्यःसर्वजन्तूनामधृष्योदुर्गमोगिरिः ॥७

ईश्वर ने कहा हे वर (श्रेष्ठ) आरोह (अङ्ग गठन) वाली ! सड़सठ संख्या वाले केदारेश्वर नाम से युक्त प्रभु हैं। उन देव के विषय में आप श्रवण करो। जिनके केवल दर्शन से ही समस्त पापों का विनाश हो जाया करता है ॥१॥ हे देवि ! प्राचीन समय में पहिले सृष्टि के समय में सब देवता लोग हिम से व्याप्त होते हुए शीत से अत्यन्त दुःखित होकर विह्वल हो गये थे। सब देवगण फिर परम पिता ब्रह्माजी की शरणागति में गये थे ॥२॥ देवों ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! हे देव ! हम सब लोग हिमाद्रि से पीड़ित हैं। हे चार मुखों वाले पितामह ! हम बड़े डरे हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिए, आपकी सेवा में प्रणाम है ॥३॥ हे

प्रिये ! देवों के इन प्रार्थना के वचनों का श्रवण करके ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगण ! आप लोग हिमवान् पर्वत से पीड़ित हैं जो कि भगवान् शङ्कर का श्वसुर है। अतएव मैं तो वहाँ जाने में समर्थ नहीं हूँ—मैंने यह बिल्कुल सत्य एवं स्पष्ट आपको बतला दिया है। हे देवगण ! महादेवजी के सिवाय वहाँ पर अन्य कोई भी दूसरी गति नहीं है ॥४-५॥ वह ही महादेवजी आप सबके रक्षा करने वाले होंगे। उनकी ही आज्ञा से मैंने पहिले इन समस्त पर्वतों की रचना की थी। मैंने यह बहुत ही अद्भुत सृष्टि की थी और इस हिमवान् पर्वत का भी सृजन मैंने ही किया था किन्तु यह गिरि हिमवान् सब जन्तुओं के सेवन करने के योग्य नहीं है। यह धमण्ड के वशीभूत और महान् दुर्गम पर्वत है ॥६-७॥

हिमाचलस्य तस्यैव शास्ता देवो महेश्वरः।
तस्माद्यास्याम हे देवाः कैलास पर्वतोत्तमम् ॥८
यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देवदेवो महेश्वरः।
एवमुक्त्वा गतो ब्रह्मा देवैः सार्द्धं ममान्तिकम्।
दृष्टोऽहं पूजितस्तैस्तु स्तुतोऽहं विविधैः स्तवैः ॥९
मया सम्मानिता देवाश्चतुर्वक्त्रः प्रपूजितः।
पूजयित्वामयापृष्टो ब्रह्मा गमनकारणम् ॥१०
किं कार्यं त्रिदशैः सार्द्धं मागतोऽसि पितामह।
कथितं ब्रह्मणा सर्वं श्रुतं सर्वं मया प्रिये ॥११
हिमाचलं समाहूय मर्यादा च कृता मया।
शैलानाराजराजत्वे हिमाद्रिश्चप्रतिष्ठितः ॥१२
देवानां विषयाश्चैव गन्धर्वाणां तथैव च।
यक्षाणामथ नागानां किन्नराणां तथैव च ॥१३
विद्याधराणां क्रीडार्थं पृथक्पृथङ् निवेशिताः।
स्नातो भाति शैलेन्द्रः शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥१४
जाह्नवीनिर्झरोपेतः शर्वाणीजनकस्तथा ॥१५

उस हिमाचल गिरि के ऊपर शासन करने वाले केवल महेश्वर देव ही हैं। हे देवगण ! इस कारण से हम सब लोग श्रेष्ठ पर्वत कैलास पर

ही थे जहाँ पर सम्पूर्ण विश्व—ब्रह्माण्ड के आत्मा—देवों के भी देव भगवान् महेश्वर साक्षात् विराजमान रहा करते हैं। इस प्रकार से देवों को समझकर भगवान् ब्रह्माजी समस्त देवगणों के साथ मेरे समीप में उपस्थित हुए थे। उन सबने मेरा दर्शन करके पूजा की और नाना प्रकार के स्तोत्रों के द्वारा मेरा उन सबने स्तवन भी किया था ॥८-९॥ हे देवि ! मैंने भी उस समय में उन सब देवताओं का आदर—सम्मान किया था और ब्रह्माजी की विशेष रूप से पूजा की थी। ब्रह्माजी से उनका वन्दन करके मैंने उनके वहाँ पर समागमन करने का कारण पूछा था ॥१०॥ मैंने पूछा—हे पितामह ! क्या कारण है कि आप इन देवगणों के साथ यहाँ पर समागत हुए हैं। ब्रह्माजी ने सब वृत्तान्त कह दिया था और हे प्रिये ! मैंने वह सब सुन लिया था ॥११॥ मैंने हिमवान् को बुलाकर एक मर्यादा स्थापित कर दी थी और समस्त शैलों का राजाधिराज उसे प्रतिष्ठित कर दिया था। वहाँ पर देवों के देव—गन्धर्वों—यक्षों—नागों और किन्नरों तथा विद्याधरों के रहने एवं क्रीड़ा—विहार करने के लिये पृथक्—पृथक् स्थान नियत कर दिये थे ॥१२-१३॥ शैलों का स्वामी हिमवान् इस लावण्य से विशुद्ध स्फटिक मणि के तुल्य ही था। गङ्गा के प्रवाह का ही उसके मस्तक पर शिरोवेष्टन वस्त्र था और वह सर्वाणी (पार्वती देवी) का जनक था ॥१४-१५॥

सर्वदेवमयो दिव्यः सर्वतीर्थमयः कृतः ।
सर्वाश्रमनिवासश्च सर्वामरनिषेवितः ॥१६

एवं संस्थाप्य शैलेन्द्रं लिङ्गमूर्तिरहंस्थितः ।
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु केदारेश्वरनामतः ॥१७
उदकं निर्मितं तत्र मन्त्रपूर्णं मया प्रिये ! ।
माहात्म्यं विविधं प्रोक्तं लिङ्गस्यचजलस्यच ॥१८
योऽत्रागत्य नरो भक्त्या सम्यङ् मां पूजयिष्यति ।
जलं योऽत्रैव गृह्णाति विधानेन वरानने ! ॥
तस्योदरे भविष्यामि लिङ्गरूपी न संशयः ॥१९

इत्युक्ते वचने देवि ! सदेवासुरपन्नगाः ।
यक्षरक्षः पिशाचाश्च भूतवेतालकिन्नराः ॥२०

विद्याधरगणाश्चैव मम दर्शनलालसाः ।
समायाता वरारोहे ! पीत्वा तत्र जलं शुभम् ।
दृष्टोऽहं विधिना तैस्तु लिङ्गमूर्त्तिगतः प्रिये! ॥२१

हिमवान् समस्त देवों से परिपूर्ण दिव्य और सम्पूर्ण तीर्थों से समन्वित बना दिया था। वह सभी आश्रमों का निवास क्षेत्र और समस्त देवो के द्वारा निवेवित हो गया था। इस तरह का उस शैलराज को प्रतिष्ठित करके मैं लिङ्ग मूर्ति वाला होकर वहीं पर स्थित हो गया था। उसी समय से तीनों लोकों मे मैं केदारेश्वर—इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था ॥१६-१७॥ हे प्रिये ! वहाँ पर मैंने मन्त्र पूर्ण उदक (जल) का निर्माण किया था। नाना प्रकार का माहात्म्य लिङ्ग का और जल का कहा गया है ॥१८॥ जो मनुष्य यहाँ पर आकर भक्ति से अच्छी रीति से मेरी पूजा करेगा हे वरानने ! जो यहीं पर विधान पूर्वक जल ग्रहण किया करता है मैं उसके उदर में लिङ्ग के रूप वाला हो जाऊँगा—इसमें संशय नहीं है ॥१९॥ हे देवि ! इस प्रकार से कहने पर समस्त देवगण—असुर—पन्नग—यक्ष—राक्षस—पिशाच—भूत—वेताल—किन्नर और विद्याधर गण मेरी दर्शन—लालसा वाले होते हुए यहाँ पर समागत हुए थे। हे वरारोहे ! उन्होंने इस शुभ जल का पान किया था। फिर हे प्रिये ! उनके द्वारा लिंग मूर्ति में स्थित मुझको विधि के सहित देखा गया था ॥२०-२१॥

मम तुल्याश्च ते जातास्तस्मिन्नद्रिवरे स्थिताः ।
जनलोकगतैः सिद्धैः पूज्यमाना वरानने ! ॥२२

अथ कालेन बहुना श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ।
केदारेश्वरदेवस्य जलस्य च विशेषतः ॥२३

मनुष्याः समुपायातास्ते रजोबहुलाशयाः ।
तमः प्रायाविशालाक्षि ! तदाहं माहिषवपुः ॥२४

कृतवांस्तद्भयार्थाय न च ते भीतिमागताः ।
इह देवोऽत्र देवोऽत्र बभ्रमुस्तेदिदृक्षवः ॥२५
न तं दृष्टो मह देवि ! यतोऽहं माहिषाकृतिः ।
स्थितोऽस्म्यलक्ष्यरूपेण ततस्ते दीनमानसाः ॥
उद्विग्ना निश्वसन्तश्च वैराग्यं परमं गता. ॥२६
नात्र देवोनतीर्थानि न गङ्गा. पुण्यदायिनी ।
न धर्मो न परो लोका सर्वमेतद्विडम्बनम् ॥२७
एवं किल पुराणेषु श्रू यते सर्वदा श्रुतौ ।
हिमालये च केदारं लिङ्गं मोक्षप्रदायकम् ॥२८

हे परम श्रेष्ठ मुख वाली ! वे सब मेरे ही समान हो गये थे और उस गिरिश्रेष्ठ पर समवस्थित हो गये थे । जनलोक में स्थित सिद्धों के द्वारा वे पूज्यमान हुए थे ॥२२॥ इसके पश्चात् जब बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया था उस समय मे केदारेश्वर देव का और विशेष रूप से जल का उत्तम माहात्म्य का श्रवण करके मनुष्यगण वहाँ पर समागत हुए थे । क्यों कि हे विशाल नेत्रों वाली ! वे सब प्राय अधिक रजोगुण वाले और तमोगुण से परिपूर्ण थे । उस समय मे मैंने माहिष रूप कर लिया था ॥२३-२४॥ यह माहिष स्वरूप मैंने उनके वध करने के लिये ही धारण किया था किन्तु वे भयभीत नही हुए थे और यही पर केदारेश्वर देव विद्यमान है"—ऐसा कहते—विचरते हुए वे मेरे दर्शन करने की इच्छा से युक्त होकर भ्रमण कर रहे थे ॥२५॥ हे देवि ! उन्होने मुझे नही देखा था क्यों कि मैं तो उस समय मे महिष की आकृति मे स्थित था । जब मैं इस प्रकार से अलक्ष्य रूप से वहाँ पर स्थित हो गया था तो वे अधिक दीन मन वाले हो गये थे और बहुत अधिक उद्वेग से युक्त होते हुए खिन्नता से लम्बी श्वास लेने लगे एवं अधिक वैराग्य उत्पन्न हो गया था ॥२६॥ वे कहने एव सोचने लगे कि न तो यहाँ पर कोई देव है न तीर्थ ही है और न पुण्य प्रदान करने वाली गगा नदी ही है । न कोई धर्म श्रेष्ठ है और परमोत्तम लोक ही है—यह सब विडम्बना मात्र ही है ॥२७॥ पुराणो मे और वेदो मे यह सर्वदा सुना

आया करता है कि हिमालय पर्वत मे मोक्ष प्रदान करने वाली केदारेश्वर भगवान् की लिंग मूर्ति विराजमान रहती है—यह क्या बात है—यह कथन यथार्थ तो नहीं होना चाहिए ॥२८॥

एवं तु वदता तेषां मानुषाणां यशस्विनि! ।
आकाशादुत्थिता वाणी मया प्रोक्तानुकम्पया ॥२९
अमार्गं मा वन्दत्स्वश्र न निन्द्याः श्रुतयोऽव्ययाः ।
पुराणं नान्यथा प्रोक्तं ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥३०
ये निन्दन्ति पुराणानि धर्मशास्त्राणि नास्तिकाः ।
ते यान्ति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३१
सदा देवोऽत्रकेदारः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ।
विद्यते त्रिदशैः पूज्यः सततं नैव दृश्यते ॥३२
करोति पूजां हिमवान्मासानष्टौ च शाश्वतान् ।
हिमाद्रिस्तेन पुण्येन नगेन्द्रस्तु कृतो नगैः ।
सेव्यश्च रमणीयश्च सर्वतीर्थनमस्कृतः ॥३३
सर्वरत्ननिधानश्च देवानां वल्लभस्तथा ।
ग्रीष्मे चैत्र वसन्ते च देवदेवोऽत्र दृश्यते ॥३४
नियतेनैव कालेन मानुषाणां च सर्वदा ।
यदिवृद्धिः परा जाता सर्वदा मम दर्शने ॥३५

हे यशस्विनि ! जब इस प्रकार से वे सब लोग परस्पर में बातें चीत कर रहे थे तो उन मनुष्यों पर मुझे दया आगई थी और उस समय में अनुकम्पा करके मेरे ही द्वारा कही गई आकाश से एक वाणी हुई थी ॥२९॥ "आप लोग यहाँ पर भिन्न मार्ग की बातें मत करो। अव्यय वेद और पुराण निन्दा करने के योग्य नहीं हैं लोकों की रचना करने वाले ब्रह्माजी ने पुराणों को असत्य नहीं लिखा एवं बतलाया है। ये सभी सत्य हैं जो नास्तिक लोग पुराणों और धर्म शास्त्रों की बुराई किया करते है और उन्हें असत्य बतलाते हैं वे महान् घोर नरक में जाकर गिरा करते हैं और यह प्रलय काल पर्य्यन्त उसी मे पड़े हुए यातनाऐं सहा करते हैं ॥३०-३१॥ भगवान् केदारेश्वर देव यहाँ पर सर्वदा ही विराजमान रहा

करते हैं जो परम पुरुषार्थ मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं तथा स्वर्ग का निवास भी दिया करते है। वे केदारेश्वर प्रभु देवों के द्वारा पूजा करने के योग्य विद्यमान हैं किन्तु सदा दिखलाई नहीं दिया करते हैं ।।३२।। यह हिमवान् पर्वत निरन्तर आठ याम तक उनकी पूजा किया करता है। उसी पुण्य के प्रभाव से इस को समस्त पर्वतों ने पर्वतों का स्वामी बना दिया है और यह परम सेव्य–रमणीय एवं सभी लोगों के द्वारा वन्द्यमान है ।।३३।। यह समस्त प्रकार के रत्नों की खान है और देवगण का परम प्रिय है। यहाँ पर ग्रीष्म एवं वसन्त ऋतु में वे देवों के भी देव दिखलाई दिया करते हैं। यदि मनुष्यों की बुद्धि मेरे दर्शन करने में सर्वदा परमोत्कृष्ट रूप से समुत्पन्न हो जाया करती है तो नियत काल में दर्शन होता है ।।३४-३५।।

आख्यास्ये तदुपायं च श्रूयतां सावधानतः।
मा विकल्पोऽत्रकर्त्तव्य सर्वान्कामानवाप्स्यथ ॥३६
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
प्रलयेऽप्यक्षयं प्रोक्तं महाकालवनं नराः ॥३७
तत्राहं सम्भविष्यामि लोकानामनुकम्पया।
लिंगरूपेणविप्रास्तत्रेपुण्ये सुशोभने ॥३८
सोमेश्वरस्य देवस्यपश्चिमे स्थानमुत्तमम्।
प्रसिद्धमुपयास्यामि केदारेश्वरनामतः ॥३९
सर्वदा दर्शनं तत्रमयासार्द्धं भविष्यति।
सर्वेषां चप्रदास्यामिसर्वान्कामान्नसंशयः ॥४०
इह यावत्फलंतस्माद्दास्यामि ह्यधिकं ततः।
इतितेमानवाः सर्व श्रुत्वावाणीमनोरमाम् ॥
आकाशादुत्थिता दिव्या मनः प्रह्लादकारिकाम् ॥४१
गता वनं महाकालं संस्मरन्तो महेश्वरम्।
विकल्पेन विचित्रेणसत्यमेवेतिनान्यथा ॥४२

मैं उसका उपाय भी अभी बतलाऊँगा। आप लोग परम सावधान होकर उसका श्रवण करो। इस विषय में तुमको अपने हृदय में किसी

प्रकार का विकल्प नहीं करना चाहिए। आप लोगों की सभी कामनाऐं परिपूर्ण होंगी ॥३६॥ हे मनुष्यो ! समस्त क्षेत्रों में अत्युत्तम क्षेत्र तथा भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला है और इस महाकाल वन को प्रलय में भी न क्षीण होने वाला कहा गया है ॥३७॥ लोगों पर कृपा करके मैं यहाँ पर शिप्रा नदी के परम पुण्यमय सुन्दर तट पर लिंग के स्वरूप में रहने वाला प्रकट होऊंगा ॥३८॥ सोमेश्वर देव के पश्चिम भाग में अत्यन्त उत्तम स्थान है मैं वहाँ पर केदारेश्वर नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होऊंगा ॥ ३९॥ वहाँ पर मेरे साथ में सर्वदा दर्शन होगा। मैं वहाँ पर सबके समस्त मनोरथों को पूर्ण कर दूंगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४०॥ यहाँ पर जितना पुण्य—फल होता है उससे भी अधिक वहाँ पर दूंगा। उन सब मनुष्यों ने आकाश में होने वाली—परम दिव्य एवं मन को प्रसन्न करने वाली परम मनोरम वाणी का श्रवण किया था और फिर सबने उन भगवान् महेश्वर महाकाल का विविध विकल्प से स्मरण करते हुए महाकाल वन में चले गये थे। सब लोग यहां कहते हुए आरहे थे कि यह बिल्कुल सत्य है और इसमें तनिक भी अन्यथा नहीं है ॥४१-४२॥

स्नात्वा शिप्राजले पुण्ये यावत्पश्यन्ति भास्करम्।
तावद्दृष्टिपथोत्पन्नं लिङ्गं पापप्रणाशनम् ॥४३
अथ ते हर्षिताः प्रोचुः केदारोऽयं न संशयः।
दृष्टोऽस्माकं न सन्देहो गंगा शिप्राजले स्थिता ॥४४
ततस्ते पूजयामासुः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा।
पूजितोऽहं विशालाक्षि तेषां तुष्टो वरानने ॥४५
दुर्लभोऽतिवरो दत्तः कैलासे स्थानमुत्तमम्।
अक्षयञ्च पदं दत्तम्पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥४६
अतोऽहं त्रिदशैः प्रोक्तः केदारेश्वरनामतः।
स्थापितः परया भक्त्या लोकानामनुकम्पया ॥४७
इहागत्य नरा ये च त्वां पश्यन्ति सुभक्तितः।
तेषां फलं त्वया देवि दातव्यमधिकं यतः ॥४८

हिमाद्रौहिमनाथस्ययात्राया प्रत्यह् फलम् ।
लभन्तेचनरानित्य नात्रकार्याविचारणा ॥४६

परम पुण्यमय शिप्रा नदी के जल मे स्नान करके जब तक भगवान् भुवन भास्कर का दर्शन करते हैं तभी तक समस्त पापो के विनाश कर देने वाले लिंग का दर्शन उन सब लोगो की दृष्टि मे समागत हो गया था अर्थात् सबने लिंगेश्वर का दर्शन प्राप्त कर लिया था ॥४३॥ इसके पश्चात् वे सब अत्यधिक प्रसन्न हुए थे और उनको यह निश्चय हो गया था कि यही भगवान् केदारेश्वर प्रभु हैं—इसमे कुछ भी संशय नहीं रहा है हम लोगो ने अब उनका दर्शन प्राप्त कर लिया है और कोई भी सन्देह करने का अवसर नही है। शिप्रा नदी के जल मे गंगा स्थित है ॥४४॥ इसके अनन्तर उन्होने अनेक तरह के पुष्पों से अर्चना की थी। हे विशाल नेत्रों वाली ! हे परम श्रेष्ठ एवं सुन्दर मुख वाली ! जब मेरी उन्होने पूजा की थी मैं उनपर तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया था ॥४५॥ मैंने उनको परमश्रेष्ठ एवं दुर्लभ वरदान दिया था—कैलाश गिरि पर उत्तम स्थान और पुनरावृत्ति (दुबारा जन्म ग्रहण करना) से रहित कभी क्षीण न होने वाला पद प्रदान किया था ॥४६॥ इसी लिये मैं देवो के द्वारा केदारेश्वर—इस नाम से पुकारा गया था और लोगो पर दया करके परम भक्ति से उन्होने मेरी प्रार्थना की थी कि जो भी मनुष्य यहाँ पर आकर भक्ति पूर्वक आपका दर्शन करते है हे देव आपके द्वारा उनको अधिक फल अवश्य ही देना चाहिए क्यो कि हिमाचल मे हिमनाथ की यात्रा का प्रतिदिन फल मनुष्य नित्य ही प्राप्त किया करते है—इसमे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नही है ॥४७-४६॥

ब्रह्महा वासुरापोवास्तेयीवागुरुतल्पगः ।
तत्सम्पर्कीनरोयस्तुत्वाद्दृष्ट्वाकिल्बिषाकरः ॥५०
सोऽपि याति परं स्थान पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
चान्द्रायणानां विधिवच्छतानां चैव यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोतिकेदारेश्वरदर्शनात् ॥५१

ते नरा: पशवो लोके तेषा जन्मनिरर्थकम् ।
यैर्न दृष्टोमहाकालेकेदारेश्वरसञ्ज्ञक ॥५२
कौमारेयौवने बाल्ये वार्द्धकेयद्दुरार्जितम् ।
तत्पापंसंक्षयं यातिकेदारेश्वरदर्शनात् ॥५३
हिमालयकृता यात्रा तस्या: प्रोक्त च यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति केदारेश्वरदर्शनात् ॥५४
इत्युक्तोऽहं तदा देवि ! देवैं प्रणतिपूर्वकम् ।
तथेति च मयाप्रोक्त तेऽपिदेवादिवं गताः ॥५५
एष ते कथितो देवि ! प्रभाव: पापनाशन ।
केदारेश्वरदेवस्य पिशाचाख्यमत: शृणु ॥५६

ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुरापान करने वाला—चोरी का कर्म करने वाला और गुरु की शय्या पर गमन करने वाला हो अथवा इन महापापात्मा पुरुषों के साथ सम्पर्क रखने वाला हो और चाहे कैसा भी किल्बिषों की खान क्यो न हो ऐसा मनुष्य दर्शन प्राप्त करके वह भी उस परम पद को प्राप्त हो जाया करता है जहाँ पहुँचकर फिर यह जीवात्मा दूसरा जन्म ग्रहण नही किया करता है। विधि पूर्वक किये हुए एक सौ चान्द्रायण व्रतों का जो फल प्राप्त होता है वही फल भगवान् केदारेश्वर के दर्शन से प्राप्त हो जाया करता है ॥५०-५१॥ वे मनुष्य इस लोक मे पशु के ही समान हैं और उनका इस संसार में जीवन धारण करना भी निरर्थक ही हुआ करता है जिन्होंने महाकाल वन मे भगवान् केदारेश्वर नाम वाले प्रभु का दर्शन प्राप्त नही किया है ॥५२॥ कुमार अवस्था मे—यौवन में—बाल्यावस्था मे और वार्धक्य म जो भी कुछ बुरे कर्म या पाप हो उनका सक्षय केवल केदारेश्वर के दर्शन से हो जाता है ॥५३॥ हिमवान् पर्वत की यात्रा और उसका जो भी कुछ फल होता है यह सब कह दिया है उसका जो भी कुछ पुण्य फल होता है वह केवल केदारेश्वर के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥५४॥ हे देवि ! उस समय देवों के द्वारा प्रणाम करते हुए मुझसे इस प्रकार कहा गया था और मैंने भी ऐसा होगा—यह कह दिया था । फिर सब देवगण स्वर्ग लोक को चले

गये थे ॥५५॥ हे देवि ! आपके समक्ष मे यह पापो का विनाश करने वाला केदारेश्वर भगवान् के दर्शन का प्रभाव बतला दिया है। अब यहाँ से आगे पिशाचेश्वर नामक भगवान् के विषय मे श्रवण करो ॥५६॥

१०५—पिशाचेश्वरमाहात्म्यवर्णन

अष्टषष्ठिकसंख्याकं पिशाचाख्यमथेश्वरम् ।
शृणु देविप्रयत्नेन दर्शनात्पापनाशनम् ॥१
आदौकलियुगेदेविशूद्रोबहुधनोऽभवत् ।
सोमोनामसुविख्यातोनास्तिकोवेदनिन्दकः ॥२
अब्रह्मण्यो नृशंसश्च कदर्यो निरपत्रपः ।
विश्वासघातकश्चैव परस्वहरणे रतः ॥३
त्रिवर्गं हन्ता चान्येषामात्मकामानुवर्त्तकः ।
स कदाचिन्मृतो देवि ! कष्टेन परमेण च ॥४
मरुदेशे पिशाचोऽभून्नग्नोदीनो भयावहः ।
नाशकृत्सपिशाचानां स्वपक्षोच्छेदकारकः ॥५
बहवो मर्दितास्तेन पिशाचा बलवत्तराः ॥६

ईश्वर ने कहा—इसके अनन्तर अड़सठ संख्या वाले पिशाच नामक ईश्वर का श्रवण अब हे देवि ! आप यत्न पूर्वक करिए जिसके दर्शन मात्र से ही समस्त पापो का विनाश हो जाया करता है ॥१॥ हे देवि ! आदि मे इस कलियुग मे शूद्र बहुत धन वाला हुआ करता था जिसका सोम यह नाम परम प्रसिद्ध था। यह महान नास्तिक (ईश्वर की सत्ता का न मानने वाला) और वेदो की निन्दा करने वाला हुआ था ॥२॥ यह ब्राह्मण की सुरक्षा न करने वाला—महान् क्रूर स्वभाव से युक्त—कदर्य (अत्यन्त नीच)—निरपत्रप (निर्लज्ज)—विश्वास का घात करने वाला—सदा पराये धन का अपहरण करने मे रति रखने वाला था ॥३॥ यह अन्य तीनो वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों का हनन कर्त्ता और

केवल अपनी ही अभिलाषाओं को पूर्ति करने वाला था। हे देवि ! वह किसी समय में परमाधिक कष्ट सहन करते हुए मृत हो गया था ॥४॥ यह अपने-अपने किए हुए घोर पाप पूर्ण कर्मों के कारण मरने के पश्चात् मरुभूमि (मारवाड) में जहाँ जल के अभाव के कारण प्राणी मर जाया करते हैं, पिशाच हुआ था जो परम नग्न—दीन और भयावना था। यह अपने पक्ष वाले पिशाचों का भी नाश करने वाला स्वपक्ष का ही उच्छेदन करने वाला था। इसने बड़े २ अत्यधिक बलवान् पिशाचों का भी मर्दन कर दिया था ॥५-६॥

अथतेनैवमार्गेणकदाचिच्छाकटायनः।
स्वाध्यायनिरतो विद्वान्वाग्मीशमपरायणः ॥७
उदयादिस्थसकाशोविभावसुसमद्युति.।
शाकटेन सदा याति स पश्यन्पर्वतात्मजे ॥८
गतो ददर्श तं रौद्रं पिशाचं च भयावहम्।
स पिशाच. क्षुधाविष्टो भोक्तुकामोऽभ्यधावत ॥९
दृष्ट्वा तं शकटारूढं ब्राह्मणं शाकटायनम्।
शाकटस्य ध्वनिश्रुत्वा रूपं दृष्ट्वाद्विजस्य च ॥१०
तथारूपः पिशाचस्तु कर्णाभ्यां बधिरीकृतः।
आत्मत्राणपरो भूत्वा नष्टः कष्टेन पार्वति।
तं धावन्तं समालोक्य पिशाचं ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥११
पिशाच सत्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे।
क्व धावसि समाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम् ॥१२
शाकटस्यास्यमहतोघोषं श्रुत्वाभयङ्करम्।
क.र्णाभ्यांबधिरोजातोविसंज्ञस्तवदर्शनात् ॥१३
पिशाचाना बलिष्ठाश्च श्रूयन्ते ब्रह्मराक्षसाः।
स त्वं मां भोक्तुकामोऽसि विख्यातो ब्रह्मराक्षसः ॥१४

हे हिमाचल की पुत्रि ! इसके अनन्तर एक बार ऐसी घटना घटित हुई थी कि किसी समय में उसी मार्ग से शाकटायन महर्षि निकले थे जो वेद वेदांगों के स्वाध्याय करने में सदा निरत रहा करते थे बहुत ही

अधिक विद्वान्—वाग्मी (बोलने वाले) और सर्वदा धर्म में परायण रहने वाले थे ॥७॥ इन महर्षि का स्वरूप उदित हुए सूर्य के समान तेजस्वी था और यह विभावसु के तुल्य द्युति वाले थे। यह सदा शकट से ही गमन किया करते थे। वे उधर से आ रहे थे तभी उन्होंने उस अत्यन्त भयानक—रौद्र रूप वाले पिशाच को वहाँ पर देखा। वह पिशाच अत्यन्त भूखा था और वह इन शाकटायन महर्षि को खाने के लिए उस ओर दौड़ गया था ॥८-९॥ उस पिशाच ने एक शकट पर समारूढ शाकटायन ब्राह्मण को देखकर तथा शकट ध्वनि का श्रवण किया था। उसने उस ने उस शकट में स्थित द्विज के स्वरूप का अवलोकन किया था ॥१०॥ उस प्रकार के स्वरूप वाला वह पिशाच उसी समय में कानों से बहिरा हो गया था। हे पार्वति! वह अपनी ही रक्षा करने में व्यस्त होता हुआ बहुत ही कष्ट से नष्ट-सा हो गया था। इधर-उधर दौड़ लगाते हुए उस पिशाच को देखकर उस शाकटायन ब्राह्मण ने उससे कहा था— ॥११॥ हे पिशाच! तू बहुत ही डरा हुआ-सा और अधिक शीघ्रता से दिखलाई दे रहा है। तू इस समय में कहाँ को जाने के लिए दौड़ लगा रहा है और तुझे किस का भय व्याप्त हो रहा है? ॥१२॥ पिशाच ने कहा—इस शकट की महती भयानक ध्वनि सुनकर मैं कानों से बहिरा हो गया हूँ और आपको देखकर मैं मूच्छित अर्थात् अचेतन-सा हो गया हूँ ॥१३॥ ब्राह्मण ने कहा—पिशाचों में सबसे अधिक बलशाली ब्रह्म राक्षस सुने जाया करते हैं। वही तू अब मुझे खाने की इच्छा वाला है और तू ब्रह्म राक्षस परम विख्यात है ॥१४॥

पिशाचानां समर्थोऽस्मि नष्टोऽहं तव दर्शनात्।
दुःखं हि मृत्युः सर्वेषां जीवितं च सुदुर्लभम्।
अतो भीतः पलायामि जीवहेतोः सुखार्थतः ॥१५
कुतः पिशाचसोस्यतेमरणं श्रेय एव ते।
पैशाची कुत्सितायोनिःपापिनामेवजायते ॥१६
सर्वत्र हि गतो जीवोभवत्येवसुखाश्रयः।
तस्माज्जीवितुमिच्छामिप्रसीदब्रह्मराक्षस ॥१७

नाहं त्वां मोक्तुकामोऽस्मि ब्राह्मणोऽहं न राक्षसः ।
सर्वभूतहितार्थाय विचरामि महीतले ॥१८
सर्वेषामेव जन्तूनां मंत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
माकुरुध्वमयं मत्तो मित्रभावगतो ह्यहम् ॥१९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वापिशाचः स्वस्थमानसः ।
प्रणम्यप्रत्युवाचेदं ब्राह्मणं शाकटायनम् ॥२०
यदि ते सर्वभूतानां दत्ता ह्यभयदक्षिणा ।
कर्मणा मनसावाचा मित्रभावं गतो यदि ॥२१

उस पिशाच ने कहा था—हे ब्राह्मण ! निस्सन्देह मैं समस्त पिशाचों में महान् बलवान् हूँ एवं परम समर्थ भी हूँ किन्तु तुम्हारे दर्शन से भी मैं नष्ट-सा हो गया हूँ—मेरी सारी शक्ति क्षीण हो गई है। यह मौत तो दुःखदायिनी हुआ करती है और यह जीवन अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है। इसलिये मैं सुखपूर्वक जीवन रखने के लिए इस जीवन के ही कारण से भयभीत होकर दौड़ रहा हूँ ॥१५॥ ब्राह्मण ने कहा—हे पिशाच ! तुमको इस जीवन जीने में सुख कहाँ है ? तेरा तो मरना ही कल्याण करने वाला है। तुझे जो यह पिशाच बन जाने की योनि प्राप्त हुई है। यह तो बहुत ही बुरी है और महापापियों को ही यह मिला करती है। पिशाच ने कहा—कहीं भी रहे सर्वत्र ही यह जीवात्मा सुख के ही आश्रय वाला हुआ करता है। इसीलिये मैं जीवित रहना चाहता हूँ हे ब्रह्म राक्षस ! आप मुझ पर प्रसन्न होकर कृपा कीजिए ॥१६-१७॥ ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्रह्म राक्षस नहीं हूँ। मैं तो ब्राह्मण हूँ। मैं तुझे खाना भी नहीं चाहता हूँ। मैं इस भूमण्डल में समस्त प्राणियों के हित करने के लिये ही विचरण किया करता हूँ ॥१८॥ देखो, यह ब्राह्मण धर्म ऐसा होता है कि यह सभी प्राणियों का हित करने वाला और सबका मित्र कहा जाया करता है। मुझसे हे पिशाच ! तुम किसी भी प्रकार का भय मत करो मैं तो तुम्हारे साथ मित्र भाव को ही प्राप्त हो गया हूँ ॥१९॥ उसके उस वचन का श्रवण कर पिशाच स्वस्थ मन वाला हो गया। उस पिशाच ने शाकटायन विप्र को प्रणाम करके यह वचन बोला

था ॥२०॥ यदि आपने समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने की दक्षिणा दे दी है और यदि आप मन—कर्म तथा वचन से मित्र भाव को प्राप्त हो गये हैं अर्थात् पूर्णतया आप मेरा हित ही चाहते हैं ॥२१॥

पृच्छामि त्वा महाभाग सशयो हृदये स्थितः ।
श्रु त्वाऽनुकम्पया सम्यक्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२२
केन कर्मं विपाकेन पैशाचं याति मानवः ।
पिशाचत्वात्कथं मुक्ति प्राप्यतेपापकर्मभिः ॥२३
इति तस्य वच. श्रु त्वा पिशाचस्यवरानने ।
ममत्वेनावृतस्तस्मै प्रावोचच्छाकटायन. ।.२४
अपहृत्य च विप्रस्वं देवस्वं च विशेषतः ।
तेनपापेन पापिष्ठा पिशाचत्वं प्रयान्तिच ॥२५
पितरं मातरं चैव स्त्रियं बालं द्विजं तथा ।
वञ्चयित्वा हरत्यर्थं स पिशाचो भवेन्नरः ॥२६
राजद्रव्यं गृहीत्वा तु न यजेन्नददानियः ।
आत्मानमेव पुष्णातिपिशाचत्वं सगच्छति ॥२७
विश्वासघातका ये च परदाररताश्चये ।
प्राप्नुवन्ति पिशाचत्वं तथा ये वेदनिन्दकाः ॥२८

हे महाभाग ! मेरे हृदय मे एक बड़ा भारी सशय उत्पन्न हो गया है। उसके विषय मे मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप उसे सुनकर कृपया अच्छी तरह से व्याख्या करके समझाने के योग्य हैं ॥२२॥ यह मनुष्य किस कर्म के विपाक से इस पिशाच की योनि को प्राप्त किया करता है ? और यह भी बतलाइये कि वे कौन से कर्म हुआ करते हैं जिनके करने से इन पिशाचता प्राप्त कराने वाले पापपूर्ण कर्मों से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ? ॥२३॥ हे वरानने ! उस पिशाच के उस वचन को सुनकर ममता से भर कर शाकटायन उनसे कहने लगा ॥२४॥ ब्राह्मण का धन और विशेष रूप से देवोत्तर सम्पत्ति का अपहरण करके ही उस महापाप से पापिष्ठ लोग पिशाच की योनि प्राप्त किया करते हैं ॥२५॥

माता-पिता, स्त्री, बालक और द्विज को प्रतारित करके जो इनके धन का हरण करता है वह मनुष्य भी पिशाच हो जाता है ॥२६॥ जो राजा का द्रव्य ग्रहण कर न तो उससे यजन करता है और न दान ही देता है उससे केवल अपना ही पोषण किया करता है वह भी पिशाचत्व को प्राप्त हो जाया करता है ॥२७॥ जो विश्वास के घात करने वाले होते हैं और पराई स्त्रियों से रति रक्खा करते हैं तथा जो वेदों की निन्दा करने वाले हैं वे भी पिशाच-योनि को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥२८॥

निन्दन्ति ये पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वदा ।
ते भवन्ति पिशाचाश्च ये सदा पिशुना नरा. ॥२६
इति ते कथितं सर्वं वेदप्रामाण्यतोऽधुना ।
इदानीं कथयिष्यामि यस्त्वं जातोऽसि तच्छृणु ॥३०
सोमकोनाम शूद्रस्त्वं परमर्मप्रकाशकः ।
विश्वासघातको जातो देवब्राह्मणदूषकः ॥३१
नास्तिको भिन्नमर्यादो जन्मन्यत्रापि सप्तमे ।
सकुलं पातयित्वात्र नरकेदारुणेमृगम् ॥३२
पिशाचयोनिं सम्प्राप्तः पुनः प्राप्स्यसिरौरवम् ।
महारौरवसञ्ज्ञं तु कच कालसूत्रकम् ।
यन्त्रपीडनकं रौद्रं मथनं कुम्भवालुकम् ॥३३
इत्येवं वदतस्तस्य ब्राह्मणस्य यशस्विनि ।
सस्मार प्राक्तनं जन्म सत्सङ्गात्कुत्सितं स्वकम् ॥३४
दु खाभिभूतो निश्चेष्टो धिग्धिगित्यसकृद्‌व्रुवन् ।
पतितो भूतले देवि इदं वाक्यमथाब्रवीत् ॥३५

जो पुरुष सदा पुराणों की और धर्म शास्त्रों की बुराई किया करते हैं और जो चुगलखोर होते हैं वे मनुष्य पिशाच हो जाते हैं ॥२६॥ यह सब इस समय मैंने वेदों के प्रमाण के आधार पर ही बतला दिया है और अब मैं वह बात बतलाता हूँ जिसके कारण से तुम पिशाच हो गये हो इसे सुन लो ॥३०॥ तुम सोमक नामधारी शूद्र थे और हमेशा दूसरों के मर्म (रहस्य) को प्रकट करने वाला था। तुम विश्वास का घात करने

वाले तथा देवों और ब्राह्मणों की बुराई किया करते थे ॥३१। परम नास्तिक—मर्यादा को तोड़ देने वाला इस सातवें जन्म मे भी बराबर रहा था। तुमने अपने आपके सम्पूर्ण कुल को अत्यन्त दारुण नरक में डालकर इस पिशाच की योनि को प्राप्त किया है। फिर भी तुम अभी आगे रौरव—महारौरव—क्रकच—काल सूत्रक—यन्त्र पीडनक—रौद्र—भयद—कुम्भ बालुक आदि महा घोर नरकों को प्राप्त करोगे। हे यशस्विनि! वह ब्राह्मण इस प्रकार से कह ही रहा था कि उस पिशाच ने अपने पूर्व जन्म का इस विप्र के सत्सङ्ग से स्मरण कर लिया था जो कि बहुत ही बुरा था ॥३२-३४॥ मुझे धिक्कार है—मैं धिक्कार का पात्र ही हूँ—ऐसा बारम्बार कहता हुआ वह पिशाच अत्यन्त दुःखित होकर बेहोश हो हे देवि! भूतल में गिरकर यह वाक्य बोला—॥३५॥

अहोकेनापि पुण्येन भवता सह दर्शनम्।
जातं ममाल्पपुण्यस्य दीनस्यकृपणस्य च ॥३६
नास्ति धर्मसमं मित्रं नास्ति धर्मसमागतिः।
नास्तिधर्मसमं त्राणं स च नास्ति मम प्रभो ॥३७
मग्नोऽहं दुःखजलधौ मग्नोऽहं पापकर्दमे।
भ्रान्तोऽहमन्धतमसि ततस्त्वांशरणं गतः ॥३८
नमस्तेऽस्तु महाभाग किं करोमि प्रशाधि माम्।
तत्तपोनलनिर्दिष्टमिदं प्राप्तं मयाऽधुना ॥३९
एवं निगदतस्तस्य पिशाचस्य वरानने।
कथयामास माहात्म्य सविप्रःशाकटायनः ॥४०
पृथिव्यायानितीर्थानि आसमुद्रगतानियं।
क्षेत्राणियानिसन्तीहतेषाक्षेत्रं सुपुण्यदम् ॥४१
महाकालवनं क्षेत्रं प्रलयेऽप्यक्षयं गतम्।
लिङ्गं तत्र महाक्षेत्रे पिशाचत्वविनाशनम् ॥४२
कुण्डेश्वरस्य देवस्यदक्षिणेत्रिदशार्चितम्।
पैशाचं विद्यतेभूयः पिशाचयोनिनाशनम्।
तस्य दर्शनमात्रेण पिशाचत्वात्प्रमोक्ष्यसे ॥४३

प्रभो हो ! मेरा न मालूम कौन-सा कोई ऐसा पुण्य का उदय हुआ है जिससे आपका यह दर्शन मुझे प्राप्त हो गया है अन्यथा मैं तो महापापी दीन घोर कृपण हूं ॥३६॥ धर्म के समान अन्य कोई मित्र नहीं है और धर्म के तुल्य कोई दूसरी गति ही है। यह धर्म ही परम रक्षक है। इसके अतिरिक्त रक्षा करने वाला अन्य कुछ भी नहीं है। हे प्रभो ! वह धर्म ही मेरा लेश मात्र भी नहीं है ॥३७॥ मैं तो दुःखों के अपार सागर में मग्न हो गया हूं और पापों के दलदल में गड़ा हुआ हूं। मैं इस परम घोर अन्धकार में भ्रम रहा हूं इसलिए अब मैं आपकी शरण में प्राप्त हो गया हूं ॥३८॥ हे महाभाग ! मैं आपको नमस्कार करता हूं। मुझे आप प्रशासित कीजिये कि मैं क्या करूं। आपके इस तपस्या के बल से निर्देश किया हुआ मैंने अब यह प्राप्त कर लिया है ॥३९॥ हे वरानने ! इस प्रकार से उस पिशाच के कहने पर उस विप्र शाकटायन ने माहात्म्य कहा था ॥४०॥ इस भूमण्डल में समुद्र पर्यन्त जो भी तीर्थ हैं और जितने भी यहां पर धर्म के क्षेत्र हैं उन सबका सुपुण्य प्रदान करने वाला क्षेत्र एक ही है ॥४१॥ वह महाकाल वन नामक क्षेत्र है जो प्रलय काल में भी जब कि सभी कुछ नष्ट हो जाया करते हैं अक्षय बना रहा करता है। उस महाक्षेत्र में शिव लिंग हैं जो कि इस पिशाच की योनि का विनाश कर देने वाले हैं॥४२॥ दुग्धेश्वर देव के दक्षिण भाग में देवों के द्वारा समर्चित पैशाच लिंग है जो पिशाच की योनि का नाश कर देने वाला है। उसके दर्शन करने का ही ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि इससे ही मनुष्य पिशाच योनि से प्रयुक्त हो जाया करता है ॥४३॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स पिशाचो वरानने ! ।
आजगामत्वरायुक्तो नमस्कृत्यद्विजं तदा ॥४४
महाकालवने पुण्ये मनोहितफलप्रदे ।
ददर्श तत्र तल्लिङ्गं स्नात्वा शिप्राजले शुभे ॥४५
दर्शनादस्य लिङ्गस्यसपिशाचो वरानने !।
तत्क्षणाद्दिव्यदहस्तु दिव्याभरणभूषित ॥४६

दिव्यं विमानमारूढो गतो लोके सनातने ।
उद्धृत्यसकलं गोत्रं मातृकं पैतृकं तथा ॥४७
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यंमाहात्म्यातिशयं प्रिये ! ।
प्रोक्तं देवैर्विमानस्थैः सिद्धै राकाशगैस्तथा ॥४८
पिशाचोऽपि गतः स्वर्गं मस्य लिंगस्य दर्शनात् ।
अतो देव स विख्यातो भविष्यति महीतले ॥
पिशाचेश्वरसञ्ज्ञस्तु सर्वं पापप्रणाशनः ॥४९

हे वरानने ! उस ब्राह्मण के इस वचन का श्रवण करके वह पिशाच उस ब्राह्मण वामदायन का प्रणाम करके उसी समय मे बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर वहाँ पर समागत हो गया था ॥४४॥ अभीष्ट फल के प्रदान करने वाले परम पुण्यमय उस महाकाल वन मे पहुँचकर उसने शिप्रा के शुभ जल मे स्नान किया और फिर उस लिंग का दर्शन किया था ॥४५॥ हे वरानने ! वह पिशाच उस लिंग के दर्शन से उसी क्षण मे दिव्य देह धारण करके परम दिव्य आभरणो से विभूषित हो गया था और फिर परम दिव्य विमान में समारूढ़ होकर सनातन लोक को चला गया था और फिर उसने इसी के प्रभाव से अपने पितृकुल तथा मातृकुल के पितरो का भी उद्धार कर दिया था ॥४६-४७॥ हे प्रिये ! उस महान् आश्चर्य से भरे हुए इस माहात्म्य के अतिशय को देख कर देवगण भी जो विमानो मे सस्थित थे और आकाशगामी सिद्ध गण भी कहने लगे थे—अहो हो ! क्या अद्भुत माहात्म्य है कि इस लिंग के केवल दर्शन से यह महान् पापात्मा परम निकृष्ट पिशाच भी स्वर्ग मे चला गया है। इसी लिये यह देव इस महोतल मे पिशाचेश्वर संज्ञा वाला विख्यात हो जायगा क्योंकि यह तो पिशाचो के भी समस्त पापो का नाश करने वाला है ॥४८-४९॥

येपश्यन्तिनरादेवि ! पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
तेषाहिपितरः सर्वेयेचापिनिरयेस्थिताः ।
पिशाचत्वाद्विमुच्यन्ते स्वर्गं यान्ति न संशय. ॥५०

अश्वमेधस्य यज्ञस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सोऽपि पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५१
गयायां पिण्डदानेन यत्पुण्यं समुदाहृतम् ।
तत्पुण्यमधिकं ज्ञेयं पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५२
ये पश्यन्ति चतुर्दश्यां पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
प्रेतत्वं च पिशाचत्वं कुलेतेषां न जायते ॥५३
न तिर्योनिं नरो याति नरकं च न पश्यति ।
प्रसङ्गेनापि यः पश्येत्पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥५४
सर्वैश्वर्यसमायुक्तः सर्वबन्धुसमन्वितः ।
मोदते पितृलोके स पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५५
कीर्त्तनान्मुच्यते पापात् दृष्ट्वा स्वर्गं च गच्छति ।
स्पर्शनादस्य लिङ्गस्य पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥५६
तदैव स नरो मुक्तः संसारनिगडादिभिः ।
यदैव वीक्षते लिङ्गं पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥५७
यज्ञानां तपसां चैव दानानां च यत्फलम् ।
तत्फलं कोटिगुणितं जायते तस्य दर्शनात् ॥५८
यदि पश्येच्चतुर्दश्यां वैशाखे कार्त्तिके तथा ।
तस्य पुण्यमसंख्यातं जायते नात्र संशयः ॥५९
एष ते कथितो देवि ! प्रभावः पापनाशनः ।
पिशाचेश्वरदेवस्य श्रूयतां सङ्गमेश्वरम् ॥६०

हे देवि ! जो मनुष्य इस पिशाचेश्वर नामक लिंग का दर्शन किया करते हैं उनके समस्त पितर जो भी नरकों में यातनायें भोग रहे हैं तुरन्त ही पिशाचता से मुक्त होकर स्वर्ग को गमन किया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५०॥ भली भाँति यजन किये हुए अश्वमेध यज्ञ का जो फल होता है उसी पुण्य-फल को मनुष्य भगवान् पिशाचेश्वर के दर्शन से प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ गया में पिण्डों के दान से जो पुण्य बताया गया है उससे भी अधिक पुण्य पिशाचेश्वर के दर्शन से होता है ॥५२॥ चतुर्दशी में जो पिशाचेश्वर का दर्शन करते हैं उनके कुल में प्रेतत्व और

पिशाचता कभी नही होती है । ॥५३॥ यह वियोनि और नरक मे नही आता है । जो अन्य प्रसङ्ग से भी पिशाचेश्वर का दर्शन कर लेता है वह सब ऐश्वर्य और बान्धवो से युक्त हो जाता है तथा पितृ लोक मे भी परम प्रसन्न रहता है। कीर्तन से ही पापमुक्त हो जाता है। दर्शन से स्वर्ग मिला करता है। लिंग के स्पर्श से सात कुलों को पवित्र कर देता है। ज्योंही दर्शन करता है वैसे ही संसार के बन्धनो से मुक्त हो जाता है। यज्ञ—तप—दानों का जो फल है उनसे करोड गुना फल दर्शन से होता है। वैशाख—कार्तिक मे चतुर्दशी के दर्शन से जो पुण्य होता है वह प्रसस्य है—इसमे संशय नही है। हे देवि ! यह पापो का नाशक प्रभाव कह दिया है ॥५४-६०॥



१०६—अग्नितीर्थ,सर्पतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र ! अग्नितीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु पक्षादौ मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥१
तत्रतीर्थे तु यः कन्या दद्यात्स्वयमलङ्कृताम् ।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥२
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां शतं शतगुणीकृतम् ।
प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा यथाशक्त्या ह्यलङ्कृताम् ॥३
तस्याः पुत्रप्रपौत्राणां या भवेद्रोमसङ्गतिः ।
स याति तेन मानेन शिवलोके परा गतिम् ॥४

श्रीमार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् सर्वोत्तम अग्नि तीर्थ को गमन करना चाहिए पक्ष के आदि मे वहाँ पर स्नान करके मनुष्य समस्त किल्विषो से मुक्त होकर विशुद्ध हो जाया करता है ॥१॥ जो कोई मनुष्य उस तीर्थ मे स्वयं समलकृत करके किसी कन्या का दान दिया करता है उसका जो पुण्य—फल बताया गया है वह हे नरोत्तम ! मुझसे श्रवण कीजिए। अग्निस्तोम और अतिरात्र इन दोनो के पुण्य से सौ—सौ गुना पुण्य फल अलकारो से यथाशक्ति विभूषित कन्या का दान करके पुरुष प्राप्त किया करता है ॥२-३॥ उस कन्या के पुत्र और पुपौत्रो

के जितने भी शरीर की रोमावलि होती है उन्हों के मान से यह पुरुष शिव लोक मे परागति को प्राप्त करता है ॥४॥

ततो गच्छेन्महाराज सर्पतीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सिद्धा महासर्पास्तपस्तप्त्वा युधिष्ठिर ! ॥५
वासुकिस्तक्षकोघोरः सर्प ऐरावतस्तथा ।
कालियश्चमहाभागः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥६
शङ्खचूडो महातेजा धृतराष्ट्रो वृकोदरः ।
कुलिको वामनश्चैवतथा ये पुत्रपौत्रिणः ॥७
तत्र तीर्थ महापुण्ये तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ।
भुञ्जन्ति विविधान्भोगान्क्रीडन्ति च यथासुखम् ॥८
तत्र तीर्थे नुयः स्नात्वातर्पयेत्पितृदेवताः ।
वाजपेयफलं तस्य पुरा प्रोवाच शङ्कर ॥९
स्नातानांसर्पतीर्थे तुनराणां भुविभारत ।
सर्ववृश्चिकजातिभ्योन भयंविद्यतेक्वचित् ॥१०

श्री मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे महाराज ! इसके अनन्तर सर्वोत्तम सर्प तीर्थ मे गमन करे । हे युधिष्ठिर ! जहाँ पर महा सर्पों ने तपश्चर्या करके सिद्धि प्राप्ति की है । उन महा सर्पों के नाम बतलाये जाते हैं—वासुकि—तक्षक—परम घोर सर्प ऐरावत—महाभाग कालिय—कर्कोटक—धनञ्जय—शङ्खचूड—महान् तेज वाला धृतराष्ट्र—वृकोदर—कुलिक और वामन ये महा सर्प कहे जाते हैं । इनके जो भी पुत्र और पौत्र थे वे भी सब हैं । उस महा पुण्यमय तीर्थ मे ये परम दुष्कर तपस्या करके नाना प्रकार के भोगों का उपभोग किया करते हैं और सुख पूर्वक क्रीडा करते हैं ॥५-८॥ उस तीर्थ मे जो कोई भी मनुष्य स्नान करके अपने पितृगण, और देवों का तर्पण किया करता है भगवान् शंकर ने पहिले ही कहा था कि उस पुरुष को वाजपेय यज्ञ करने का फल होता है ॥९॥ हे भारत ! इस भूलोक मे इस सर्प तीर्थ में स्नान किये हुए पुरुषों को सर्प तथा वृश्चिक (बिच्छू) जातियों से कहीं भी कभी कोई भय नहीं होता है ॥१०॥

मृतो भोगवतीं गत्वापूज्यमानोमहोरगैः ।
नागकन्यापरिवृतो महाभोगपतिर्भवेत् ॥११
मार्गशीर्षस्य मासस्य कृष्णपक्षे च याऽष्टमी ।
सोपवासः शुचिर्भूत्वा लिङ्गं सम्पूरयेत्तिलैः ॥
यथाविभवसारेण गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥१२
एवं विधाय विधिवत्प्रणिपत्यक्षमापयेत् ।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्वनरेश्वर ॥१३
तिलास्तत्र च यत्सख्याः पत्रपुष्पफलानि च ।
तावत्स्वर्गपुरे राजन्मोदते कालमीप्सितम् ॥१४
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विमले कुले ।
सुरूपः सुभगश्चैवधनकोटिपतिर्भवेत् ॥१५

वह मनुष्य मृत्युगत होकर भोगवती पुरी पहुच जाता है और वहाँ पर महान् उरगो के द्वारा पूज्यमान हो जाता है । उसको नाग कन्याऐं चारो ओर से घेरे रहा करती हैं और अन्त में वह महाभोग पति हो जाया करता है ॥११॥ मार्गशीर्ष मास के कृष्णपक्ष मे जो अष्टमी तिथि है उसमे उपवास के साथ पवित्र होकर लिंग को तिलो से पूरित कर देवे और अपने विभव की शक्ति के अनुसार गन्ध पुष्पादि उपचारो के द्वारा लिंग का अभ्यर्चन करना चाहिए । इस प्रकार से विधि—विधान के साथ करके प्रणाम करे और अपराध—क्षमापन कराना चाहिए । हे नरेश्वर ! उसका जो भी पुण्य—फल होता है उसको सुनिए । जितनी संख्या मे वहाँ पर जो तिल होते हैं तथा जो सख्या पत्र पुष्प और फलो की होती है हे राजन् ! उतने ही वर्षो तक वह पूजा करने वाला अभित ईप्सित काल पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है । फिर उस लम्बी स्वर्ग निवास करने की अवधि समाप्त हो जाने पर वहाँ से भ्रष्ट होकर यहाँ इस भूमण्डल मे किसी विमल कुल मे जन्म ग्रहण किया करता है । वह परम सुभग और सुन्दर सुरूप वाला होते हुए धन का भी करोड़ पति हुआ करता है ॥१२-१५॥

१०७—श्रीकपालतीर्थमाहात्म्यवर्णन

चतुर्थं संप्रवक्ष्यामि देवस्य चरितं महत् ।
श्रुतमात्रेण येनैवसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१
कपाली कान्थिको भूत्वा यथा स व्यचरन्महीम् ।
पिशाचै राक्षसैर्भूतं डाकिन्योगिनीवृत ॥२
भैरव रूपमास्थाय प्रेतासनपरिग्रहः ।
त्रैलोक्यस्याऽभयं दत्त्वाचचार विपुलं तपः ॥३
कापाली तु कृतावस्थापादि नामविश्रुतम् ।
कन्यामुक्ता ततोऽन्यदेवेकपरमेष्ठिना ॥४
तदाप्रभृतिराजेन्द्र स कन्येश्वर उच्यते ।
तस्य दर्शनमात्रेण ह्यश्वमेधफलं लभेत् ॥५
देवो मार्गे पुनस्तत्र भ्रमते चयदृच्छया ।
विक्रोणातिबलाकारो दृष्ट्वाचोक्तोहरेणनु ॥६
यदि भवन चेदकोप करोपिमयिसाम्प्रतम् ।
वनाभिमंरमेलिंग ददामिबहुने धनम् ॥७

श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—अब मैं देवेश्वर प्रभु का चौथा महान् चरित कहता हूँ जिसके केवल श्रवण कर लेने ही से मनुष्य सभी प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। भगवान् शम्भु कपाली और कन्था धारण करने वाले होकर सम्पूर्ण महीमण्डल पर विचरण किया करते थे और उनके साथ पिशाच-राक्षस-भूत डाकिनी और योगिनियाँ रहा करती थीं ॥१-२॥ परम भैरव स्वरूप धारण करके त्रैलोक्य को अभय का दान देकर प्रेतासन पर स्थित होकर परम दुश्चर तपस्या की थी। वहाँ पर उन्होंने कापाली की थी अतएव कापाली यह नाम विश्रुत हो गया था। इसके अनन्तर परमेष्ठी देव ने अन्यत्र कन्या मुक्त करदी थी। हे राजेन्द्र ! तभी से वह कन्येश्वर कहे जाते हैं। उनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है। फिर देव मार्ग में वहाँ पर यदृच्छा से भ्रमण करते थे। एक बलाकार विक्रय किया करता था।

भगवान् हर ने उसे देखकर उससे कहा—हे भद्र यदि आपको कोई क्रोध न हो तो और मुझ पर आप नाराज नहीं होवें तो आप वल्कों से मेरे लिंग को भर दीजिए। मैं आपको बहुत अधिक धन दूँगा ॥३-७॥

एवमुक्तोऽथ देवेन स वणिग्लोभमोहितः।
योजयामास वल्का लिंगे चोत्तममध्यमान् ॥८
तावद्यावत्क्षयं सर्वे गताः काले सुसञ्चिताः।
स्थितं समुन्नतं लिंगं दृष्ट्वा शोकमुपागतम् ॥९
कृत्वा तु खण्डखण्डानि स देवः परमेश्वरः।
उवाच प्रहसन्वाक्यं तं दृष्ट्वागतसाध्वसम् ॥१०
नचमे पूरितं लिंगं यास्यामि यदि मन्यसे।
ददामि तन्नवित्तं यदि लिंगं प्रपूरितम् ॥११
अधन्योक्तपुन्योऽहं निग्राह्य परमेश्वर।
तवप्रियमकुर्वाणश्चोष्येशाश्वतीः समाः ॥१२
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वणिक्पुत्रस्य भारत।
अक्षयं धनं दत्त्वास्थितस्तत्र महेश्वर ॥१३
तदा प्रभृति राजेन्द्र ! वल्कैरिव भूषितम्।
प्रत्ययार्थं स्थितं लिंगं लोकानुग्रहकाम्यया ॥१४

जब इस तरह से शम्भु के द्वारा उस बनिये से कहा गया तो वह वणिक लोभ से मोहित होकर उत्तम—मध्यम वल्कलों को उनके लिंग पर योजित करने लग गया था। वह तब तक उन्हें योजित करता ही चला गया जब तक सुसंचित वे सब क्षय को प्राप्त हो गई थी अर्थात् सब समाप्त हो गई थी जो उसने एकत्रित कर रक्खी थी किन्तु उस लिंग की पूर्ति नहीं हुई थी क्योंकि वह तो वैसा ही समुन्नत होकर स्थित हो रहा था—यह देखकर वह वणिक बड़े भारी शोक को प्राप्त हो गया था। वह परमेश्वर देव खण्ड-खण्ड करके हँसते हुए बोले और उसको भयभीत देखकर उससे कहा—मेरे लिंग को पूरित नहीं किया गया है यदि ऐसा तुम मानते हो तो मैं अब चला जाऊँगा। यदि मेरा लिंग प्रपूरित हो गया होता तो मैं वहीं पर तुझे धन दे देता। उस वणिक् ने कहा—हे

परमेश्वर ! मैं बहुत ही अधम्य और बिना पुण्य वाला हूँ और निग्रह करने के योग्य हूँ। बाधना बिम न करता हुआ मैं बहुत वर्षों तक चिन्ता करता था। हे भारत ! इस वचन को सुनकर उस ब्राह्मण पुत्र को अभय दान देकर महेश्वर वहीं पर स्थित हो गए थे। हे राजेन्द्र ! तभी से सकर कलाओं से भूषित को भांति लोकों पर अनुग्रह करने की कामना से विश्वास कराने के लिए वह नित्य स्थित हो गया था ॥८-१४॥

देवेन रचितं पार्थ क्रीडया सुप्रतिष्ठितम् ।
देवमार्गमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
पश्यन्प्रपूजयन्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१५

देवमार्गे तु यो गत्वा पूजयेद्बलाकेश्वरम् ।
पञ्चायतनमासाद्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥१६
देवमार्गे मृतानां तु नराणां भावितात्मनाम् ।
न भवेत्पुनरावृत्तो रुद्रलोकात्कदाचन ॥१७

देवमार्गस्य माहात्म्यं भक्त्या श्रुत्वा नरोत्तम ! ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१८

हे पार्थ ! देवेश्वर ने क्रीड़ा से ही सुप्रतिष्ठित देवमार्ग की रचना की थी जो परम विख्यात और तीनों लोकों में विश्रुत था। इसका दर्शन करके अथवा इसकी पूजा करते हुए समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। जो कोई उस देवमार्ग में आकर भगवान् बलाकेश्वर की पूजा किया करता है वह पञ्चायतन को प्राप्त करके रुद्रलोक में गमन किया करता है। जो भावित आत्मा वाले पुरुष उस देवमार्ग में मृत्युगत होते हैं उन नरों की उस रुद्रलोक से यहाँ फिर पुनः आवृत्ति कभी भी नहीं होती है अर्थात् फिर यहाँ आकर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं। हे नरोत्तम इस देवमार्ग के माहात्म्य को भक्ति से श्रवण करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त अवश्य ही हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए ॥१५-१८॥

१०८—जामदग्न्यतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततोगच्छेद्धराधीश तीर्थं परमशोभनम् ।
जमदग्निरितिख्यातं यत्रसिद्धो जनार्दनः ॥१
कथं सिद्धो द्विजश्रेष्ठ वासुदेवो जगद्गुरुः ।
मानुषं रूपमास्थाय लोकानां हितकाम्यया ॥२
एतत्सर्वं यथान्याय देवदेवस्यचक्रिणः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामिकथ्यमानं त्वयाऽनघ ॥३
आसीत्पूर्वं महाराज हैहयाधिपतिर्महान् ।
कार्त्तवीर्यं इति ख्यातो राजा बाहुसहस्रवान् ॥४
हस्त्यश्वरथसम्पन्नः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
वेदविद्याव्रतस्नातः सर्वभूताभयप्रदः ॥५
माहिष्मत्याः पतिः श्रीमाराजा ह्यक्षौहिणीपतिः ।
स कदाचिन्मृगान्हन्तुं निर्जगाम महाबलः ॥६
बहुभिर्दिवसैः प्राप्तो भृगुकच्छमनुत्तमम् ।
जमदग्निर्महातेजा यत्र तिष्ठति तापसः ॥७

श्रीमार्कण्डेय ऋषि ने कहा—हे धराधीश ! इसके उपरान्त उस परम शोभा से समुत्पन्न तीर्थ को गमन करे जहाँ पर जनार्दन सिद्ध हुए थे और जो जमदग्नि—इस नाम से विश्रुत है । युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजों मे परम श्रेष्ठ ! जगत् के गुरु वासुदेव ने कसे सिद्धि प्राप्त की थी और लोकों पर हित की कामना से मनुष्य का स्वरूप धारण किया था ॥१-२॥ देवों के भी देव के इस सम्पूर्ण चरित का भगवान् चक्रधारी के वृत्तान्त का न्याय पूर्वक वर्णन में श्रवण करना चाहता हूँ । हे अनघ ! आपके द्वारा यह कथ्यमान होना चाहिए अर्थात् आप ही इसे वर्णन कीजिए । श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे महाराज ! एक परम महान् हैहयाधिपति पहिले हुआ था । वह कार्त्तवीर्य्य—इस नाम से विख्यात था और वह राजा एक सहस्र बाहुओं वाला था । वह समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाला राजा था तथा हाथी, घोड़े और रथ आदि

से सुसम्पन्न था एवं समस्त शस्त्र धारियों के परम श्रेष्ठ और सब विद्या तथा व्रतों में स्नात था। वह श्रीमान् माहिष्मती पुरी का पति और अक्षौहिणी सेना का स्वामी था। वह एक बार किसी समय में महान् बल-शाली मृगों को मारने के लिये निकल गया था बहुत दिनों में परम उत्तम भृगु कच्छ में वह प्राप्त हो गया था जहाँ पर तपस्वी जमदग्नि ऋषि महान् तेज से युक्त स्थित थे ॥३-७॥

रेणुकासहितः श्रीमान्सर्वभूताभयप्रदः।
तस्य पुत्रोऽभवद्रामःसाक्षान्नारायणःप्रभुः ॥८
सर्वक्षत्रगुणैर्युक्तो ब्रह्मविद्ब्राह्मणोत्तमः।
तोषयन्परया भक्त्या पित्रोःपरमार्थवत् ॥९
स तदार्जुनं दृष्ट्वाजमदग्निः प्रतापवान्।
चरन्तं मृगयायां वा ह्यातिथ्येनन्यमन्त्रयत् ॥१०
तथेति चोक्त्वा स नृपः सभृत्यबलवाहनः।
जगाम चाश्रमं पुण्यमृषेस्तस्य महात्मनः ॥११
तत्क्षणादेव सम्पन्नं श्रिया परमयावृतम्।
विस्मयं परमं तत्र दृष्ट्वा राजा जगाम ह ॥१२
गतमायस्तु सिद्धेन परमान्नेनभोजितः।
सभृत्यबलवान्राजा ब्राह्मणेन यदृच्छया।
किमेतदिति पप्रच्छ कारणं शक्तिमेव च ॥१३
कामधेनोः प्रभावं तं ज्ञात्वा प्राह ततो द्विजम्।
दक्षिणां देहि मे विप्र कल्मषां धेनुमुत्तमाम् ॥१४

वह तपस्वी समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले श्रीमान् रेणुका के सहित वहाँ पर तपस्या किया करते थे उनके पुत्र राम अर्थात् परशुराम हुए थे जो साक्षात् प्रभु नारायण ही थे। वैसे यह ब्रह्म के ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण थे किन्तु सम्पूर्ण क्षत्रियों के गुणों से युक्त थे। परशुराम अपने माता-पिता के परम भक्त थे और परा मातृ-पितृ-भक्ति के द्वारा उन्हें पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करते हुए परमार्थ का ज्ञान रखने वाले थे। उस समय में परम प्रतापी जमदग्नि मुनि ने वहाँ पर सहस्रार्जुन

राजा को ससैन्य देख कर जो कि मृगया (शिकार) करते हुए वहाँ पर उपस्थित हुए थे जमदग्नि उनके पास गये और उनका अतिथि-सत्कार करने के लिये निमन्त्रित किया था। 'तथास्तु'—अर्थात् आपका आतिथ्य हमको स्वीकार है—यह कहकर वह राजा अपने समस्त भृत्य—सैन्य और वाहनों के सहित उस परम पवित्र पुण्य रूप महात्मा ऋषि के आश्रम में पहुँच गये थे। उसी समय में पुष्पमय और परम श्री से समावृत उस आश्रम को देखकर वहाँ पर राजा को परमाधिक विस्मय हो गया था। वहाँ पर पहुँचते ही परमोत्तम मुनीन्द्र जमदग्नि के द्वारा राजा को उसके समस्त भृत्य और सेना के सहित ब्राह्मण ने इच्छा पूर्वक यथेष्ट भोजन करा दिया था। राजा ने यह समस्त विज्ञान वैभव देखकर उनसे इस सब अलौकिक पूर्ण आतिथ्य करने का कारण पूछा था और ऐसी आतिथ्य के सम्पन्न कर देने की क्या शक्ति है—यह भी प्रश्न किया था। मुनि के कह देने पर कामधेनु के उस महान् प्रभाव को जानकर राजा ने उस द्विज से कहा—हे विप्र! भोजन तो हमको करा दिया है अब कुछ दक्षिणा दो और वह दक्षिणा यह कष्टों को दूर करने वाली इस उत्तम धेनु को हमको दे दो ॥८-१४॥

गवां शतसहस्राणामयुतं नियुतं परम् ।
भूमिनाना च धेनूनां ददामि तवचार्बुदम् ॥१५
अयुतं प्रयुतं नाहि शतकोटिमिरुत्तमाम् ।
कामधेनुमिमां तात मद्विप्रप्रतिगम्यताम् ॥१६
एवमुक्तः नराजेन्द्रस्तेन विप्रेणभारत ।
क्रोधसंरक्तनयन इदं वचनमब्रवीत् ॥१७
यस्येदृशाः कामचारा मय्यपि द्विजपालन ।
अहं तं पश्यतस्तस्मान्नयामि सुरभिं गृहात् ॥१८
कः क्रीडति नरोपेण निर्मोहिमहाहिना ।
नृपमुद्दिष्टोऽन्तरेणापिमनुधेनु नयेन्नपः ॥१९
एवमुक्त्वा महादण्डं ब्रह्मदण्डमिवाऽपरम् ।
गृहीत्वा परमक्रुद्धो जमदग्निरवाचह ॥२०

यस्यास्ति शक्तिस्तेजो वा क्षत्रियस्य कुलाऽधमः।
धेनुं नयतु मे सद्यः क्षीणायुः सपरिच्छदः ॥२१

राजा ने जमदग्नि से कहा—मैं आपको शत—सहस्त्र—प्रयुत और नियुत तथा अर्बुद भूषित धेनु देता हूँ किन्तु यह कामधेनु मुझको चाहिए। जमदग्नि ने कहा—हे तात! प्रयुत (दश हजार)—नियुत और सौ करोड़ भी धेनुओं के बदले में मैं इस उत्तम कामधेनु को नहीं देसकता हूँ आप यहाँ से वापिस चले जाइए। हे भरत! उस विप्र के द्वारा जब राजेन्द्र सहस्त्रार्जुन इस प्रकार से कह दिया गया तो वह राजा क्रोध से रक्त नेत्रों वाला होकर मुनि से यह वचन बोला—हे द्विजपासन! अर्थात् द्विजों में महान् नीच! जिस तेरा मेरे प्रति भी ऐसा कास चार अर्थात् मनचाहा बरतावा है तो मैं अब देखते हुए ही तेरे घर से इस सुरभि को ले जाता हूँ। द्विज ने कहा—ऐसा कौन है जो निर्भय होकर क्रोध से युक्त महान् सर्प से क्रीडा करता है। जो इस मेरी कामधेनु को लेजावेगा अर्थात् लेजाने की इच्छा करेगा वह बीच में ही मृत्यु के द्वारा हृत हो जावेगा अर्थात् मर लेगा इस प्रकार से कहकर जमदग्नि ने परम क्रुद्ध होकर दूसरे ब्रह्मदण्ड की ही भाँति अपने महादण्ड को ग्रहण करके वह मुनि बोला—जिस क्षत्रिय का ऐसा तेज अथवा शक्ति है जो कुल में अधम मेरी इस धेनु को लेजावे वह सपरिकर तुरन्त ही क्षीण आयु वाला हो जावे ॥१५-२१॥

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं हैहयः पार्श्ववोवृतः।
धावमानः क्षितितले ब्रह्मदण्डहतोऽपतत् ॥२२

हुङ्कृतेन ततो धेन्वा खड्गपाशासिपाणयः।
निर्गच्छन्तः प्रदृश्यन्ते कल्मषायाः सहस्रशः ॥२३

नासापुटात्प्रादोमाप्रात्किराता मागधा गुहात्।
रन्ध्रान्तरेषु चोत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२४

एवमन्योन्यमाहत्य हैहयं क्षणान्दहन्।
विनाशं सह विप्रेण गता ह्यर्जुनतेजसा। २५

कार्त्तवीर्यो जयं लब्ध्वा मह्त्स्ये हत्वा द्विजोत्तमम् ।
जगाम स्वां पुरीं दृष्टः कृतान्तवशमोहितः ॥२६
ततस्तत्राग्निनः प्राप्तपश्चाद्रामोगतेरिपौ ।
आक्रन्दमानांजननीं ददर्श पितुरन्तिके ॥२७
केनेदमात्मनाशाय ह्यज्ञानात्साहसं कृतम् ।
मम तातं जिघांसुर्यो द्रष्टुं मृत्युमिहेच्छति ॥२८

सैकड़ों जनों से परिवृत हृदय में जमदग्नि के इस परम क्रूर वचन को सुना था और वह धावमान होता हुआ ब्रह्मदण्ड से हत होकर भूतल में गिर गया था। इसके अनन्तर उस कामधा धेनु के हुंकार से सहस्रों ही शस्त्र-पाश और असि (तलवार) हाथों में लेने वाले निकलते हुए दिखलाई दे रहे थे। मामापुटों के अग्रभाग से—रोमों के अगले भाग से—गुह्य से और रन्ध्रों के अन्तरों में सैकड़ों और सहस्रों ही किरात और मागध उत्पन्न हो गये थे। इस प्रकार हैहय के टङ्कणों को दग्ध करते हुए आपस में एक दूसरे को मारकर महस्रार्जुन के तेज से विप्र जमदग्नि के सहित सब विनाश को प्राप्त हो गये थे। राजा कार्त्तवीर्य उस युद्ध में विजय प्राप्त करके और उस उत्तम द्विज का वध करके अपनी पुरी को चला गया था और कृतान्त वश से मोहित देखा गया था। इसके पश्चात् उस रिपु के चले जाने पर शीघ्रता से युक्त राम (परशुराम) वहाँ प्राप्त हो गये थे। उन्होंने अपने पिता के सन्निकट माता को रुदन करते हुए देखा था। परशुराम ने कहा—किस दुष्ट ने अज्ञान से आत्म नाश करने के लिये ऐसा दुस्साहस किया है ? मेरे पिताजी को मारने की इच्छा वाला यह यहीं पर अब स्वयं अपनी मृत्यु का देखने की इच्छा कर रहा है ॥२२-२८॥

ततोमा रामवाक्येन गतसत्त्वेवविह्वला ।
उदरं करयुग्मेन ताडयन्तीत्युवाच तम् ॥२९
अर्जुनेन नृशंसेन क्षत्रियैरपरैः सह ।
हताऽस्मत्पिता तेन निहतो बाहुशालिना ॥३०

तं पश्य निहतं तात गतासुं गतचेतसम् ।
संस्कृत्य विधिवत्पुत्र तर्पयस्व यथातथम् ॥३१
एतच्छ्रुत्वा सवचनं जननीमभिवाद्य नाम् ।
प्रतिज्ञामकरोधातां शृणुध्वं च नराधिप ॥३२
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रियकुलान्वयाम् ।
स्नात्वा च तेषामसृजा तर्पयिष्यामि ते पतिम् ॥३३
तस्यापि परशुना बाहून्कार्तवीर्यस्य दुर्मतेः ।
छित्वा पास्यामि रुधिरमिति सत्यं शृणुष्व मे ॥३४

इसके अनन्तर राम के इस वाक्य से यह मन्द की भाँति अत्यन्त विह्वल होती हुई उसकी माता दोनों हाथों से छाती पीटती हुई उससे यह वचन बोली—परम क्रूर सहस्रार्जुन ने दूसरे क्षत्रियों के सहित यहाँ आकर बाहुशाली तुमने ही तेरे पिता को निहत किया है। हे बेटा! अपने मृत पिता का दर्शन कर ले जो इस समय में गत प्राण और चेतना से रहित हैं। हे पुत्र! अब इनका तुम विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार कर डालो और ठीक २ रीति इनका तर्पण करो। हे नराधिप! माता के यह वचन सुनकर उस अपनी जननी का अभिवादन करके उन्होंने जो उस समय में प्रतिज्ञा की थी उसका आप अब श्रवण करिये—क्षत्रिय कुल के अन्वय वाली इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय रहित करके उन्हीं के रक्त से स्नान कर के ही अब मैं आपके पति का तर्पण करूँगा। मैं अपने इस फरसा से उस दुर्मति कार्तवीर्य की भुजाओं का छेदन करके ही उसका रुधिर पान करूँगा—यह मेरा वचन सर्वथा सत्य है उसे सुन लो। इस प्रकार से प्रतिज्ञा करके परम प्रतापी जामदग्न्य ने महान् क्रोध से आविष्ट होकर फिर अपने पिता जमदग्नि का संस्कार किया था ॥२९-३४॥

एवं प्रतिज्ञां कृत्वाऽसौ जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टः संस्कृत्य पितरं ततः ॥३५
स हिष्मतीं पुरीं रामो जगाम क्रोधमूर्च्छितः ।
छित्वा बाहुवनं तस्य हत्वा तं क्षत्रियाधमम् ॥३६

जगामक्षत्रियान्तात पृथिवीमवलोकयन् ।
सप्तद्वीपाणं वयुता सशैलवनकाननाम् ॥३७
पूर्वतः पश्चिमामाशा दक्षिणोत्तरतःकुरुन् ।
स्यमन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान् ॥३८
सतेपुरुधिराम्भस्सुह्रदेपु क्रोधमूर्च्छिता ।
पितृन्सन्तर्प्य यामामरुधिरेणेतिनःश्रुतम् ॥३९
अथर्चीकादयोपेत्य पितरो ब्राह्मणर्षभम् ।
तं क्षमस्वेति जगदुस्ततः स विरराम ह ॥४०
तेषां समीपे यो देशो ह्रदानां रुधिराम्भसाम् ।
स (स्य) मन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत्परिकीर्तितम् ॥४१
निवर्त्यकमणस्तस्मात्पितृन्प्रोवाचपाण्डव ।
रामः परमधर्मात्मायदिदं रुधिरं मया ॥४२
क्षिप्तं पञ्चसु तीर्थेषु तद्भूयात्तीर्थमुत्तमम् ।
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पितरोऽदृश्यतां गताः ॥४३

क्रोध से एक दम मूर्च्छित होते हुए परशुराम माहिष्मती पुरी को चल दिए थे। और वहाँ पहुँचकर उसको जो सहस्र बाहुओं का वन था उसको काटकर उस प्रथम क्षत्रिय को मार गिराया था और फिर क्षत्रियों के अन्त कर देने के लिए सात द्वीपों और अर्णवों वाली—पर्वत और वन काननों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को देखते हुए वहाँ से चल दिये थे। पूर्व से पश्चिम दिशा तथा दक्षिण उत्तर कुरुओं को गये थे। सामन्तक पञ्चक में पाँच रुधिर के ह्रद किये थे। उन रुधिर के जल वाले ह्रदों में उन परशुराम ने क्रोध से मूर्च्छित होकर रुधिर से ही पितृगण का तर्पण किया था—ऐसा हमने सुना है। इसके अनन्तर ऋर्चीकादि पितरों ने उन ब्राह्मण श्रेष्ठ के समीप में उपस्थित होकर उनसे कहा था—उनको क्षमा कर दीजिये। इसके पश्चात् वह विरत हो गये थे। रुधिर रूपी जल वाले उन ह्रदों के समीप में जो देश है वह स्यमन्तक पञ्चक—इस पुण्यमय नाम से परिकीर्तित किया जाता है। हे पाण्डव ! उस कर्म से निवृत्त होकर परम धर्मात्मा राम ने पितरों से कहा था कि मैंने जो यह रुधिर

पाँच तीर्थों में प्रक्षिप्त किया है यह उत्तम तीर्थ हो जावे—तथास्तु—अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कह कर सब पितृगण अदृश्यता को प्राप्त हो गये थे ॥३६-४३॥

एवं रामस्य ससर्गोदेवमार्गे युधिष्ठिर ।
सर्वपापक्षयकरो दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ॥४४
रेणुकाप्रत्ययार्थाय अद्यापि पितृदेवता. ।
दृश्यन्तेदेव मार्गस्थाः सर्वपापक्षयंकराः ॥४५
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र नर्मदोदधिसङ्गमे ।
स्यानं कृत्वा विधानेनमुच्यन्तेपातकैर्नराः ॥४६
कुशाग्रेणाऽपि कौन्तेयनस्प्रष्टव्यो महोदधिः ।
अनेन तत्रमन्त्रेण स्नातव्यं नृपसत्तम ॥४७
नमस्ते विष्णुरूपाय नमस्तुभ्यमपांपते ।
सान्निध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि ॥४८

हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार से देव मार्ग में राम का संसर्ग दर्शन से और स्पर्श करने से मनुष्यों के समस्त पापों के क्षय करने वाला होता है। रेणु का माता के प्रत्यय (विश्वास) के लिए उस समस्त पापों के क्षय करने वाले देव मार्ग में स्थित पितृ देवता गण अभी भी दिखलाई दिया करते हैं। हे राजेन्द्र ! नर्मदा और सागर के संगम उस तीर्थ में विधान के साथ स्नान करके मनुष्य पातकों से मुक्त हो जाया करते हैं। हे कौन्तेय ! कुशा के अग्र भाग से भी महोदधि का स्पर्श नहीं करना चाहिये। हे नृप सत्तम ! वहाँ पर इस निम्नांकित मन्त्र के द्वारा स्नान करना चाहिये। हे अपांपते ! हे देवश ! विष्णु के स्वरूपधारी आप की सेवा में प्रणाम अर्पित है—जलों के स्वामी की सेवा में नमस्कार है। लवणाम्भ सागर में आप सान्निध्य करिये ॥४४-४८॥

अग्निश्च तेजो मृडया च देहे रेतोऽथ विष्णुरमृतस्य नाभिः।
एतद्ब्रुवन्पाण्डवसत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पतिं नदीनाम् ॥४९
पञ्चरत्नसमायुक्तं फलपुष्पाक्षतैर्युतम् ।
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र दद्यादर्घं महोदधेः ॥५०

सर्व रत्ननिधानस्त्वं सर्व रत्नाकराकर. ।
सर्वामरप्रधानेश गृहाणार्घं नमोऽस्तु ते ॥५१
आजन्मजनितात्पापान्मामुद्धर महोदधे ।
याह्यर्चितोरत्ननिधे पर्व तान्पार्वणोत्तम ॥५२
कोऽपर· सागराद्देवात्स्वग द्वारविपाटन ।
तत्र सागरपर्यन्तं महातीर्थं मनुत्तमम् ॥५३
जामदग्न्येन रामेण तत्र देवः प्रतिष्ठितः ।
यत्र देवाः ■ गन्धर्वा मुनयः सिद्धचारणाः ॥५४
उपासते विरूपाक्षं जमदग्निमनुत्तमम् ।
रेणुकाचैव वैदेवी पश्यन्ति भुवि मानवाः ॥ ५५
प्रियवासे दिवे लोके वसन्ति कालमीप्सितम् ।
तत्र स्नात्वानरो राजंस्तर्पयन्पितृदेवताः ॥५६
तारयेन्नरकाद्धोरात्कुलानां शतमुत्तरम् ।
स्नात्वा दत्वाऽत्र सहिताः श्रुत्वा यं भक्तिपूर्वकम् ॥५७

हे पाण्डव ! अग्नि—तेज और मृइया देह मे इसके अनन्तर अमृत को नाभि विष्णु हैं—यह सत्य वाक्य बोलता हुआ नदियो के पति मे फिर अवगाहन करना चाहिये । हे राजेन्द्र । पाचों रत्नों से युक्त फल-पुष्प और अक्षतो से समन्वित इस निम्न मन्त्र से महोदधि को अर्घ देना चाहिए ॥५०॥ हे समस्त अमरो मे प्रधानो के भी ईश ! आप सम्पूर्ण रत्नो की खान हैं और सभी रत्नों के आकरो को आकर हैं । हमारे इस अर्घ को ग्रहण कीजिये आपकी सेवा मे आपके लिए हमारा प्रणाम अर्पित है । यह अर्घ देने का मन्त्र है । हे महोदधे ! मेरे जन्म से लेकर समुत्पन्न हुए पापों से मेरा उद्धार कर दो । हे पार्वणोत्तम ! हे रत्ननिधे ! आप समर्चित होकर पर्वतो को गमन कीजिए । यह विसर्जन का मन्त्र है । इस सागर देव से अधिक स्वर्ग के द्वार को विपाटन करने वाला दूसरा कौन हो सकता है ? वहाँ सागर तक अत्युत्तम महा तीर्थ है । जामदग्न्य श्री परशुराम ने वहाँ पर देव की प्रतिष्ठा की थी जहाँ पर देव गण—गन्धर्व—मुनि लोग—सिद्धगण और चारण सभी अत्युत्तम

जमदग्नि विरूपाक्ष भगवान की उपासना किया करते हैं। [illegible] भूमि में जो मनुष्य रेणुका देवी का दर्शन किया करते हैं वे चिरकाल शिवलोक में अभीष्ट काल पर्यन्त निवास किया करते है। हे राजन्! उस तीर्थ में स्नान करके अपने पितृगण और देवों का तर्पण करते हुए मनुष्य घोर नरक से उत्तर में होने वाले सौ कुलों का उद्धार कर देता है। स्नान करके यहाँ पर दान करके और भक्ति पूर्वक सहित इस माहात्म्य का श्रवण करके भी अपना और अपने बहुत से कुल का तारण कर दिया करते हैं ॥५०-५७॥

१०९—रेवाखण्डपुस्तकदानादिमाहात्म्यवर्णन

इतिवः कथितं विप्ररेवा माहात्म्यमुत्तमम् ।
यथोपदिष्ट पार्थाय मार्कण्डेयेनवपुरा ॥१
तथा तीर्थ कदम्बाश्च तेषु तीर्थं विशेषतः ।
प्राधान्येन मया ख्याता यथासख्य यथाक्रमम् ॥२
एतत्पवित्रमतुलं ह्येतत्पापहरं परम् ।
नर्मदाचरितं पुण्य माहात्म्यं मुनिभाषितम् ॥३
सप्तकल्पानुगो विप्रो नर्मदायां मुनीश्वरः ।
मृकण्डतनयो धीमान्परमार्थविदुत्तमः ॥४
संसेव्य सर्वतीर्थानि नदीः सर्वाश्चवपुरा ।
बहुकालास्मरा रेवामालक्ष्यशिवदेहजाम् ॥५
मेकलेति चशर्वोक्तां शरणं शर्वजां ययौ ।
अजरामपरांदेवी दैत्यध्वकरी पराम् ॥६
महाविमलसंयुक्ता भवघ्नी भवजाह्नवीम् ।
तस्यामाश्रित्य सप्तोऽप जातः सोऽप्यजरामरः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—हे विप्रगण! पुरातन समय में जिस प्रकार से महर्षि मार्कण्डेय जी ने पार्थ युधिष्ठिर को इसका उपदेश किया था वही मैंने आप लोगों को यह परमुत्तम माहात्म्य वर्णन करके बतला दिया है। मैंने

बहुत-से तीर्थों का तथा उनमें भी विशिष्ट तीर्थों का प्रधान रूप में संख्या और क्रम के अनुसार वर्णन किया है। यह अत्यन्त ही पवित्र और अतुल पापों के हरण करने वाला है मुनीश्वरो! पुण्यमय नर्मदा का चरित एवं माहात्म्य है जिसको कि महामुनि ने कहा था। हे मुनीश्वरो! सात कल्पों तक अनुगमन करने वाला मृकण्ड का पुत्र विप्र बहुत ही बुद्धिमान् और उत्तम अर्थ का वेत्ता था। इनने पहिले समस्त तीर्थों का भली भाँति सेवन करके और समस्त नदियों का सेवन करके बहुत कल्पों तक स्मरण की जाने वाली और शिव प्रभु के देह से समुत्पन्न हुई रेवा नदी को देखकर के भगवान् शर्व के द्वारा मेकला—इस नाम से कही गई और शर्व से ही समुत्पन्न हुई के कारण से वह चले गये थे। वह देवी जरा रहित—अमर—परा—और दैत्यों के ध्वंस करने वाली थी—महान् वैभव से समन्वित—संसार की बाधाओं का हनन करने वाली और भव की जाह्नवी थी। उसमें सप्रेम को आबद्ध करके वह प्रेमी भी अजरामर हो जाया करता है ॥१-७॥

पष्टितीर्थं सहस्राणिपष्टिकोटयस्तथा ।
व्यवस्थितानि रेवायास्तीरयुग्मेपदेपदे ॥८
सरितः परितः सन्ति सतीर्थास्तु सहस्रशः ।
नतुला यान्ति रेवायास्तासाच मन्ये मुनीश्वरा ॥९
एतद्वः कथितं सर्वं यत्पृष्टमखिल द्विजाः ।
यन्महेशमुखाच्छ्रुत्वावायुराह ऋषीन्प्रति ॥१०
तद्वन्मृकण्डतनयोऽप्यनुभूयाखिला नदीम् ।
सतीर्थां पदशः प्राह पाण्डुपुत्राय पावनीम् ॥११
एतच्च कथितं सर्वं सक्षेपेणद्विजोत्तमाः ।
नर्मदाचरितं पुण्यं त्रिपु लोकेपु दुर्लभम् ॥१२
किमन्यैः सरिता तोयैः सेवितैस्तु सहस्रशः ।
यदि संसेव्यते तोयं रेवायाः पापनाशनम् ॥१३
मेकलाजलसंसेवी मुक्तिमाप्नोति शाश्वतीम् ॥१४

रेवा के दोनों तटों पर कदम—कदम पर हे सत्तमो ! साठ हजार और साठ करोड़ तीर्थ व्यवस्थित हैं। सरिता के दोनों ओर सहस्रों उपतीर्थ हैं। हे मुनीश्वरो ! ये सब रेवा की तुलना प्राप्त नहीं होते हैं—ऐसा मैं मानता हूँ। हे द्विजगण ! आप लोगों ने जो कुछ भी मुझसे पूछा है यह सब मैंने आपको बतला दिया है जो कि भगवान् महेश के मुख से श्रवण करके वासुदेव ने ऋषियों से कहा था। उसी यौनि मृकण्ड के पुत्र ने भी सम्पूर्ण नदी का अनुभव प्राप्त करके इस पावनी सतीर्था को पद से पाण्डु के पुत्र को कहा था। हे द्विजोत्तमो ! यह सभी संक्षेप से मैंने कह दिया है। यह नर्मदा का चरित परम पुण्यमय है और तीनों लोकों में परम दुर्लभ है। अन्य सहस्रों सरिताओं के जलों का सेवन करने से क्या लाभ है यदि रेवा का जल भली भाँति सेवन किया जावे जो कि पापों के नाश करने वाला है। मेकला के जल का संसेवन करने वाला शाश्वती मुक्ति की प्राप्ति किया करता है ॥८-१४॥

यथा यथा भजेन्मर्त्यो यद्यदिच्छति तीर्थगः ।
तत्तदाप्नोति नियतं श्रद्धयाऽश्रद्धयापि च ॥१५
इदं ब्रह्माहरिर्दाभवं साक्षात्परोहरं ।
इद ब्रह्म निराकार कैवल्य नर्मदाजलम् ॥१६
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि नद्योऽक्षयफलप्रदा. ।
यावन्नस्मर्यते रेवासेवाहेवा कली नरैः ॥१७
ध्रुवं लोके हितार्थाय शिवेन स्वशरीरतः ।
शक्तिः कापिसदिद्या रेवेयमवतारिता ॥१८
तावद्गर्जन्ति यज्ञाद्या सत्र सेवादयो भृशम् ।
यावन्नर्मदानाम कीर्तनं क्रियते कलौ ॥१९
गरिमा गण्यते तावत्तपोदानव्रतादिषु ।
नरैर्या भाप्यते यावद्गुविभर्गभवा धुनी ॥२०
ये वसन्त्युत्तरेकूले रुद्रस्यानुचरा हि ते ।
वसन्ति याम्यतीरे ये लोकं ते यान्ति वैष्णवम् ॥२१

जैसे—जैसे मनुष्य भजन करता है और तीर्थों में गमन करने वाला जो-जो भी चाहता है वही-वही नियत रूप से वह अवश्य ही प्राप्त कर लिया करता है चाहे वह श्रद्धा से करे अथवा अश्रद्धा से करे। यह नर्मदा का जल ही ब्रह्मा है—यही हरि है तथा यह जल ही परात्पर साक्षात् हर है—यही निराकार ब्रह्म है और यही कैवल्य है। तभी तक अन्य समस्त तीर्थ गर्जन किया करते हैं अर्थात् अपने द्वारा प्राप्त होने वाले पुण्य-फल की घोषणा करते हैं और नदियाँ भी सुन्दर फल देने वाली बना करती हैं जब तक इस कलियुग में नरों के द्वारा रेवा की सेवा से होने वाले पुण्य फल का स्मरण नहीं किया जाता है। यह निश्चय ही लोक में हित सम्पादन करने के लिये भगवान् शिव ने अपने ही शरीर से कोई सरिता के स्वरूप वाली यह रेवा शक्ति अवतारित की है। तभी तक दान क्षेत्रादि यश अत्यधिक गर्जना किया करते हैं जब तक इस कलियुग में नर्मदा के नाम का कीर्तन नहीं किया जाता है। तप—दान और व्रत आदि में तभी तक गौरव की गणना हुआ करती है जब तक भूमण्डल में मनुष्यों के द्वारा भर्ग से समुत्पन्न नदी की प्राप्ति नहीं की जाया करती है। जो उत्तर कूल में निवास किया करते हैं वे रुद्र के अनुचर होते हैं और जो याम्य तट पर निवास करते हैं वे वैष्णव लोक में गमन किया करते हैं ॥१५-२१॥

धन्यास्ते देशवर्यास्ते येषु देशेषु नर्मदा ।
नरकान्तकरोशश्वत्सश्रिताश्च निर्मिता ॥२२
कृतपुण्याश्च ते लोका शोकाय न भवन्ति ते ।
ये पिबन्ति जलं पुण्यं पार्वतीपतिसिन्धुजम् ॥२३
इदं पवित्रमतुलं रेवायाश्चरितं द्विजा ।
शृणोति यः कीर्तयते मुच्यते सर्वपातकैः ॥२४
यत्फलं सर्ववेदेषु सषडङ्गपदक्रमैः ।
श्रुतं च पठितं तस्मात्फलमष्टगुणं भवेत् ॥२५
ये पुनर्भावितात्मानः शास्त्रं शृण्वन्ति नित्यशः ।
पूजयन्ति च तद्वाक्यं नार्मदं वरभूषणैः ॥२६

पुष्पैः फलैश्चन्दनाद्यैर्भोजनैर्विविधैरपि ।
शास्त्रेऽस्मिन्पूजिते देवा पूजितागुरवस्तया ॥२७
इहलोके परे चैव नात्र कार्या विचारणा ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन गन्धवस्त्रादिभूषणैः ॥२८
पूजयेत्परया भक्त्या वाचकं शास्त्रमेव च ।
वेदपाठेश्च यत्पुण्यमग्निहोत्रैश्चपालितैः ॥२९
तत्फलं समवाप्नोति नर्मदाचरिते शुभे ।
कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं प्रभासे पुष्करे तथा ॥३०

वे श्रेष्ठ देश परम धन्य हैं जिन देशों में नर्मदा नदी बहती है । यह साक्षात् भगवान् शम्भु के द्वारा निर्मित नदी है जो निरन्तर ही नरकों का अन्त करदेने वाली है जो लोग इसका सदा आश्रय ग्रहण करते हैं । वे लोक महान् पुण्यों के करने वाले हैं और उन को शोक कभी भी नहीं होता है जो पार्वती देवी के पति के द्वारा विरचित इस नदी के पुण्य जल का पान करते हैं उनको कभी भी शोक का अवसर ही प्राप्त नहीं होता है ॥२३॥ हे द्विजगण ! यह रेवा का चरित अतुल पवित्र है । जो इस चरित का श्रवण करता है और जो इसका कीर्तन करता है अर्थात् पढ़ता है वह सभी महा पातकों से छुटकारा पा जाया करता है । जो फल पद—क्रम घन—जटा—बल्ली आदि छै अङ्ग के सहित समस्त वेदों के पढ़ने एवं श्रवण करने का फल होता है उस फल से आठगुना फल इस नदी से हुआ करता है ॥२४॥ जो लोग भावित आत्मा वाले होते हैं और नित्य ही शास्त्र का श्रवण किया करते हैं । वस्त्र और भूषणों के द्वारा इस नर्मदा के शास्त्र का जो लोग पूजन किया करते हैं । पुष्प—फल—चन्दन आदि द्वारा तथा विविध भाँति के भोजनों से इस शास्त्र के पूजन किये जाने पर समस्त देवता और गुरुवर्ग पूजित हो जाया करते हैं । इस लोक में और पर लोक में भी सब समर्चित होते हैं—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए । इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से गन्ध—वस्त्र—भूषण आदि के द्वारा पराभक्ति से इस शास्त्र का और इसके वाचन करने वाले

का पूजन करना चाहिए। वेदों के पाठों से तथा पालित अग्नि होत्रों से जो पुण्य फल होता है वही पुण्य फल शुभ नर्मदा के चरित में प्राप्त हो जाया करता है। कुरुक्षेत्र में—प्रभासक्षेत्र में तथा पुष्कर में जो पुण्य होता है वही पुण्य फल परम शुभ नर्मदा के चरित के पठन, श्रवण और समर्चन से हो जाता करता है ॥२९-३०॥

रुद्रावर्ते गयायां च वाराणस्यां विशेषतः।
गंगाद्वारे प्रयागेच गंगासागरसंगमे ॥३१
एवमादिषु तीर्थेषु यत्पुण्यं जायते नृणाम्।
नर्मदाचरितं श्रुत्वा तत्पुण्यं सकलं लभेत् ॥३२
आदिमध्यावसानेषु नर्मदाचरितं शुभम्।
यः शृणोति नरो भक्त्या शृणुध्वं तत्फलं महत् ॥३३
समाप्य शिवसंस्थानं देवकन्यासमावृतः।
रुद्रस्यानुचरोभूत्वा शिवेनसहमोदते ॥३४
धर्माख्यानमिदं पुण्यं सर्वाख्यानेष्वनुत्तमम्।
गृहेऽपिपठ्यतेयस्यचतुर्वर्णस्यसत्तमाः ॥३५
धन्यं तस्यगृहेमन्ये गृहस्थं चापि तत्कुलम्।
पुस्तकंपूजयेद्यस्तु नर्मदाचरितस्य तु ॥३६
नर्मदा पूजिता तेन भगवांश्च महेश्वरः।
वाचके पूजितेतद्वद् वाग्देव्यृषयोऽर्चिताः ॥३७

रुद्रावर्त्त में, गया में, विशेष करके वाराणसी में, गङ्गा द्वार में, प्रयाग में, गङ्गा सागर के सङ्गम में, इस तरह के बड़े २ तीर्थों में मनुष्यों को जो भी पुण्य फल प्राप्त होता है वही पुण्य फल नर्मदा के चरित को श्रवण करके सम्पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाया करता है। आदि, मध्य और अवसान में नर्मदा के शुभ चरित का जो भी कोई मनुष्य भक्ति से श्रवण किया करता है उसके महान् फल का श्रवण करो। शिव के संस्थान को प्राप्त करके देव कन्याओं से समावृत होता हुआ भगवान् रुद्र देव के अनुचर होने का पद प्राप्त करके शिव के ही साथ आनन्द प्राप्त किया करता है। धर्माख्यान परम पुण्यमय है और यह सभी आख्यानों में सर्वोत्तम

व्याख्यान है। हे यशस्विनी! जिसका पाठ चारों वर्णों के घर में भी किया जाता है। उसके घर को परम धन्य मानता हूँ और वह गृहस्थ तथा कुल भी अतीव धन्य है जो नर्मदा चरित की पुस्तक की पूजा किया करता है। जिसने नर्मदा नदी का पूजन कर लिया है उसने भगवान् महेश्वर का ही सम्पूजन कर लिया है। इस पुराण के वाचन करने वाले का जिसने पूजन किया है मानों उसने सभी देवों और ऋषियों का अर्चन कर लिया है ॥३१-३७॥

लेखयित्वा च सकलं रेवाचरितमुत्तमम् ।
भूषणं सर्वशास्त्राणां योददाति द्विजन्मने ॥३८
नर्मदा सर्वतीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति तन्नरोनात्र संशयः ॥३९
एतत्पुराणं रुद्रोक्तं महापुण्यफलप्रदम् ।
स्वर्ग्यं पुत्रदं धन्यं यशस्यं कीर्तिवर्धनम् ॥४०
धर्म्यमायुष्यमतुलं दुःखदुःस्वप्ननाशनम् ।
पठतां शृण्वतां चापि सर्वं कामार्थसिद्धिदम् ॥४१
यत्रयत्रेदं पुण्यं पुराणं वाच्यते द्विजैः ।
शिवलोके स्थितिस्तस्य पुराणाक्षरवत्सरी ॥४२
इति निगदितमेतन्नर्मदायाश्चरित्रं
पवनगदितमग्र्यं शर्ववक्त्रादवाप्य ।
त्रिभुवनजनवन्द्यं स्वेतदादौ मुनीनां
कुलपतिपुरतस्तत्सूतमुख्येन साधु ॥४३

इस सम्पूर्ण रेवा के उत्तम चरित को लिखवा कर इस समस्त शास्त्रों के भूषण स्वरूप को जो कोई किसी ब्राह्मण को दान दिया करता है उस को नर्मदा अन्य समस्त तीर्थों में स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है वही फल उस मनुष्य को दिया करती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह पुराण भगवान् रुद्र के द्वारा ही कहा गया है और महान् पुण्य फल का प्रदान करने वाला है। यह स्वर्ग निवास, पुत्र देने वाला है, परम धन्य, यशस्य और कीर्ति के बढ़ाने वाला है। धर्म से युक्त, आयु प्रदान

करने वाला, अनुपम और दुःख तथा बुरे स्वप्नों के नाश करने वाला है। जो भी इसका पाठ किया करते हैं तथा इसका श्रवण करते हैं उनके समस्त कामों के प्रयोजन की सिद्धि प्रदान करने वाला है। जो यह दान किये हुए पुण्यमय पुराण को द्विजों के द्वारा बाँचा जाया करता है उनकी शिवलोक में स्थिति हुआ करती है। और वह पुरश्चाक्षर अक्षरी होता है। यह हमने नर्मदा चरित कह दिया है। यह शिव के मुख से प्राप्त करके वायु देव ने इस सर्वोत्तम को कहा है। यह त्रिभुवन के जनों का वन्दनीय है। आदि काल में कुलपति के आगे सूतजी ने वायु रूप से इस का वर्णन किया है ॥३८-४३॥

११०—सत्यनारायणविप्रसम्वादवर्णन

व्रतेन तपसा वाऽपि प्राप्यते वाञ्छितं फलम्।
सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ॥१
नारदेनैवमुक्तःस भगवान् कमलापतिः।
सुरर्षयेयथाप्राहतच्छृणुध्वं समाहिताः ॥२
एकदा नारदोयोगीपरानुग्रहकाम्यया।
पर्यटन् विविधाल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागतः ॥३
तत्र दृष्ट्वा जनाः सर्वे नानादुःखसमन्विताः।
नानायोनिसमुत्पन्नाः क्लिश्यन्ते पापकर्मभिः ॥४
केनोपायेनचैतेषांदुःखनाशोभवेद्ध्रुवम्।
इतिसञ्चिन्त्यमनसाविष्णुलोकंगतस्तदा ॥५
तत्रनारायणं देवं शुक्लवर्णंचतुर्भुजम्।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥६
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे।
नमस्ते वाङ्मनोऽतीतरूपायाऽनन्तशक्तये।
आदिमध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥७

ऋषियों ने कहा—हे महामुने! जिस व्रत अथवा तप से मनुष्यों को मन वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है उसे सबको देवर्षि नारदजी के पूछे

हुए प्रश्नानुसार मैं श्रवण करना चाहता हूँ। उसे आप कहिए ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—श्रीनारदजी के द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् कमला पति ने उन देवर्षि से जिस प्रकार से जो भी कहा था वही आप लोग सब परम सावधान होकर श्रवण कीजिए। एक समय की बात है कि योगीराज देवर्षि श्रीनारदजी दूसरे जीवों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अनेक लोकों में पर्यटन करते हुए मनुष्य लोक में आकर प्राप्त हो गये थे। वहाँ पर उनके द्वारा सभी मर्त्य लोक निवासी मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों से युक्त नाना प्रकार की योनियों में समुत्पन्न अपने किये हुए पाप पूर्ण कर्मों से क्लेश पाते हुए देखे गये थे ॥२-४॥ तदपि नारदजी ने अपने मन में इस विचार भूलोक वासी मनुष्यों की ऐसी बुरी दशा देख कर सोचा था कि ऐसा कौन सा उपाय हो सकता है जिसके करने से निश्चित रूप से इनके दुःखों का विनाश हो जावे। उसी समय में यही विचार करते हुए विष्णु लोक में पहुँच गये थे। वहाँ पर भगवान् नारायण देव का दर्शन किया था जो शुक्ल वर्ण वाले थे और जिनकी चार भुजाएँ थी। नारायण का स्वरूप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से विभूषित था। उन देवों के देव प्रभु का दर्शन करके नारदजी ने अपना कथन आरम्भ किया था। नारदजी ने कहा—मन और वाणी से भी परे स्वरूप वाले, अनन्त शक्ति से सुसम्पन्न तथा आदि, मध्य और अन्त से रहित, बिना गुणों वाले और गुणों की आत्मा वाले प्रभो! आपके लिये नमस्कार है ॥५-७॥

सर्वेषामादिभूताय भक्तानामार्तिनाशिने ।
श्रुत्वास्तोत्रं ततोविष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत ॥८
किमर्थमागतोऽसित्वं किन्तेमनसिवर्त्तते ।
कथयस्वमहाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ॥९
मर्त्यलोके जनाःसर्वे नानाक्लेशसमन्विताः ।
नानायोनिसमुत्पन्ना पच्यन्ते पापकर्मभिः ॥१०
तत्कथं शमयेन्नाथ लघूपायेन तद्वद ।
श्रोतुमिच्छामितत्सर्वं कृपास्तियदिते मयि ॥११

वृद्धब्राह्मणरूपेणपप्रच्छद्विजमादरात् ॥२३
किमर्थं भ्रमसे विप्र महीकृत्स्नां सुदु:खितः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां यदि रोचते ॥२४
ब्राह्मणोऽतिदरिद्रोऽहं भिक्षार्थं भ्रमणं मम ।
उपायं यदि जानासि कृपया कथय प्रभो ॥२५

इसके अनन्तर स्तवन करके भगवान् श्री सत्य नारायण प्रभु का स्मरण करते हुए अपने घर की ओर गमन करे। ऐसी विधि से इस व्रत एवं पूजन के करने पर मनुष्यों को वाञ्छा की सिद्धि निश्चित रूप से हो जाया करती है। विशेष करके इस परम घोर कलियुग में भू तल में दुःखो के विनाश करने का अन्य कोई भी उपाय ही नहीं है। हे द्विज ! अब मैं भगवान् सत्य नारायण प्रभु की कथा बतलाता हूँ जिसके श्रवण करने से मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् पूर्णकाम एवं सफल हो जाया करता है। कथा का यहीं से आरम्भ होता है—काशीपुर नामक ग्राम में कोई एक परम निर्धन विप्र था। वह विचारा क्षुधा और तृषा से अत्यन्त व्याकुल होकर निरन्तर पृथ्वी पर भ्रमण किया करता था। इस प्रकार से अत्यन्त दुःखित उस ब्राह्मण को ब्राह्मणों पर विशेष प्यार करने वाले सत्यनारायण भगवान् ने देखकर स्वयं एक वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके उसके समीप में समागत हुए और बहुत ही आदर के साथ उस ब्राह्मण से उन्होंने पूछा था—हे विप्र ! आप मुझे यह तो कृपा करके बतलाइये कि आप इस तरह से अत्यन्त दुःखित होते हुए किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए सम्पूर्ण भूमि पर भ्रमण किया करते हैं ? मैं यही सब सुनने की इच्छा रखता हूँ। यदि आप ठीक समझते हो तो यह मुझे बतला दीजिये। ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ और बहुत ही अधिक दरिद्री हूँ। मेरा यह समस्त भ्रमण केवल भिक्षा की प्राप्ति के लिये होता है। यदि आप मेरे इस उदर भरण की पीड़ा के निवारण का कोई उपाय जानते हों तो हे प्रभो ! आप कृपाकर मुझे वह बतला दीजिये ॥२०-२५॥

सत्यनारायणोविष्णुर्वाञ्छितार्थ फलप्रदः ।
तस्यत्व द्विजशार्दूल कुरुष्वव्रतमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा सर्व्व दुःखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥२६
विधानञ्च व्रतस्यास्य विप्रायाऽऽभाष्य यत्नतः ।
सत्यनारायणो वृद्धस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥२७
ततोऽसौमनसाविप्रश्चिन्तयामासईश्वरम् ।
व्रतं नारायणेनोक्तं विदित्वास्वमन्दिरं ययौ ॥२८
ततोऽहं तत्करिष्यामि व्रत मनसि चिन्तितम् ।
इति निश्चित्य विप्रोऽसौ रात्रौ निद्रा न लब्धवान् ॥२९
ततःप्रातःसमुत्थायसत्यनारायणव्रतम् ।
करिष्येऽहम्चसङ्कल्पसिद्धार्थं भगमद्द्विज ॥३०
तस्मिन्नेवदिनेविप्रः प्रचुरं द्रव्यमाप्तवान् ।
तेनैवबन्धुभि. सार्द्धं सत्यस्यव्रतमाचरत् ॥३१
सर्व्वंदु खविनिर्मुक्त:सर्वं सम्पत्समन्वित ।
बभूव सद्विजश्रेष्ठोव्रतस्याऽस्यप्रसादतः ॥३२
ततः प्रभृति कालञ्च मासि मासि व्रतं कृतम् ॥३३
एवं नारायणादेतद्व्रतं ज्ञात्वाद्विजोत्तम. ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तोदुर्लभं मोक्षमाप्तवान् ॥३४
व्रतमेतद्यदाविप्र पृथिव्यां सञ्चरिष्यति ।
तदैव सर्वदुःखं हि मानवानां विनश्यति ॥३५
एवं नारायणेनोक्तं नारदाय महात्मने ॥३६

उस वृद्ध ब्राह्मण वेष वाले प्रभु ने कहा—हे द्विजों में शार्दूल के समान ! भगवान् सत्यनारायण विष्णु सम्पूर्ण वांछित अर्थों के फलों के प्रदान करने वाले हैं । उन्हीं के परम उत्तम व्रत एवं अर्चन को आप करिये जिसके करने से मनुष्य इस संसार में सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाया करता है । श्री भगवान् ने नारद जी से कहा—उन बुभुक्षित विप्र को इस सत्यनारायण प्रभु के व्रत का पूरा विधान यत्नपूर्वक कहकर वह वृद्ध ब्राह्मण के स्वरूप में उपस्थित सत्यनारायण प्रभु वहीं पर अन्तर्हित

हो गये थे। उनके वहाँ छिप जाने पर इसके पश्चात् उस विप्र ने मन में ईश्वर का चिन्तन किया था कि यह व्रत तो स्वयं नारायण ने ही मुझे बतलाया है—यह समझकर वह मन्दिर में गया था। इसके अनन्तर उसने अपने मनमें विचार किया था कि मैं इस व्रत को करूंगा—ऐसा निश्चय करके उस ब्राह्मण ने रात्रि में निद्रा प्राप्त नहीं की थी अर्थात् व्रत करने के निश्चय करने पर इसी के चिन्तन करते रहने में रात को नींद बिल्कुल नहीं आई थी। फिर सुबह होते ही हे द्विज! वह उठकर मन में विचारने लगा कि मैं सत्य नारायणभगवान का व्रत अवश्य करूंगा ऐसा संकल्प करके वह सिद्धार्थ को प्राप्त हो गया था। भगवान् सत्य नारायण प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि उसी दिन में उस विप्र ने प्रचुर दान प्राप्त कर लिया था। उसी द्रव्य से उसने अपने बन्धुओं के साथ में मिल कर सत्य नारायण का व्रत किया था। इसके करने से वह सभी कष्टों से निर्मुक्त हो गया था और सब प्रकार की सम्पत्ति से युक्त हो गया था। वह द्विजों में श्रेष्ठ इसी व्रत के प्रभाव से एवं प्रसाद से सर्व सुख सम्पन्न हो गया था। तभी से लेकर सर्वदा प्रत्येक मास में उसने यह व्रत किया था। इस प्रकार से उस द्विज श्रेष्ठ ने इस सत्य नारायण के व्रत का ज्ञान साक्षात् भगवान् नारायण से ही प्राप्त किया था और वह इसे करके समस्त पूर्व कृत पापों से छुटकारा पाकर पूर्णतया विशुद्ध हो गया तथा उसने अन्त में परम दुर्लभ मोक्ष के पद को भी प्राप्त कर लिया था। भगवान् श्री विष्णु ने देवर्षि नारद जी से कहा—हे द्विज! जिस समय में यह व्रत पृथिवी में संचार प्राप्त कर लेगा उसी समय में भू मण्डल में समस्त परम पीड़ित मानवों का दुःख पूर्ण रूप से विनष्ट हो जायगा। श्री सूतजी ने कहा—हे महर्षियो! इस रीति से महान् आत्मा वाले देवर्षि श्री नारद जी से भगवान् नारायण ने इस व्रत के विषय में कहा था। जो कि मैंने आप लोगों के सामने वर्णन कर दिया है ॥२६-३६॥